Printed and published by K. Mittra at
The Indian Press, Ltd., Allahabad.

भूमिका

—:०:—



महाभारत सर्वमान्य ग्रन्थ है। हिन्दू-मात्र उसे पूज्य दृष्टि से देखते हैं। उस पर उनका यहाँ तक पूज्य भाव है कि उसे वे वेदों के बराबर मान्य समझते हैं। इसी से उसकी गिनती पाँचवें वेद में है। यह ग्रन्थ ज्ञान-रत्नों का अक्षय भाण्डार है। इसके आधार पर अनन्त-ग्रन्थ-रचना हो चुकी है, और अब तक होती जाती है। न मालूम कितने काव्य, कितने नाटक, कितने उपन्यास, कितने जीवनचरित और कितने आख्यान इसकी बदौलत, आज तक, लिखे गये हैं। सारे भूमण्डल के विद्वान् जिसे शिरसा वन्द्य समझते हैं वह हमारा अनमोल गीता-रत्न इसका एक अंश विशेष है। इसी महाभारत को ध्यानपूर्वक पढ़ने और इसमें कही गई बातों का विचार करने से आज तक इस देश में अनेक वीर, अनेक देशोद्धारक, अनेक तत्त्वज्ञानी और अनेक पण्डितों का प्रादुर्भाव हुआ है। कोई बात ऐसी नहीं जो महाभारत में न हो; कोई तत्त्व ऐसा नहीं जिसका निरूपण महाभारत में न हो; कोई शास्त्रीय विषय ऐसा नहीं जिसका विवेचन महाभारत में न हो। महाभारत को हिन्दू-समाज का जीवात्मा कहना चाहिए। जैसे महत्त्वपूर्ण उपदेश महाभारत से प्राप्त होते हैं वैसे और किसी ग्रन्थ से नहीं।

तुलसीदास की बदौलत रामायण की कथा का प्रचार तो घर घर होगया है। महलों से लेकर झोंपड़ियों तक में राम-चरित का कीर्तन होता है परन्तु महाभारत का पाठ—उस महाभारत का पाठ जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है—वही कर सकते हैं जो संस्कृत के अच्छे पण्डित हैं। सो एक तो संस्कृतज्ञ पण्डित ही कम हैं, दूसरे उनमें से अधिकांश इस इतने बड़े ग्रन्थ को मोल ही नहीं ले सकते, क्योंकि उसका मूल्य बहुत है। इन कारणों से महाभारत के पाठ, परिशीलन और मनन से होनेवाले बहुत बड़े बड़े लाभों से हिन्दू-समाज का एक बहुत बड़ा अंश वञ्चित रहता है। यह बड़े परिताप की बात है। जिस ग्रन्थ में हमारे पूजनीय पूर्व-पुरुषों की दिगन्तव्यापिनी कीर्ति का कीर्तन हो; जिस ग्रन्थ में हमारे धीर, वीर, पराक्रमी और तेजस्वी पुरुषों का चरित

हो, जिस ग्रन्थ में हमारे पुराने कला-कौशल, ऐश्वर्य्य, प्रभुत्व और एकाधिपत्य का इतिहास हो—उसके पाठ से वञ्चित रहना हम लोगों के लिए बहुत बड़े कलङ्क की बात है।

भारत की अन्यान्य भाषाओं में महाभारत के कितने ही अनुवाद होगये हैं; उसके आधार पर कितनी ही पुस्तकें बन गई हैं; उसका सारांश लेकर कितने ही छोटे मोटे ग्रन्थ लिखे गये हैं। जिस उर्दू को हम तुच्छ दृष्टि से देखते हैं उस तक में महाभारत का एक अच्छा अनुवाद विद्यमान है। परन्तु, हाय! जिस हिन्दी को हम सारे भारत की भाषा बनाना चाहते हैं उसमें इस पूरे ग्रन्थ का कोई सर्वाङ्ग-सुन्दर अनुवाद ही नहीं! जिस तरह के ग्रन्थों की इस समय बहुत ही कम ज़रूरत है उनके लिए तो बड़े बड़े प्रबन्ध किये जायँ, परन्तु जिसके उद्धार बिना हमारे पूर्वजों की कीर्त्ति के डूबने का डर है उसके अनुवाद के अभाव पर खेद तक न प्रदर्शित किया जाय! इस सम्बन्ध में हिन्दी के हित-चिन्तकों को मराठी भाषा की "भारतीय युद्ध" नामक पुस्तक की प्रस्तावना पढ़नी चाहिए। यह प्रस्तावना भारत के एक प्रधान राजनीतिज्ञ, सम्मान्य सम्पादक और अद्वितीय विद्वान् की लिखी हुई है। उसके पढ़ने से मालूम हो जायगा कि महाभारत का महत्व कितना है और उसके प्रचार से देश को कितने लाभ की सम्भावना है।

इंडियन प्रेस की बहुत दिनों से यह इच्छा है कि महाभारत का एक अच्छा और सचित्र अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। इस काम के लिए बहुत समय दरकार है। परन्तु काम है यह ऐसा कि जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा। देखें पूरे महाभारत के एक सुन्दर और सचित्र अनुवाद के प्रकाशित होने का कब शुभ दिन आता है। तब तक महाभारत का मूल आख्यान इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाता है*।

श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ ठाकुर, बी० ए०, बँगला के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने महाभारत का मूल आख्यान बँगला में लिखा है। किसी पुस्तक का सार खींचने में बहुत कुछ काट-छाँट करने की ज़रूरत पड़ती है। आख्यान-लेखक महाशय ने इस काम को बड़ी योग्यता से किया है। आपकी पुस्तक में महाभारत का एक भी महत्व-पूर्ण अंश नहीं छूटने

*पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि अब इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग ने पूरे संस्कृत-महाभारत का सचित्र हिन्दी-अनुवाद निकालने का निश्चय कर लिया है और उसका प्रतिमास एक अंक निकल रहा है। अब तक ३१ अंक प्रकाशित भी हो चुके हैं।

पाया। जितनी प्रधान प्रधान घटनायें हैं सब ले ली गई हैं—अप्रधान घटनाओं का विस्तार कम कर दिया गया है और जिन अवान्तर बातों की तादृश ज़रूरत न थी वे छोड़ दी गई हैं। मतलब यह कि पुस्तक में सारी प्रयोजनीय बातों का समावेश हुआ है। बँगला जाननेवालों में इस पुस्तक का बड़ा आदर है। आबाल-वृद्ध-वनिता सभी इसे पढ़ते हैं।

यह पुस्तक इसी पूर्वोक्त बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवाद स्वच्छन्दतापूर्वक किया गया है। जहाँ तक हो सकता है अनुवाद में बोलचाल की सीधी सादी भाषा से काम लिया गया है। क्लिष्टता न आने देने का यथासम्भव यत्न किया गया है। सम्भव है, फिर भी कहीं कहीं पर किसी को क्लिष्टता जान पड़े। इसके लिए यदि कोई अनुवादक पर दोषारोप करना चाहे तो कर सकता है; परन्तु दोषदाता को यह सोच लेना चाहिए कि क्लिष्टता कहते किसे हैं। जो वाक्य, वाक्यांश, या शब्द एक आदमी के लिए सरल हैं वही दूसरे के लिए क्लिष्ट हो सकते हैं। क्योंकि क्लिष्टता और सरलता पढ़नेवाले के भाषा-ज्ञान की न्यूनाधिकता पर अवलम्बित रहती है।

जुही, कानपुर,
२८ आक्टोबर १९०८

महावीरप्रसाद द्विवेदी

सूचीपत्र

—:o:—

पहला खण्ड

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

———

दूसरा खण्ड

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

नोट—* चिह्नयुक्त चित्र रङ्गीन हैं।



महाभारत

पहला खण्ड

१—वंशावली


जिन महाप्रतापी राजा भरत के नाम के प्रभाव से भारतवर्ष और भारत वंश, दोनों, इतने दिनों से प्रसिद्ध हैं और न मालूम कब तक प्रसिद्ध रहेंगे, उनके कुल के आदि-पुरुष का नाम राजा ययाति था।

राजा ययाति के जेठे पुत्र का नाम यदु था। पिता ययाति, यदु से अप्रसन्न हो गये थे। इससे उन्होंने यदु को राज्य का अधिकारी नहीं बनाया। इतना ही नहीं, किन्तु ययाति ने शाप देकर यदु की सन्तान को क्षत्रियों के कुल से पतित भी कर दिया। ययाति ने क्रोध में आकर कहा—"जा, तेरे वंश में जो लोग जन्म लेंगे वे क्षत्रिय न कहलावेंगे"। यह सब होने पर भी यदु के वंश ने बड़ा नाम पाया। उसका वंश यादव कहलाया।

भोज, वृष्णि, अन्धक आदि वीरों ने इसी यादव वंश में जन्म लेकर अपने अपने नाम की महिमा बढ़ाई। अन्त में परम-पूजनीय, अतुल-पराक्रमी, अनन्त-ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्ण ने इस वंश में जन्म लिया। इससे यदुवंश की मान-मर्य्यादा, किसी भी बात में, किसी क्षत्रिय-कुल की मान-मर्य्यादा से कम न रह गई।

पिता ययाति अपने छोटे पुत्र पुरु ही को सबसे अधिक प्यार करते थे। पुरु भी पिता को प्रसन्न रखने की सदा चेष्टा करते थे। जो बात पिता के सन्तोष का कारण होती थी वही करते थे। जिसमें वे पिता का हित देखते थे उसके करने में कभी आगा पीछा न करते थे। इससे पिता ने पुरु को ही अपना उत्तराधिकारी समझा। ययाति का राज-सिंहासन पुरु ही को मिला। शूरता और वीरता में पुरु के वंश की भी बहुत

प्रसिद्धि हुई। इसी पुरु-वंश में राजा भरत उत्पन्न हुए। उनके कारण इस वंश का इतना नाम हुआ कि उसका कभी लोप नहीं हो सकता। आगे चल कर महा बलवान राजा कुरु इसी वंश में हुए। उनके जन्म से इस वंश का गौरव और भी बढ़ा। तब से इस वंश का नाम कौरव हुआ।

द्वापर युग के अन्त में कुरु-वंश के शिरोमणि महात्मा शान्तनु का जन्म हुआ। शान्तनु के पिता का नाम राजा प्रतीप था। शान्तनु के बड़े होने पर राजा प्रतीप ने उन्हें अपने जीते ही जी, राज्य के सिंहासन पर बिठाया और अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे उपदेश देकर, आप राज-पाट छोड़ वन में चले गये। वहाँ वानप्रस्थ होकर अपना समय ईश्वर की उपासना में बिताने लगे।

राजा शान्तनु को शिकार खेलना बहुत पसन्द था। शिकार पर उनकी बड़ी प्रीति थी। इस कारण उन्होंने गङ्गा के तट पर एक बहुत रमणीय स्थान बनवाया। वहाँ जाकर कभी कभी वे रहते थे और शिकार के लिए वन वन पशुओं को ढूँढ़ते फिरते थे। एक दिन वे बहुत दूर तक वन में घूमते रहे और अनेक पशुओं को मार कर अपने स्थान को लौटे। मार्ग में उन्होंने देखा कि गङ्गा के किनारे एक अत्यन्त रूपवती स्त्री खड़ी उनको देख रही है। उस कामिनी का सुन्दर रूप, मनोहर वेश और नया यौवन देख कर राजा शान्तनु को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उस पर मोहित हो गये। वे उससे प्रेमपूर्वक मीठी मीठी बातें करने लगे। उन्होंने पूछा:—

हे सुन्दरी! देवता, दानव, गन्धर्व या मनुष्य में से किस जाति को तुमने अपने जन्म से अलङ्कृत किया है? किस जाति में जन्म लेकर तुमने उसकी शोभा को बढ़ाया है? हम तुम्हारी सुन्दरता को देख कर यहाँ तक तुम पर आसक्त हो गये हैं कि तुमसे विवाह करना चाहते हैं—तुम्हें अपनी रानी बनाना चाहते हैं। कृपा करके कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है? हमारे प्रश्न का उत्तर देकर हमारे हृदय के आवेग को—हमारे मन की उत्सुकता को—शान्त करो।

राजा के इन मधुर वचनों को सुन कर मुसकराती हुई इस स्त्री ने इस प्रकार उत्तर दिया:—

महाराज! जब आप मुझे इतना चाहते हैं—जब मुझ पर आपका इतना अनुराग है—तब मैं आपको निराश नहीं कर सकती। मैं आपकी पत्नी होने को तैयार हूँ। परन्तु मुझसे आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी। मैं चाहे जो काम करूँ, चाहे वह अच्छा हो



गंगादेवी का पुत्र-विसर्जन ।

चाहे बुरा, आपको न तो मुझे मना करने का अधिकार होगा और न मेरा तिरस्कार करने का। यदि आप ऐसा न करेंगे—यदि आप इस प्रतिज्ञा का उल्लङ्घन करेंगे—तो मैं तत्काल आपको छोड़ कर चली जाऊँगी।

राजा प्रीति की फाँस में बिलकुल ही फँस चुके थे। उन्हें उस समय उचित अनुचित का ज्ञान न था। इससे बिना अच्छी तरह विचार किये ही उन्होंने उस सुन्दरी रमणी की बात मान ली। उन्होंने कहा, हमें यह प्रतिज्ञा मंज़ूर है। उस महारूपवती स्त्री को वे अपनी राजधानी को ले आये और अपनी सबसे बड़ी रानी बना कर उसे महलों में रक्खा। उसके साथ वे आनन्द से रहने लगे।

कुछ समय बीतने पर राजा की रानी के एक पुत्र हुआ। परन्तु पुत्र होते ही रानी ने उस तत्काल जन्मे हुए बच्चे को गङ्गा में फेंक कर उसे नष्ट कर दिया। पत्नी के ऐसे अनुचित व्यवहार से राजा शान्तनु को बड़ा दुःख हुआ। उन पर वज्र सा गिरा। परन्तु उसे उन्होंने चुपचाप सहन किया। पत्नी के ऊपर बहुत ही अधिक प्रीति होने के कारण उससे कुछ भी उन्होंने नहीं कहा। इसी तरह एक के बाद एक ऐसे सात पुत्र शान्तनु की रानी के हुए। परन्तु उन सातों को, एक एक करके, पैदा होते ही वह गङ्गा में डाल आई। इस कारण राजा का क्रोध धीरे धीरे बढ़ता गया। परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद करके, इस अनुचित काम से पत्नी को रोकने का उन्हें साहस न हुआ। वे डरे कि रोकने से वह तत्काल ही हमें छोड़ कर चली जायगी।

परन्तु जब आठवाँ पुत्र हुआ और उसे भी रानी गङ्गा में फेंकने चली तब राजा से न रहा गया। पुत्र-शोक से वे अत्यन्त विह्वल हो उठे। वे रानी के पीछे पीछे दौड़े और बोले कि, ख़बरदार इस बालक को जल में न फेंकना। उन्होंने कहा:—

मैं और नहीं सहन कर सकता। हे पुत्रघातिनी! तुम कौन हो? क्यों ऐसा बुरा काम करती हो? ऐसी निठुरता करना उचित नहीं। इस बालक को मैं गङ्गा में नहीं फेंकने दूँगा।

इस पर उस रमणी ने उत्तर दिया—हे पुत्र की इच्छा रखनेवाले राजा! मैं आपके कहने से इस पुत्र का नाश न करूँगी। किन्तु आपने जो प्रतिज्ञा की है—आपने जो वचन दिया है—उसके अनुसार अब मैं आपके पास नहीं रह सकती। मैं आपसे इसी समय जुदा होती हूँ। जब तक मैं आपके पास रही बहुत अच्छी तरह रही—आपके सहवास से मुझे बहुत आनन्द मिला। आपसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इससे मैं

सब बातें आपसे साफ़ साफ़ कहे देती हूँ। इस घटना से आपको दुःख न करना चाहिए। दुःख का कोई कारण नहीं। मैं महर्षि जह्नु की कन्या गङ्गा हूँ। परम-तेजस्वी वसुओं को महर्षि वशिष्ठ ने शाप दिया था कि तुम लोग जाकर मर्त्यलोक में जन्म लो। परन्तु मुझे छोड़ कर मर्त्यलोक में कोई स्त्री उन्हें अपने गर्भ में धारण करने के योग्य न थी। यह समझ कर वे आठों वसु मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि तुम मेरी माता होने की कृपा करो। पर ज्योंही हम पैदा हों त्योंही मर्त्यलोक में रहने के हमारे दुःख को दूर कर देना। अर्थात् पैदा होते ही हमारा नाश करके महर्षि के शाप से हमें उद्धार करना जिसमें हमें बहुत दिनों तक मर्त्यलोक में न रहना पड़े। उनकी इस प्रार्थना को मैंने मान लिया और भारत वंश को ही उनके जन्म के योग्य समझा। इससे मानवी रूप धारण करके मैं आपके पास आई। इन वसुओं के पिता होने से आप अपने को कृतार्थ समझें। आपको शोक न करना चाहिए। जिस द्यु—नामक वसु के अपराध से महर्षि वशिष्ठ ने शाप दिया था वही वसु आपका यह आठवाँ पुत्र हुआ है। यह जन्म भर आपके वंश में रह कर उसे उज्ज्वल करेगा। मैं खुद ही इसका यथोचित लालन-पालन करूँगी। आप निश्चिन्त हूजिए।

इतना कह कर गङ्गादेवी उस पुत्र को लेकर अन्तर्धान हो गईं। पत्नी और पुत्र के वियोग से राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसे दूर करने की इच्छा से राजा शान्तनु किसी प्रकार राज-काज करने लगे। उन्होंने सोचा कि काम में लगे रहने से धीरे धीरे हमारा शोक जाता रहेगा।

शान्तनु बड़े बुद्धिमान् और धार्मिक थे। उनके सद्गुणों से प्रसन्न होकर चारों दिशाओं के राजों ने उन्हें अपना सम्राट् बनाया; उनको अपना राजराजेश्वर समझा। शान्तनु ने ऐसी अच्छी तरह प्रजा-पालन किया कि उनके राज्य में कभी किसी को किसी तरह का शोक, डर या दुःख नहीं हुआ। इस तरह प्रजा के सुख को बढ़ाते हुए शान्तनु को शान्तिपूर्वक राज्य करते कुछ समय बीता।

एक दिन वे शिकार खेलने गये और एक हरिणी पर तीर चलाया। तीर उसके लगा। वह तीर से बिंधी हुई भगी। राजा शान्तनु भी उसके पीछे दौड़े और गङ्गा के किनारे आकर उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि गङ्गा प्रायः सूखी पड़ी है। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। इस अद्भुत घटना का कारण वे ढूँढ़ने लगे तो उन्होंने देखा कि एक देवता के समान रूपवाला बालक बाणों की वर्षा कर रहा है। उसी की बाणवर्षा ने



शान्तनु और गङ्गा

गङ्गा की धारा को रोक दिया है। बाण चलाने में उसकी चतुरता देख कर, राजा को महा-आश्चर्य्य हुआ। यह वही बालक था जिसे गङ्गा ने राजा शान्तनु को दिया था। परन्तु राजा ने उसे उसके जन्म होने ही के समय देखा था। उसके पीछे कभी नहीं देखा था। इससे वे उसे नहीं पहचान सके। उसका नाम था देवव्रत। राजा ने तो पुत्र को नहीं पहचाना, पर पुत्र ने पिता को पहचान लिया। उन्हें देखते ही देवव्रत अन्तर्धान होकर अपनी माता के पास पहुँचा और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस घटना से राजा शान्तनु को और भी अधिक आश्चर्य्य हुआ। विस्मय में डूबे हुए वे वहाँ पर चुपचाप खड़े थे कि पहले की तरह मानवी रूप धारण करके गङ्गा उनके सामने पुत्र-सहित उपस्थित हुई और बोलीः—

महाराज! आपके पुत्र देवव्रत को मैंने बड़े यत्न से पाल-पोस कर बड़ा किया है। वसिष्ठ, शुक्राचार्य्य, बृहस्पति, परशुराम आदि श्रेष्ठ गुरुओं ने इसे वेद, वेदाङ्ग और शस्त्रास्त्र-विद्या की शिक्षा बहुत ही अच्छी तरह दी है। कोई बात ऐसी नहीं रह गई जो इसने न सीखी हो। अब आप सब गुणों से सम्पन्न अपने पुत्र को लीजिए।

शान्तनु ने ऐसे तेजस्वी और विद्वान् पुत्र को पाकर बड़े आनन्द से अपनी राजधानी में प्रवेश किया। उसे उन्होंने अपना युवराज बनाया। राजा के इस काम से उसकी प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई।

इसके अनन्तर एक दिन राजा शान्तनु यमुना के किनारे घूम रहे थे कि अचानक एक अद्भुत सुगन्ध आई। ऐसी सुगन्ध राजा ने इसके पहले कभी नहीं देखी थी। वे सोचने लगे कि यह मनोहर सुगन्ध कहाँ से आ रही है। खोज करने पर उन्हें मालूम हुआ कि वह देवरूप-धारिणी एक धीवर की कन्या के बदन की सुगन्ध है। इस पर राजा को बड़ा कौतूहल हुआ। आश्चर्य्य में आकर उन्होंने उस मल्लाह की कन्या से पूछाः—

हे सुन्दरी! तुम कौन हो? किसलिए तुम यहाँ आई हो? यहाँ पर तुम क्या करती हो?

कन्या ने उत्तर दियाः—

महाराज! मैं एक धीवर की कन्या हूँ। मेरा नाम सत्यवती है। मैं पिता की आज्ञा से, इस घाट पर, नाव चलाया करती हूँ।

उस कन्या के अद्भुत रूप और आश्चर्य्यकारक सुवास पर राजा शान्तनु मोहित हो गये। उसके साथ विवाह करने की उन्हें प्रबल इच्छा हुई। इससे वे उसके पिता के पास गये और अपने मन की बात उससे कही।

धीवर बोला—हे नरनाथ ! हे महाराज ! कन्या हुई है तो विवाह उसका करना ही पड़ेगा। आप राजा होकर भी उसके पाने की इच्छा रखते हैं, यह मेरे लिए बड़े ही आनन्द की बात है। इससे अधिक सन्तोष और सुख की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ? परन्तु मेरे मन में एक अभिलाष है; उसे पूरा करने के लिए पहले आपको 'हाँ' करना होगा। इस कन्या का विवाह आपके साथ होने पर इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी को राज्य का अधिकारी आपको बनाना होगा। आपको यह प्रण करना होगा कि आपके पीछे आपका राज्य सत्यवती ही के पुत्र को मिलेगा, और किसी को नहीं।

सत्यवती पर राजा अत्यन्त आसक्त थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु वे अपने पुत्र देवव्रत का इतना प्यार करते थे कि धीवर की इस बात को अङ्गीकार करने में वे समर्थ न हुए। बहुत दुःखित होकर वे अपनी राजधानी हस्तिनापुर को लौट आये। परन्तु सत्यवती उन्हें नहीं भूली। उसकी रूपराशि की चिन्ता के कारण उनके मन को अत्यन्त विकलता हुई। वे बहुत उदास रहने लगे। बड़े कष्ट से उनका समय कटने लगा।

पिता की यह दशा देख कर महात्मा देवव्रत को बड़ी चिन्ता हुई। अन्त में उनसे न रहा गया; पिता से उन्होंने इस दुःख का कारण पूछा। राजा शान्तनु ने सत्यवती के सम्बन्ध की कोई बात पुत्र से न बतला कर इस प्रकार कहा:—

वत्स ! तुम्हीं हमारे अकेले पुत्र हो। तुम सदा ही वीरता के कामों में लगे रहते हो। तुम्हारा कोई अनिष्ट होने—तुम पर कोई आपदा आने—से हमारे वंश की क्या दशा होगी, यही सोच सोच कर हम सदैव दुखी रहते हैं। हमारी चिन्ता का यही कारण है।

देवव्रत को सन्देह हुआ कि पिता ने अपने दुःख का कारण साफ़ साफ़ मुझसे नहीं बतलाया। कुछ देर तक इस बात को सोच कर वे पिता के उस मन्त्री के पास गये जो राजा के साथ सत्यवती के पिता के पास गया था। उस मन्त्री से देवव्रत ने पिता की चिन्ता का कारण पूछा। उसने देवव्रत से सत्यवती-सम्बन्धी सारी बातें साफ़ साफ़ कह दीं। उन्हें सुन कर देवव्रत ने पिता की इच्छा पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया और उसी क्षण वे धीवर के पास पहुँचे।

धीवर ने राजकुमार देवव्रत से आने का कारण पूछा। उन्होंने सब बातें उसे कह सुनाईं। धीवर ने कुमार को बड़े आदर से आसन पर बिठलाया और उनके साथ जितने राजपुरुष आये थे सबके सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—



भीष्म-प्रतिज्ञा ।

हे राजकुलदीपक ! आप शस्त्र धारण करनेवालों में सबसे श्रेष्ठ और राजा शान्तनु के इकलौते पुत्र हैं। सब बातें आप ही के हाथ में हैं। इससे मैं आपसे सारी कथा कहता हूँ, सुनिए। देखिए, आपके साथ सम्बन्ध छोड़ने की इच्छा मैं तो क्या, स्वयं इन्द्र भी नहीं कर सकते। महर्षि पराशर ने इस कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा बार बार मुझ पर प्रकट की। परन्तु राजा के साथ सम्बन्ध करना ही मैंने इसके लिए अच्छा समझा। इससे मैंने महर्षि पराशर की बात नहीं मानी। परन्तु हे राजकुमार ! इसके साथ विवाह करने से इसकी सन्तान के कारण आपके राज्य में घोर शत्रुता और विद्रोह होने का डर है। जिसके आप सौतेले भाई होंगे—जिसके साथ आपका वैर-भाव होगा—उसकी क्या कभी रक्षा हो सकती है ? उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता। इस विवाह में यही एक दोष है, और कुछ नहीं। इस दशा में मैं कन्यादान कर सकता हूँ या नहीं, इसका विचार आपही कर देखिए।

महात्मा देवव्रत धीवर का मतलब समझ गये। उन्हें अपने सुख की अपेक्षा पिता ही के सुख का अधिक ध्यान था। अतएव अपने स्वार्थ की—अपने सुख की—उन्होंने कुछ भी परवा न की। वे उसे छोड़ने के लिए तत्काल तैयार हो गये। उन्होंने कहा:—

हे धीवर-श्रेष्ठ ! डर का कोई कारण नहीं। तुम बिलकुल न डरो। हमने तुम्हारे मन की बात जान ली है। हमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण करना सब तरह स्वीकार है। तुम्हारी कन्या के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही इस राज्य का स्वामी होगा; उसी को यह राज्य मिलेगा।

यह सुन कर धीवर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला:—

हे शत्रुमर्दन ! यदि आप मुझ पर क्रोध न करें तो मैं और भी एक बात आपसे कहूँ। संसार में सब लोग इस बात को जानते हैं कि आप सत्यवादी हैं; आप सदा सत्य ही बोलते हैं। जब आपने सत्यवती के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा की है तब उस विषय में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु यदि आगे किसी समय आपका कोई वंशज आपकी प्रतिज्ञा को न माने और उसके विपरीत काम करे तो उसका क्या उपाय होगा ?

तब महात्मा देवव्रत ने पिता के सुख को सर्वोपरि समझ, वहाँ पर जितने क्षत्रिय उपस्थित थे सबको सुना कर ये वचन कहे:—

हे धीवर-राज ! हमारी सत्य प्रतिज्ञा सुनो । हम जो सत्य व्रत करने जाते हैं उसे श्रवण करो । हम पहले ही राज्य के अधिकार से हाथ खींच चुके हैं । हमने पहले ही कह दिया है कि हम सत्यवती के पुत्र को राजा बनावेंगे। अब हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम विवाह भी न करेंगे । आज से आमरण हम ब्रह्मचर्य धारण करेंगे । इससे सत्यवती के पुत्र को राज्याधिकार से हटाने का कुछ भी डर न रह जायगा। उसे राज्य प्राप्त करने में कोई बाधा न आ सकेगी ।

देवव्रत ने अपने स्वार्थ पर इस तरह पानी डाल दिया। उन्होंने उदारता की हद कर दी । उन्होंने राज-पाट भी छोड़ दिया और जन्म भर अविवाहित रहने का प्रण भी किया । उनकी इस विकट प्रतिज्ञा को सुन कर सब लोग धन्य ! धन्य ! कहने लगे और स्वर्ग से देवता फूल बरसाने लगे । ऐसा भीषण प्रण करने के कारण उस समय से सब लोग देवव्रत को भीष्म कहने लगे। तभी से उनका नाम भीष्म पड़ा ।

उस धीवर का अभिलाष पूर्ण हुआ । जो बात वह चाहता था वह हो गई । इससे उसे बड़ा आनन्द हुआ । शान्तनु के साथ अपनी कन्या का विवाह करना उसने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और सत्यवती को भीष्म के सिपुर्द कर दिया । भीष्म उसे शान्तनु के पास ले आये और पिता का दुःख दूर करके कृतार्थ हुए। पिता शान्तनु भीष्म से बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने पुत्र को यह वरदान दिया कि तुम्हें इच्छा-मृत्यु प्राप्त हो—इच्छा से ही तुम्हारी मृत्यु हो ।अर्थात् यदि तुम अपने मन से न मरना चाहो तो मृत्यु का तुम पर कुछ भी ज़ोर न चले ।

सत्यवती के दो पुत्र हुए—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य्य । इसके कुछ काल पीछे सत्यवती को छोड़ कर राजा शान्तनु परलोक सिधारे । माता सत्यवती की सलाह से भीष्म ने पहले चित्राङ्गद को राजा बनाया। परन्तु राजा होने के कुछ ही दिनों पीछे एक गन्धर्व के हाथ से चित्राङ्गद को प्राण छोड़ने पड़े । उस समय चित्राङ्गद के छोटे भाई विचित्रवीर्य्य बालक थे । उन्हीं को भीष्म ने हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बिठाया। भीष्म की सहायता और उपदेश से विचित्रवीर्य्य राज-काज चलाने लगे ।

जब विचित्रवीर्य्य बड़े हुए तब भीष्म ने उनके विवाह का विचार किया । इस समय उन्होंने सुना कि काशी के राजा की तीन कन्यायें—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका—स्वयंवर की रीति से विवाह करने की इच्छा रखती हैं । महात्मा भीष्म माता की आज्ञा लेकर काशी पहुँचे । वहाँ उन्होंने देखा कि विवाह की इच्छा रखनेवाले बहुत से

राजा देश-देशान्तर से आकर इकट्ठे हुए हैं। भीष्म ने सोचा कि जब इतने राजा इन कन्याओं से विवाह करना चाहते हैं तब कौन जाने हमारा मनोरथ सफल हो या न हो। इससे, उन तीनों कन्याओं को रथ पर बिठला कर सभा से उन्होंने ज़बरदस्ती हरण किया। जो राजा लोग स्वयंवर में आये थे उनसे यह बात न देखी गई। उन्होंने इससे अपना अपमान समझा। वे लड़ने पर मुस्तैद हो गये। भीष्म के साथ उन्होंने घोर युद्ध किया। किन्तु बालकपन में गङ्गा ने भीष्म को बहुत ही अच्छी युद्ध-शिक्षा दी थी। इससे एक भी राजा युद्ध में भीष्म को न जीत सका। सबको हार माननी पड़ी। भीष्म की युद्ध करने में चतुरता और अपनी रक्षा करने में कुशलता देख कर उनके शत्रुओं तक ने उन्हें बहुत बहुत धन्यवाद दिया।

ऐसा कठिन काम करके उन तीनों कन्याओं को भीष्म हस्तिनापुर ले आये और उनके साथ विचित्रवीर्य्य का विवाह करने की तैयारी करने लगे। यह देख कर जेठी कन्या अम्बा, लज्जा से अपना सिर नीचा किये हुए, भीष्म के पास आई और बोली:—

हे वीर! इसके पहले ही मैंने मन ही मन शाल्वराज के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया है। उन्होंने भी विवाह के लिए मुझसे प्रार्थना की थी। यदि स्वयंवर होता तो मैं उन्हीं के कण्ठ में वर-माला डालती। इसमें मेरे पिता की भी अनुमति थी। इस दशा में, इस समय, दूसरे के साथ मेरा विवाह कर देना क्या आपको उचित है?

यह बात सुन कर मारे चिन्ता के भीष्म बहुत व्याकुल हुए। अम्बा ने जो बात उनसे कही उसे उन्होंने यथार्थ माना। अन्त को मन में बहुत दुखी होकर उन्होंने अम्बा को आज्ञा दी कि तुम शाल्वराज के पास चली जावो। अम्बिका और अम्बालिका के साथ विचित्रवीर्य्य का शास्त्र-रीति से विवाह हुआ।

इधर अम्बा एक वृद्ध ब्राह्मण और अपनी धाय के साथ शाल्वराज्य के पास उपस्थित हुई और उनसे इस प्रकार विनयपूर्वक बोली:—

मैंने पहले आप ही को मन ही मन अपना पति माना था। आपने भी इसलिए मुझसे प्रार्थना की थी। इसी से मैं आपके पास आकर आज उपस्थित हुई हूँ। मुझे स्वीकार कीजिए।

परन्तु शाल्वराज ने अम्बा को दूसरे की स्त्री समझा। स्वयंवर में भीष्म के द्वारा अपनी हार स्मरण करके उसे क्रोध और दुःख भी हुआ। इससे कुछ मुसकराते हुए शाल्वराज ने अम्बा से कहा:—

तुमने स्वयंवर की सभा में जिसे पति बनाना पसन्द किया उसी के पास तुम्हें जाना चाहिए। तुमसे हमारा कोई सरोकार नहीं। तुम्हारे साथ हम विवाह करना नहीं चाहते।

शाल्वराज के ऐसे कठोर वचन सुन कर अभिमान से भरी हुई अम्बा वहाँ से चल दी। किन्तु भीष्म के पास हस्तिनापुर लौट आने के लिए उसके मन ने गवाही न दी उधर अपने पिता के पास जाने को भी उसका जी न चाहा। पिता के यहाँ जाने में उसे लज्जा मालूम हुई। और कोई उपाय न देख कर अम्बा पिता को, भीष्म को, शाल्वराज को और स्वयं अपने को बार बार धिक्कार-वाक्य कह कर, अनाथ की तरह गली गली रोती हुई घूमने लगी।

अन्त में भीष्म ही को सारे अनिष्ट और सारे दुःख का कारण समझ कर अम्बा को उन पर बड़ा क्रोध आया। उनसे बदला लेने का उपाय ढूँढ़ने के लिए उसने ऋषियों के एक एक आश्रम में जाना आरम्भ किया।

एक दिन एक आश्रम में जितने तपस्वी थे सबसे उसने अपना हाल कहा और उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे बतलाइए कि मुझे अब क्या करना चाहिए। वह इस प्रकार तपस्वियों से अपना दुःख कह ही रही थी कि उसके नाना राजर्षि होत्रवाहन वहाँ आये। उन्होंने अम्बा की कथा बड़े दुःख से सुनी। उसे सुन कर उनके हृदय पर गहरी चोट लगी। उन्होंने सलाह दी कि तुम महर्षि जामदग्न्य की शरण चलो। वे बोले:—

हे पुत्री! महात्मा परशुराम हमारे भाई हैं। वही भीष्म के गुरु हैं। तुम उनके पास चल कर अपना परिचय दो। फिर उनसे अपनी सारी दुःख-कहानी कहो। हमें विश्वास है कि वे तुम पर अवश्य दया करेंगे और भीष्म को उचित दण्ड देंगे।

यह कह कर राजर्षि होत्रवाहन ने अम्बा को साथ लिया और जहाँ परशुराम अपने शिष्यों के बीच में बैठे थे वहाँ जाकर उपस्थित हुए। अम्बा ने महर्षि परशुराम के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और रोती हुई बोली:—

भगवन्! इस घोर दुःख और शोक से आप मेरा उद्धार कीजिए।

महात्मा परशुराम अपने बन्धु की दौहित्री अम्बा को इस प्रकार कहते और दुःख से इतना व्याकुल होते देख दया और स्नेह से द्रवित हो उठे। उनका हृदय पानी पानी हो गया। उन्होंने उससे प्रेमपूर्वक कहा:—

हे राजनन्दिनी ! तुम अपने दुःख का कारण बतलाओ; हम तुम्हारा अभिलाष पूर्ण करेंगे।

अम्बा ने महात्मा परशुराम से अपनी सारी कथा कह सुनाई। तब परशुराम बोले:—

हे पुत्री ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम शाल्वराज को तुम्हारे साथ विवाह करने की आज्ञा दे सकते हैं। या, हम भीष्म के पास दूत भेज कर तुमसे क्षमा माँगने के लिए उन्हें लाचार कर सकते हैं। जो तुम कहो वही करने के लिए हम तैयार हैं।

इसके उत्तर में अम्बा ने कहा:—

देव ! शाल्वराज ने जब मेरा स्वीकार न करके मुझे लौटा दिया—मेरे साथ विवाह करने से जब उन्होंने इनकार कर दिया—तब मैं उनके यहाँ फिर नहीं जा सकती। उनसे विवाह करने की अब मुझे इच्छा नहीं। भीष्म ही मेरे सारे दुःखों के कारण हैं। इससे यदि आप उनको प्राणदण्ड दें तो मेरा शोक दूर हो सकता है।

परशुराम ने पहले तो बहुत कुछ इधर उधर किया। पर अन्त में उन्होंने अम्बा की इच्छा पूर्ण करने का वचन दिया। लाचार होकर उन्होंने भीष्म के साथ युद्ध करने की ठानी। इसी विचार से अम्बा को साथ लिये हुए, हस्तिनापुर के पास कुरुक्षेत्र में आकर वे उपस्थित हुए, और भीष्म को अपने आने की ख़बर दी। गुरु के आने की बात सुन कर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए। जो ब्राह्मण यह ख़बर लाये थे उनको अनेक गोदान देकर उन्होंने सन्तुष्ट किया। इसके अनन्तर शीघ्र ही वे परशुराम के दर्शन करने आये और उनकी विधिपूर्वक पूजा की। भीष्म की पूजा ग्रहण करके परशुरामजी बोले:—

हे भीष्म ! तुमने इस कन्या को ज़बरदस्ती हरण करके इसे बहुत क्लेश दिया है। इस कारण अब इसके साथ और कोई विवाह नहीं करना चाहता—इसे ग्रहण करने की अब कोई इच्छा नहीं करता। इससे तुम्हें उचित है कि इसे तुम अपनी पत्नी बना कर अपने घर रक्खो और इसका जो अपमान हुआ है उससे इस प्रकार इसे बचाओ।

महर्षि परशुराम को क्रुद्ध देख कर भीष्म ने नम्रतापूर्वक उनसे निवेदन किया:—

हे ब्रह्मर्षि ! हमने जन्म भर ब्रह्मचर्य्य-व्रत रखने का प्रण किया है; हमने प्रतिज्ञा की है कि हम कभी विवाह न करेंगे। इससे प्रतिज्ञा तोड़ कर कैसे हम क्षत्रिय-धर्म को नष्ट कर सकते हैं ?

किन्तु जामदग्न्य ने भीष्म की एक भी बात न सुनी। उनकी एक भी युक्ति को

उन्होंने न माना। वे क्रोध से जल उठे। उनकी आँखें लाल हो गईं। वे बार बार कहने लगे:—

तुम जो मेरी बात न मानोगे तो मैं तुम्हें युद्ध में जीता न छोड़ूँगा। तुम्हारे साथ युद्ध करके मैं तुम्हें प्राणदण्ड दिये विना न रहूँगा।

भीष्म ने बहुत प्रार्थना की; बार बार उनसे विनती की; हर तरह उन्हें शान्त करने की चेष्टा की। उनके चरणों पर उन्होंने अपना सिर तक रख दिया। बहुत गिड़गिड़ा कर वे बोले:—

भगवन्! आप तो हमारे गुरु हैं। गुरु-शिष्य का कैसा युद्ध! फिर क्यों आप मुझसे युद्ध करना चाहते हैं?

किन्तु परशुराम ने उनकी एक बात पर भी ध्यान न दिया। उन्हें किसी तरह सन्तोष न हुआ। वे कहने लगे:—

यदि तुम मुझे अपना गुरु ही मानते हो तो फिर क्यों मेरी बात टालते हो? क्या शिष्य को भी कभी गुरु के वचन का उल्लङ्घन करना उचित है?

परन्तु गुरु की आज्ञा से भी अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए भीष्म राज़ी न हुए। उन्होंने कहा:—

हे गुरु! यदि आप विना युद्ध किये किसी तरह मानेहींगे नहीं तो मुझे युद्ध करना ही पड़ेगा। जब आप खुद ही युद्ध करने के लिए मुझे ललकार रहे हैं, तब यद्यपि आप ब्राह्मण और मेरे गुरु हैं, तथापि आपके साथ युद्ध करने में मैं किसी प्रकार दोषी नहीं हो सकता।

भीष्म के इस प्रकार कहने पर उनका और परशुराम का बहुत दिनों तक कुरुक्षेत्र में घमासान का युद्ध हुआ। महाबली भीष्म शस्त्रास्त्र चलाने में बड़े निपुण थे। युद्ध-विद्या के जाननेवालों में जो सबसे श्रेष्ठ थे उन आचार्य्यों से उन्होंने शिक्षा पाई थी। उसी शिक्षा के प्रभाव से उन्होंने लड़ाई के मैदान में परशुराम को बार बार हार दी। परन्तु परशुराम थे ब्राह्मण और उनके गुरु। इससे भीष्म ने उनको मारा नहीं। उनके प्राण छोड़ दिये। परशुराम ने अपने शिष्य भीष्म की वीरता और युद्ध करने में कुशलता देख कर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने भीष्म से हार मान ली और लड़ना बन्द किया।

इसके अनन्तर काशिराज की कन्या अम्बा को बुला कर बहुत दीनता दिखाते हुए वे बोले:—

पुत्री ! हमने तुमसे जो बात कही थी उसे पूरा करने का जहाँ तक हो सका यत्न किया। जितने दिव्य दिव्य अस्त्र हमारे पास थे सब हमने चलाये। जहाँ तक संभव था अपना बल, पराक्रम और युद्ध-कौशल भी हमने दिखाया। किन्तु महापराक्रमी भीष्म को जीतने में समर्थ न हुए। इससे अब तुम और किसी से सहायता लेकर अपने मन की कामना पूरी करो।

अम्बा ने कहा—हे भगवन् ! जब आप ही भीष्म को नहीं जीत सके तब वे देवताओं के द्वारा भी नहीं जीते जा सकते। मैं खुद ही अब कोई ऐसा उपाय करूँगी जिसमें भीष्म का नाश हो। और किसी के पास जाकर सहायता माँगना मैं व्यर्थ समझती हूँ।

इस अवसर पर अम्बा का हृदय क्रोध से और भी भर आया। मारे क्रोध के उसके होंठ काँपने लगे। भीष्म को मारने का उपाय ढूँढ़ निकालने की इच्छा से वह अब तपस्या करने लगी। बहुत दिन तक बिना कुछ खाये पिये उसने तपस्या की। अनेक क्लेश उसने सहे। उसकी घोर तपस्या को देख कर भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना रूप धारण करके अम्बा को दर्शन दिया और बोले:—

भद्रे ! जिस वर की तुम्हें इच्छा हो माँगो।

अम्बा ने कहा—त्रिशूलपाणि शङ्कर ! मैं आपसे यह वर चाहती हूँ कि मैं भीष्म के वध-साधन में समर्थ होऊँ।

महादेव ने 'तथास्तु' कहा ! वे बोले—जा ऐसा ही होगा। इतना कह कर वे अन्तर्धान हो गये।

यह वर महादेव से पाकर अम्बा ने एक चिता बनाई और उसी में जल मरी। दूसरे जन्म में वह राजा द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी हुई और एक दानव के वरदान के प्रभाव से स्त्री से पुरुष होकर भीष्म की मृत्यु का कारण हुई।

इधर विचित्रवीर्य्य परम सुन्दरी अम्बिका और अम्बालिका के साथ सुख से दिन बिताने लगे। इस तरह सात आठ वर्ष बिना किसी विघ्न-बाधा के बीत गये। इसके अनन्तर उन्हें राजयक्ष्मा, अर्थात् क्षयी, का रोग हुआ। उसने युवावस्था ही में उनकी जान लेली। माता सत्यवती पुत्र के शोक से बहुत व्याकुल हुई। उसके सबसे अधिक दुःख का कारण यह हुआ कि उसके किसी पुत्र के सन्तान न थी। दोनों निःसन्तान ही परलोक गये। रहे भीष्म, सो उनकी प्रतिज्ञा जन्म भर अविवाहित रहने की थी। बिना सन्तान के राज्य की रक्षा कैसे हो सकती थी ? यह सोच कर सब लोग बड़े असमंजस में पड़े।

अन्त में एक दिन भीष्म को बहुत ही व्याकुल और चिन्ता में डूबे हुए देख कर सत्यवती ने उन्हें बुला कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—

पुत्र ! तुमसे एक बात मैंने आज तक छिपा रक्खी थी। उसे मैं आज कहती हूँ, सुनो। तुम्हारे पिता के साथ मेरा विवाह होने के पहले मैं यमुना में पिता की नाव चलाया करती थी। मेरे पिता बड़े धर्म्मवान थे। उन्होंने आज्ञा दी थी कि मैं बिना उतराई लिये ही मुसाफ़िरों को पार उतारा करूँ। एक दिन मैंने महर्षि पराशर को इसी तरह पार उतारा। वे मुझ पर बहुत प्रसन्न हुए और मुझे एक पुत्र दिया। उस समय मेरे बदन से मछली की दुर्गन्धि आती थी। उसे दूर करके उसके बदले यह अत्यन्त मनोहर सुगन्धि उन्हीं की दी हुई है। महर्षि का दिया हुआ वह पुत्र यमुना के द्वीप (टापू) में मुझसे पैदा हुआ। इस कारण उसका एक नाम द्वैपायन भी पड़ गया। तुम्हारे इसी महा-बुद्धिमान् और महा-पंडित भाई ने चारों वेदों के अलग अलग विभाग किये। इससे उसका दूसरा नाम वेदव्यास हुआ। मुझसे विदा होते समय उसने कहा था—हे माता ! यदि कभी तुम्हें कोई संकट पड़े तो तुम मेरा स्मरण करना। इससे इस समय जो यह विपद् हम पर पड़ी है उससे उद्धार होने के लिए हमें उसका स्मरण करना चाहिए।

माता से ऐसे गुणवान् भाई की बात सुन कर भीष्म बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने माता से प्रार्थना की कि शीघ्रही वेदव्यास का स्मरण करके उनसे सहायता माँगिए। सत्यवती ने द्वैपायन का स्मरण किया। स्मरण करते ही वे उसी क्षण माता के सामने आकर उपस्थित हुए। माता की विपद् की सारी कथा उन्होंने ध्यान से सुनी और परलोक गये हुए विचित्रवीर्य्य की दोनों स्त्रियों को पुत्र देने के लिए तैयार हुए। द्वैपायन का रूप भयानक और कुछ काला था। उनका डील डौल बहुत ही डरावना था। इससे उन्होंने कहा कि यदि हमारी भाभी हमारे रूप-रंग की परवा न करके प्रसन्नतापूर्वक हमारी सेवा कर सकेंगी तो शीघ्रही उनके पुत्र होगा।

पुत्र की बात सुन कर सत्यवती को बहुत धीरज आया। वह प्रसन्न हो गई। पहले वह जेठी बहू अम्बिका के पास गई। उससे उसने सारा हाल कह सुनाया और देवर वेदव्यास की अच्छी तरह सेवा करने के लिए उपदेश दिया। अम्बिका ने मन में समझा कि मेरे देवर का रूप भी भीष्म और दूसरे राजपुरुषों की तरह मनोहर होगा। इससे वह मन ही मन आनन्दित होकर वेदव्यास की सेवा करने की तैयारी में लगी। किन्तु जब वह वेदव्यास के पास गई तब उसने देखा कि उनका रङ्ग बेतरह काला है, तपस्या करने से शरीर पत्थर की तरह कठोर हो गया है, मुँह पर झुर्रियां पड़ी हुई हैं, बड़ी

बड़ी जटायें लटक रही हैं। इससे वह घबरा गई। मारे डर के उसने अपनी आँखें मूँद लीं। इस कारण व्यासदेव कुछ अप्रसन्न हुए। माता से प्रतिज्ञा करने और अम्बिका की सेवा से सन्तुष्ट होने से यद्यपि व्यासदेव ने अम्बिका को पुत्र दिया, तथापि उन्होंने यह भी कह दिया कि इसके जो पुत्र होगा वह अन्धा होगा। समय आने पर अम्बिका के एक अन्धा पुत्र हुआ। उसका नाम धृतराष्ट्र पड़ा।

इसके अनन्तर सत्यवती ने छोटी बहू अम्बालिका को अच्छी तरह समझा बुझाकर व्यासदेव की सेवा के लिए उनके पास भेजा। परन्तु देवर की विकट मूर्ति देख कर अम्बालिका भी डर गई। कुछ देर के लिए उसका मुँह पीला पड़ गया। इससे अम्बालिका को भी अच्छी तरह मन में प्रसन्न होकर व्यासजी ने पुत्र न दिया। उन्होंने कहा, इसे जो पुत्र होगा वह पाण्डु-वर्ण होगा; उसका रंग फीका फीका, कुछ पीलापन लिये हुए होगा। यथासमय अम्बालिका के यह पुत्र हुआ। उसके रंग के अनुसार उसका नाम पाण्डु पड़ा।

दो में से एक भी पुत्र सर्वाङ्गसुन्दर हुआ न देख सत्यवती को सन्तोष न हुआ। उसने फिर जेठी बहू को देवर के पास जाकर पुत्र की भिक्षा माँगने के लिए बहुत कुछ कहा। पर देवर के पास फिर जाने को अम्बिका का जी किसी तरह न चाहा। उसने एक दासी को अपने कपड़े और गहने पहना कर खूब सजाया और उसी को देवर के पास भेज दिया। दासी ने व्यासदेव की बहुत ही अच्छी तरह सेवा की। उससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और विदुर नाम का एक सुन्दर और सब अङ्गों से पूर्ण पुत्र दिया। उन्होंने यह भी कहा कि यह पुत्र बड़ा बुद्धिमान् और धार्म्मिक होगा।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का सगे भाई की तरह एक ही साथ लालन-पालन होने लगा। वे सब एक ही साथ राजभवन में रहने लगे।

पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों की जन्म-कथा

कुरु के वंश में धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर इन तीनों राजकुमारों के जन्म लेने पर उनके राज्य में कुरु-जाङ्गल, कुरव और कुरुक्षेत्र ये जो कई एक सूबे थे उनमें सुख, ऐश्वर्य्य और धन-धान्य आदि की बहुत ही बढ़ती हुई। समय पर पानी बरसने के कारण अन्न खूब होने लगा। नगर व्यापारियों और कारीगरों से भर गये। बनिज-व्यापार बहुत चमक उठा। प्रजा में धर्म्म की अधिक वृद्धि हुई। सब लोग अपना अपना कर्म्म पहले

से अधिक अच्छी तरह करने लगे। परस्पर प्रीति बहुत बढ़ गई। प्रजा के दिन आनन्द-पूर्वक बीतने लगे। सब लोग स्वच्छन्दता से रहने लगे।

महात्मा भीष्म तीनों राजकुमारों को पुत्र की तरह पालने-पोसने लगे। क्रम क्रम से उन्होंने उन तीनों के जातकर्म्म आदि सब संस्कार किये। युवा होने पर धनुर्वेद अर्थात् बाण चलाना, तलवार चलाना, गदायुद्ध करना, कसरत करना, राजशिक्षा, राजनीति, इतिहास, पुराण, वेद, वेदाङ्ग आदि सब शास्त्रों और विद्याओं में वे प्रवीण हो गये। धनुर्विद्या में पाण्डु बड़े नामी हुए। बल में धृतराष्ट्र का नंबर ऊँचा रहा। राजनीति और धर्म्म की बातों में विदुर की बराबरी करनेवाला त्रिभुवन में भी कोई न रह गया। जो कुरुवंश नष्ट होने को था उसमें ऐसे ऐसे योग्य कुमार उत्पन्न होने से फिर उसकी आशालता लहलहाने लगी। यह देख कर सबको परमानन्द हुआ।

धृतराष्ट्र अन्धे थे और विदुर दासी के पुत्र थे। इससे तीनों कुमारों के बड़े होने पर पाण्डु ही को राजसिंहासन मिला। इसके अनन्तर एक बार भीष्म ने विदुर से कहा:—

वत्स! हमारा इतना बड़ा यह वंश नाश को प्राप्त होने ही पर था; पर महर्षि वेद-व्यास की कृपा से बच गया। अब जिसमें फिर कभी वैसी दुर्गति न हो, और जिसमें हमारे वंश की दिन दिन उन्नति हो, इसलिए कुलीन और सुपात्र घर की योग्य कन्याओं के साथ तुम्हारा सबका विवाह कर देना हम अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझते हैं। इस विषय में तुम्हारी क्या सलाह है?

विदुर ने कहा, आप हमारे पिता के तुल्य हैं। हम आपको अपना गुरु मानते हैं। जो कुछ करना उचित हो, आप ही खुद विचार करके कीजिए। हमसे सलाह लेने की क्या ज़रूरत है?

यह सुन कर भीष्म सत्पात्र कन्याओं को ढूँढ़ने के यत्न में लगे। उन्होंने ब्राह्मणों के मुँह से सुना कि गान्धार देश के राजा सुबल के एक कन्या है। उसका नाम गान्धारी है। वह महा सुन्दरी है; नवयौवन प्राप्त हुए उसे कुछ ही दिन हुए हैं; वह बड़ी सुलक्षणा है। उन्होंने इसी कन्या के साथ धृतराष्ट्र का विवाह करना विचारा और राजा सुबल के पास अपना दूत भेजा।

धृतराष्ट्र अन्धे थे। इस कारण गान्धारराज सुबल ने पहले तो कुछ आगा पीछा किया। परन्तु अन्त में प्रसिद्ध कुरुकुल से सम्बन्ध करने और सदाचरणशील दामाद पाने के लालच से धृतराष्ट्र को अपनी कन्या गान्धारी देना स्वीकार कर लिया। गान्धारी ने जब सुना कि मेरा विवाह एक अन्धे राजकुमार के साथ होनेवाला

है तब उसने मन ही मन यह प्रण किया कि मैं कभी अपने पति से अधिक अच्छी दशा में न रहूँगी। उसी क्षण से उस सती ने अपनी दोनों आँखों पर पट्टी बाँध ली। अर्थात् वह भी धृतराष्ट्र ही की तरह अन्धी बन गई। इस पट्टी को उसने फिर कभी नहीं खोला। मरने तक वह वैसी ही बँधी रही।

गान्धार देश के राजा के पुत्र का नाम शकुनि था। पिता की आज्ञा से वह अपनी बहन को लेकर कौरवों के यहाँ हस्तिनापुर आया। वहाँ भीष्म की आज्ञा से उसने गान्धारी का हाथ विधि-पूर्वक धृतराष्ट्र के हाथ में दिया। गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र से हो गया। सुशीला गान्धारी अपनी अच्छी चाल-ढाल और अच्छे व्यवहार से कौरवों को प्रतिदिन अधिक अधिक प्रसन्न और सन्तुष्ट करने लगी। वह अपने गुरुजनों की सेवा में कुछ भी कसर न करती थी। वह सबसे प्रीतिभाव रखती थी। कभी किसी से द्वेष उसने नहीं किया; कभी किसी को उसने अप्रसन्न या असन्तुष्ट नहीं किया।

उसके कुछ समय पीछे शूर नामक यदुवंशी राजा की कन्या पृथा का स्वयंवर होने को हुआ। पृथा भी बहुत सुन्दरी और सुशीला थी। यह समाचार भी भीष्म को मिला।

राजा शूरसेन के एक मित्र थे। उनका नाम भोजराजकुन्ति था। वे शूरसेन की बुआ (पिता की बहन) के पुत्र थे। उनके कोई सन्तान न थी। इससे शूरसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि हम अपनी पहली सन्तान तुम्हें देंगे। इस प्रतिज्ञा के अनुसार शूरसेन ने अपनी जेठी कन्या पृथा को कुन्तिभोज के घर भेज दिया। वहाँ वह चन्द्रमा की किरण के समान दिन दिन बढ़ने लगी। कुन्तिभोज के यहाँ उसका पालन होने के कारण उसका नाम कुन्ती पड़ गया।

एक बार महा तेजस्वी दुर्वासा ऋषि भोजराज के यहाँ आये। पाहुँनचार करने में कुन्ती बड़ी प्रवीणा थी। उसने सेवा, शुश्रूषा और भक्तिभाव से दुर्वासा ऋषि को बहुत प्रसन्न किया। इससे महर्षि दुर्वासा बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कुन्ती को एक महामन्त्र दिया और बोले:—

पुत्री! मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ। जो मन्त्र मैंने तुम्हें दिया है यह उसी का फल है। इस मन्त्र का उच्चारण करके जिस समय जिस देवता का तुम स्मरण करोगी उसी समय वह तुम्हारे पास आकर उपस्थित होगा और तुम्हें एक पुत्र देगा।

कुन्ती उस समय निरी बालिका थी। उसने इस मन्त्र को खेल समझा। महामुनि दुर्वासा उसके यहाँ से गये ही थे कि चपलता के कारण वह उस मन्त्र की परीक्षा करने लगी। सूर्य के नाम से उसने वह मन्त्र पढ़ना शुरू किया। मन्त्र के बल से, चारों

दिशाओं को अपने प्रकाश से उज्ज्वल करते हुए सूर्य्य-नारायण उसी क्षण कुन्ती के सामने आकर खड़े हो गये। ऐसी आश्चर्यकारक घटना देख कर कुन्ती कुछ देर तक चुपचाप सशंक खड़ी रही। सूर्यदेवता को देख कर वह चकित हो गई। पीछे उसके ध्यान में आया कि मैंने व्यर्थ ही सूर्य्यदेव को बुलाया। उससे उसे बड़ी लज्जा हुई। तब हाथ जोड़ कर उसने इस प्रकार विनती की:—

हे भुवनदीपक देव! मैंने बड़ी भूल की। मैंने बड़ा लड़कपन किया। एक ब्राह्मण के दिये हुए मन्त्र की परीक्षा करने के लिए मैंने आपको व्यर्थ कष्ट पहुँचाया। मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मुझ अपराधिनी को आप क्षमा कीजिए।

बालिका कुन्ती की यह विनती सुन कर सूर्यदेव ने मधुर वचनों से उसे धीरज दिया। वे बोले:—

सुन्दरी! डरने की बात नहीं! तुमने कोई अपराध नहीं किया। महर्षि दुर्वासा के दिये हुए जिस मन्त्र का तुमने उच्चारण किया है उसके प्रभाव से तुम्हारे एक बहुत ही रूपवान् पुत्र होगा।

पुत्र होने की बात सुन कर कुमारिका कुन्ती को बड़ा दुःख हुआ। उसे कुण्ठित और दुखी देख सूर्य्यदेव, उसे धीरज देने के लिए, फिर उससे इस प्रकार बोले:—

हे भीरु! हे अकारण डरनेवाली! हमारे दिये हुए पुत्र के होने से तुम्हें कोई डर नहीं। तुम्हें इससे कुछ भी सङ्कोच न करना चाहिए। सङ्कोच की कौन बात है? हम जानते हैं कि तुम अभी कन्या हो—कुमारी हो—तुम्हारा विवाह नहीं हुआ। पर, हमारा दिया हुआ पुत्र पाने से तुम्हारे कुँवारेपन को कुछ भी हानि न पहुँचेगी। हम तुम पर प्रसन्न होकर यह वर देते हैं कि तुम्हारा यह पुत्र दिव्य कुण्डल और अभेद्य कवच धारण करके जन्म लेगा। उसके बदन पर एक ऐसा कवच, ज़िरहबख़्तर, या कोट होगा जिसे कोई न तोड़ सकेगा—जिसे कोई हथियार न काट सकेगा।

यह कह कर भगवान् सूर्य्य आकाश में चढ़ गये और कुन्ती वहीं उन्हें देखती खड़ी रह गई।

कुछ समय पीछे कुन्ती के कवच और कुण्डल धारण किये हुए एक पुत्र हुआ। कुन्ती सोचने लगी, मैं इस पुत्र को लेकर क्या करूँ? कहाँ रक्खूँ? किस तरह इसका पालन करूँ। परन्तु वह कुछ भी निश्चय न कर सकी। अन्त में, बहुत सोच विचार करके उसने उस तत्काल जन्मे हुए बालक को नदी में डाल दिया।

कुरुराज का रथ हाँकनेवाले, सारथि, अधिरथ उस समय उस नदी के किनारे थे।



शिशु कर्ण और कुन्ती ।

उन्होंने उस तेजस्वी बालक को नदी में बहते देखा। उसे देख उन्हें बड़ी दया आई। उन्होंने उसे नदी से निकाल लिया और अपनी स्त्री राधा को दिया। उसका नाम उन्होंने वसुसेन रक्खा। उसका पालन-पोषण वे अपने ही पुत्र की तरह करने लगे।

इस घटना के कुछ ही समय पीछे कुन्ती विवाह-योग्य हुई। उसे यौवनावस्था प्राप्त हुई। उसकी सुन्दरता अब पहले की भी अपेक्षा बढ़ गई। यह समाचार चारों तरफ़ फैल गया। देश-देशान्तर के राजा उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट करने लगे। सबने अपने अपने दूत प्रार्थनापत्र ले ले कर कुन्तिभोज के पास भेजे। कुन्ती एक, पर उसे पाने की इच्छा रखनेवाले राजे अनेक। किसे उसको देना चाहिए, यह सोच कर कुन्तिभोज बड़े असमंजस में पड़े। अन्त में उन्होंने स्वयंवर करना ही उचित समझा। उन्होंने कहा, स्वयंवर में जिसे कुन्ती पसन्द कर लेगी उसी के साथ उसका विवाह कर देंगे। यह सोच कर उन्होंने सब राजों को, स्वयंवर में आने के लिए, निमन्त्रण भेजा।

स्वयंवर के दिन हज़ारों राजे उत्तमोत्तम वस्त्र और अलङ्कार धारण करके कुन्ती के पाने की इच्छा से आये। महाराज पाण्डु भी भीष्म की आज्ञा से आकर उपस्थित हुए। विवाह के समय कन्या का जैसा वेश होना चाहिए वैसे वेश में, धीरे धीरे पैर उठाती हुई, लज्जा, उत्साह और भय के कारण सङ्कोच करती हुई, हाथ में फूलों की माला लिये हुए, स्वयंवर की सभा में कुन्ती आई। आकर उसने सारे राजों को चकित होकर देखा। देखते ही उसकी दृष्टि भरत-वंशावतंस महाबलवान् पाण्डु पर पड़ी। महाराज पाण्डु अपने सूर्य्य-सदृश तेज से सारे राजों के तेज को मलिन कर रहे थे। उनके सामने और राजों का तेज फीका पड़ गया था। उन्हें देख कर कुन्ती मोहित हो गई। उसने किसी और की तरफ़ फिर कर न देखा। लज्जा के मारे सिर झुका कर उसने अपने हाथ के वर-माल को महाराज पाण्डु के गले में डाल दिया। जब और राजों ने देखा कि कुन्ती ने पाण्डु को माला पहना दी, तब वे चुपचाप उठ कर अपने अपने घर चल दिये। उन्होंने इस काम में कुछ भी विघ्न-बाधा डालने का साहस नहीं किया।

शुभ लग्न में पाण्डु के साथ पृथा का विवाह हुआ। कुन्तिभोज ने बहुत सी धन-सम्पत्ति देकर वर-कन्या को उनके नगर भेज दिया। ब्राह्मणों के आशीर्वाद सुनते सुनते नव-विवाहित पाण्डु और कुन्ती ने नगर में प्रवेश किया और सुख से रहने लगे।

इसके अनन्तर भीष्म ने मद्रदेश के राजा शल्य की एक अनुपम रूपवती बहन की बात सुनी। मद्रराज के वंश को अपने वंश के योग्य समझ कर उन्होंने उस वंश से सम्बन्ध करना चाहा। उन्होंने विचार किया कि पाण्डु का एक और विवाह करना चाहिए। इसी मतलब से बड़े ठाट बाट से उन्होंने मद्रदेश की तरफ़ यात्रा की। जब मद्रराज को यह ख़बर मिली तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए। बड़े आदरपूर्वक आगे आकर वे भीष्म से मिले और प्रीतिपूर्वक बातें करते करते उन्हें अपने नगर में ले आये। भीष्म ने भी महाराज से बड़ी शिष्टता दिखाई। हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, आभूषण, हीरा, मोती आदि देकर उन्होंने मद्रराज को प्रसन्न किया; और उनकी बहन माद्री को लेकर हस्तिनापुर लौट आये। यथासमय पाण्डु से उसका विधिपूर्वक विवाह हुआ।

इसके कुछ समय पीछे राजा देवक की परम सुन्दरी कन्या पारशवी को लाकर भीष्म ने विदुर के साथ उसका विवाह किया।

इस प्रकार एक एक करके तीनों भतीजों का अच्छी तरह विवाह करके वंशलोप होने की शङ्का को भीष्म ने दूर कर दिया। तब वे सब प्रकार निश्चिन्त हो गये।

अपने मनोहर महल के अन्तःपुर में दोनों रानियों के साथ कुछ समय तक महाराज पाण्डु सुखपूर्वक रहे। फिर भीष्म की आज्ञा से वे दिग्विजय के लिए निकले। जेठे भाई धृतराष्ट्र और बड़े-बूढ़ों को प्रणाम करके और दूसरे लोगों से यथोचित विदा माँग कर, नगर की नारियों के मङ्गलाचरण और ब्राह्मणों के आशीर्वचन सुनते हुए, उन्होंने यात्रा की। हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी पैदल फ़ौज साथ ली।

महावीर पाण्डु ने पहले उन राजों को युद्ध में हराया जिन्होंने उनके राज्य के कितने ही भाग ज़बरदस्ती ले लिये थे। उन सब भागों को उनसे छीन छीन कर पाण्डु ने फिर अपने राज्य में मिलाया। इसके अनन्तर चारों दिशाओं के बड़े बड़े बलवान राजों को हरा कर उनके साथ मित्रता स्थापित की और उनसे कर भी लिया। अर्थात् उन राजों से मालगुज़ारी भी ली और उनको अपना मित्र भी बनाया। इस प्रकार मगध, मिथिला, काशी आदि अनेक देशों के राजों को अपने अधीन करके, और अतुल धन-रत्न ले कर, महाराज पाण्डु ने अपने राज्य का विस्तार और यश दोनों खूब बढ़ाये। उन्होंने बड़ा नाम पैदा किया और दूर दूर तक के देशों को अपने राज्य में शामिल कर लिया। राजा भरत और कुरु की कीर्त्ति जो कुछ मलिन हो गई थी उसे, इस तरह, उन्होंने फिर से उज्ज्वल किया।

जिन राजों को युद्ध में हराया था उनको अपने चारों तरफ़ लिये, और उनके

मुँह से 'धन्य' 'धन्य' शब्द सुनते, प्रसन्नचित्त महाराज पाण्डु हस्तिनापुर को लौट आये। सारे काम निर्विघ्न करके विजयी पाण्डु अपनी राजधानी को लौट रहे हैं, यह सुन कर भीष्म को बड़ा आनन्द हुआ। वे आगे बढ़ कर पाण्डु से मिलने आये। पाण्डु ने भीष्म के पैर छुए। नगरनिवासियों और प्रजा से शिष्टतापूर्वक बातें कीं। सबसे कुशलसमाचार पूछे। भीष्म पाण्डु से प्रेमपूर्वक लिपट कर मिले। उस समय भीष्म को इतना आनन्द हुआ कि उनकी आँखों से आँसू निकल आये। शंख, दुन्दुभि इत्यादि बाजे बजने लगे। नगरनिवासियों के आनन्द की सीमा न रही। नगर में प्रवेश करके उस सारे धन-रत्न को, जिसे पाण्डु ने दिग्विजय में पाया था, गुरुजनों को देकर उन्होंने अपने को कृतार्थ माना।

कुछ समय तक राजधानी में रह कर पाण्डु ने नाना प्रकार के सुखभोग किये। उसके अनन्तर शिकार के बहाने उन्हें बाहर जाकर घूमने फिरने की इच्छा हुई। इस निमित्त हिमालय पर्वत के दक्षिण में जो बहुत ही रमणीय तराई है वहाँ वे गये। वहाँ पर कभी वे अपनी दोनों रानियों को साथ लेकर पर्वत के ऊपर सैर करते थे, कभी विशाल शाल वृक्षों के वन में शिकार का सुख लूटते थे। पाण्डु को भीष्म बहुत ही चाहते थे। वे हमेशा उन्हें सुखी रखने की चेष्टा किया करते थे। जिसमें पाण्डु को किसी तरह का कष्ट न हो, इसलिए खाने पीने आदि की सब चीज़ें वे नियमपूर्वक पाण्डु के पास पहुँचाते थे। इसमें कभी अन्तर न पड़ने पाता था। वनवासी लोग भी पाण्डु का तेज और ऐश्वर्य्य देख कर और यह जान कर कि ये कुरु-देश के महाराज हैं, सब तरह उनकी सेवा करते थे।

एक बार शिकार खेलते खेलते पाण्डु ने एक विकट वन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने विहार करते हुए एक मृग और एक मृगी को देखा। इस पर उनसे न रहा गया। उन्होंने उस जोड़े पर तीर चलाया और मृग को मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया।

मृगों का यह जोड़ा बनावटी था। एक ऋषिकुमार मृग बन कर अपनी स्त्री सहित वन में क्रीड़ा कर रहा था। महाराज पाण्डु का तेज़ बाण लगते ही वह पीड़ा से व्याकुल हो गया। इतने ज़ोर से उसे बाण लगा कि उसका प्राण निकलने लगा। मरने की पीड़ा से वह चिल्लाने लगा। तब महाराज पाण्डु ने जाना कि मृग के धोखे मैंने ब्राह्मण-कुमार का घात किया। यह जान कर वे बहुत व्याकुल हुए और बेतरह डरे। तुरन्त ही वे उस मुनि-कुमार के पास दौड़े आये और व्याकुल वचनों से अपना अपराध क्षमा कराने के लिए विनती करने लगे। उनके कातर वचन सुन कर ऋषि-कुमार ने कहा:—

महाराज ! आपने मुझे पहचाना नहीं ! आपने नहीं जाना कि मैं ब्राह्मण हूँ । यदि आप जानते तो कभी मुझ पर बाण न चलाते । इससे आपको मैं दोष नहीं देता । परन्तु आपने एक ऐसे कुल में जन्म लिया है जो सब तरह निष्कलङ्क और उज्ज्वल है । फिर कैसे आपको विहार करते हुए मृगों के जोड़े पर बाण चलाने की इच्छा हुई ? ऐसे अवसर पर भी क्या कोई समझदार आदमी किसी जीव के जोड़े को मारने का यत्न करता है ?

राजा ने बहुत लज्जित होकर कहा:—

हे ऋषिपुत्र ! शिकार करते समय मृग को देखते ही उस पर बाण चलाने का मुझे अभ्यास हो गया है । मृग देख कर बाण चलाये बिना मुझसे रहा ही नहीं जाता । इसी से मैंने अच्छी तरह विचार किये बिना ही आप पर बाण छोड़ दिया । शिकार का नियम ही ऐसा है । फिर क्यों आप मुझे अपराधी समझते हैं ?

ऋषिकुमार ने कहा—राजन् ! आप धर्म्मज्ञ होकर भी क्यों इस तरह तर्क करते हैं । अपने बचाव के लिए इस तरह की बातें करना आपको शोभा नहीं देता । ख़ैर, कुछ भी हो, आपने मृग जान कर ही मुझे मारा है । इससे ब्रह्महत्या, अर्थात् ब्राह्मण मारने का पाप, आप पर नहीं लग सकता । पर, स्त्री के साथ सुख से विहार करनेवाले मृग पर बाण छोड़ कर आपने बड़ी निठुरता का काम किया है । इससे इस निठुरता का फल आपको ज़रूर ही भोगना पड़ेगा । हे निर्दय ! आपकी भी मृत्यु रानी के साथ क्रीड़ा करते समय में ही होगी ।

यह शाप देकर उस ऋषिकुमार ने शरीर छोड़ दिया । उसका प्राणपक्षी शरीर से उड़ गया ।

इससे पाण्डु को महा दुःख हुआ । दुःख और खेद से वे विह्वल हो उठे । अपनी दोनों रानियों से जाकर उन्होंने सारा हाल कहा । उनके मन में भारी वैराग्य हो आया । उसी के वेग में उन्होंने कहा:—

हाय ! सदा सुखभोग में लिप्त रहने ही के कारण मेरे मन में वैसा विकार पैदा हुआ । इसी से ऐसा निन्द्य काम करके मैंने शाप पाया । आज से मैं कठोर तपस्या करके अपने दिन बिताऊँगा ।

यह कह कर उन्होंने अपनी दोनों रानियों से बिदा माँगी । उत्तर में रानियों ने कहा:—

महाराज ! हम भी आपके साथ तपस्या करेंगी । हम भी अपनी सब इन्द्रियों के विकारों को रोक कर वृक्षों की छाल के कपड़े पहनेंगी और फल-मूल खाकर आप ही के साथ पवित्रतापूर्वक सुख से रहेंगी । संसार में जितने दिन रहना है, इसी

तरह रह कर एकही साथ परलोक जायँगी। यदि आप हमें छोड़ जायँगे तो किसी तरह हम जीती न रहेंगी।

इसके अनन्तर महाराज पाण्डु अपने बहुमूल्य कपड़े-लत्ते और दोनों रानियों के भी कपड़े और गहने आदि ब्राह्मणों को देकर बोले:—

आप लोग हस्तिनापुर लौट जाकर हमारी माता आर्य्या सत्यवती, राजा धृतराष्ट्र और पिता के तुल्य महात्मा भीष्म से कहिए कि आज से हम विरागी हो गये। अब हम हस्तिनापुर न लौटेंगे।

राजा के ऐसे करुणापूर्ण वचन सुन कर नौकर-चाकर लोग हाहाकार करने लगे। बड़े दुःख से वे महाराज पाण्डु से विदा हुए और हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र से सारा हाल कह सुनाया। अपने प्यारे भाई की ऐसी दुःख-कथा सुन कर धृतराष्ट्र विकल हो उठे। बहुत दिनों तक उनका चित्त व्याकुल रहा। बड़ी कठिनता से वे अपने को सँभालने में समर्थ हुए।

पाण्डु ने अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर बहुत दिनों तक घोर तपस्या की। उनके सारे पाप छूट गये। धीरे धीरे वे एक बहुत बड़े ब्रह्मर्षि के तुल्य हो गये।

एक बार शतशृङ्ग नाम के पर्वत पर रहनेवाले मुनि लोग भगवान् ब्रह्मा के दर्शन की इच्छा से ब्रह्मलोक जाने की तैयारी करने लगे। इसी समय पाण्डु उन मुनियों के पास आये और उनके साथ चलने की उन्होंने भी इच्छा प्रकट की। मुनियों ने उनको अपने साथ चलने के योग्य न समझा। पर न ले जाने का ठीक कारण उन्होंने पाण्डु से इसलिए न बतलाया कि उससे पाण्डु को दुःख होगा। यह सोच कर उन्होंने राह की कठिनाइयाँ और तकलीफ़ों का वर्णन करके पाण्डु से कहा कि आप हमारे साथ न चलिए। हमारे साथ चलने से आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। परन्तु पाण्डु ने असल बात समझ ली। वे जान गये कि हमारे कोई सन्तान नहीं है; और निःसन्तान आदमी सशरीर स्वर्गलोक नहीं जा सकता। इसी से मुनि लोग हमें अपने साथ ब्रह्मलोक को नहीं ले जाना चाहते।

बहुत उदास होकर वे अपनी दोनों रानियों के पास आये और सन्तान न होने के दुःख से दुखी होकर शोक करने लगे। स्वामी के दुःख और विलाप से कुन्ती के हृदय पर बड़ी चोट लगी। वह उन्हें एकान्त में ले गई और दुर्वासा ऋषि के बतलाये हुए मंत्र की सारी कथा कह कर बोली:—

हे नाथ! ब्राह्मण के मुँह से निकले हुए वचन कभी झूठ नहीं होते। इस समय

इस मंत्र की सहायता लेना चाहिए। आप आज्ञा दीजिए, किस देवता को बुला कर मैं सन्तान के लिए प्रार्थना करूँ।

राजर्षि पाण्डु कुन्ती की बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा:—

प्रिये! देवताओं में धर्म्मराज ही सबसे अधिक पूज्य हैं। धर्म्मराज का दिया हुआ पुत्र ज़रूर ही धर्मात्मा होगा। इससे देवताओं में श्रेष्ठ धर्म्मराज ही का आदरपूर्वक स्मरण करो!

स्वामी की आज्ञा के अनुसार कुन्ती ने धर्म्मराज ही का स्मरण करके मंत्र का उच्चारण किया। धर्म्मराज ने कुन्ती को एक पुत्र दिया। उसका नाम हुआ युधिष्ठिर।

इस पुत्र को पाकर कुछ दिनों तक पाण्डु सुखपूर्वक रहे। एक दिन उन्होंने कुन्ती से कहा:—

प्रिये! क्षत्रियों के कुल में बल का ही अधिक प्रयोजन होता है। जो बलवान् होता है उसी की प्रशंसा भी होती है। इससे महर्षि दुर्वासा के मन्त्र से वायु को बुला कर उनसे एक महाबलवान् पुत्र प्राप्त करो।

कुन्ती ने स्वामी की आज्ञा से वैसा ही किया। भगवान् वायु के प्रसाद से कुन्ती के एक महाबली पुत्र हुआ। उसका नाम रक्खा गया भीमसेन।

इस तरह ये दो गुणवान् पुत्र पाकर पाण्डु की पुत्रकामना और भी बढ़ गई। वे सोचने लगे कि किसी देवता के द्वारा सब बातों में श्रेष्ठ जो एक पुत्र मिले तो बहुत ही अच्छा हो। देवताओं के राजा इन्द्र का उन्हें स्मरण हुआ। इससे इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने कुन्ती से कहा कि पहले तुम इन्द्र का पूजन और व्रत करो। उन्होंने खुद भी, इसी मतलब से, इन्द्र की तपस्या आरम्भ की। एक वर्ष में इन्द्र देव प्रसन्न हुए। तब कुन्ती ने दुर्वासा के दिये हुए मन्त्र का उच्चारण करके इन्द्र से एक पुत्र पाने की इच्छा जताई। इन्द्र की कृपा से पाण्डु के महा-प्रतापी, सब गुणों से सम्पन्न, एक पुत्र हुआ। उसका नाम रक्खा गया अर्जुन।

इन्द्र के दिये हुए इस पुत्र का दर्शन करने के लिए अनेक देवता और गन्धर्व आये। और भी कितने ही शुभ लक्षण दिखाई दिये। इन कारणों से कुन्ती को बहुत आनन्द हुआ। परन्तु पाण्डु की तृप्ति इससे भी न हुई। उनके मन में आया कि और भी ऐसे ही पुत्र प्राप्त हों तो अच्छा। कुछ समय पीछे वे एक दिन फिर कुन्ती के पास गये और उससे कहा कि तुम और भी पुत्र पाने का यत्न करो। परन्तु बार बार देवताओं को कष्ट देना कुन्ती ने मुनासिब न समझा। इससे वह फिर उस मन्त्र का उच्चारण करने पर राज़ी न हुई।

इसी समय एक दिन माद्री ने पाण्डु से एकान्त में कहा:—

महाराज! मैं रानी होकर भी बड़ी ही हीन-दशा में हूँ। परन्तु इससे मुझे कोई दुःख नहीं। तुम्हारे और भाइयों के स्त्रियों के सन्तान हैं, इससे भी मुझे खेद नहीं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करती। परन्तु मैं और कुन्ती आपके लिए बराबर होकर भी कुन्ती के तीन पुत्र हैं; परन्तु मुझे अब तक एक भी पुत्र का मुँह देखने का सौभाग्य नहीं हुआ। यह मेरे लिए बड़े दुख की बात है। कुन्ती मेरी सौत है; इससे मेरा जी नहीं चाहता कि मैं उससे पुत्र के लिए याचना करूँ। आप यदि कृपा करके दुर्वासा मुनि के दिये हुए मन्त्र द्वारा मेरे लिए पुत्र प्राप्त करने की आज्ञा कुन्ती को दें तो मैं अपने को कृतार्थ मानूँ।

यह सुन कर पाण्डु ने कहा:—

प्रिये! तुम्हारे पुत्र का मुँह देखने की मुझे भी बहुत दिनों से लालसा है। इस विषय में कुन्ती से कहने की भी कई बार मैंने इच्छा की। परन्तु तुम इस बात को मानोगी या नहीं, इसी सोच विचार में मैं अब तक कुछ नहीं कर सका। आज मुझे तुम्हारे जी का हाल मालूम हुआ। तुम्हारे इस दुःख को दूर करने का अब मैं बहुत जल्द यत्न करूँगा।

यह कह कर राजा कुन्ती के पास गये और बोले:—

हे पृथा! देखो, इन्द्रासन प्राप्त करके भी इन्द्र की कामनायें पूरी नहीं हुईं। अपनी कीर्ति को और भी बढ़ाने की इच्छा से उसे यज्ञ भी करना पड़ा। मुझे प्रसन्न रखने और वंश की रक्षा करने के लिए तुमने बहुत कुछ किया है। तथापि एक बात और करने के लिए तुमसे मैं कहना चाहता हूँ। तुम माद्री पर दया करके उसे भी एक पुत्र दिलाओ जिसमें तुम्हारी कृपा से वह भी पुत्रवती हो। इससे माद्री की भी इच्छा पूर्ण होगी, मुझे भी सुख होगा, और तुम्हारा भी नाम होगा।

कुन्ती ने इस बात को मान लिया और मन्त्र का उच्चारण करके माद्री से कहा:—

तुम जिस देवता का चाहो स्मरण करो। ऐसा करने से तुम्हें ज़रूर पुत्र मिलेगा।

माद्री ने कुछ देर तक सोच कर दोनों अश्विनीकुमारों का स्मरण किया। इन देवताओं की कृपा से माद्री के एक ही साथ परम रूपवान् दो पुत्र हुए। उनमें से एक का नाम हुआ नकुल, दूसरे का सहदेव।

इसके कुछ दिन पीछे माद्री की तरफ़ से फिर भी पाण्डु ने कुन्ती से प्रार्थना की। कुन्ती बोली:—

महाराज! माद्री बड़ी धूर्त है। उसने दो देवताओं के जोड़े को बुलाकर एक-दम ही दो पुत्र प्राप्त कर लिये। मुझे पहले नहीं मालूम था कि यह बात हो सकती है। यदि

मैं जानती तो मैं भी वैसा ही करती। इस बात के न जानने से मेरी बड़ी हानि हुई है। माद्री के लिए मैं अब फिर मन्त्र उच्चारण नहीं कर सकती। इस विषय में आप मुझसे फिर कभी कुछ न कहें।

लाचार, पाण्डु को यही पाँच पुत्र प्राप्त करके सन्तुष्ट होना पड़ा। देवताओं के दिये हुए ये पाँचों सुन्दर और सुलक्षण पुत्र मुनियों और उनकी स्त्रियों को बड़े प्यारे हुए। आश्रम में जितने मुनि और उनकी जितनी स्त्रियाँ थीं सब उन्हें बहुत चाहती थीं।

इधर हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र, पाण्डु से जुदा होने के कारण, राज्य का काम-काज बड़े दुःख से चलाते थे।

पाण्डु के वन चले जाने के कुछ समय पीछे महर्षि वेदव्यास एक बार भूख-प्यास से व्याकुल होकर राजा धृतराष्ट्र के यहाँ आये। गान्धारी ने उनकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। इससे व्यासदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गान्धारी से कहा, जो वर तुम चाहो माँगो। यह सुन कर गान्धारी को बड़ा आनन्द हुआ। उसने कहा:—

हे महर्षि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिए कि मेरे पति के समान गुणवान् मेरे सौ पुत्र हों।

व्यासदेव ने कहा—"तथास्तु"—तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। यह कह कर वे चले गये।

यथासमय गान्धारी को गर्भ रहा पर गर्भ रहने के बाद दो वर्ष बीत गये; गान्धारी के सन्तान न हुई। गर्भ पेट का पेट ही में रहा। इसी बीच में पाण्डु के जेठे पुत्र युधिष्ठिर के जन्म लेने का समाचार हस्तिनापुर में पहुँचा। कुन्ती के पुत्र का जन्म पहले होने के कारण वही जेठा हुआ। और जेठे ही पुत्र को राज्य मिलता है; वही राज्य का अधिकारी होता है। यह सोच कर गान्धारी को अति दुःख हुआ। क्रोध में आकर उसने अपने पेट पर ज़ोर से एक घूँसा मारा। फल यह हुआ कि समय पूरा होने के पहले ही उसका गर्भ गिर पड़ा। उस समय गर्भजात सन्तान के सब अङ्ग न बन पाये थे। गर्भ मांस का एक पिण्ड मात्र था।

गान्धारी ने समझा, मूर्खतावश मैंने सन्तान का नाश किया। इससे उसे बड़ा शोक हुआ। पर लाचारी थी। अन्त में उसने उस गर्भ को फेंकने की तैयारी की। इसी समय व्यासदेव आकर वहाँ उपस्थित हुए। गान्धारी ने उनसे इस घटना को छिपाना उचित न समझा। उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि कुन्ती से ईर्ष्या करने ही के कारण मेरे हाथ से ऐसा अनुचित काम हो गया। सब बातें व्यासदेव से ठीक ठीक कह कर दुःख के मारे वह फूट फूट कर रोने लगी। रोते रोते उसने कहा:—

हे देव ! आपही ने मुझे वर दिया था कि मेरे सौ पुत्र होंगे। अतएव आप ही अब मेरी सन्तान की रक्षा कीजिए। गान्धारी का विलाप सुन कर व्यासदेव ने उसे धीरज दिया और बोले:—

पुत्री ! तुम शोक न करो। समय पूरा होने के पहले ही उत्पन्न हुई तुम्हारी यह सन्तान नष्ट न होगी। जो कुछ मेरे मुँह से निकल गया है वह मिथ्या नहीं हो सकता। मांस के इसी पिण्ड से तुम्हारे एक सौ पुत्र होंगे।

यह कह कर व्यासदेव ने आज्ञा दी कि घी से भरे हुए सौ घड़े लाये जायँ। फिर उस मांस-पिण्ड पर जल छिड़क कर उसके उन्होंने सौ टुकड़े किये और एक एक टुकड़े को एक एक घड़े में डाल दिया। सब घड़ों में एक एक टुकड़ा डाल देने पर मालूम हुआ कि भूल से उस मांस-पिण्ड के सौ नहीं, एक सौ एक टुकड़े हो गये थे। इससे एक टुकड़ा बच रहा। उसे देख कर गान्धारी के मन में एक कन्या प्राप्त करने की इच्छा हुई। यह बात मालूम होने पर व्यासदेव ने एक और घड़ा मँगवाया और उसमें उस टुकड़े को डाल कर बोले:—

इन घड़ों को किसी अच्छी जगह रख दो। दो वर्ष बाद इन्हें खोलना। इनसे तुम्हें सौ पुत्र और एक कन्या होगी।

इसके अनन्तर जिस समय पाण्डु के दूसरे पुत्र भीमसेन का जन्म हुआ उसी समय पहले घड़े से धृतराष्ट्र के जेठे पुत्र दुर्योधन उत्पन्न हुए। इस पुत्र के जन्म-समय में अनेक प्रकार के अशकुन हुए। उन अमङ्गल चिह्नों को देख कर राजमन्त्री और राजपुरुष बहुत घबरा गये। उन्हें बड़ा डर लगा। चिन्ता से वे व्याकुल हो उठे।

बुद्धिमान् विदुर ने कहा:—

महाराज ! इन अमङ्गल-सूचक चिह्नों से जान पड़ता है कि इस पुत्र के द्वारा राज्य को बड़ी हानि पहुँचेगी। इससे आपको चाहिए कि आप इसका त्याग करके सब लोगों की रक्षा करें।

किन्तु पुत्र के स्नेह के कारण धृतराष्ट्र ने वैसा न किया। पुत्र किसे प्यारा नहीं होता ?

दुर्योधन के जन्म के पीछे दुःशासन, विकर्ण आदि सौ पुत्र और दुःशला नाम की एक कन्या हुई धृतराष्ट्र के एक और स्त्री थी। उससे भी एक पुत्र हुआ। उसका नाम पड़ा युयुत्सु।

इधर बहुत दिन बीत जाने पर पाण्डु को उस ऋषिकुमार का शाप भूल गया। अपनी

दोनों स्त्रियों और देवताओं के बालकों के सदृश रूप-गुणवाले पाँचों पुत्रों सहित वे हिमालय पर्वत पर सुख और शान्ति से आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक बार वसन्त-ऋतु की बहार में माद्री को साथ लेकर वन में सैर करने के लिए पाण्डु बाहर निकले। उस समय आम, चम्पा, कचनार, टेसू आदि के वृक्ष फूलों से लदे हुए बहुत ही भले मालूम होते थे। जगह जगह सरोवरों में फूले हुए अनेक प्रकार के कमल और कुमुद अपनी सुगन्ध दूर दूर तक फैला रहे थे। सारा वन बहुत ही शोभायमान हो रहा था। वन के फल, फूल, लता, पत्र आदि की ऐसी अद्भुत सुन्दरता देखने और प्यारी पत्नी माद्री के सङ्ग का सुख लूटने से पाण्डु को परमानन्द हुआ। माद्री के साथ इस तरह बड़े प्रेम से विहार करते ही करते उस ऋषिकुमार के शाप से पाण्डु की अचानक मृत्यु हो गई।

पति की यह गति देख माद्री पर वज्र सा गिरा। पति के प्राणहीन शरीर से लिपट कर वह ज़ोर ज़ोर रोने और विलाप करने लगी। उसका रोना सुन कर उसके दोनों पुत्र, कुन्ती और कुन्ती के भी पुत्र बहुत जल्द दौड़ते हुए माद्री के पास आये। कुन्ती को देख कर माद्री ने बड़े दुःख से कहा:—

हे आर्य्ये! बच्चों को दूर छोड़ कर तुम अकेली यहाँ मेरे पास आओ।

कुन्ती ने जाकर देखा, पति का शरीर बिना प्राणों का पड़ा है। उसने अपने सिर पर हाथ दे मारा। छाती पीटने लगी। बहुत देर तक माद्री के साथ विलाप करती रही। दुःख का वेग कुछ कम होने पर कुन्ती ने माद्री से कहा:—

बहन! जो कुछ होनहार था हो गया। मैं अपने राजर्षि पति की जेठी स्त्री हूँ। इससे मैं ही इनके साथ परलोक जाने का अधिकार रखती हूँ। तुम उठो। मेरे पीछे सन्तान का पालन बड़ी सावधानता से करना।

इसके उत्तर में माद्री बोली:—

आर्य्ये! मेरे ही सङ्ग में स्वामी ने प्राण छोड़े हैं। इससे मैं ही इनके साथ जाऊँगी। इसके सिवा सन्तान का लालन-पालन आप जैसा अच्छा कर सकेंगी मुझसे न होगा। इस कारण, आप मुझे ही पति के साथ जाने की आज्ञा दें।

इतना कह कर माद्री फिर पति के मृतक शरीर से लिपट गई। और प्राण छोड़ दिये।

राजर्षि पाण्डु और उनकी पत्नी माद्री ने इस प्रकार एक ही साथ परलोक की राह ली। तब उस वन में जितने वनवासी ऋषि और मुनि थे सबने यह सोचा कि जब

तक पाण्डु इस वन में रहे हमारे ही आश्रम में रहे। इससे उनकी स्त्री, पुत्र और मृतक देह को हस्तिनापुर ले जाना हमारा काम है। यह सोच कर उन्होंने पाण्डु के शरीर और पाँचों पाण्डवों को साथ लेकर हस्तिनापुर की यात्रा की। पुत्रों को जी-जान से प्यार करनेवाली विधवा कुन्ती ने उनका मुँह देख देख कर किसी तरह अपने मन को धीरज दिया; और बहुत दिनों के पीछे अपने कुटुम्बी जनों को देखने की लालसा से, पुत्रों को साथ लिये हुए, सबके आगे आगे चली।

यथासमय इन लोगों के आने की ख़बर हस्तिनापुर पहुँची। तब भीष्म आदि बड़े बूढ़े कौरव, सत्यवती आदि मातायें; दुर्योधन आदि बालक तथा नगरनिवासी और प्रजा-जन व्याकुल-चित्त आगे होकर ऋषियों से मिलने आये। भीष्म ने ऋषियों के पैर धोये, उन्हें जल पिलाया, और प्रेमपूर्वक उनकी पूजा की। कुछ शान्त होने पर ऋषियों ने पाण्डु के वनवास, पुत्रों के जन्म और पाण्डु की मृत्यु आदि की कथा क्रम क्रम से भीष्म को सुनाई। सब बातें कह कर उन्होंने पाण्डु के मृतक शरीर और पाँचों पुत्रों को भीष्म के सिपुर्द किया, और अपने आश्रम को लौट गये।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर ने पाण्डु और माद्री के सत्कार की शास्त्र रीति से व्यवस्था की। एक पवित्र स्थान में उनके अग्नि-संस्कार का प्रबन्ध हुआ।

जितने ज्ञाति, बान्धव और मन्त्री लोग थे सब इकट्ठे हुए। पाण्डु और माद्री के शरीरों को उन्होंने फूलों से अच्छी तरह सजाया। फिर एक उत्तम रथी पर बहुमूल्य वस्त्र बिछा कर उन्हें उसके ऊपर रक्खा। उसे वे बड़ी भाव भक्ति से अपने कन्धों पर रख कर दाह कर्म की जगह ले चले। किसी ने सफ़ेद चर्म्म धारण किया, किसी ने हाथ में चमर लिया, किसी ने सफ़ेद फूलों की माला ली। सफ़ेद वस्त्र धारण किये यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण अग्नि में आहुति देते हुए आगे आगे चले। अनगिनत प्रजा जन उनके पीछे हुए। गङ्गा के किनारे, जहाँ चिता लगाना निश्चित हुआ था, वहाँ पहुँचने पर रथी रक्खी गई। मृत-देह को सफ़ेद वस्त्र पहनाया गया। कालागुरु, केसर, कस्तूरी और चन्दन आदि सुगन्धित चीज़ों का लेप लगाया गया। प्रेतकार्य्य हो चुकने पर घी से भीगे हुए पाण्डु और माद्री के शरीर चन्दन की चिता पर एक ही साथ दाह किये गये।

अपने पुत्र और बहू को चिता में जलते देख पुत्र-शोक से विकल होकर पाण्डु की माता अम्बालिका पृथ्वी पर लोटने लगी। वह बहुत रोई, बहुत सिर धुना, बहुत विलाप किया। उसे विलाप करते देख कुन्ती भी अधीर हो उठी। वह भी रोने लगी। उन दोनों को इस तरह रोते देख और लोग भी रोने लगे। कोई भी आँसुओं को गिरने से न रोक सका।

तिलाञ्जलि देने के बाद पिता के शोक से दुःखी पाण्डवों को सब लोग समझाने और धीरज देने लगे। चारों तरफ़ दुःख, शोक और उदासीनता छा गई। सब लोग शोकसागर में डूब गये।

दस दिन बीत जाने पर भीष्म और धृतराष्ट्र आदि ने इकट्ठे होकर दशाह-सम्बन्धिनी क्रिया की और सूतक दूर होने पर पाण्डवों को साथ लेकर हस्तिनापुर लौट आये।

पाण्डु का श्राद्ध हो चुकने पर सत्यवती ने रनिवास में जाकर अपनी पुत्र-वधू से इस प्रकार कहा:—

हे अम्बिका, पुत्र द्वैपायन से मैंने सुना है कि तुम्हारे जेठे पोते के जन्म-समय में अनेक प्रकार के अशकुन होने पर भी जब उसका परित्याग नहीं किया गया तब हमारा वंश बहुत जल्द विपद में पड़े बिना न रहेगा। इस दशा में क्या हम फिर भी सुख से संसार में रह सकेंगी? चलो पुत्र के शोक से दुखी अम्बालिका को लेकर हम सब किसी वन में जा रहें।

अम्बिका ने इस बात को मान लिया। सत्यवती अपनी दोनों बहुओं को साथ लेकर वन को चली गई। वहाँ कठिन तपस्या करते करते शरीर छूटने पर उन्हें मन माने लोक की प्राप्ति हुई।

३—पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों का वालपन

युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव पिता के घर में नाना प्रकार के राज-सुखों का भोग करते हुए दिन दिन बढ़ने लगे।

दुर्योधन आदि सौ भाइयों के साथ वे सदा बड़े कौतुक से खेलते कूदते थे। जितने खेल-कूद होते थे, सबमें पाण्डवों ही का तेज अधिक देख पड़ता था। हार-जीत के खेल में बहुत करके पाण्डव ही जीतते थे। कसरतें में, या ऐसे खेलों में जिनमें बल दरकार होता है, भीमसेन सबसे अधिक प्रवीण थे। दुर्योधन और उसके भाइयों को उनसे सदा ही हार खानी पड़ती थी। भीमसेन बात की बात में उन्हें हरा देते थे।

भीमसेन इतने बली थे कि जो काम करना वे खेल समझते थे वही दुर्योधन आदि कौरवों को बहुत कष्ट का कारण होता था। भीमसेन उनका नाक में दम कर दिया करते थे। कभी दुर्योधन आदि कौरवों में से दो भाइयों को एक दूसरे के साथ रगड़ कर

उन्हें पीस डालते थे। कभी बाल पकड़ कर एक झटके से उन्हें ज़मीन पर मुँह के बल गिरा देते थे। कभी जल-विहार करते समय उन्हें अथाह जल में डुबो देते थे। यदि वे पेड़ पर चढ़ जाते थे तो पेड़ पर लात मार कर उसकी एक एक डाल को वे इतना ज़ोर से हिला देते थे कि धृतराष्ट्र के पुत्र धड़ाम धड़ाम नीचे गिर जाते थे। इसी तरह भाँति भाँति से भीमसेन उन लोगों को तंग करते थे।

इससे भीमसेन उनके शत्रु हो गये। भीमसेन को इतना बली देख कर दुर्योधन को सबसे अधिक बुरा लगा। भीमसेन का बल, पराक्रम और साहस देख कर उसे बड़ी ईर्ष्या हुई। उसने मन में सोचा कि बल तो हम लोगों में इतना है ही नहीं जो भीमसेन से हम बदला ले सकें। बल से उन्हें हराना या मारना संभव नहीं। इससे छल और युक्ति से काम लेना चाहिए। किसी कौशल से कपट करके भीमसेन का नाश करना चाहिए। उनका नाश होने पर बाक़ी बचे हुए पाण्डवों को पकड़ कर बाँध रखना या और किसी तरह ठिकाने लगाना कुछ भी कठिन काम न होगा। जो कुछ हो, पाण्डवों को वर्तमान अवस्था में रखना अच्छा नहीं। वे हमारे लिए कंटक हो रहे हैं। उनके रहते हम लोगों को राज्य का सुख-भोग नहीं मिल सकता। इस तरह मन में विचार कर दुर्योधन सदा भीमसेन को मारने की घात में रहने लगा।

सोचते सोचते एक बार भीमसेन को मारने की उसे एक युक्ति सूझी। गङ्गा के किनारे उसने सैकड़ों डेरे लगवा दिये और एक बहुत ही रमणीक खेल-कूद की जगह बनवाई। वहाँ खाने-पीने की सब सामग्री इकट्ठी की। सब तरह आराम से रहने का प्रबन्ध किया। इस प्रकार तैयारी करके भाइयों के पास जाकर दुर्योधन बोला:—

चलो हम सब लोग गङ्गा के किनारे जल-विहार करने चलें। वहाँ उपवन की शोभा देखने ही लायक़ है।

युधिष्टिर सीधे-सादे आदमी थे। उनके मन में कपट तो था ही नहीं। इससे भाइयों-सहित गङ्गा तट पर जाने के लिए वे तत्काल राज़ी हो गये। कोई रथ पर सवार हुआ, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर। जल्द सब लोग गङ्गा के किनारे जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि कपड़ों का एक शहर का शहर बसा हुआ है। कपड़े ही के बड़े बड़े मकान, कपड़े ही की अटारियाँ, कपड़े ही के फाटक। जगह जगह फ़ौवारे चल रहे हैं, बाज़ार लगा हुआ है, उत्तम उत्तम फूल-बाग़ बने हुए हैं। यह सब ठाठ देख कर पाण्डवों को बड़ा आनन्द हुआ। वे प्रसन्नतापूर्वक घूम घूम कर वहाँ की शोभा देखने लगे।

बड़ेही मनोहर फूलों, लताओं और सरोवरों से शोभित उपवन की कुछ देर तक सैर करके युधिष्ठिर आदि अपने डेरों में आये और भोजन करने लगे। कौरव और पाण्डव मिल कर साथ ही भोजन करने बैठे। अनेक प्रकार के षट्रस व्यञ्जन बनाये गये थे। उनका स्वाद ले लेकर वे लोग आपस में एक दूसरे से उनकी प्रशंसा करने लगे। जिसे जो चीज़ अच्छी लगती वह दूसरे को दे देता। इसी तरह करते करते दुष्ट दुर्योधन ने विष मिली हुई मिठाई भीमसेन को दी। भीम को दुर्योधन पर किसी तरह का संदेह तो था ही नहीं; उन्होंनें वह मिठाई खा ली। यह देख दुर्योधन मन ही मन हँसा। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने समझा कि मेरा मतलब सिद्ध हो गया। भोजन हो चुकने पर कौरवों और पाण्डवों ने एकत्र होकर बड़े आनन्द से जल-विहार किया।

जल में क्रीड़ा करते करते सन्ध्या हो गई। तब सब लोगों ने जल से निकल कर अपने अपने कपड़े और आभूषण पहने, और आराम करने की ठानी। पर विष के प्रभाव से भीमसेन बेहोश होकर वहीं गङ्गा के किनारे पड़े रह गये। उनका शरीर काठ की तरह हो गया; हाथ-पैर हिलाने तक की शक्ति उनमें न रह गई। इस बात को सिर्फ़ दुर्योधन ने देखा, और किसी ने नहीं। जब से जल-विहार आरम्भ हुआ था तभी से दुर्योधन की दृष्टि भीमसेन पर थी। जब उसने देखा कि भीमसेन होश में नहीं, तब चुप-चाप उनके पास जाकर लताओं से ख़ूब मज़बूती के साथ उन्हें बांधा और गङ्गा में डुबो दिया। यह पाप-कर्म्म करके प्रसन्नचित्त अपने डेरे को वह लौट आया।

भीमसेन को दुर्योधन ने जब गङ्गा में डाला तब उन्हें बिलकुल चेत न था। उसी दशा में गङ्गा के भीतर ही भीतर वे नागलोक में जा पहुँचे। वहाँ के महा-विषधर नागों को इन्हें देख बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा यह मनुष्य यहाँ कैसे आया? वे अपने पैने दाँतों से भीमसेन को बार बार काटने लगे। फल यह हुआ कि सर्पों का विष भीमसेन के शरीर में जाने से मिठाई के साथ खाया हुआ विष नष्ट हो गया। विष दूर हो जानें से भीमसेन को चेत हुआ। जिन लताओं से उनका शरीर बँधा था उन्हें भीमसेन ने एक ही झटके में तोड़-ताड़ डाला और लगे वहाँ के नागों का संहार करने। यह देख नाग लोग बे-तरह डरे। मारे डर के भाग कर नागों के राजा वासुकि के पास वे गये। वासुकि से उन्होंने कहा:—

हे राजन्! मनुष्यों के लोक से एक महा-बलवान् कुमार अचानक हमारे राज्य में आया है। लतापाश से बँधा हुआ और अचेत देख कर उसे हम लोग काटने लगे। काटने से वह होश में आगया और बन्धन को तोड़ कर हम सबका संहार करने पर

उद्यत हो गया। आपको इस बात का पता लगना चाहिए कि मनुष्य-लोक से यह कौन वीर हमारे लोक में आया है।

नागों के राजा वासुकि सर्पों को साथ लेकर भीमसेन के पास आये। उन्होंने भीमसेन को पहचान लिया। कुन्ती के पिता कुन्तिभोज नागराज वासुकि के दौहित्र (लड़की के पुत्र) थे। भीमसेन उन्हीं कुन्तिभोज के दौहित्र निकले; क्योंकि वे कुन्ती-पुत्र थे। भीमसेन को देख कर वासुकि बहुत प्रसन्न हुए। उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। देर तक उनके साथ प्रीतिपूर्वक बातें करते रहे। फिर भीमसेन के शरीर से विष का सारा असर दूर करने के लिए उन्होंने अमृतपूर्ण बर्तन से भीमसेन को एक दवा पिलाई। इससे भीमसेन का सारा दुःख क्लेश दूर होगया। तब नागों ने उन्हें एक दिव्य सेज पर सुलाया। उस पर भीमसेन को गहरी नींद आगई।

इधर भीम को छोड़ कर और राजकुमार अनेक प्रकार की क्रीड़ायें और विहार करके हाथी, घोड़े और रथ आदि पर सवार होकर राजधानी को लौट आये। सबने मन में समझा कि भीमसेन पहले ही घर आ गये होंगे। उनके न आने का ठीक कारण अकेले दुर्योधन ही को मालूम था। इससे सब भाइयों के साथ बड़ी ही हँसी खुशी से उसने पुर में प्रवेश किया।

युधिष्ठिर जल्दी जल्दी माता कुन्ती के पास आये और उनके पैर छूकर भीम के आने की बात पूछी। माता ने उत्तर दिया, भीम नहीं आये। युधिष्ठिर से कुन्ती ने जब सुना कि भीमसेन का हाल किसी को मालूम नहीं—वे जब से गंगा के किनारे सोते हुए देखे गये थे तब से उनका पता नहीं मिला—तब कुन्ती के मन में सन्देह हुआ। वह डर गई। उसने युधिष्ठिर से कहा:—

हाय, भीमसेन कहाँ गया! वह तुमसे आगे नहीं आया। हे पुत्र! तीन भाइयों को लेकर तुरन्त जाव और उसे ढूँढ़ो।

युधिष्ठिर के चले जाने पर विदुर को बुला कर कुन्ती ने कहा:—

हे देवर! आज सब लड़के उपवन में सैर करने गये थे; सब तो लौट आये, पर भीम नहीं लौटे। मैं बहुत दिन से देख रही हूँ कि कुचाली दुर्योधन भीम से मन ही मन अप्रसन्न है। वह उससे बहुत द्वेष रखता है। वह भीम का अनिष्ट चेता करता है। दुर्योधन महा-कुटिल और क्रूर है। वह सब कुछ कर सकता है। भले बुरे का विचार करने की उससे आशा नहीं। उसकी तरफ़ से मेरे मन में बड़ा सन्देह है। इससे मेरा अन्तःकरण इस समय अत्यन्त व्याकुल हो रहा है।

बुद्धिमान् विदुर ने कहा:—

हे कल्याणी ! अपने मन का सन्देह तुम किसी से भूल कर भी न कहना। आप इतना डरती क्यों हैं ? आपके सभी पुत्र दीर्घायु होंगे—वे बहुत समय तक बने रहेंगे। भीमसेन निश्चय ही लौट आवेंगे। उन्हें देख कर आप शीघ्र ही आनन्दित होंगी।

किन्तु कुन्ती को किसी तरह सन्तोष न हुआ। भीमसेन को चारों तरफ़ ढूँढ़ कर जब युधिष्ठिर विफल-मनोरथ घर लौट आये तब कुन्ती को और भी दुःख हुआ। भीम के शोक में वह जीती ही मरी सी हो गई।

उधर आठ दिन हो जाने पर भीमसेन की नींद खुली। तब वे उठ कर नागराज वासुकि के पास गये। वासुकि ने भीमसेन से कहा:—

हे महाबाहु ! तुमने जो अमृतोपम दवा पी है उससे तुम्हारे दस हज़ार हाथी का बल होगा ! इस समय जो मैं दिव्य जल तुम्हें देता हूँ उससे स्नान करके अपने घर लौट जाव। तुम्हारे बिना तुम्हारी माता और भाई अत्यन्त दुखी हो रहे हैं।

वासुकि की आज्ञा के अनुसार भीमसेन ने दिव्य जल से स्नान किया। फिर सफ़ेद फूलों की माला पहनी। वस्त्र भी सफ़ेद ही धारण किये। स्नान करने से उनके शरीर की सारी थकावट दूर हो गई। इसके अनन्तर नाग लोगों ने उनकी यथेष्ट पूजा की। उनकी पूजा ग्रहण करके भीमसेन ने वहाँ से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। बहुत जल्द वे हस्तिनापुर पहुँच गये और माता के पास जाकर बड़े प्रेम से उनको प्रणाम किया। गुरुजनों के भी उन्होंने पैर छुए। पुत्रवत्सला कुन्ती और भाई उनसे लिपट कर मिले। सबको परमानन्द हुआ।

कुन्ती ने कहा—भगवान् की हम पर बड़ी कृपा है जो तुम फिर भी हमें देखने को मिले। यह कह कर वह प्रेम के आँसू गिराने लगी।

युधिष्ठिर बहुत समझदार थे। भीमसेन से सब कथा हाल सुन कर वे बोले:—

भाई ! तुम्हें हम सावधान करते हैं। यह बात किसी से कदापि न कहना। मन की मन ही में रखना। आज से हम लोगों को परस्पर एक दूसरे की रक्षा के लिए बहुत सँभल कर चलना होगा।

इस समय से दुर्योधन और उसके साथी संघाती अनेक प्रकार के जाल फ़रेब करके और भाँति भाँति की मिथ्या बातें बना कर राजा धृतराष्ट्र का मन पाण्डवों की तरफ़ से फेरने की चेष्टा करने लगे। किस तरह पाण्डवों का अनिष्ट हो, इसी बात के सोचने में वे दिन-रात रहने लगे। पाण्डवों से उन लोगों की यह दुष्टता छिपी न थी।

किन्तु महात्मा विदुर की सलाह से उन्होंने अपने मन की बात किसी से नहीं कही।

एक समय महाराज शान्तनु के एक सेवक ने शिकार खेलते समय वन में पड़े हुए एक बालक और बालिका को देखा। उनके पास धनुष, बाण और मृगछाला पड़ी देख कर उसने अनुमान किया कि धनुर्वेद जाननेवाले किसी ब्राह्मण की यह सन्तान है। शान्तनु ने कृपा करके इस बालक और बालिका का पालन अपनी ही सन्तान की तरह किया। इसी से इनका नाम कृप और कृपी हुआ। यथार्थ में यह महर्षि शरद्वान् की सन्तान थे। तप भङ्ग होने के डर से उन्होंने इनको वन में छोड़ दिया था। जब उन्होंने सुना कि राजा के घर में इनका अच्छी तरह पालन-पोषण हो रहा है तब वे वहाँ आये और पुत्र कृप को उत्तम रीति से शस्त्र-विद्या सिखलाई। धीरे धीरे कृप अस्त्र-शस्त्र चलाने में बड़े प्रवीण हो गये। इससे उन्हें आचार्य्य की पदवी मिली। कृपी का विवाह प्रसिद्ध महात्मा द्रोणाचार्य्य के साथ हुआ।

इन्हीं आचार्य्य के पास पाण्डव, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि, तथा और अनेक देशों के राजकुमार अस्त्र-विद्या सीखने लगे। जब ये लोग अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या थोड़ी बहुत प्राप्त कर चुके तब भीष्म, उन्हें ऊँचे दरजे की शिक्षा देने के इरादे से, एक ऐसा गुरु ढूँढ़ने लगे जो बाण चलाने में सबसे अधिक कुशल हो, जिसे अस्त्रविद्या साङ्गोपाङ्ग आती हो, और जो महा-पराक्रमी और बली हो।

एक दिन सब राजकुमार एकत्र होकर खेलने के लिए नगर से बाहर गये। वहाँ खेलते खेलते उनके हाथ से एक गेंद पास के कुएँ में जा गिरा। कुआँ सूखा था; उसमें पानी न था। गेंद को कुएँ से निकालने का बहुत कुछ यत्न करने पर भी राजकुमार उसे न निकाल सके। इससे वे मन ही मन बहुत दुखी हुए। उन्हें बड़ी लज्जा लगी। परस्पर वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे। इसी समय उन्होंने देखा कि दुबला पतला कृष्णवर्ण का एक ब्राह्मण वहीं से जा रहा है। राजकुमारों ने उसे घेर लिया और गेंद को कुएँ से निकालने के लिए उससे मदद माँगने लगे।

ब्राह्मण देवता मुसकरा कर बोले:—

तुम्हारे क्षत्रियपन को धिक्कार है! भरतकुल में जन्म लेकर भी तुम लोग इस साधारण कुएँ से गेंद तक नहीं निकाल सकते। छिः!

यह कह कर वे फिर बोले:—

तुम लोग यदि हमको अच्छा भोजन कराओ तो हम इन मुट्ठी भर तिनकों की मदद से तुम्हारा गेंद कुएँ से निकाल दें।

उसके अनन्तर उस ब्राह्मण ने मुट्ठी भर सींकें लेकर पहले एक सींक से उस गेंद को छेद दिया। फिर एक और सींक से उस पहली सींक की ऊपरी नोक को छेदा। इसी तरह एक के द्वारा दूसरी सींक को छेद कर कुएँ के मुँह तक सींकों की एक रस्सी सी बना दी और उस गेंद को सहज में निकाल लिया। राजकुमार इस कौशल को बड़े आश्चर्य और बड़े विस्मय से आँखें फाड़ फाड़ कर देखते रहे। गेंद पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस ब्राह्मण को प्रणाम किया और बोले:—

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप कौन हैं? अस्त्र-विद्या में आपकी ऐसी योग्यता हमने और कहीं नहीं देखी। आज्ञा दीजिए, हम आपके इस उपकार के बदले आपकी कौनसी सेवा करें।

ब्राह्मण ने कहा—तुम महात्मा भीष्म से हमारा वृत्तान्त जाकर कहो; वे हमें अवश्य ही पहचान लेंगे।

राजकुमारों ने यह बात मान ली। वे पितामह भीष्म के पास गये। उनसे उन्होंने सारा हाल क्रम क्रम से कह सुनाया। भीष्म ने सब बातें सुनते ही उस गुणवान् ब्राह्मण को पहचान लिया। उन्होंने अनुमान किया कि वे द्रोणाचार्य्य के सिवा और कोई नहीं। भीष्म ने उन्हें बड़े आदर से बुलवा भेजा। आने पर उनसे पूछा कि कृपा करके अपना नाम-धाम बतलाइए और कहिए कि किस मतलब से आप हस्तिनापुर पधारे हैं।

द्रोण बोले—हम महर्षि भरद्वाज के पुत्र हैं। हमारा नाम द्रोण है। महर्षि अग्निवेश के आश्रम में हम धनुर्वेद और अस्त्रविद्या सीखने गये थे। वहाँ बहुत दिन तक ब्रह्मचारी बन कर रहे और गुरु की बड़ी सेवा की। हमारे साथ पाञ्चाल देश के राजकुमार द्रुपद भी महर्षि अग्निवेश के शिष्य थे। बहुत दिन तक एक ही साथ रहने के कारण हम दोनों से बड़ी मित्रता हो गई। एक दिन द्रुपद हमसे कहने लगे:—

भाई! हम अपने पिता के बहुत प्यारे हैं। पिता हमें बहुत चाहते हैं। एक न एक दिन हमें राज्य ज़रूर ही मिलेगा। जब हमें राजसिंहासन प्राप्त होगा तब राज्य के सारे सुख और ऐश्वर्य्य हम तुम दोनों मिल कर भोग करेंगे।

सारी विद्या और शिक्षा प्राप्त करके द्रुपद अपने राज्य को लौट गये। उनकी उस प्रतिज्ञा की याद हमको बनी रही। वह हमें कभी नहीं भूली। कुछ दिन के अनन्तर हमने गौतम की कन्या कृपी के साथ विवाह किया। उससे हमें सूर्य्य के समान तेजवाला

अश्वत्थामा नाम का एक पुत्र हुआ। इस घटना से हम दोनों स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु दरिद्रता के कारण हम उसका अच्छी तरह लालन-पालन न कर सके।

एक बार अश्वत्थामा ने देखा कि किसी धनी आदमी का लड़का दूध पी रहा है। बाल-स्वभाव के कारण उसे भी दूध पीने की इच्छा हुई। वह रोता हुआ हमारे पास आया। यह देख कर हमें बड़ा दुःख हुआ—हमारा मन विकल हो उठा। हमने एक ऐसी गाय ढूँढ़ना आरम्भ किया जो दूध देती हो। पर अभाग्य से हमें कोई ऐसी गाय न मिली। क्या करते, उदास मन घर लौट आये। आकर देखा कि कुछ बालक पानी में आटा घोल कर अश्वत्थामा की हँसी कर रहे हैं। वे उसे कह रहे हैं—लो यही दूध है, पीलो। अश्वत्थामा उसे दूध समझ कर पीता है और खुशी के मारे नाचा नाचा फिरता है। यह देख सारे बालक अश्वत्थामा की अज्ञानता और हमारी दरिद्रता को धिकार धिकार कह कर कौतुक करते हैं।

पुत्र की ऐसी दुर्दशा देख और बालकों की हँसी की बातें सुन कर हमारे मन में बड़ा दुःख हुआ। दरिद्रता के कारण हमारे साथी ब्राह्मणों ने पहले ही हमें छोड़ दिया था। भूख-प्यास भी हमें बहुत सहन करनी पड़ी थी; तिस पर भी दूसरों की सेवा करने की हमारी इच्छा नहीं हुई। उस दिन प्राणों से भी अधिक प्यारे पुत्र अश्वत्थामा के साथ किये गये छल और अपमान को देख कर हमें सहसा अपने साथी द्रुपद की याद आई।

हमने सुना कि द्रुपद इस समय राजा हैं। तब उनकी प्रतिज्ञा और प्रीति की बातें याद करके हम लोगों को बहुत कुछ धीरज हुआ। हमने अनुमान किया कि द्रुपद हमारा सारा दुख-दरिद्र दूर कर देंगे। यह सोच कर स्त्री और पुत्र-सहित प्रसन्नतापूर्वक हम पाञ्चाल देश को चले। बालपन की बातें याद करते करते हम लोग पाञ्चाल देश की राजधानी में पहुँचे। पहुँचते ही राजसभा में जा उपस्थित हुए। वहाँ द्रुपद को देखते ही बालपन के स्वभाव के कारण हमने उन्हें बड़े प्रेम से गले लगाया। मिलने के समय हमारा कण्ठ गद्गद हो आया—गला रुक सा गया। उसी दशा में हमने कहा:—

देखो, तुम्हारा बाल-सखा द्रोण आ गया।

परन्तु द्रुपद ने हमारा अपमान किया। वह इस तरह हमसे बोला जैसे कोई नीच आदमी से बोलता है। उसने कहा:—

हे ब्राह्मण! तुमने क्या समझ कर हमें अपना सखा कहा? इतनी अशिष्टता क्यों? भला इस तरह का भी बुरा व्यवहार कोई किसी के साथ करता है? एक ही जगह एक अवस्था में रहने से मित्रता हो सकती है; परन्तु पहली अवस्था न रहने से पहले की

मित्रता भी नहीं रहती। अवस्था में भेद हो जाने से मित्रता में भी भेद हो जाता है। पण्डित के साथ मूर्ख की, धनी के साथ दरिद्र की, राजा के साथ साधारण प्रजाजन की मैत्री कैसे हो सकती है ? मुझे तो याद नहीं कि मैंने तुमसे कभी कोई प्रतिज्ञा की हो। परन्तु तुम इतनी दूर से जब आये हो तब इच्छा हो तो भोजन करके जाना।

हे भीष्म ! द्रुपद को हम अपना भाई, अपना मित्र, अपना बाल-सखा समझ कर उसके यहाँ गये थे। परन्तु जब उसने इस तरह हमें, दुरदुराया, इस तरह का अनुचित व्यवहार हमारे साथ किया, तब हम क्रोध से जल उठे। इस अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा करके उसी क्षण वहाँ से हमने चल दिया; फिर एक पल भी वहाँ हम नहीं ठहरे। द्रुपद से किस तरह बदला लें—उसे किस तरह नीचा दिखावें—यही सोच कर हम यहाँ आये हैं और कृपाचार्य्य के यहाँ स्त्री-पुत्र सहित ठहरे हैं। आपको हमने अपनी सारी कथा कह सुनाई। कहिए, अब आपकी क्या आज्ञा है ?

भीष्म ने कहा—हे प्रिय ! धनुष की डोरी को खोल दीजिए—प्रत्यञ्चा को धन्वा से उतार डालिए। कृपा करके आप यहीं आराम से रहिए। हमारे बड़े भाग्य से आप इस समय यहाँ आये हैं। इस राज्य में जो कुछ सुख-सामग्री है उसे आज से आप अपनी ही समझिए।

भीष्म के इस शिष्टाचार से द्रोण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पाण्डु और धृतराष्ट्र के पुत्रों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देना स्वीकार किया। वे बोले:—

राजकुमार यदि हमें प्रसन्न रक्खेंगे तो हम उनको उत्तम शिक्षा देंगे। एक समय जब महर्षि परशुराम ने ब्राह्मणों को अपना सारा धन दे डालने का सङ्कल्प किया था तब हमने उनके पास जा कर उनसे धन माँगा। हमारी प्रार्थना को सुन कर उन्होंने कहा:—

हे तपस्वी ! हमारे पास जितनी सम्पत्ति थी हमने पहले ही दे डाली है। इस समय केवल हमारे अनमोल अस्त्र-शस्त्र और हमारा शरीर बाक़ी है। इनमें से तुम्हें क्या चाहिए, कहो।

हमने परशुराम से प्रार्थना की कि आप हमें अपने अस्त्र-शस्त्रों का विधिपूर्वक चलाना सिखला दीजिए। हम आपसे यही भिक्षा माँगते हैं। परशुराम ने हमें अच्छी तरह धनुर्वेद की शिक्षा दी। उसमें कोई कसर या कुंजी नहीं रक्खी। उनके पास जितने दिव्य दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे वे भी सब उन्होंने हमें दे दिये। इससे हम आपके राजकुमारों को आपके वंश के योग्य अच्छी से अच्छी शिक्षा दे सकेंगे।

भीष्म ने द्रोणाचार्य्य का बड़ा सत्कार किया। कुछ समय तक उनको राज्य-भवन में

रक्खा। तदनन्तर बहुत सा धन देकर राजकुमारों को उनके सिपुर्द किया। उनके रहने के लिए धन-धान्य से पूर्ण एक बहुत अच्छा घर भी दिया। पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र द्रोणाचार्य्य को यथायोग्य प्रणाम करके जब उनसे शिक्षा लेने गये तब द्रोण बोले:—

हे शिष्य! हम तुम्हें सब विषयों की उत्तम शिक्षा देंगे। तुम इस बात को स्वीकार करो कि शिक्षा सम्पूर्ण होने पर तुमको हमारा एक मनोवाञ्छित काम करना होगा।

यह सुन कर और सब राजकुमार तो चुपचाप खड़े रहे, पर अर्जुन ने बड़े उत्साह से गुरु की बात अङ्गीकार की। उन्होंने कहा—हे आचार्य्य! मुझे आपकी आज्ञा मान्य है। आपका मनोवाञ्छित काम करने में मैं कोई बात उठा न रक्खूँगा। शिष्य अर्जुन का उत्साह-भरा उत्तर सुन कर द्रोणाचार्य्य बहुत प्रसन्न हुए और उनकी शिक्षा की तरफ़ औरों की अपेक्षा अधिक ध्यान देने लगे।

द्रोणाचार्य्य के पास जब सब राजकुमार पढ़ने लगे तब सारथि के द्वारा पाले गये कुन्ती के पुत्र वसुसेन भी उनके शिष्य हुए। वे भी राजकुमारों के साथ अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या द्रोण से सीखने लगे। इन्हीं वसुसेन का नाम आगे चल कर कर्ण पड़ गया। भुज-बल में, उद्योग में, धनुर्वेद की शिक्षा में अर्जुन ने बड़ी योग्यता प्राप्त की। धीरे धीरे वे आचार्य्य द्रोण के समान धनुर्धर हो गये। केवल कर्ण ही को अर्जुन की बराबरी करने का साहस हुआ, और किसी को नहीं।

द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा भी पिता के पास सब राजकुमारों के साथ शिक्षा पाते थे। परन्तु अर्जुन अश्वत्थामा को भी मात करने पर उतारू हो गये। वे अश्वत्थामा से भी बढ़ जाने का यत्न करने लगे। पिता द्रोण को यह बात नागवार हुई। इससे उन्होंने एक युक्ति निकाली। प्रति दिन सवेरे पढ़ना आरम्भ करने के पहले वे प्रत्येक शिष्य को छोटे मुँह का एक एक कमण्डलु, देकर नदी से जल मँगाने लगे। परन्तु अश्वत्थामा को चौड़े मुँह की एक कलशी देने लगे। मतलब यह कि अश्वत्थामा जल भर कर औरों से पहले लौट आवे और अकेले में कुछ अधिक पढ़ ले। अर्जुन इस बात को ताड़ गये। आचार्य्य की चालाकी वे समझ गये। वरुणास्त्र द्वारा अपना कमण्डलु झट पट भर कर वे अश्वत्थामा के साथ ही गुरु के पास लौट आने लगे। इससे उन्होंने अश्वत्थामा के बराबर ही शिक्षा पाई। किसी भी बात में अश्वत्थामा उनसे बढ़ न जाने पाये।

एक दिन सायङ्काल अर्जुन भोजन करते थे कि हवा के झोके से दिया बुझ गया। इससे उन्हें अँधेरे ही में भोजन करना पड़ा। भोजन कर चुकने पर उन्होंने सोचा कि

आज मैंने अँधेरे ही में भोजन किया—अँधेरा भी ऐसा कि हाथ मारा नहीं सूझता था। परन्तु अभ्यास के कारण हाथ हर बार थाली में अन्न ही पर पड़ता था। यही नहीं, किन्तु कौर भी ठीक मुँह के भीतर ही जाता था, कभी इधर उधर नहीं होता था। इससे अर्जुन के मन में अभ्यास की महिमा अच्छी तरह जम गई। वे अँधेरे में बाण चलाने का अभ्यास करने लगे। अर्थात् निशाने को बिना देखे ही, अँधेरे में, बाण चला कर उसे वेधने का यत्न करने लगे।

रात को धनुष का टङ्कार सुन कर द्रोण को यह बात मालूम हो गई। धनुर्विद्या के अभ्यास में अर्जुन का इतना अधिक उत्साह देख कर द्रोण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुन को गले से लगा कर कहा :—

पुत्र ! हम तुम्हें ऐसी अच्छी शिक्षा देंगे जिसमें तुम पृथ्वी में सबसे बड़े योद्धा हो—जिसमें कोई भी तुम्हारी बराबरी न कर सके।

इसके अनन्तर हाथी, घोड़े और रथ पर सवार होकर युद्ध करने की शिक्षा द्रोणाचार्य्य ने देना आरम्भ किया। तलवार, गदा, तोमर, प्रास और शक्ति आदि जितने मुख्य मुख्य शस्त्र थे उन सबका चलाना भी वे सिखलाने लगे।

यह समाचार सुन कर सैकड़ों हज़ारों राजकुमार देश-देशान्तरों से आकर द्रोणाचार्य्य की शिष्य-मण्डली में शामिल हुए। वे भी अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखने लगे। इन नये आये हुए लोगों में निषादों के राजा का एक पुत्र भी था। उसका नाम एकलव्य था। परन्तु द्रोण ने उसे शिष्य बनाना अङ्गीकार न किया। उन्होंने मन में कहा, यह जाति का निषाद है। इससे इस शूद्र का क्षत्रियों के कुमारों के साथ शिक्षा पाना उचित नहीं। एकलव्य बेचारे को द्रोणाचार्य्य के यहाँ से निराश होकर लौट जाना पड़ा। मन में बहुत उदास होकर एकलव्य ने द्रोण को प्रणाम किया और वहाँ से चल दिया। एक और जगह जाकर उसने द्रोणाचार्य्य की मूर्ति मिट्टी की बनाई। उस मूर्ति को उसने अपने सामने रक्खा और खूब मन लगा कर धनुर्वेद का अभ्यास आरम्भ किया। श्रद्धा, अभ्यास और मन के लगाव के कारण बाण चलाने में वह बहुत जल्द प्रवीण हो गया।

एक बार द्रोण की आज्ञा लेकर सब राजकुमार शिकार खेलने के लिए राजधानी हस्तिनापुर से बाहर निकले। मृगों को पकड़ने के लिए जाल और कुत्ते साथ लिये गये। उनमें से एक कुत्ता इधर उधर घूमता फिरता एकलव्य के स्थान में जा पहुँचा। एकलव्य का शरीर बहुत मैला था। वह उस समय काले मृग का चमड़ा पहने हुए



द्रोणाचार्य्य और एकलव्य ।

था। उसका ऐसा रूप देख कर वह कुत्ता ज़ोर ज़ोर से भोंकने लगा। इस पर एकलव्य को क्रोध आया। उसने मन में यह भी कहा कि अच्छा हुआ जो यह कुत्ता आ गया। बाण-विद्या में मैंने कितना अभ्यास किया है, इसकी जाँच करने का यह अच्छा अवसर है। यह सोच कर एकलव्य ने उस कुत्ते के खुले हुए मुँह में सात बाण मार कर उसका भोंकना एकदम बन्द कर दिया।

मुँह में बाण भरे हुए वह कुत्ता भगता हुआ राजकुमारों के पास लौट गया। बाण चलाने के उस कौशल को देख कर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उस बाण चलानेवाले को वन वन ढूँढ़ने लगे। अन्त में उन्होंने देखा कि एक जगह खड़ा हुआ एकलव्य बराबर बाण-वर्षा कर रहा है। उस मलीन-देह निषाद-पुत्र को वे पहचान न सके। तब उन्होंने उसका नाम धाम पूँछा। उसने उत्तर दिया:—

मैं निषादों के स्वामी का पुत्र और द्रोण का शिष्य हूँ। अकेला इस वन में धनुर्व्वेद सीख रहा हूँ।

पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हस्तिनापुर लौट कर द्रोण से यह सब हाल कहा। एकान्त में अर्जुन आचार्य्य से अभिमानपूर्वक बोले:—

हे गुरु! आपने केवल हमें श्रेष्ठ शिक्षा देना अङ्गीकार किया था, किन्तु आपका शिष्य यह निषाद-पुत्र तो इस विषय में हमसे भी अधिक प्रवीण हो गया।

द्रोण ने बहुत सोचा विचारा; कुछ निश्चय न कर सके। मामला क्या है, उनकी समझ में न आया। अन्त में सारा भेद जानने के लिए अर्जुन को साथ लेकर वे एकलव्य के पास गये।

एकलव्य बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था। द्रोणाचार्य्य के आगमन से वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने को धन्य माना। द्रोण से उसने कहा, मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ। उनकी उसने यथोचित पूजा की; उन्हें आसन पर बिठाया और हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़ा हुआ। द्रोण बोले:—

हे वीर! यदि तुम सचमुच ही हमें अपना गुरु समझते हो तो तुम्हें गुरुदक्षिणा देना चाहिए। एकलव्य ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया:—

हे भगवन्! ऐसी कोई चीज़ नहीं जो गुरु को न दी जा सके। आज्ञा दीजिए आप क्या दक्षिणा माँगते हैं।

यह सुन कर द्रोणाचार्य्य ने अर्जुन को प्रसन्न करने के लिए एकलव्य से इस तरह ममताहीन वचन कहे:—

एकलव्य ! तुम अपने दाहिने हाथ का अँगूठा हमें दे डालो। उसी को हम गुरु दक्षिणा समझेंगे।

एकलव्य की गुरु पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने बिना ज़रा भी सोच-विचार किये, और बिना ज़रा भी दुःख या दीनता दिखाये, अपना दाहिना अँगूठा काट डाला और द्रोणाचार्य्य से कहा—आचार्य्य ! लीजिए, गुरुदक्षिणा हाज़िर है। इस तरह अँगूठे से हाथ धो बैठने के कारण बाण चलाने में एकलव्य की पहले की सी निपुणता जाती रही।

अर्जुन की बराबरी करनेवालों में एकलव्य ही बढ़ कर था। उसकी निपुणता का इस तरह नाश हो जाने से द्रोण के शिष्यों में अर्जुन ही सबसे श्रेष्ठ धनुर्धारी रह गये। धनुर्वेद में उनकी बराबरी करनेवाला कोई न रहा। बाण चलाने की विद्या में वही देख पड़ने लगे। भीम और दुर्योधन ने गदा चलाने में निपुणता प्राप्त की। गदा-शिक्षा में वे दोनों बढ़ कर निकले। वे एक दूसरे से सदा चढ़ा-ऊपरी करना चाहते थे। भीम चाहते थे कि मैं दुर्योधन से बढ़ जाऊँ, और दुर्योधन चाहते थे कि मैं भीम से बढ़ जाऊँ। युधिष्ठिर ने रथी होने—रथ पर चढ़ कर युद्ध करने—का अच्छा अभ्यास किया। नकुल और सहदेव ने तलवार चलाने में सबसे अधिक योग्यता प्राप्त की। अश्वत्थामा सभी तरह की शिक्षा में प्रवीण निकले।

एक दिन द्रोणाचार्य्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने नीले रङ्ग की एक बनावटी चिड़िया सामने पेड़ की एक ऊँची डाल पर रख दी। अनन्तर सब राजकुमारों को बुलाकर वह चिड़िया उन्होंने दिखाई। दिखा कर आपने कहाः—

तुम सब लोग इस निशाने पर बाण चलाने के लिए— इस चिड़िया को बाण से छेदने के लिए—तैयार हो जाओ। हम एक एक को निशाना लगाने की आज्ञा देंगे। बाण छोड़ने की आज्ञा पाते ही तुम लोग इस चिड़िया के सिर को बाण से छेद देना।

यह कह कर द्रोण ने पहले युधिष्ठिर को बुलाया और निशाने के सामने खड़ा करके उनसे कहाः—

हे वीर ! पहले हमारे प्रश्न का उत्तर दो। फिर हमारी आज्ञा पाते ही बाण छोड़ना, पहले नहीं।

युधिष्ठिर ने धनुष उठाया और उस पर बाण रख निशाने को ताक कर खड़े हुए। तब द्रोण ने पूँछाः—

हे धर्म्मपुत्र ! तुम इस चिड़िया को देखते हो ? युधिष्ठिर ने कहाः—हाँ देखता हूँ।

फिर द्रोण ने पूँछाः—

क्या तुम इस पेड़ को, हमको और जितने राजकुमार यहाँ खड़े हैं उन सबको भी देखते हो।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया:—

भगवन्! मैं इस पेड़ को, आपको और खड़े हुए इन राजकुमारों को भी देख रहा हूँ।

यह बात द्रोण के असन्तोष का कारण हुई। उन्होंने अप्रसन्न होकर कहा—तुम इस निशाने को न छेद सकोगे। यह कह कर युधिष्ठिर को उन्होंने वहाँ से हटा दिया।

इसके अनन्तर एक एक करके दुर्योधन आदि को भी आचार्य्य ने निशाने के सामने बाण चढ़वा कर खड़ा किया और सबसे वही प्रश्न पूँछे। उत्तर भी सबने वही दिये जो युधिष्ठिर ने दिये थे। उनके उत्तरों को सुन कर द्रोणाचार्य को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने सबका तिरस्कार करके निशाने के सामने से हट जाने को कहा। किसी को बाण छोड़ने की आज्ञा उन्होंने न दी।

अन्त में द्रोण ने मुसकरा कर अपने प्यारे शिष्य अर्जुन को बुलाया और उन्हें यथास्थान खड़ा करके आप बोले:—

पुत्र! इस बार तुमको यह निशाना मारना होगा। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ और निशाने की तरफ़ बाण तान कर कुछ देर ठहरो। फिर हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर आज्ञा पाते ही निशाने पर तीर मारना।

गुरु की आज्ञा से धनुष पर बाण रख कर अर्जुन एकटक निशाने की तरफ़ देखने लगे। तब द्रोण पहले की तरह अर्जुन से पूँछने लगे:—

वत्स! पेड़, पेड़ पर रक्खी हुई चिड़िया, हम, और भाई सब तुम्हें देख पड़ते हैं न?

अर्जुन ने कहा—मुझे सिर्फ़ निशाना देख पड़ता है। न पेड़ देख पड़ता है, न आप देख पड़ते हैं, न और कोई देख पड़ता है।

तब प्रसन्न होकर द्रोण ने फिर पूँछा:—

क्या तुम्हें पूरी चिड़िया देख पड़ रही है?

अर्जुन बोले मुझे चिड़िया का सिर देख पड़ता है, उसका और कोई अङ्ग नहीं देख पड़ता।

यह सुन कर द्रोण बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा तो निशाने पर बाण छूटने दो।

आज्ञा पाते ही अर्जुन ने बाण छोड़ा और सिर कटी हुई चिड़िया पृथ्वी पर आ गिरी। द्रोण ने अर्जुन को बड़े प्रेम से गले से लगा लिया।

और एक दिन अपने सब शिष्यों को साथ लेकर द्रोणाचार्य्य गङ्गा-स्नान करने गये। आचार्य्य जल के भीतर गये ही थे कि एक मगर ने उन्हें आ पकड़ा। वे यदि चाहते तो अपनी रक्षा आप ही कर सकते थे। परन्तु उन्होंने शिष्यों की परीक्षा लेने की ठानी। इससे बनावटी डर दिखा कर वे चिल्लाने और रक्षा के लिए शिष्यों को पुकारने लगे। गुरु को इस घोर विपदा में पड़े देख शिष्य लोग घबरा गये। किसी की समझ में न आया कि क्या करना चाहिए। सब चित्र लिखे से तट पर खड़े रह गये। एक-मात्र अर्जुन नहीं घबराये। उन्होंने तट पर खड़े ही खड़े मगर के कुठार में पाँच बाण ऐसे मारे कि वह व्याकुल हो उठा और आचार्य्य को छोड़ कर न जाने कहाँ भग गया।

विपत्ति आने पर धीरज न छोड़ कर उससे बचने की युक्ति निकालने और बाण चलाने में अर्जुन को इतना प्रवीण देख आचार्य्य द्रोण को परमानन्द हुआ। उन्होंने समझा कि राजा द्रुपद को परास्त करके अर्जुन हमारी मनोवाञ्छा ज़रूर पूर्ण करेगा। यह सोच कर उन्होंने प्रेम-भरे शब्दों में अर्जुन से अपनी प्रसन्नता प्रकट की और कहा:—

हे महाबाहु! तुमने हमें बहुत ही प्रसन्न किया है। इससे हम तुम्हें ब्रह्मशिरा नाम का एक अस्त्र देंगे। इस अस्त्र की मार कभी ख़ाली नहीं जाती। उसे कोई नहीं रोक सकता। परन्तु तुमको हम पहले ही से सावधान किये देते हैं कि इस अस्त्र को मनुष्य पर कभी न छोड़ना। मनुष्य पर इसे छोड़ने से इसका तेज सहा न जा सकेगा। इसके तेज की प्रचण्डता के कारण चारों ओर आग लग जायगी। सब दिशायें जलने लगेंगी। यदि मनुष्य छोड़ कर और कोई तुम पर वार करे तो उस पर तुम यह अस्त्र चलाना। चलाते ही तुम्हारे शत्रु का संहार हो जायगा। अर्जुन ने हाथ जोड़ और सिर झुका कर इस दिव्य अस्त्र को ग्रहण किया और अपने को बहुत बहुत कृतार्थ माना।

इस समय द्रोणाचार्य्य ने समझा कि सब शिष्यों ने यथाशक्ति विद्या पढ़ ली। जिसमें जितनी शक्ति थी उसने उतनी शिक्षा प्राप्त कर ली। अब अधिक दिनों तक शिक्षा जारी रखने की ज़रूरत नहीं। यह सोच कर द्रोण एक दिन राज-सभा में पधारे और भीष्म, व्यास, विदुर, कृप इत्यादि के सामने धृतराष्ट्र से बोले:—

महाराज! राजकुमारों की विद्या समाप्त हो गई। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का चलाना उन्होंने विधिपूर्वक सीख लिया। यदि आज्ञा हो तो वे अपनी अपनी विद्या का परिचय आपको दें।

द्रोण के वचन सुन कर धृतराष्ट्र बहुत सन्तुष्ट हुए। वे बोले:—

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, आचार्य्य! आपने हमारा बहुत बड़ा काम किया। बतलाइए

किस तरह की रङ्गभूमि में राजकुमारों की शिक्षा की अच्छी तरह परीक्षा हो सकेगी। आपकी जैसी आज्ञा होगी वैसा ही किया जायगा। हमारे आँखें नहीं हैं, इससे आज हमें बड़ा कष्ट हो रहा है। कुछ ही हो, परीक्षा का वृत्तान्त सुन कर ही हम सन्तुष्ट होंगे। उसे सुनने के लिए हम बहुत उत्सुक हो रहे हैं।

यह कह कर सामने बैठे हुए विदुर से धृतराष्ट्र बोले:—

हे धार्म्मिक-शिरोमणि ! आचार्य्य द्रोण ने हम लोगों पर बड़ा ही उपकार किया है। अस्त्र-विद्या में राजकुमारों की परीक्षा के लिए, आचार्य्य की जैसी आज्ञा हो उसके अनुसार इस समय रङ्गभूमि की रचना की जाय।

विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा सिर पर रक्खी। द्रोण के कहने के अनुसार रङ्गभूमि बनाने का काम बहुत जल्द आरम्भ किया गया। एक लम्बा चौड़ा साफ़ मैदान इस काम के लिए ठीक किया गया। इस जगह झाड़ियाँ, लतायें, पेड़ आदि कुछ न थे। जो थे भी उन्हें काट कर सब जगह चौरस कर दी गई। चारों तरफ़ उसकी हदबन्दी की गई। बड़े बड़े कारीगर काम पर लगा दिये गये। दर्शकों के बैठने के लिए उन्होंने एक तरफ़ एक विशाल मण्डप बनाया। बीच में स्त्रियों के बैठने और तमाशा देखने के लिए उन्होंने अच्छे अच्छे रमणीय स्थान तैयार किये। पुरवासियों ने भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार चारों तरफ़ ऊँचे ऊँचे मचान और तम्बू खड़े किये और उनको खूब सजाया।

इस तरह तैयारियाँ करते करते परीक्षा का दिन आ पहुँचा। कृपाचार्य्य और भीष्म को आगे करके मंत्रियों के साथ महाराज धृतराष्ट्र रङ्गभूमि को चले। उनके लिए एक बड़ा ही मनोहर स्थान बनाया गया था। वह सोने का था और अनमोल मोतियों और मणियों से सजाया गया था। उसी में धृतराष्ट्र ने प्रवेश किया। गान्धारी, कुन्ती और दूसरी राज-स्त्रियाँ, बड़े बड़े मोल के वस्त्र और आभूषण धारण करके, दासियों से घिरी हुई, अपने अपने बैठने की जगह जा विराजीं। राजधानी में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों के लोग राजकुमारों की अस्त्र-परीक्षा देखने के लिए आने लगे। धीरे धीरे रङ्गभूमि भर गई। कहीं तिल धरने को जगह न रही। दर्शकों का कोलाहल बेतरह बढ़ा। मालूम होने लगा, मानो तूफ़ान आने के कारण महासागर की लहरों का हाहाकार हो रहा है।

परीक्षा का समय निकट आजाने पर, बाजेवालों ने कोमल स्वर में धीरे धीरे बाजा बजाना आरम्भ किया। बाजे का शब्द सुन कर दर्शकों का कौतूहल बढ़ने लगा। इसी

समय अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ आचार्य्य द्रोण ने रङ्गभूमि में प्रवेश किया। उनके सिर और डाढ़ी के बाल सब सफ़ेद थे। कपड़े भी वे सफ़ेद ही पहने थे। उनके शरीर पर चन्दन का जो खौर था वह भी सफ़ेद ही था। उनके मुँह से तेज टपक रहा था। द्रोणाचार्य्य ने आकर पुरोहित से कहा, अब क्या देरी है। मङ्गल-कार्य्य आरम्भ होना चाहिए। उनकी आज्ञा से पुरोहित ने विधिपूर्वक मङ्गल-क्रिया की। माङ्गलिक अनुष्ठान हो चुकने पर नौकर-चाकरों ने अस्त्र-शस्त्र लाकर अपनी अपनी जगह रक्खे।

इसके अनन्तर राजकुमारों ने अपनी अपनी अँगुलियों में अँगुलीत्र बांधे, जिसमें अँगुलियों की रक्षा हो, शस्त्रों की रगड़ आदि से उनमें चोट न आवे। अपने अपने तरकसों में ठाँस ठाँस कर तीर भरे। कमरें खूब मज़बूती से कसीं। तैयार होकर युधिष्ठिर को उन्होंने आगे किया। जो जिससे छोटा था वह क्रम क्रम से उसके पीछे हुआ। इस तरह हाथ में धनुष लिये हुए वे रङ्गस्थल में आये।

पहले राजकुमारों ने अनेक प्रकार के अस्त्र चला कर अपने अपने हाथ की चालाकी दिखाई। चारों तरफ़ अस्त्र ही अस्त्र देख पड़ने लगे। यह दशा देख कर कितने ही दर्शक यहाँ तक डर गये कि उन्होंने ऊपर देखना बन्द कर दिया। उन्होंने अपना अपना सिर नीचे कर लिया। अस्त्र चलाने में अर्जुन की अद्भुत शक्ति देख सब लोगों का ध्यान उनकी तरफ़ खिँचने लगा।

इसके पीछे राजकुमार तेज़ घोड़े पर सवार हुए। घोड़े के पीठ से ही कभी वे अपने नाम लिखे हुए तीरों से स्थिर निशाने उड़ाने लगे। और कभी धनुर्बाण से हिलते हुए निशानों को पृथ्वी पर गिराने लगे। यह देख लोग उनकी बार बार प्रशंसा करने लगे।

फिर वे लोग रथों पर सवार हुए और एक गोलाकार जगह में बार बार चक्कर लगा कर रथ चलाने और घोड़ों को वश में रखने में अपनी अपनी चालाकी दिखाने लगे।

रथों की सवारी छोड़ कर राजकुमारों ने तलवारें लीं। कोई घोड़े पर सवार हुआ, कोई हाथी पर। परस्पर द्वंद्व-युद्ध होने लगा। ऊपर आकाश में इधर उधर सब तरफ़ चमचमाती हुई तलवारों की किरणों से चारों दिशायें प्रकाशित हो उठीं। उस समय की शोभा देखते ही बनती थी। उसका वर्णन नहीं हो सकता। देखनेवालों को इस दृश्य से बड़ा विस्मय और बड़ा आश्चर्य्य हुआ। सबने दाँतों के नीचे उँगली दबाई। सबने एकवाक्य से राजकुमारों की प्रशंसा की।

फिर गदायुद्ध होने लगा। भीम और दुर्योधन सामने सामने आये और मैदान में मण्डलाकार घूमने लगे। प्रत्येक वीर दूसरे को बाईं तरफ़ करके युद्ध करने लगा।

गदायुद्ध में दोनों बराबर थे। चढ़ा-ऊपरी करके अपने जोड़ीदार को हराने की दोनों चेष्टा करने लगे। यह देख सारे दर्शकों की आँखें उन्हीं की तरफ़ खिँच गईं। दर्शकों के दो दल हो गये। एक दल भीम की तरफ़ हुआ, दूसरा दुर्योधन की। कोई 'हाँ दुर्योधन' कह कह कर, कोई 'हाँ भीम' कह कर अपने अपने पक्ष के वीर को बढ़ावा देने लगा। इन बढ़ावे चढ़ावे की बोलियों से बड़ा कोलाहल मच गया। द्रोण डरे कि कहीं ऐसा न हो जो वीरता के जोश में इन दोनों योद्धाओं का खून हद से अधिक खौल उठे और परिणाम भयङ्कर हो। इससे उन्होंने भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध बन्द कराने के लिए अश्वत्थामा को युद्ध के मैदान में भेजा। अश्वत्थामा के समझाने से भीम और दुर्योधन ने युद्ध बन्द किया और अपनी अपनी गदायें रख दीं।

युद्ध के मैदान में जो जो बातें होती थीं, विदुर अच्छी तरह धृतराष्ट्र को समझा देते थे। उधर कुन्ती भी महारानी गान्धारी से सब बातें कहती जाती थी।

इसके अनन्तर बाजा बन्द करा कर द्रोण रङ्गस्थल में आये और बोले:—

हे दर्शक-वृन्द! हमारे शिष्यों की विद्या और युद्ध करने की योग्यता आपने अच्छी तरह देख ली। अपने शिष्यों में हम अर्जुन ही को श्रेष्ठ समझते हैं। इससे अब आप लोग अर्जुन का अच्छी तरह दर्शन करें।

तब आचार्य्य की आज्ञा से अर्जुन रङ्गभूमि के मैदान में आये। उन्होंने अँगुलियों पर गोह के चमड़े के दस्ताने चढ़ाये, बदन पर सोने का कवच धारण किया, और हाथ में धनुर्बाण लिया। इस प्रकार जब वे अकेले रङ्गभूमि में फुर्ती से आकर खड़े हुए तब उन्हें देख दर्शकों ने बड़ा कोलाहल मचाया। शंख-ध्वनि होने लगी। फिर बाजे बजने लगे।

ये श्रीमान् कुन्ती-नन्दन हैं! ये तीसरे पाण्डव हैं! ये देवताओं के राजा इन्द्र के पुत्र हैं! अस्त्रविद्या के जाननेवालों में ये श्रेष्ठ हैं! यही अपने वंश के रक्षक होंगे। इस तरह की प्रशंसापूर्ण बातें चारों तरफ़ सुन पड़ने लगीं। पुत्र की ऐसी प्रशंसा सुन कर कुन्ती के आनन्द की सीमा न रही। वह बहुत ही प्रसन्न हुई।

जब सब लोग अर्जुन को अच्छी तरह देख चुके तब वे अपनी विद्या की परीक्षा देने लगे। पहले उन्होंने आग्नेय नाम के अस्त्र से आग पैदा की। फिर उस आग को वरुणास्त्र नाम के अस्त्र से बुझा दिया। अनन्तर वायव्य नामक अस्त्र से प्रचण्ड आँधी चलाकर पार्जन्य नामक अस्त्र से आकाश में मेघों के दल के दल पैदा कर दिये। भौमास्त्र से उन्होंने पृथ्वी को फाड़ दिया और पर्वतास्त्र से पर्वत उखाड़ लिये। अन्त में अन्तर्द्धान अस्त्र के द्वारा उन सबको अन्तर्हित कर दिया—उन सबका एक बार ही लोप कर

दिया। सब न मालूम कहाँ चले गये। तब अर्जुन ने अद्भुत कसरत दिखानी आरम्भ की। ये इतने वेग और इतनी फुर्ती से कसरत करने लगे कि कभी तो दर्शकों को उनका शरीर छोटा मालूम होता था, कभी बड़ा। कभी वे रथ के ऊपर बैठे देख पड़ते थे, कभी रथ के भीतर। अभी वे रथ पर बैठे हैं, अभी बात की बात में पृथ्वी पर खड़े दिखाई देते हैं। इसके अनन्तर अनेक प्रकार के बाणों से कभी फूल की तरह कोमल चीज़ें, कभी बाण की नोक की तरह सूक्ष्म चीज़ें, कभी पत्थर की तरह मोटी चीज़ें वे छेदने लगे। कभी हिलते हुए लोहे के सुअर के मुँह में एक ही साथ पाँच पाँच बाण मारने लगे, कभी रस्सी से लटकते हुए बैल के सींग के भीतर इक्कीस इक्कीस बाण छेद देने लगे। इस तरह अर्जुन ने धीरे धीरे तीर, तलवार और गदा चलाने के सैकड़ों अद्भुत अद्भुत करतब दिखाये।

ये सब आश्चर्य्य-भरी घटनायें जब हो चुकीं, और सभाभङ्ग होने का समय जब आ गया, तब बाजा बजना बन्द हुआ और दर्शक लोग जाने की तैयारी करने लगे। उसी समय रङ्गभूमि के फाटक पर अचानक गोलमाल सुनाई दिया। उसके साथ ही किसी वीर पुरुष के खम ठोकने की आवाज़ आई। सब लोग विस्मय में आकर दरवाज़े की तरफ़ देखने लगे। द्रोणाचार्य्य उस समय पाँचों पाण्डवों के बीच में खड़े थे। उनकी भी दृष्टि उसी तरफ़ गई। अश्वत्थामा और अपने सौ भाइयों के बीच, हाथ में गदा लिये हुए, एक-शिखरवाले पर्वत की तरह दुर्योधन देख पड़े।

दरवाज़े के पास जो लोग बैठे थे वे इधर उधर हो गये। उन्होंने इन लोगों को भीतर जाने के लिए तुरन्त राह दी। जो दिव्य कवच और कुण्डल लेकर सूतपुत्र वीरवर कर्ण पैदा हुए थे उनसे अपने शरीर की शोभा बढ़ाते हुए वे रङ्गभूमि में आ खड़े हुए। बड़े गर्व से उन्होंने इधर उधर देखा। द्रोण और कृष्ण को कुछ तिरस्कार के साथ प्रणाम किया। सभा में जितने लोग थे वे इस बात के जानने के लिए उत्सुक हो उठे कि सूर्य के समान तेजवाला यह कौन वीर है।

इसके अनन्तर अर्जुन की तरफ़ कर्ण ने मुँह किया। याद रहे, अर्जुन कर्ण के भाई थे; पर इस बात को उनमें से कोई भी न जानता था। कर्ण ने कहा:—

हे अर्जुन! तुम अपने मन में यह समझते होगे कि इस सारी प्रशंसा के तुम्हीं पात्र हो। किन्तु आश्चर्य्य की कोई बात नहीं, हम भी यह अद्भुत काम कर सकते हैं।

इस तरह अभिमान से भरी हुई बात सुन कर सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। सबका मन चंचल हो उठा। इस नई घटना का क्या फल होगा, यह जानने के लिए

सब लोग उतावले हो गये। दुर्योधन को अर्जुन की प्रशंसा असह्य थी। अब तक उसने उसे बड़े दुःख से सुना था। ईर्ष्या के कारण अर्जुन की प्रशंसा सुन सुन कर वह क्रोध से अब तक मन ही मन जलता रहा था। अब अपना एक साथी पैदा हुआ देख उसे बड़ा आनन्द हुआ। सब लोगों के सामने कर्ण के ऐसे कठोर वचन सुन कर अर्जुन को लज्जा मालूम हुई: और साथ ही उन्हें क्रोध भी हो आया।

कर्ण ने अपने कहने के अनुसार वे सब काम अच्छी तरह कर दिखाये जो अर्जुन ने किये थे। यह देख कर दर्शक लोगों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। और लोग तो सब चुप रहे, पर दुर्योधन से न रहा गया। वे मारे आनन्द के फूल उठे और कर्ण को गले से लगा कर कहने लगे:—

हे वीर! आपके अद्भुत काम देख कर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए।

कर्ण ने कहा—हे प्रभु! मैं समझता हूँ, मैंने अपनी जान वे सभी काम कर दिखाये जो अर्जुन ने किये हैं। अर्जुन के साथ द्वंद्व-युद्ध करके अब मैं इस बात की परीक्षा करना चाहता हूँ कि हम दोनों में कौन बढ़कर है।

कर्ण को इस तरह बढ़ बढ़ कर बातें करते और दुर्योधन को बढ़ावा देते देख अर्जुन जल उठे। क्रोध से उनका चेहरा लाल हो गया। दुर्योधन को सुना कर वे कर्ण से कहने लगे:—

हे रथ हाँकनेवाले के पुत्र! जो लोग बिना बुलाये ही सामने आते हैं, और बिना पूँछे ही व्यर्थ प्रलाप करते हैं, उन्हें जिस लोक को जाना चाहिए, आज हमारे हाथ से मारे जाकर तुम उसी लोक का रास्ता लोगे।

कर्ण ने उत्तर दिया:—

हे अर्जुन! इस रङ्गभूमि में आने का अधिकार योद्धा मात्र को है। कोई भी योद्धा यहाँ आ सकता है। बुलाने की ज़रूरत नहीं। किसी को बुलाने या निकाल देने का तुम्हें अधिकार भी नहीं। कुछ भी हो, जब तक मैं सब लोगों के सामने तुम्हारा सिर धड़ से जुदा नहीं करता तब तक मैं व्यर्थ बातें करना नहीं चाहता।

इसके अनन्तर द्रोण की आज्ञा लेकर और अपने भाइयों के द्वारा उत्साहित होकर अर्जुन युद्ध के लिए कर्ण के सामने आये। उधर कर्ण को भी दुर्योधन आदि ने गले से लगाया और अर्जुन से युद्ध करने के लिए उत्साहित किया। कर्ण झटपट अर्जुन के सामने खड़े हो गये। तब सभा में जितने लोग थे मन ही मन दो दलों में

बँट गये। द्रोण, कृप और चारों पाण्डव अर्जुन के पक्ष में हुए, और धृतराष्ट्र के सौ लड़के तथा अश्वत्थामा कर्ण के पक्ष में।

कुन्ती ने देखा, मेरे दो पुत्र बड़ा ही भयङ्कर युद्ध करने पर उतारू हैं। न मालूम इसका क्या फल हो। ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए, वह कुछ भी निश्चय न कर सकी। उसे बे-तरह दुःख हुआ। मारे दुःख के वह अचेत होकर गिर पड़ी। कृपाचार्य्य बड़े समझदार थे। उन्होंने सोचा कि महा अनर्थ होना चाहता है। इससे उन्होंने अर्जुन और कर्ण को युद्ध से रोकना चाहा। वे कर्ण से कहने लगे:—

हे वसुसेन! जिसके कुल और शील का कुछ भी ज्ञान नहीं उसके साथ राजकुमारों को युद्ध करना मना है। अनजान आदमी से राजकुमार नहीं लड़ते—इस तरह के आदमी से लड़ने का नियम ही नहीं है। सब लोग यही जानते हैं कि एक सारथि ने तुम्हारा पालन किया है। फिर सारथि के पुत्र के साथ राजकुमार किस तरह युद्ध कर सकते हैं? इससे, हे महाबाहु! यदि तुम अपने माता-पिता का नाम बतला कर यह सूचित करो कि किस राजवंश में तुम्हारा जन्म हुआ है तो पाण्डु-पुत्र अर्जुन निःसङ्कोच होकर तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे। फिर कोई बाधा न रह जायगी।

कृपाचार्य्य की यह युक्ति-पूर्ण बात सुन कर कर्ण को बड़ी लज्जा मालूम हुई। उन्हें अपने कुल-शील आदि का ज्ञान तो था हो नहीं, बतलाते क्या? सिर झुका कर चुप हो रहे। पर दुर्योधन से यह बात न सही गई। कर्ण एक प्रकार से दुर्योधन की शरण में थे। फिर भला शरणागत का अपमान वे कैसे सह सकते? दुर्योधन ने कहा:—

हे आचार्य्य! हमारी समझ में तो वीर के साथ कोई भी वीर युद्ध करने का अधिकारी हो सकता है। जाति-पाँति का विचार व्यर्थ है। कुछ भी हो, यदि राजा के सिवा और किसी के साथ अर्जुन नहीं युद्ध करना चाहते, तो हम इसी क्षण वसुसेन को अङ्गदेश का राजा बनाते हैं।

यह कह कर दुर्योधन ने तत्काल एक सोने का सिंहासन मँगा कर उस पर कर्ण को बिठाया, और विद्वान् ब्राह्मणों को बुला कर मन्त्रपाठ-पूर्वक सिंहासन पर बिठाने की सारी मङ्गल-क्रिया कराई। इस प्रकार दुर्योधन की कृपा से वसुसेन शास्त्र की रीति से अङ्गदेश के राजा हो गये।

कर्ण का जो दारुण अपमान हो रहा था उससे दुर्योधन ने कर्ण की रक्षा की। कर्ण की मान-मर्य्यादा दुर्योधन की कृपा से रह गई। इससे कर्ण ने दुर्योधन का बड़ा निहोरा माना। दुर्योधन के कर्ण बहुत ही कृतज्ञ हुए। उन्होंने दुर्योधन से कहा:—

महाराज ! आपने हमें राजा बना दिया। इस उपकार का बदला देना हमारे लिए असाध्य है। तथापि अपनी शक्ति के अनुसार जन्म भर हम आपकी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार रहेंगे। आप जो कुछ कहेंगे उसे करने में हम भरसक कोई कसर न रक्खेंगे।

दुर्योधन ने प्रसन्न होकर उत्तर दियाः—

हे अङ्गराज ! इस समय हम आपसे मित्रता जोड़ना चाहते हैं—हम आपको अपना सखा बनाना चाहते हैं। बस यही हमारी इच्छा है।

कर्ण ने कहा—तथास्तु ! जो कुछ आपने आज्ञा की हमें स्वीकार है। जब तक शरीर में प्राण हैं हम आपके मित्र रहेंगे। एक क्षण भर के लिए भी हम इस प्रतिज्ञा के विपरीत काम न करेंगे।

इस समय राज-सारथि अधिरथ ने सुना कि अर्जुन और कर्ण से परस्पर विवाद हो रहा है। इन्होंने कर्ण का पालन-पोषण किया था। इससे यह समाचार सुन कर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। अर्जुन और कर्ण की शत्रुता इन्हें बहुत खटकी। युद्ध निवारण करने के लिए वे घर से तुरन्त बाहर निकले। जल्दी जल्दी चलने से उनका सारा शरीर पसीने पसीने हो गया। शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। दुपट्टा रास्ते ही में गिर गया। इसी विकल अवस्था में अधिरथ ने रङ्गभूमि में प्रवेश किया। महाबली कर्ण ने पिता के तुल्य अधिरथ सारथि को आता देख, उनकी मर्य्यादा रखने के लिए, धनुष को फेंक कर सारे सभासदों के सामने उन्हें प्रणाम किया। अधिरथ ने देखा कि कर्ण के शरीर में न कोई घाव है, न चोट ही का कोई चिह्न है। इससे उन्हें परमानन्द हुआ। राजसिंहासन पर बिठाने के समय कर्ण के मस्तक पर जो पवित्र जल छिड़का गया था उससे उनका सिर अब तक गीला था। प्रेम-विह्वल होकर अधिरथ ने उस पर अपने आँसू गिरा कर उसे और भी गीला कर दिया। उन्होंने कर्ण को 'पुत्र', 'पुत्र', कह कर बार बार अपना प्रेम प्रकट किया।

यह देख कर भीमसेन ने इस प्रकार अनुचित वाक्य-बाण छोड़ेः—

हे सूतपुत्र ! हमने आशा की थी कि युद्ध के क्षेत्र में अर्जुन के समान अद्भुत वीर के हाथ से तुम प्राण छोड़ कर अच्छी गति को प्राप्त होगे। परन्तु हमारी यह आशा पूरी होती नहीं देख पड़ती। कुत्ता जैसे यज्ञ का हविष्यान्न खाने के योग्य नहीं समझा जाता, उसी तरह अङ्ग-देश का राज्य तुम्हें भी शोभा नहीं देता। तुम्हारे कुल में जो घोड़ों की रास थाँमने का पेशा होता आया है वही तुम्हारे लिए भी अच्छा होगा।

ऐसे कठोर और उद्दण्ड वचन सुन कर कर्ण क्रोध से अधीर हो उठे; उनके ओंठ फड़कने लगे। बड़े कष्ट से उन्होंने अपने को सँभाला। उस समय सायङ्काल होने को था। सूर्य्य डूबने में थोड़ी ही देर थी। डूबते हुए सूर्य्य को वे एकटक देखने लगे। दुर्योधन से भीम की बात न सही गई। भीम ने जो दो अर्थ से भरे वाक्य कहे थे उनसे दुर्योधन को बे तरह क्रोध हो आया। मतवाले हाथी की तरह अचानक खड़े होकर उन्होंने कहाः—

हे भीम! यह शिष्टाचार-हीन बात तुम्हारे योग्य नहीं हुई। तुम्हें अपने मुँह से ऐसी अनुचित बात न निकालनी थी। क्षत्रियों में बल ही देखा जाता है। अधिक बली ही श्रेष्ठ माना जाता है। जो अपनी भुजाओं के बल से सारी पृथ्वी जीत सकता है उसके लिए अङ्ग-देश का राज्य तो कोई चीज़ ही नहीं। वसुसेन दिव्य कवच और कुण्डल-समेत पैदा हुए हैं। इससे सूचित होता है कि उनका जन्म किसी साधारण वंश में नहीं हुआ। उन्होंने किसी बड़े ही उज्ज्वल वंश में जन्म लिया है। कुछ भी हो, अङ्ग-देश का राज्य पाने के विषय में वसुसेन से जो द्वेष रखता हो वह निकल आवे। हम उससे युद्ध करने को तैयार हैं।

इस बात को सुन कर सभा में बैठे हुए अनेक लोगों ने धन्य! धन्य! कहा।

इस समय सूर्य्यास्त होने के कारण उस दिन अस्त्र-परीक्षा का काम बन्द रहा। दुर्योधन ने कर्ण का हाथ पकड़ कर रङ्ग-भूमि से प्रस्थान किया। सभा भङ्ग हो गई। पुरवासी लोगों में से कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की, कोई दुर्योधन की प्रशंसा करते करते सब अपने अपने घर गये।

अर्जुन की बराबरी करनेवाले, उन्हीं के समान पराक्रमी, कर्ण को मित्र बना कर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें बहुत सन्तोष हुआ। बुद्धिमान् युधिष्ठिर कर्ण को अद्वितीय योद्धा जानते थे। इस कारण कर्ण की मित्रता दुर्योधन से हो जाने पर उन्हें बहुत दुःख हुआ। आगे न मालूम इसका क्या फल हो, यह सोच कर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई।

शिष्यों को सब विद्या में प्रवीण हो गया देख द्रोण के मन में उनसे गुरुदक्षिणा लेने की इच्छा हुई। सब शिष्यों को बुला कर उन्होंने कहाः—

हे शिष्य! तुम लोग पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद को युद्ध में हराकर उसे हमारे पास क़ैदी की तरह पकड़ लाओ। इसी को हम गुरुदक्षिणा समझेंगे।

गुरु की आज्ञा पाकर शिष्य लोग बहुत जल्द अपने अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर हस्तिनापुर से चले और पाञ्चालदेश पर धावा किया। अपने सब भाइयों और कर्ण को साथ लेकर दुर्योधन ने सबके आगे प्रस्थान किया। उन्होंने चाहा कि मैं ही पहले पहुँच कर

द्रुपद को पकड़ लाऊँ। यह देख कर अर्जुन ने द्रोण से सलाह की। द्रोण के कहने से वे अपने भाइयों सहित कुछ पीछे रह गये।

द्रुपद ने जब सुना कि मेरे देश पर चढ़ाई हो रही है और द्रोण के शिष्य धावा करते चले आ रहे हैं तब वे अपनी सेना लेकर झट राजधानी के बाहर निकले। उन्होंने धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि के साथ घोर युद्ध किया। द्रुपद की राजधानी के पुरवासी भी मूसल और लाठियाँ ले लेकर दुर्योधन के साथियों पर टूट पड़े। इससे धृतराष्ट्र के पुत्र जो पहले ही पाञ्चाल देश में पहुँच गये थे बे-तरह घबरा उठे। द्रुपद ने उनकी बुरी दशा कर डाली। इसी समय भीमसेन लड़ाई के मैदान में आये। उनके साथ उनके चारों भाई भी थे। भीम ने अपनी गदा की चोट से कितने ही हाथी, घोड़े, रथ और पैदल योद्धाओं को मार गिराया। इसके अनन्तर अर्जुन ने धनुर्व्वाण लेकर इतने बाण छोड़े कि द्रुपद की फ़ौज पर वे बादलों की तरह सब तरफ़ छा गये। जिधर देखिए उधर बाण ही बाण देख पड़ने लगे।

अर्जुन ने क्रम क्रम से द्रुपद के एक एक सेनापति को हरा दिया। फिर जो लोग उनकी मदद कर रहे थे—उनके शरीर की रक्षा कर रहे थे—उनको मार गिराया। अन्त में वे द्रुपद से जा भिड़े। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। द्रोण के परम-श्रेष्ठ शिष्य अर्जुन के सामने द्रुपद की एक न चली। वे अपने को बहुत देर तक न बचा सके। थोड़ी ही देर में अर्जुन ने उन्हें पीड़ित कर दिया। उन्होंने द्रुपद के रथ की पताका काट कर ज़मीन पर गिरा दी। उनके धनुष के भी दो टुकड़े कर डाले। इसके अनन्तर बड़े ही पैने पाँच बाण छोड़ कर उन्होंने द्रुपद के रथ के घोड़ों और सारथि को मार गिराया। फिर उन्होंने अपना धनुर्व्वाण रख दिया और तलवार हाथ में ले ली। तलवार लेकर वे अपने रथ से उतर पड़े और उछल कर एक पल में द्रुपद के रथ पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने द्रुपद को पकड़ कर क़ैद कर लिया।

द्रुपद को क़ैद हो गया देख कौरव लोग उनकी बची हुई सेना और पाञ्चाल नगरी का नाश करने लगे। परन्तु अर्जुन ने उन्हें वैसा करने से मना किया। उन्होंने कहा, व्यर्थ हत्या करने से क्या लाभ? उनको इस तरह मना करके अर्जुन ने भीमसेन से कहा:—

भाई! हमें याद रखना चाहिए कि राजा द्रुपद अपने आत्मीय हैं। वे कोई ग़ैर आदमी नहीं; सब तरह अपने ही हैं। हमने आचार्य्य से सिर्फ़ इतनी ही प्रतिज्ञा की है कि हम द्रुपदराज को गुरु-दक्षिणा की तरह आपके पास ले आवेंगे। इससे आइए इन्हें

आचार्य्य के पास ले चलें। द्रुपदराज की सेना ने हमारा कोई अपराध नहीं किया। वह बिलकुल निरपराध है। उसे मारना अन्याय है। उसे छोड़ देना ही हमारा धर्म्म है।

इसके अनन्तर सबने द्रुपद को गुरु द्रोण के सामने जा खड़ा किया और कहा—आचार्य्य! गुरुदक्षिणा हाज़िर है। द्रुपद का सारा घमंड चूर हो गया। उनका सारा राजमद जाता रहा। उन्हें द्रोण के सामने क़ैदी बन कर जाना पड़ा। द्रुपद की यह दुर्गति देख द्रोणाचार्य्य को अपना वह अपमान याद हो आया जो द्रुपद ने किया था। आचार्य्य बोले:—

हे द्रुपदराज! हमारी आज्ञा से तुम्हारी राजधानी बरबाद कर डाली गई। ख़ुद तुम्हारे भी प्राण इस समय हमारे ही हाथ में हैं। तथापि यदि तुम्हारी कोई वासना हो—यदि तुम हमसे कुछ चाहते हो—तो कहो। हम उसे पूर्ण करेंगे। क्योंकि तुम हमारे लड़कपन के साथी हो। उसके निहोरे हम तुम पर अब भी दया करने को तैयार हैं।

द्रोण के मुँह से ये वचन सुन कर द्रुपद का सिर नीचा हो गया। मारे लज्जा के एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला। उन्हें मन ही मन महादुःख हुआ। उनका हृदय फटने लगा। उन्हें इस तरह व्याकुल और दुखी देख कर द्रोण ने फिर कहा:—

हे वीर! डरो मत। तुम्हारे प्राण न लिये जायँगे। तुम्हें मारना हम नहीं चाहते। ब्राह्मण स्वभाव ही से भोले भाले होते हैं। वे क्षमा करना ख़ूब जानते हैं। फिर तुम्हारे साथ लड़कपन में हमने एक ही जगह खेला खाया है। इससे तुम पर सदा हमारी प्रीति बनी रहेगी, तुम पर हमारा स्नेह कभी कम नहीं हो सकता। महाराज! इसी बालपन की प्रीति और मैत्री को याद करने के लिए एक बार हमने तुमसे प्रार्थना की थी। पर तुमने हमारा अपमान किया। राजमद से उन्मत्त होकर तुमने कहा कि राजा के साथ एक साधारण आदमी की मैत्री नहीं रह सकती। इस समय हम पहले ही की तरह तुम्हारे साथ मैत्री स्थापन करने की इच्छा रखते हैं। हम चाहते हैं कि तुम अब भी हमारे मित्र बने रहो। इसी से हमारी और तुम्हारी अवस्था में जो भेद था—अर्थात् तुम राजा थे, हम एक साधारण मनुष्य—उसे दूर करने के लिए हम तुम्हारा आधा राज्य लेते हैं। बाक़ी का आधा तुम्हें हम लौटाते हैं। इस तरह हमारे और तुम्हारे दोनों के राजा हो जाने पर तुम्हें हमारे साथ मैत्री करने में कोई उज्र न होना चाहिए।

राजा द्रुपद क़ैदी की दशा में थे। इससे द्रोण की बात मान लेने के सिवा और वे कर ही क्या सकते थे। लाचार होकर उन्होंने द्रोणाचार्य्य का कहना अङ्गीकार कर

लिया। परन्तु उस दिन से वे द्रोण के वध का उपाय ढूँढ़ने लगे। और सब काम उन्होंने छोड़ दिये। बहुत दिनों तक वे ऋषियों और मुनियों के आश्रमों में भटकते रहे। पर द्रोण के मारने की कोई युक्ति उन्हें न सूझी। उनकी सारी मेहनत व्यर्थ गई; किसी ने कोई तदबीर द्रोण के मारने की न बताई। अन्त में महर्षि याज और उपयाज की मदद से द्रोण का मारनेवाला एक पुत्र पाने की इच्छा से उन्होंने पुत्रेष्टि नामक एक बहुत बड़ा यज्ञ किया।

उस यज्ञ की अग्नि से उन्हें धृष्टद्युम्न नामक एक महाबली पुत्र और कृष्णा नाम की एक महा रूपवती कन्या प्राप्त हुई। इसी पुत्र ने आगे चल कर द्रोण का वध किया। काशिराज की कन्या अम्बा ने भी भीष्म के वध के लिए इसी यज्ञ से नया जन्म लिया। उसका नाम हुआ शिखण्डिनी।

इधर द्रोणाचार्य्य अपने शिष्यों से विदा हुए। विदा होने के समय अपने प्यारे शिष्य अर्जुन को उन्होंने अनेक प्रकार के अद्भुत अद्भुत अस्त्र-शस्त्र दिये। अनन्तर हस्तिनापुर से प्रस्थान करके उत्तर पाञ्चाल राज्य पर अपना अधिकार जमाया और सुखपूर्वक वहाँ राज्य करने लगे।

इस तरह सब बातों में पाण्डवों का बढ़ा हुआ बल, पराक्रम और तेज देख कर धृतराष्ट्र को डर लगा कि अब हमारे पुत्रों की कुशल नहीं। वे किसी न किसी दिन ज़रूर निकाले जायँगे। इस कारण वे पाण्डवों से ईर्ष्या-द्वेष करने लगे। उनकी कीर्त्ति बढ़ते देख धृतराष्ट्र को दुःख होने लगा। इससे वे किसी तरह अपने दिन काटने लगे।

४—धृतराष्ट्र के पुत्रों का पाण्डवों पर अत्याचार

धृतराष्ट्र ने देखा कि पाण्डु के पुत्रों की बड़ी बढ़ती हो रही है; प्रजा भी उनसे बहुत प्रसन्न है—सब लोग उन्हें बहुत चाहते हैं। इससे धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई। मन ही मन वे अधीर हो उठे। उन्होंने मन्त्री कणिक को बुला भेजा। मन्त्री के आने पर धृतराष्ट्र ने कहा:—

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! अपने पुत्रों के राज्य पाने के विषय में हमें दिन दिन सन्देह हो रहा है। हम नहीं जानते, क्या करने से उन्हें राज्य प्राप्त हो सकेगा। आप अच्छी राजनीति जानते हैं। आपसे कोई बात अज्ञात नहीं। आप हमसे इस समय यह बतलाइए कि हम राज-धर्म्म के अनुसार पाण्डवों के साथ किस तरह का व्यवहार करें जो हमारे

मन का सन्देह दूर हो जाय। कौन सी तदवीर की जाय जिसमें पाण्डवों से हमारे पुत्रों को कुछ भी डर न रहे।

कणिक विलक्षण बुद्धिमान् मन्त्री थे। उन्होंने कहा:—

महाराज! शत्रुओं से सचमुच ही आपको बड़ा डर है। उस डर को पूरे तौर पर दूर करने के लिए पाण्डवों का जड़ से नाश कर देना चाहिए। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं। शत्रु को कभी निर्बल न समझना चाहिए। अशक्त और कमज़ोर समझ कर शत्रु की उपेक्षा करने से पीछे पछताना पड़ता है। इससे जिस समय शत्रु को दुर्बल और अशक्त अवस्था में पावे उसी समय उसे दूर कर दे। उसका नाश करना ही उस समय उचित है। राजनीति का यही नियम है। इस नियम को ध्यान में रख कर किस तरह की काररवाई पाण्डवों के साथ करनी चाहिए, इसका निश्चय आप अपने पुत्रों की सलाह से करें।

परन्तु, अपने भतीजों के साथ अन्याय करने के लिए धृतराष्ट्र के मन ने गवाही न दी। भतीजों पर धृतराष्ट्र की एक तो यों ही ममता थी, फिर युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई सब बातों में धर्म्मपरायण थे। कभी कोई अधर्म का काम उनके हाथ से न होता था। इस कारण उनके नाश का जो कठोर उपदेश मन्त्री ने दिया उसे धृतराष्ट्र न अङ्गीकार कर सके। उसके अनुसार पाण्डवों पर अत्याचार करने को उनका जी न चाहा। तथापि आगा-पीछा सोच कर उन्हें दुःख ज़रूर हुआ। वे शोक से व्याकुल हो उठे।

इधर पाण्डवों को सब गुणों से पूर्ण देख कर पुरवासी लोग सदा ही उनकी प्रशंसा करते थे। सभा में, या और जहाँ कहीं चार आदमी इकट्ठे होते थे, सब लोग पाण्डवों के राज्य पाने ही के विषय में बातचीत करते थे। सब एक स्वर से कहते थे:—

पाण्डवों में जेठे भाई युधिष्ठिर पूरे महात्मा हैं। वे सब तरह राज्य पाने के योग्य हैं। राजा धृतराष्ट्र जन्म ही से अन्धे हैं। इस कारण वे पहले ही राज्य के अधिकारी न थे। अब भी क्या समझ कर वे राज-सिंहासन नहीं छोड़ते? भीष्म तो राज्य लेंगे ही नहीं; क्योंकि उन्होंने वैसा न करने की प्रतिज्ञा की है। और उनकी प्रतिज्ञा कभी झूठ नहीं हो सकती। इससे हम लोग धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ही को राजा बनावेंगे। वे सत्यवादी और दयालु हैं। भीष्म और धृतराष्ट्र के साथ वे ज़रूर ही अच्छा व्यवहार करेंगे—ज़रूर ही वे उनका आदर-सम्मान करने में कसर न करेंगे।

ये सब बातें धीरे धीरे दुर्योधन के कान तक पहुँचीं। सुन कर दुर्योधन का चित्त चञ्चल हो उठा। ईर्ष्या-द्वेष से हृदय जलने लगा। झट पट आप धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और बोले:—

हे पिता! पुरवासी लोग आपका और भीष्म का तिरस्कार करके युधिष्ठिर को राज्य देने की सलाह कर रहे हैं। सुनते हैं, भीष्म भी इस बात को पसन्द करते हैं। वे कहते हैं, हम राज्य के भूखे नहीं; हमें राज्य न चाहिए। हे महाराज! ये सब कठोर और अनुचित बातें सुन कर मुझको महा दुःख हो रहा है। अपने भाइयों में जेठे होने पर भी पहले भी एक बार आपको राज्य से हाथ धोना पड़ा था। आपको राज्य से वञ्चित रख कर पुरवासियों ने पाण्डु को राजा बनाया था। अब दैवयोग से जो आपको राज्य प्राप्त हुआ है तो फिर भी आप पर अन्याय करने का विचार हो रहा है। यदि इस समय पाण्डु के पुत्रों को राज्य मिल जायगा तो फिर सदा के लिए उन्हीं के वंशवाले राजा होते रहेंगे। आपके पुत्र और पौत्र राजवंश के होकर भी हीन और तुच्छ समझे जायँगे। दूसरे का दिया हुआ टुकड़ा खानेवाले सदा ही नरक के समान दुःख भोग करते हैं। यह आप जानते ही हैं। इससे कोई ऐसी तदबीर कीजिए जिसमें इस दुःख से हम लोग बचें। उससे हमारा उद्धार करना ही आपका धर्म्म है। इस विषय में उदासीन होना—चुपचाप बैठे रहना—अच्छा नहीं। चुप बैठने से अब निस्तार नहीं।

मन्त्री कणिक का उपदेश और पुत्र दुर्योधन की दुःख-भरी विनती सुन कर धृतराष्ट्र का चित्त डोल उठा। वह डगमगाने लगा। परन्तु अन्याय और अधर्म के डर से उनसे कुछ करते धरते न बना। मन की बात मन ही में रख कर शान्त रहना पड़ा।

परन्तु दुर्योधन चुप रहनेवाले न थे। मित्र कर्ण और मामा शकुनि से सलाह करके वे फिर धृतराष्ट्र के पास आकर बोले:—

हे तात! यदि आप किसी तदबीर से—किसी युक्ति से—पाण्डवों को कुछ दिन के लिए कहीं बाहर भेज दें तो जो यह विपद हम लोगों पर आनेवाली है उससे बचने का कोई उपाय किया जा सकता है।

धृतराष्ट्र कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे। सोच साच कर आपने कहा:—

देखो पुत्र! भाई पाण्डु बड़े धर्मात्मा थे। राज्य पाने पर अपने बन्धु-बान्धवों के, और विशेष करके हमारे, साथ कभी उन्होंने बुरा व्यवहार नहीं किया। हमको उन्होंने सदा ही स्नेह की दृष्टि से देखा। राज्य से सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें प्रति दिन वे हमसे कहते थे और हमारी सलाह से सब काम करते थे। जो काम करने की आज्ञा हम न देते थे उसे कभी न करते थे। उनके पुत्र युधिष्ठिर उन्हीं की तरह धर्मात्मा हैं। पिता के राज्य के वही अधिकारी हैं। इसके सिवा उनके सहायक भी बहुत हैं। यदि हम उन्हें बलपूर्वक राज्य से दूर करने की चेष्टा करेंगे—यदि हम ज़बरदस्ती

उन्हें राजसिंहासन से अलग रखने का यत्न करेंगे—तो प्रजा और पुरवासी ज़रूर ही हम लोगों के प्राण ले लेंगे।

दुर्योधन ने कहा—हे पिता! आप जो कहते हैं सब सच है। परन्तु आदर-सम्मान करके और धन-धान्य देकर प्रजा और पुरवासियों को हम प्रसन्न कर सकते हैं; उन्हें अपनी तरफ़ कर सकते हैं। फिर हम पाण्डवों का कोई अनिष्ट भी नहीं करना चाहते। आप कोई अच्छी युक्ति सोच कर कुछ दिन के लिए उन्हें वारणावत नगर को भेज दीजिए। इस समय सारा धन और सारे मन्त्री हमारे ही अधीन हैं। इसी बीच में, किसी उचित उपाय से पुरवासियों को वश में करके, राज्य हम अपने हाथ में कर लेंगे। फिर कोई सन्देह की बात न रह जायगी। तब पाण्डवों को फिर राजधानी में बुला लेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे दुर्योधन! तुमने जो बात कही वही हमने भी कई बार मनही मन सोची है। परन्तु इस तरह का अन्याय करना महा पाप है, यह विचार कर हमने अपने मन की बात किसी से नहीं कही। इसे जाने दो। पाण्डवों को बाहर भेजने को भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि कोई सलाह भी तो न देंगे। इन सबकी इच्छा के प्रतिकूल किस तरह हम उन्हें राजधानी से हटा सकेंगे?

दुर्योधन बोले:—भीष्म तो पाण्डवों का और हम लोगों का बराबर प्यार करते हैं। हम सब पर उनकी एक सी प्रीति है। अश्वत्थामा हमारे पक्ष में हैं; इससे द्रोण और कृप को भी लाचार होकर हमारी ही तरफ़ होना पड़ेगा। रहे विदुर, सो वे हमारे अर्थ के— हमारे धनधान्य के—जाल में बँधे हुए हैं। तथापि, सुनते हैं, पाण्डवों ने छिपे छिपे उन्हें अपने हाथ में कर रक्खा है। कुछ भी हो, अकेले विदुर हमारा कोई अकाज नहीं कर सकते। इससे अब आप और व्यर्थ शङ्का सन्देह न करें। पाण्डवों के कारण रात को हमें नींद नहीं आती। निद्रा का नाश करनेवाली शोक-रूपी आग में हम जला करते हैं। हमारी सलाह मान कर इस आग में जलने से आप हमें बचाइए। और अधिक देरी न कीजिए।

इस बातचीत के बाद धृतराष्ट्र मनही मन इन सब युक्तियों का विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि जिस तरकीब से दुर्योधन राज्य को अपने हाथ में करना चाहते हैं उसमें क्या क्या गुण-दोष हैं। कामयाबी की आशा है या नहीं। उधर दुर्योधन अपने काम की सिद्धि की फ़िक्र में लगे। धन देकर और हर तरह से सम्मान करके प्रजा को अपनी मुट्ठी में कर लेने का वे यत्न करने लगे। जब देखा कि अब अवसर अच्छा

है—लोग अब हमारे अनुकूल मालूम होते हैं—तब उन्होंने एक चाल चली। एक बड़े चालाक और धूर्त मन्त्री को उन्होंने सब बातें पहले ही से सिखला रक्खी थीं। सूचना पाते ही एक दिन वह राज-सभा में सब लोगों के सामने कहने लगा:—

वारणावत् बहुत बड़ा नगर है। वह बड़ा ही मनोहर और रमणीक स्थान है। वहाँ भगवान् भवानी-पति विराजमान हैं। उनके पूजन और दर्शन के लिए इस समय नाना देशों से लोग वहाँ आ रहे हैं।

इस प्रशंसा को सुन कर पाण्डवों के मन में वारणावत् नगर देखने की इच्छा हुई।। धृतराष्ट्र ने देखा कि वारणावत् जाने के लिए पाण्डव बहुत उत्सुक हो रहे हैं। दुर्योधन को प्रसन्न करने का उन्होंने यह अच्छा मौक़ा समझा। यद्यपि अधर्म के डर से उन्हें बहुत कुछ सङ्कोच हुआ, तथापि अपने प्यारे पुत्र दुर्योधन के दबाव से इस मौक़े को हाथ से जाने देना उन्होंने मुनासिब न जाना। मन ही मन कुण्ठित होकर पाण्डवों को जाल में फाँसने के लिए वे तैयार हुए। उन्हें बढ़ावा देने के लिए—उनसे मन के अभिलाष को और अधिक बढ़ाने के लिए—वे बोले:—

हे पुत्र! सभी हमसे वारणावत् की बड़ाई करते हैं। इच्छा हो तो तुम सब जाकर कुछ दिन वहाँ सुख से रह सकते हो।

युधिष्ठिर बड़े बुद्धिमान् थे। धृतराष्ट्र की बात सुन कर वे समझ गये कि ज़रूर कुछ दाल में काला है। परन्तु इस कुटिल-जाल से बचने का कोई अच्छा उपाय न देख लाचार होकर उन्होंने वारणावत् जाना अङ्गीकार कर लिया।

इस घटना से दुर्योधन को परमानन्द हुआ। उनके आनन्द की सीमा न रही। पहले ही से धृतराष्ट्र से बिना पूँछे ही एक बड़े ही घोर पाप की बात वे मन ही मन सोचते रहे थे। दुर्योधन को उसके कर दिखाने का अब अच्छा अवसर मिला। उन्होंने पुरोचन नाम के एक महा दुराचारी मन्त्री को बुलाया और प्रेमपूर्वक उसका हाथ पकड़ कर बोले:—

हे पुरोचन! धन-सम्पत्ति से भरा हुआ यह इतना बड़ा राज्य सिर्फ़ हमारा ही नहीं है। तुम्हारा भी है। जिस तरह इसकी रक्षा हो उसके लिए तुम्हें भी यत्न करना चाहिए। जिस बात से यह बना रहे उसे करने में तुम्हें भी तैयार रहना चाहिए। तुम्हें छोड़ कर और कोई ऐसा हमें नहीं देख पड़ता जिससे हम अपने मन की बात सङ्कोच छोड़ कर कह सकें। एक तुम्हीं ऐसे हो जिनसे कोई बात कहने में हमें किसी तरह का सन्देह नहीं होता। एक तुम्हीं हमारे सबसे अधिक विश्वास-पात्र मन्त्री हो।

इससे जो कुछ हम तुमसे कहने जाते हैं उसे कदापि किसी से न कहना। वारणावत् में जो महादेव का उत्सव होनेवाला है उसमें पाण्डव लोग जायँगे। उनका इरादा वहाँ कुछ दिन रह कर सैर करने का है। तुम एक काम करो। एक बहुत तेज़ रथ पर सवार होकर आज ही वारणावत् जाव। लाख, सन, साल आदि जितनी चीज़ें और जितनी लकड़ियाँ ऐसी हैं कि आग छू जाते ही एकदम जल उठें, उनसे वहाँ एक बहुत ही सुन्दर चार पैार का घर बनवाना। फिर मिट्टी में बहुत सा तेल-लाख, लोबान आदि मिला कर उसका प्लास्टर बनवा कर इस घर की दीवारों पर उसका खूब लेप करा देना। इसके बाद बड़ी सावधनी से बारूद आदि आग से उड़नेवाली चीज़ें चारों तरफ़ गुप्त जगहों में छिपा कर रख देना। पाण्डवों के वारणावत् पहुँचने पर, अच्छा मैाक़ा पाते ही, उस घर में रहने के लिए उनसे बड़े आदर-सत्कार से प्रार्थना करना। जहाँ तक हो सके दिव्य से दिव्य रथ, पालकी, पलँग आदि देकर उनको खुश करना। जब उन्हें सब तरह का विश्वास हो जाय और कुछ दिन वहाँ रहते हो जायँ तब एक रात को छिपे छिपे इस घर में आग लगा कर पाण्डवों को वहीं भस्म कर डालना। देखो, पिता और पुरवासियों को इस बात की ज़रा भी सुग-सुग न लगने पावे। ऐसा प्रबन्ध करना जिसमें वे समझें कि अचानक आग लग जाने से ही पाण्डव जल मरे हैं। ऐसा न हो कि पाण्डवों के मारने का कलङ्क हमारे सिर थापा जाय। इससे तुम्हें बड़ी सावधानी से काम करना होगा।

पापात्मा पुरोचन ने दुर्योधन की बात मान ली। उसी क्षण वह एक तेज़ रथ पर सवार होकर वारणावत् पहुँचा और लाख का घर बनवाना आरम्भ कर दिया।

इसके अनन्तर अच्छा मुहूर्त देख कर वारणावत् जाने के लिए पाण्डव तैयार हुए। उनके लिए अच्छे अच्छे घोड़े जोत कर एक रथ लाया गया। पाण्डवों के मन में सन्देह तो हो ही गया था; पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। चलते समय गुरुजनों और ब्राह्मणों को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया। फिर वे बराबरवालों को गले से लगा कर मिले। बालकों ने उनके पैर छुवे। अन्त में सब माताओं की प्रदक्षिणा करके उनसे बिदा माँगी। प्रजाजन और पुरवासियों से प्रीतिपूर्वक बातें कीं। तब रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर से उन्होंने प्रस्थान किया।

पाण्डवों को हस्तिनापुर से इस तरह अचानक जाते देख लोगों के मन में सन्देह हो आया। वे सोचने लगे कि क्या कारण है जो पाण्डव अकस्मात् वारणावत् भेजे जा रहे हैं। विदुर आदि कितने ही कुरुवंश के सज्जन और कितने ही भक्त पुरवासी पाण्डवों

के साथ जाने को तैयार हुए। उनमें से कोई कोई ढीठ और साहसी ब्राह्मण मनमानी जली कटी बातें सुनाने लगे:—

जब तक महाराज पाण्डु जीते रहे सबके साथ उन्होंने न्याय और दया का व्यवहार किया। उनके पीछे उनका राज्य उनके जेठे पुत्र युधिष्ठिर को मिलना चाहिए था। सो तो दूर रहा, उनके उत्तराधिकारियों के साथ उलटा अन्याय हो रहा है। इस निष्ठुरता और निर्दयता का कारण क्या? कुछ भी हो, जहाँ युधिष्ठिर रहेंगे हम लोग भी घर-द्वार छोड़ कर दल-बल सहित वहीं जाकर उनके अधीन रहेंगे।

इस तरह की बातों को युधिष्ठिर ने अच्छा नहीं समझा। प्रजा को धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों के ख़िलाफ़ राय देते देख उन्होंने रथ खड़ा कर दिया और बोले:—

हे प्रजाजन! राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता के तुल्य हैं। उनका मान रखना हमारा परम धर्म्म है। उनकी आज्ञा पालन करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। इससे तुम सब लोग हमें आशीर्वाद देकर और हमारी मङ्गल-कामना करके अपने अपने घर लौट जाव। यदि कभी काम करने का समय आवे, और तुम्हारी मदद दरकार हो, तो उस समय हमारे हितचिन्तन का यत्न करना। अभी हमारे साथ चलने की ज़रूरत नहीं।

यह सुन कर प्रजाजनों ने पाण्डवों की प्रदक्षिणा की और उन्हें आशीर्वाद देकर घर लौट आये। जब सब लोग चले गये तब विदुर युधिष्ठिर से विदा होने लगे। उनको दुर्योधन के पापजाल की बात मालूम हो गई थी। इससे युधिष्ठिर को उन्होंने सचेत करना चाहा। म्लेच्छभाषा में इशारे के तौर पर उन्होंने युधिष्ठिर को कुछ उपदेश दिया। वे बोले:—

बुद्धिमान् आदमी सदा ही विपद से बचने के उपाय निकाल लिया करते हैं। शत्रु लोग जाल, फरेब और चालाकी के दाँव पेंच खेला ही करते हैं। वही उनके लिए अस्त्र-शस्त्र का काम देते हैं। ऐसे शस्त्र यद्यपि लोहे के नहीं होते तथापि शरीर उनसे ज़रूर छिद जाता है। फूस के भीतर कन्दरा खोद कर रहने से फूस को जलानेवाली आग कुछ नहीं कर सकती। उससे आदमी नहीं जल सकता। ऊपर ही ऊपर वह फूस को जला कर बुझ जाती है। पाँचों इन्द्रियाँ जिनके वश में हैं उन्हीं की जीत होती है। राह न मालूम हो तो आकाश में नक्षत्र देख कर दिशाओं का ज्ञान कर लेना चाहिए—रात को तारे देख कर जान लेना चाहिए कि हमें किधर जाना है।

यह उपदेश सुन कर कुछ देर तक युधिष्ठिर ने मनही मन विचार किया। फिर उन्होंने उसी म्लेच्छ-भाषा में सिर्फ़ यह कह कर उत्तर दिया कि—'मैं समझ गया'।

विदुर भी युधिष्ठिर को यह उपदेश देकर उनसे विदा हुए। जब सब चले गये तब कुन्ती ने युधिष्ठिर से पूछा:—

बेटा! विदुरजी ने अज्ञात भाषा में तुमसे क्या कहा और तुमने उसका क्या उत्तर दिया? यदि इस बात के बताने में कोई हानि न हो तो मैं जानना चाहती हूँ। युधिष्ठिर ने कहा:—

चचा विदुर ने म्लेच्छ-भाषा में हमसे दुर्योधन के एक कूटमन्त्र की बात कही। उन्होंने युक्ति से हमें यह सूचित किया कि दुर्योधन ने हमारे साथ छल करने की ठानी है; इससे हमें सावधान रहना चाहिए। हमने भी उनसे उसी भाषा में उत्तर दिया कि आपके कहने का मतलब हम समझ गये।

आठवें दिन पाँचों पाण्डव माता के साथ वारणावत् पहुँचे। उनके आने का शुभ समाचार सुन कर हज़ारों पुरवासी और प्रजा-जन, हाथी, घोड़े और रथ आदि पर सवार होकर, उनकी अगवानी के लिए, जय-जयकार करते हुए, नगर से बाहर निकले। आगे बढ़ कर वे पाण्डवों से मिले और उनका अभिवादन किया। प्रजा-वर्ग से घिरे हुए पाण्डवों ने नगर में प्रवेश किया। ब्राह्मण, नगर के अधिकारी, रथी, वैश्य और शूद्र लोगों के भी घर जा जाकर पाण्डवों ने हर एक की पूजा ग्रहण की। फिर उनके रहने के लिए जो महासुन्दर महल सजाया गया था उसमें जाकर उतरे।

पुरोचन ने पाण्डवों की बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। उसने उनके खाने, पीने और सोने आदि का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध पहले ही से कर रक्खा था। नाना प्रकार के राजभोग तैयार कर रक्खे थे। उस दुरात्मा ने पाण्डवों को बड़े ही सुख और सत्कार से रक्खा। प्रजा ने भी उनका बड़ा आदर किया— उनकी हृदय से पूजा-परिचर्य्या की। दस दिन तक पाण्डव इस महल में रहे।

ग्यारहवें दिन पुरोचन अपना पाप-कर्म करने के इरादे से पाण्डवों को लाख के बने हुए उस लाक्षागृह में ले गया। वहाँ जाने के लिए पुरोचन ने बड़ा आग्रह किया—बड़ी हठ की। उसके अतिशय आग्रह को देख युधिष्ठिर के मन में सन्देह हुआ। उस दिन से वे बड़ी सावधानी से रहने लगे। सब बातों को—सब घटनाओं को—वे उस दिन से बहुत ध्यानपूर्वक देखने लगे। लाख के उस घर में जाते ही युधिष्ठिर ने भीम से कहा:—

भाई! हमें इस घर में लाख मिली हुई चर्बी की दुर्गन्ध आती है। कुछ धोखा ज़रूर है, इसमें कोई सन्देह नहीं। महात्मा विदुर ने चलते समय जो उपदेश हमें दिया था उसका मतलब अच्छी तरह अब हमारे ध्यान में आ रहा है। यह देखो किसी

चतुर कारीगर ने घी से भीगे हुए बाँस, मूंज और सन आदि तत्काल जल उठने योग्य पदार्थों से यह घर बनाया है। हा! दुष्ट दुर्योधन कितना क्रूर और निर्दयी है! समझे, वह कैसा घोर पाप करना चाहता है! हम इस समय उसकी सारी चालाकी—उसका सारा क्रूर कर्म—प्रत्यक्ष की तरह देख रहे हैं। उसकी दुष्टता मानों आँखों के सामने दिखाई दे रही है। पुरोचन की मदद से इस घर के भीतर घर के सहित हमें जला कर ख़ाक कर देने का उसने विचार किया है!

हे आर्य्य! यदि यह घर सचमुच ही ऐसा है कि आग छूते ही जल उठे तो यहाँ एक क्षण भी रहना उचित नहीं। चलिए, जिस घर में हम पहले थे उसी में चलें।

युधिष्ठिर ने कहा—हे वृकोदर! हमारी समझ में हमें यहीं रहना चाहिए। उस घर में लौट जाना अच्छा नहीं। नराधम पुरोचन को यदि मालूम हो जायगा कि हम लोग उसकी कपट-लीला जान गये हैं तो वह उसी दम हम लोगों को जला देगा। क्योंकि उस दुष्ट को न अधर्म से डर है, न लोक-निन्दा ही से डर है। और, यदि, इस घर के जलाये जाने के पहले ही हम लोग भाग भी गये तो भी राज्य का लोभी दुर्योधन हमें जीता न छोड़ेगा। वह दूत द्वारा ज़रूर ही हमारे प्राण ले लेगा। इससे यही अच्छा होगा कि हम लोग इसी घर में सावधानी से रहें, और मौक़ा मिलते ही, पुरोचन और दुर्योधन के बिना जाने ही, भाग चलें। इसी में हमारा कल्याण है। इस समय शिकार के बहाने हमें सब तरफ़ घूमना चाहिए। ऐसा करने से हमें यह मालूम हो जायगा कि किस राह से हम लोग यहाँ से भाग सकते हैं। विदुर ने उपदेश देते समय जो इशारा किया था उसके अनुसार इस घर के भीतर हमें एक कन्दरा खोदनी चाहिए। रात को हमें उसी के भीतर छिप कर रहना चाहिए। ऐसा करने से इस घर के जला दिये जाने पर भी आग से जलने का हमें कोई डर न रहेगा।

इसी समय विदुर का भेजा हुआ एक विश्वास-पात्र मनुष्य युधिष्ठिर के पास आया। उसने पाण्डवों को एकान्त में ले जा कर कहा:—

हे महात्माओ! हम बेलदार हैं। आपके परम हित-चिन्तक चचा विदुर ने हमें भेजा है। उन्होंने सुना है कि दुर्योधन की आज्ञा से पुरोचन किसी कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात को इस घर में आग लगा देगा। जिसमें आप मुझ पर विश्वास करें इसलिए, विदुरजी ने मुझसे उस उपदेश की बात आपसे कहने की आज्ञा दी है जो उन्होंने विदा होते समय म्लेच्छ-भाषा में आपको दिया था। कहिए अब मेरे लिए क्या आज्ञा है।

युधिष्ठिर ने कहा—जब तुम्हें हमारे परम हित-चिन्तक चचा ने भेजा है तब तुमको भी हम अपना मित्र और आत्मीय समझते हैं। इस लाक्षागृह के चारों तरफ़ अस्त्र-शस्त्र रक्खे हैं। और, सिलहख़ाने में, जहाँ सब हथियार रहते हैं, पुरोचन ख़ुद ही दिन-रात रहता है। एक क्षण के लिए भी वह बाहर नहीं जाता। इससे यदि हम आग से बच कर भागें तो अस्त्रों से बच कर नहीं भाग सकते। इन सब बातों को सोच कर तुम हमारे बचाव का कोई उपाय निकालो।

उस बेलदार ने ख़ूब देख-भाल कर खाई खोदने के बहाने एक गहरा गढ़ा उस घर में खोदा। उस गढ़े से बाहर निकलने के योग्य, सुरङ्ग के रूप में, उसने एक रास्ता बनाया। गढ़े के मुँह को उसने एक अद्भुत प्रकार के किवाड़ों से बन्द कर दिया, जिसमें यदि कोई बाहरी आदमी घर में आवे तो वह इस गढ़े को न देख सके। पुरोचन को धोखा देने के लिए पाण्डव लोग दिन भर ख़ूब इधर-उधर शिकार खेलने लगे। उन्होंने पुरोचन को यह भासित किया कि हमें इस घर में रहने में किसी तरह का सन्देह या खटका नहीं। रात को वे उसी गढ़े के भीतर बड़ी सावधानी से सोने लगे।

इस तरह एक वर्ष बीत गया। पुरोचन ने समझा, पाण्डव लोग अब मेरा सब तरह विश्वास करते हैं। इस कारण अपने पाप-कर्म की सिद्धि में उसे कोई शङ्का न रही। उसे पूरी आशा हुई कि पाण्डवों को मैं इस घर में ज़रूर जला दूँगा। इससे वह आनन्द से फूल उठा। उसे प्रसन्न देख युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा:—

मालूम होता है कि इस बार हम लोग पुरोचन को अच्छी तरह धोखा देने में समर्थ हुए हैं। वह दुरात्मा मन ही मन ख़ुश हो रहा है कि हम लोगों को उसके कपट-जाल का कुछ भी ज्ञान नहीं है। भाग निकलने का हमारे लिए यही अवसर है। पुरोचन के द्वारा इस घर में आग लगाये जाने की राह देखते बैठना अब व्यर्थ है। आओ हमीं शस्त्रागार में, जहाँ वह रहता है, आग लगा कर उसे भस्म कर दें। फिर इस लाक्षागृह में आग लगा कर सुरङ्ग के रास्ते, बिना किसी को मालूम हुए, बाहर निकल चलें।

जिस रात को यह सब काम करने का निश्चय हुआ उसी दिन कुन्ती ने पुरवासियों को एक बहुत बड़ा भोज दिया। सबको नाना प्रकार के भोजन कराये गये। उसी समय मानों युधिष्ठिर को सहायता देने ही के लिए, वहाँ पर केवट जाति की एक स्त्री आ गई। उसके साथ उसके पाँच पुत्र भी थे। उन लोगों ने गले तक खाया पिया। इससे अचेत होकर वे सब वहीं पड़ रहे।

धीरे धीरे दिन का अन्त हुआ। रात आई। विकट अन्धकार छा गया। पाण्डवों

ने देखा कि सब लोग घोर नींद में सो रहे हैं। किसी को किसी की ख़बर नहीं है। इससे उन्होंने भागने की तुरन्त तैयारी की। भीम चुपचाप उठे और जिस शस्त्रागार में पुरोचन सोया था उसमें जाकर पहले आग लगा दी; फिर लाक्षागृह के दरवाज़े पर आग लगाई। अन्त में चारों तरफ़ दीवारों में भी आग दे दी। यह सब करके किसी तरह सब पाण्डव सुरङ्ग की राह से निर्जन वन में बाहर निकल गये। किस तरह और कहाँ कहाँ आग लगानी चाहिए, इसकी सलाह पहले ही से हो गई थी। उसी के अनुसार भीमसेन ने सब काम किया। इस प्रकार पुरोचन का सर्वनाश करके पाण्डव लोग उस घर के बाहर हो गये। किसी का बाल तक बाँका न हुआ।

इधर पुरोचन ने अपने किये का पूरा फल पाया। जल कर वह ख़ाक हो गया। और उसके साथ ही वह स्त्री भी अपने पाँचों पुत्रों सहित जल गई। अग्नि की ज्वाला बढ़ने पर अचानक ऊँची ऊँची लपटें उठते देख पुरवासियों ने हाहाकार मचाया। चारों तरफ़ से वे दौड़ पड़े। उन्होंने देखा कि जिस स्थान में पाण्डव रहते थे वह अग्निगर्भ चीज़ों से बनाया गया था। जान बूझ कर उसमें ऐसी चीज़ें लगाई गई थीं जो आग छू जाते ही भक से जल उठें। यह हाल देख सब पुरवासी छाती पीटने लगे। उन्होंने रोना और विलाप करना आरम्भ किया। वे कहने लगे:—

हाय! कौरवों के कुल में यह दुर्योधन कलङ्क के समान पैदा हुआ। उसी का यह कर्म है। उसी के कहने से पापात्मा पुरोचन ने यह घर बनवा कर उसकी दुष्ट इच्छा पूरी की है। परन्तु धर्म्म की महिमा तो देखो! उस नराधम के भी घर में आग लग गई। वह भी जल मरा। जलते हुए उस लाक्षागृ. के चारों तरफ़ सारी रात पुरवासियों ने इसी तरह विलाप किया।

इस बीच में माता कुन्ती को साथ लेकर पाण्डव लोग जल्दी जल्दी किसी ऐसी जगह पहुँचने का यत्न करने लगे जहाँ किसी तरह का डर न हो। किन्तु रात भर जगने और आग से जलने के डर के मारे वे इतना थक गये थे कि पद पद पर ठोकरें खा खा कर गिरने लगे। उस समय महाबली भीमसेन ने किसी को कन्धे पर चढ़ाया, किसी को गोद में उठाया और किसी का हाथ पकड़ा। इस तरह सबको धीरज देते हुए वे आगे बढ़े।

लाक्षागृह के जलने की ख़बर हस्तिनापुर पहुँचते ही महात्मा विदुर ने पाण्डवों की सहायता के लिए एक विश्वासपात्र आदमी भेजा। वह पाण्डवों को ढूँढ़ते हुए उनके पीछे पीछे चला। यह वही मनुष्य था जिसने दुर्योधन के कपट-जाल का पता

लगाने के समय विदुर की सहायता की थी। धीरे धीरे पाण्डव लोग गङ्गा के किनारे उपस्थित हुए और पार करने का उपाय सोचने लगे। उसी समय यह मनुष्य एक तेज़ नाव लेकर उनके पास आया। युधिष्ठिर से विदा होते समय विदुर ने जिस अज्ञात भाषा में उपदेश दिया था उसकी सूचना देकर उस मनुष्य ने युधिष्ठिर को अपना विश्वास दिलाया। अनन्तर वह बोला:—

हे महात्मा! सब बातों के ज्ञाता आपके चचा विदुर ने आपको आशीर्वाद दिया है। सारथि-पुत्र वसुसेन, सब भाइयों समेत दुर्योधन, और शकुनि ने यह विश्वासघात आपके साथ किया है। यह कपट-जाल इन्हीं का रचा हुआ आप समझिए। इस समय इस नाव पर आप सवार हूजिए और जितनी जल्दी हो सके विपद के स्थानों को पार करके किसी निर्भय स्थान में जाकर ठहरिए।

इसके अनन्तर उस मनुष्य ने मल्लाह का काम किया। कुन्ती समेत पाण्डवों को नाव पर बिठला कर उसने गङ्गा के उस पार पहुँचा दिया। वहाँ पर उसने उन्हें एक ऐसे स्थान में ठहराया जहाँ किसी तरह का डर न था। फिर पाण्डवों का जय-जय-कार करते हुए उसने बिदा माँगी। पाण्डवों ने विदुर को प्रणाम कहा और अपने कुशल-समाचार उनसे कहने के लिए उस दूत से प्रार्थना की। दूत जब चला गया तब पाण्डवों ने वहाँ अधिक समय तक ठहरना उचित न समझा। इससे वे वहाँ से झटपट उठ खड़े हुए और कोई सुरक्षित स्थान ढूँढ़ने के लिए जल्दी जल्दी चले।

अब वारणावत् का हाल सुनिए। लाक्षागृह में आग लगने के समाचार जिन लोगों ने न सुने थे प्रात:काल होने पर उन्होंने भी सुने। सारा नगर वहाँ आकर इकट्ठा हो गया। जब आग बुझ गई तब शस्त्रागार में पुरोचन के जले हुए शरीर की राख मिली। लाक्षा-गृह के आँगन में भी जले हुए छ: मनुष्य-शरीर पाये गये। उन्हें देख कर लोगों ने समझा कि पाण्डव ज़रूर जल गये, इसमें कोई सन्देह नहीं। उस बेलदार ने लाक्षागृह की मरम्मत करने के बहाने उस गढ़े और सुरङ्ग में खूब मिट्टी भर दी थी। इससे किसी को उनका पता न चला। प्रजाजन बेतरह रोने, चिल्लाने और विलाप करने लगे। धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि सभी को उन्होंने इस हत्या का कारण समझा। वे कहने लगे:—

इस पाप-कर्म का सारा दोष इन्हीं लोगों के सिर पर है। किस तरह इन लोगों ने पापी दुर्योधन के कहने से ऐसा घोर पाप-कर्म किया! कुछ भी हो, अब हम लोग जा कर उन्हें ख़बर दें कि आपकी मनोकामना सफल हुई; पाण्डव जल गये। अब आप खूब खुशी मनाइए!

हस्तिनापुर में सब समाचार यथासमय पहुँचे। तब लोगों ने जाना कि क्यों पाण्डव वारणावत् भेजे गये थे। तब तक उनके वारणावत् भेजे जाने का ठीक ठीक कारण वहाँ-वालों को न मालूम था। सब कच्चा हाल जान कर हस्तिनापुर के लोगों को बड़ा दुःख हुआ। मारे शोक के वे व्याकुल हो उठे। परन्तु इस बीच में दुर्योधन ने अपनी चतुरता और धूर्तता से सबको वश में कर लिया था। इससे कोई कुछ कर न सका। सब लोग मन ही मन मिसूस कर रह गये। महाराज धृतराष्ट्र विलाप करने लगे:—

हाय! माता समेत पाँचों भतीजों के न रहने से भाई पाण्डु आज सचमुच ही मर गये। हे मन्त्रि-जन! तुम लोग तुरन्त वारणावत् जाव और उन पाँचों वीरों और कुन्ती का यथोचित मरण-संस्कार करो। उनकी अन्त्येष्टिक्रिया बहुत अच्छी तरह करना, जिससे उनकी अच्छी गति हो और वे स्वर्ग को जायँ। जो कुछ होना था हो गया; इस समय उनका परलोक बनाने में किसी तरह की कमी न होनी चाहिए।

जाति के सब लोगों ने हाय कुन्ती! हाय युधिष्ठिर! हाय भीम! हाय अर्जुन! हाय नकुल! हाय सहदेव! कह कह कर रोते रोते जलाञ्जलि दी। यथार्थ बात क्या थी सो विदुर जानते थे। इससे लोकाचार दिखाने भर के लिए थोड़ा सा बनावटी विलाप करके वे चुप हो रहे।

उधर दुर्योधन के डर के मारे पाण्डवों ने अपना वेश बदल डाला। जब वे वारणावत् से भागे थे, तब रात तो थी ही, इससे नक्षत्र देख कर उन्होंने इस बात का ज्ञान प्राप्त किया कि कौन दिशा किस तरफ़ है। दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करके वे दक्षिण की तरफ़ चले। भीम इतने वेग से चलने लगे कि और भाई उनके वेग को न सह सके। चलने में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। बीच में कई बार वे अचेत हो गये। पहले ही की तरह भाइयों को सहारा देते हुए भीमसेन सबको अपने साथ लिये चलते रहे। ऊँची नीची जगहों में वे माता को पीठ पर चढ़ा लेने लगे।

इसी तरह वे बराबर चले गये। शाम को वे एक घने वन में पहुँचे। धीरे धीरे घोर अन्धकार छा गया। वन ऐसा विकट था कि न वहाँ जल था, न कोई फल-फूल ही खाने योग्य थे। शेर, बाघ और रीछ आदि घातक जानवरों से वन भरा हुआ था। चारों ओर पशु-पक्षियों का डरावना शब्द सुनाई पड़ रहा था। हवा बड़े ज़ोर से चल रही थी। नींद और भूख के मारे पाण्डवों की बुरी दशा थी। उनका शरीर काठ का सा हो गया था। चलने की शक्ति प्रायः किसी में न रह गई थी। इस समय कुन्ती को बड़ी प्यास लगी। प्यास से व्याकुल हो कर वे विलाप करने लगीं:—

हाय! पाँच पाण्डवों की मा होकर भी और पुत्रों के साथ रह कर भी हम एक बूँद पानी के लिए तड़प रही हैं!

भीमसेन का हृदय बहुत कोमल था। वे माता की दीन वाणी को न सह सके। वे विह्वल हो उठे और बहुत देर तक उस घोर वन में इधर-उधर घूमते रहे। घूमते घूमते उन्हें बरगद का एक छायादार वृक्ष देख पड़ा। उसके नीचे की जगह बहुत ही रमणीय थी। वहीं भीमसेन सबको ले गये। सबके विश्राम का वहाँ प्रबन्ध करके उन्होंने युधिष्ठिर से कहा:—

हे आर्य्य! आप सब लोग यहाँ आराम से लेटें और थकावट दूर करें। मैं आपके लिए पानी ढूँढ़ने जाता हूँ! सारसों का शब्द दूर सुनाई पड़ रहा है। वहाँ ज़रूर पानी होगा।

युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर भीमसेन बड़े वेग से उस तरफ़ चले जहाँ से उन जलचर पक्षियों का शब्द आ रहा था। कुछ देर में वे एक तालाब के किनारे जा खड़े हुए। तालाब में साफ़ पानी भरा था। उसे देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उसमें स्नान करके उन्होंने जी भर के पानी पिया। इससे उनकी थकावट बहुत कुछ दूर हो गई। तब उन्होंने माता और भाइयों के पीने के लिए अपने अँगोछे में बहुत सा पानी लिया और जल्दी जल्दी उस बरगद के नीचे लौट आये। आकर उन्होंने देखा कि मारे थकावट के सब लोग वहाँ ज़मीन पर गहरी नींद में सो रहे हैं। अपनी प्यारी माता और अपने भाइयों को इस प्रकार अनाथ की तरह ज़मीन पर पड़े देख भीमसेन को बड़ा दुख हुआ। उनके शोक की सीमा न रही। वे मन ही मन कहने लगे:—

हाय! हम लोग बड़े ही अभागी हैं। दूध की तरह सफ़ेद और कोमल सेज पर भी जिन्हें अच्छी तरह नींद न आती थी उन्हीं को आज हम ज़मीन पर सोते देखते हैं। वसुदेव की बहन, कुन्तिराज की पुत्री, महापराक्रमी पाण्डु की रानी और हमारी माता, हाय! आज ज़मीन पर लोट रही है। जिसका शरीर फूल की तरह कोमल है वह आज इस पथरीली ज़मीन पर पड़ी है! इससे अधिक हमारे लिए और क्या दुख होगा? हा मूर्ख दुर्योधन! हा दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र-पुत्र! इस समय तुझ पर देवता प्रसन्न हैं। इससे तू अपनी कामना पूर्ण कर ले। किन्तु हे कुलाङ्गार! जिस दिन धर्म्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाऊँगा उसी दिन पुत्र और मन्त्रियों सहित तुझे मैं यमराज के घर भेज कर बदला लिये बिना न रहूँगा।

महाबली वृकोदर, भीम, इसी तरह देर तक मन ही मन कहते रहे। क्रोध से

उनका हृदय जल उठा। बार बार हाथ मल कर उन्होंने लम्बी साँसें लीं। फिर जो उन्होंने सोये हुए भाइयों की तरफ़ देखा और उनके दुःख-क्लेश का विचार किया तो उनका क्रोध कुछ शान्त हो गया। उनके मुँह पर फिर दीनता के चिह्न दिखाई देने लगे। वे सोचने लगे:—

जान पड़ता है, इस वन के पास ही कोई नगर है। इससे यहाँ पर इस तरह निडर होकर सोना अच्छा नहीं। परन्तु ये सब बहुत थके हुए हैं। इस कारण इन्हें जगाना भी उचित नहीं। अच्छा इन्हें सोने दो। हम अकेले ही जागते हुए इनकी रक्षा करेंगे और देखते रहेंगे कि कोई असाधारण बात तो नहीं होती। अकेले हमारा ही सचेत रहना इस समय बस होगा।

इस तरह मन ही मन सोच कर भीमसेन जागते रहे और जो जल सबके पीने को लाये थे उसे सँभाल कर अपने पास रक्खा।

इसी जगह के पास शाल का एक बहुत बड़ा वृक्ष था। मेघों की तरह काले रंग का बड़ा ही डरावना एक राक्षस उस पर रहता था। उसका नाम हिड़िम्ब था। मनुष्य का मांस उसे बहुत प्यारा था। वही वह खाता था। पर बहुत दिन से नर-मांस उसे न मिला था। इससे वह बड़ा भूखा था। भीम आदि पाण्डव उससे कुछ ही दूर थे। उनके बदन से उस राक्षस को मनुष्य की गन्ध आई। इससे उसकी लार टपकने लगी। उसने अपनी बहन हिड़िम्बा को बुला कर कहा:—

मनुष्य के मांस में दाँत गड़ाने और गरम गरम रक्त पीने का आज बहुत दिनों में अवसर आया है। उस वृक्ष के नीचे के मनुष्यों को मार कर बहुत जल्द उन्हें ले आओ, जिसमें हम दोनों ख़ूब पेट भर मांस खाकर आनन्द से नाच करें।

भाई की आज्ञा पाकर हिड़िम्बा तुरन्त ही उस बरगद के वृक्ष के नीचे आई। उसने देखा कि भीमसेन जागते हुए पहरा दे रहे हैं और उनकी माता और चारों भाई सो रहे हैं। भीमसेन का रूप-लावण्य, यौवन और बलवान् देह देख कर हिड़िम्बा उन पर आसक्त हो गई। कहाँ वह उन्हें मारने आई थी, कहाँ उसके मन में उन्हें अपना पति बनाने की इच्छा हो आई। उसकी यह इच्छा यहाँ तक प्रबल हो उठी कि उसका नर-मांस खाने का लोभ न जाने कहाँ चला गया। उसने अपना राक्षसी रूप बदल डाला। वह एक बड़ी ही सुन्दर स्त्री बन गई। उसके बदन पर अच्छे अच्छे कपड़े और गहने शोभा देने लगे। इस प्रकार का मनोहर रूप बना कर मन्द मन्द चलती हुई वह भीमसेन के पास आई और लज्जा से अपना सिर कुछ नीचा करके बड़े ही मीठे स्वर में बोली:—

हे युवा ! हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आप कौन हैं ? देवताओं के सदृश रूपवाले ये पुरुष और यह सुकुमारी स्त्री कौन है ? किस बल पर ये यहाँ सो रहे हैं ? ये बड़े ही साहसी मालूम होते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि यह स्थान मेरे भाई हिड़िम्ब के अधिकार में है ? वह तुम्हारा मांस खाने और रुधिर पीने के लिए अधीर हो रहा है। उसी ने तुम्हें मारने के लिए मुझे भेजा है। परन्तु हे सुन्दर पुरुष ! तुम्हारे रूप-लावण्य को देख कर मैं तुम पर मोहित हूँ। इससे भाई की आज्ञा से मैं तुम्हें नहीं मार सकती। तुम मेरी कामना पूर्ण करो—जो बात मेरे मन में है उसे करो। मैं तुम सबको अपने भाई राक्षस से बचा लूँगी। जल, थल और आकाश में सब कहीं मेरा आवागमन है। कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ मैं न जा सकती हूँ। मेरे साथ तुम बड़े आनन्द से रहोगे।

हिड़िम्बा की बात सुन कर भीमसेन बोले:—

हे राक्षसी ! तुमको ऐसा न कहना चाहिए। माता और भाइयों को इस घोर वन में असहाय दशा में छोड़ कर किस तरह मैं तुम्हारे साथ जा सकता हूँ ? तुम बड़ी ही मूर्ख मालूम होती हो। तुम्हारे दुरात्मा भाई को क्या मैं डरता हूँ ? मैं अकेला ही सबकी रक्षा कर सकता हूँ। मेरे रहते तुम्हारे भाई का कुछ भी किया न होगा। इससे तुम्हारी इच्छा हो तुम रहो, नहीं जाकर अपने भाई को भेज दो। मैं इन लोगों को नहीं छोड़ सकता।

इधर बहन के लौटने में देरी हुई देख हिड़िम्ब का धीरज छूट गया। वह खुद ही पाण्डवों के पास चला। उसे आता देख हिड़िम्बा डर गई। भीमसेन से वह रुँधे हुए कण्ठ से दीनता दिखाती हुई कहने लगी:—

हे महात्मा ! देखिए मेरा भाई क्रोध में भरा हुआ आ रहा है। अब और निस्तार नहीं। अब आपकी किसी तरह रक्षा नहीं हो सकती। दासी की बात मान लीजिए। आपकी आज्ञा पाते ही मैं सबको उठा कर आकाश में उड़ जा सकती हूँ।

भीम ने कहा—हे भीरु ! डरो मत। धीरज धरो। देखो मैं तुम्हारे सामने ही इस राक्षस को मार गिराता हूँ।

हिड़िम्ब ने ये सब बातें दूर ही से सुन ली थीं। हिड़िम्बा को मनुष्य के रूप में देख कर उसे बड़ा क्रोध हुआ। वह उसका तिरस्कार करने और भला बुरा कहने लगा:—

अरी दुष्टा ! मनुष्य पर मोहित होकर तू हमारे भोजन में विघ्न डाल रही है। तुझे धिक्कार है ! जिसके लिए तूने ऐसा निन्द्य काम किया है उसी के साथ, देख, मैं तेरा भी संहार करता हूँ।

यह कह कर दाँत पीसता हुआ वह हिड़िम्बा की तरफ़ दौड़ा। यह देख उसका उपहास करते हुए भीमसेन बोले:—

रे पापी! ठहर! व्यर्थ गर्जना करके सुख से सोये हुए हमारे भाइयों और हमारी माता की नींद में तू क्यों विघ्न डाल रहा है? अपनी निरपराध बहन के मारने का पाप भी तू क्यों करने जाता है? यदि तुझमें कुछ भी बल और शक्ति हो तो मुझसे युद्ध कर।

भीम के मुँह से इस तरह के वचन सुन कर हिड़िम्ब को पहले से भी अधिक क्रोध हो आया। हिड़िम्बा को तो उसने छोड़ दिया, भीम पर झपटा और कहने लगा:—

रे नराधम! तेरा अहङ्कार चूर्ण करके तब मैं हिड़िम्बा को उसकी करतूत का दण्ड दूँगा।

दोनों भुजायें फैलाये हुए राक्षस को सामने आता देख, भाई कहीं जग न पड़ें इस डर से, भीम उसके हाथ पकड़ कर कुछ दूर उसे खींच ले गये। भीमसेन का बल देख कर राक्षस को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उन्हें ज़ोर से पकड़ कर गर्जने लगा। इस पर मतवाले हाथी की तरह दोनों एक दूसरे से भिड़ गये। छाती से छाती लगा कर वे अपना अपना ज़ोर दिखाने और परस्पर एक दूसरे को पीसने लगे।

उनकी भयङ्कर गर्जना सुन कर माता-सहित पाण्डव जाग पड़े। उन्होंने देखा कि मनुष्य के मनोहर रूप में हिड़िम्बा सामने खड़ी है। उसे देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कुन्ती ने मधुर वचनों में उससे पूँछा:—

हे सुन्दरी! तुम कौन हो? किस लिए यहाँ आई हो?

हिड़िम्बा बोली—हे देवी! यह जो आकाश छूनेवाले बड़े बड़े वृक्षों से परिपूर्ण काला काला वन है वह मेरे भाई हिड़िम्ब नामक राक्षस-राज के अधिकार में है। यहीं वह रहता है। उसी ने तुम्हें और तुम्हारे पुत्रों को मारने के लिए मुझे यहाँ भेजा था। परन्तु तपे हुए सोने के समान शरीरवाले तुम्हारे पुत्र को देख कर मैं मोहित हो गई। तुम सबको उठा कर आकाश में उड़ जाने के लिए मैंने उनसे आज्ञा माँगी। पर आपके पुत्र ने मेरी बात न मानी। इस समय मेरे भाई के साथ तुम्हारे पुत्र का घोर द्वन्द्व-युद्ध हो रहा है।

हिड़िम्बा के मुँह से यह सुनते ही युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव उसी क्षण भीम के पास जा पहुँचे। देर तक युद्ध करने के कारण भीम को कुछ थका हुआ देख उन्हें बढ़ावा देने के लिए अर्जुन ने कहा:—

हे आर्य्य ! यदि आपको कुछ थकावट मालूम होती हो तो, कहिए, हम आपकी सहायता करें।

यह सुनते ही भीम का क्रोध दूना हो गया। वे बोले:—

आप डरिए नहीं। मैं अकेला ही इस वन को इस राक्षस के पापाचरण से छुड़ाऊँगा।

यह कह कर भीम ने बड़े ज़ोर से हिड़िम्ब को उठा लिया। उठा कर आकाश में चारों तरफ़ उसे खूब घुमाया। फिर उसे ज़मीन पर दे मारा और पशु की तरह उसे मार डाला। यह तमाशा देख भीम के भाई बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भीम को गले से लगा लिया और बार बार धन्यवाद देने लगे।

इसके अनन्तर पाण्डव वहाँ से चल दिये। हिड़िम्बा भी उनके साथ चलने लगी। इससे भीमसेन को कुछ क्रोध हो आया। वे बोले:—

हे राक्षसी ! तुम माया रच कर मनुष्यों के साथ सदा ही छल किया करती हो। इससे हम तुमको अपने साथ नहीं रख सकते।

इस तरह दुतकारी जाने से हिड़िम्बा को बड़ा दुःख हुआ। उसने कुन्ती की शरण ली और कहने लगी:—

माता ! आप मुझ दासी पर कृपा करें। मेरे साथ विवाह करने के लिए आप भीमसेन को आज्ञा दें। कुछ समय तक उनके साथ यथेच्छ घूम फिर कर मैं उन्हें फिर आपके पास ले आऊँगी।

यह सुन कर युधिष्ठिर बोले:—

हे सुन्दरी ! तुम्हारी कामना पूर्ण हो। दिन भर भीमसेन को लेकर जहाँ चाहो घूमो। किन्तु रात को तुम उन्हें रोज़ हमारे पास छोड़ जाया करो। इसमें अन्तर न पड़ने पावे।

जेठे भाई युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर भीमसेन ने हिड़िम्बा के साथ विवाह करना अङ्गीकार कर लिया। मन ही मन महा आनन्दित हो कर हिड़िम्बा भीमसेन को लेकर आकाश में उड़ गई। कभी देवताओं की पुरी में, कभी बहनेवाली मनोहर नदियों में, कभी खिले हुए कमलों से सुशोभित सरोवरों के किनारे, कभी सुन्दर सुन्दर वाटिकाओं में, कभी तपस्वियों के आश्रम में, कभी दिव्य द्वीपों में, भीम के साथ वह विहार करती फिरी। दिन भर वह भीम के साथ आनन्द से रहती; रात को उन्हें उनके भाइयों और माता के पास छोड़ जाती।

भीम के साथ रहने के समय हिड़िम्बा के एक महा बलवान् और महा विकट रूपवाला पुत्र हुआ। उसका नाम घटोत्कच पड़ा। आगे चल कर घटोत्कच ने पाण्डवों

पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति दिखाई। उन पर उसने बड़ा अनुराग प्रकट किया। पाण्डवों ने भी उसके साथ स्नेह और वात्सल्य का व्यवहार किया।

इसके अनन्तर वृक्षों और मृगों की छाल के कपड़े पहने हुए मत्स्य, त्रिगर्त्त, पाञ्चाल, कीचक आदि देशों के वनों को पार करते हुए पाण्डव लोग आगे बढ़े। चलते चलते एक दिन पितामह व्यासदेव से अचानक उनकी भेंट हो गई। कौरववंशी अपने पौत्रों की दुर्दशा देख व्यासजी को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उनको बहुत कुछ धीरज दिया और पास की एकचक्रा नामक नगरी में उन्हें ले गये। वहाँ एक ब्राह्मण के घर में उन्हें रख कर व्यासदेव युधिष्ठिर से बोले:—

तुम सब लोग यहाँ आनन्द से कुछ दिन रहो। यहाँ किसी तरह का डर नहीं। मैं फिर तुमसे मिलने आऊँगा।

यह कह कर व्यासदेव वहाँ से चले गये।

पाण्डव एकचक्रा नगरी में रहने लगे। वहाँ अपने गुणों से वे सबके प्यारे हो गये। दिन भर पाँचों भाई भीख माँगते फिरते और जो कुछ पाते शाम को माता के पास ले आते। माता उसके दो भाग करती। एक तो भीमसेन को देती, बाक़ी को निज-सहित चारों पुत्रों को बाँट देती।

एक बार ऐसा संयोग आ पड़ा कि युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव तो भिक्षा के लिए बाहर गये; भीमसेन माता के पास घर पर रह गये। माता-पुत्र दोनों उस ब्राह्मण के घर में बैठे थे कि अचानक भीतर से रोने की आवाज़ आई। रोना बहुत ही कारुणिक था; दुःख-दर्द से भरा हुआ था। उसे सुन कर कुन्ती को बड़ी दया लगी। उन्होंने भीम से कहा:—

हे पुत्र! हम लोग इस ब्राह्मण के घर में बड़े सुख से रहती हैं। इससे इसका दुःख दूर करने की हमें चेष्टा करनी चाहिए।

भीम ने कहा—माँ! तुम भीतर जाकर ब्राह्मण के दुःख का कारण जान आओ। यदि हम उसका कुछ भी उपकार कर सकेंगे, फिर चाहे कितना ही कठिन काम क्यों न हो, यथाशक्ति हम उसे ज़रूर करेंगे।

इतने में फिर घर के भीतर से ज़ोर ज़ोर से रोने की आवाज़ आई। उसे सुन कर कुन्ती दौड़ी हुई भीतर गई। उन्होंने देखा कि स्त्री, पुत्र और कन्या को लिये हुए ब्राह्मण बैठा है और सिर झुकाये विलाप कर रहा है:—

हाय ! मैं बड़ा अभागी हूँ ! अब मैंने जाना कि संसार में कुछ भी सुख नहीं है, सब दुख ही दुख है। हे प्रिये ! मैंने बार बार तुमसे कहा कि आओ यहाँ से भग चलें, परन्तु तुमने मेरी बात न मानी। तुमने कहा कि यह हमारा पैत्रिक घर है, इसे न छोड़ना चाहिए। हाय हाय ! तुम बड़ी हठी हो। तुम्हारे पिता और बन्धु-बान्धवों को स्वर्ग गये तो बहुत दिन हुए। तब यह सब दुःख उठाने और कष्ट सहने की क्या ज़रूरत थी ? बन्धु-बान्धवों को छोड़ने के डर से तुमने मेरी बात न मानी। इस समय हम पर जो यह आपदा आई है उससे अब कैसे निस्तार हो ? पुत्र के बिना मैं जीता न रह सकूँगा। कोई कोई पुत्र की अपेक्षा कन्या को अधिक प्यार करते हैं। परन्तु मेरे लिए दोनों समान हैं—जैसे मुझे पुत्र प्यारा है वैसे ही कन्या भी प्यारी है। इससे कन्या को छोड़ कर भी मैं प्राण नहीं रख सकता। यदि मैं ही जाऊँ, तो तुम सब लोग जीते न रहोगे। सब तरफ़ से संकट है। हे भगवन् ! क्या करें कुछ समझ में नहीं आता।

ब्राह्मणी ने ब्राह्मण को धीरज देते हुए कहा:—

आप तो पण्डित हैं, समझदार हैं। फिर सामान्य आदमियों की तरह क्यों विलाप कर रहे हैं ? ऐसी बातों के लिए अज्ञानी ही सोच करते हैं। संसार में जन्म लेकर एक न एक दिन ज़रूर ही मरना होगा। हमारे एक पुत्र और एक कन्या है, इससे हम पितरों के ऋण से उऋण हो चुकी हैं। शास्त्र में लिखा है कि स्त्री, पुत्र और कन्या सभी आपके लिए हैं। इससे आप निश्चिन्त होकर मुझे ही छोड़ दीजिए—मुझी को जाने दीजिए। मेरे परलोक जाने पर आप पुत्र-कन्या का पालन कर सकेंगे। परन्तु आपके न रहने से हम लोगों की बड़ी दुर्दशा होगी।

माता-पिता का विलाप सुन कर कन्या को बड़ा दुःख हुआ। वह बोली:—

हे माता ! हे पिता ! विपत्ति से माता-पिता की रक्षा करने ही के लिए सन्तान का जन्म होता है। इससे आप मुझे ही छोड़ कर इस दुःख-समुद्र में डूबने से अपना बचाव करें।

कन्या की बात सुन कर ब्राह्मण और ब्राह्मणी फिर रोने और विलाप करने लगे। तब बालक पुत्र ने कहा:—

हे माता ! हे पिता ! हे बहन ! आप न डरें। मैं इस तिनके ही से उस राक्षस को मार कर सबकी रक्षा करूँगा।

कुन्ती अब तक चुपचाप खड़ी थीं। मौक़ा पाकर अब वे कुछ आगे बढ़ीं और अमृत के समान मधुर वचनों से उन सबके दुःख का कारण पूछने लगीं:—

तुम सब बात मुझसे साफ़ साफ़ कहो। हो सकेगा तो मैं तुम्हारा दुःख दूर करने के लिए अवश्य यत्न करूँगी।

ब्राह्मण ने कहा—हे देवी! हम लोगों पर जो विपत्ति आनेवाली है उससे बचना मनुष्य का काम नहीं। इस नगर के पास बक नाम का एक राक्षस रहता है। उसका आहार मनुष्यों का मांस है। वही खाकर वह रहता है। यही राक्षस इस नगर का अधिकारी है। शेर, बाघ आदि घातक जन्तुओं और वैरी राजाओं के आक्रमण से वही हम सबकी रक्षा करता है। इसके बदले वह हर एक गृहस्थ के घर से एक एक आदमी और एक एक दिन के लिए अन्न खाने को लेता है। जो कोई इस नियम के अनुसार काम नहीं करता उसके सारे परिवार को वह खा जाता है। इस दफ़े हमारे घर की बारी है। हमें और कोई उपाय नहीं देख पड़ता। इससे हमने निश्चय किया है कि हम सब इस राक्षस के पास जायँ और एक बार ही सारे दुःख से छुटकारा पा लें।

कुन्ती ने कहा—हे ब्राह्मण! राक्षस के डर से अब तुम और दुःख न करो। तुम्हारे लिए मैंने एक उपाय सोचा है। तुम्हारा पुत्र अभी बहुत छोटा है; कन्या भी बड़ी सुशीला है। इनमें से किसी का भी राक्षस के पास जाना उचित नहीं; और न तुम्हारा या तुम्हारी स्त्री का ही जाना उचित है। मेरे पांच पुत्र हैं। उनमें से एक पुत्र राक्षस के पास आज के लिए अन्न लेकर चला जायगा। उसके जाने से तुम सबकी रक्षा होगी।

ब्राह्मण ने कहा—हे देवि! तुम हमारी अतिथि हो—हमारे घर में ठहरी हुई हो। देवता मान कर अतिथि की पूजा करना हमारा धर्म है। महामूढ़ और अधर्मी आदमी भी अपनी रक्षा के लिए अतिथि का प्राण-नाश नहीं करते।

कुन्ती ने कहा—तुमने जो कुछ कहा, सच है। इसके सिवा, किसी के सौ पुत्र हों तो भी वह उनमें से एक को भी छोड़ने के लिए तैयार न होगा। तथापि मैं जो अपने एक पुत्र को राक्षस के पास भेजना चाहती हूँ उसका यह कारण है कि उसके मारे जाने का मुझे कुछ भी सन्देह नहीं। वह उलटा राक्षस ही को मार आवेगा। मेरा यह पुत्र बड़ा बलवान् है। इसके पहले भी वह अपने भुज-बल से एक राक्षस को मार चुका है। परन्तु तुम इस बात को किसी से न कहना। क्योंकि कहने से लोगों को आश्चर्य और कौतूहल होगा, और वे हमें तरह तरह की बातें पूछ कर तंग करेंगे।

कुन्ती के इन अमृत के समान वचनों को सुन कर ब्राह्मण बहुत ही आनन्दित हुआ। उसने स्त्री-सहित कुन्ती की पूजा की। इसके अनन्तर वह ब्राह्मण कुन्ती के साथ भीमसेन

के पास आया और सारा हाल उनसे कह सुनाया। दयालु-हृदय भीमसेन ने उसी क्षण राक्षस के पास जाना स्वीकार कर लिया।

युधिष्ठिर आदि बाक़ी के पाण्डव भिक्षा लेकर जब घर लौटे तब उन्होंने यह सब हाल सुना। युधिष्ठिर इससे कुछ डर गये। वे अप्रसन्न भी हुए। माता को एकान्त में ले जाकर उनसे वे पूछने लगे:—

माता! भीम ने यह साहस क्यों किया? किसी ने उनसे यह काम करने के लिए कहा, या ख़ुद ही उन्होंने करना अङ्गीकार किया?

कुन्ती ने उत्तर दिया:—

पुत्र! हमारे कहने से ब्राह्मण का दुःख दूर करने और सारे नगर के हित-साधन के लिए भीमसेन ने यह काम अपने ऊपर लिया है।

युधिष्ठिर अप्रसन्न होकर बोले:—

इस काम के लिए भीमसेन को उत्तेजित करके तुमने बड़ी नादानी की। दूसरे के पुत्र की रक्षा के लिए अपने पुत्र के प्राण लेना किस शास्त्र में लिखा है? इसके सिवा, इसी भीमसेन के बल और पराक्रम की बदौलत लाक्षागृह आदि कितनी ही आपदाओं से हम लोगों के प्राण बचे हैं। आगे भी हम लोगों का सारा भरोसा भीमसेन ही पर है। भीम ही के डर से अब भी दुर्योधन को अच्छी तरह नींद नहीं आती। फिर क्या समझ कर तुमने इतने बड़े साहस का काम किया? क्या सोच कर तुमने भीम को राक्षस के पास जाने का उपदेश दिया? जान पड़ता है, विपत्ति के कारण तुम्हारी बुद्धि मारी गई है।

कुन्ती ने मन्द और मृदु वचनों में उत्तर दिया:—

पुत्र युधिष्ठिर! तुम क्यों व्यर्थ दुःख करते हो? तुम अपने मन में यह सन्देह न करो कि नादानी के कारण बे-समझे बूझे मैंने यह काम किया है। देखो, इसी ब्राह्मण के घर रह कर इतने दिनों से हम लोग निश्चिन्त होकर अपना जीवन धारण कर रहे हैं। यह भी हम सबका सदा आदर-सत्कार करता है। इससे ऐसी घोर विपत्ति के समय, इस ब्राह्मण की अपनी शक्ति भर सहायता करना हमारा परम धर्म्म है। भीम लड़कपन ही से बहुत बलवान् है। यही कारण है जो उसके विषय में हमें कोई सन्देह नहीं—हमें कोई डर नहीं। भीम ने अभी कुछ ही दिनों में न मालूम कितने अद्भुत अद्भुत काम कर दिखाये हैं। उन सबका हाल तुम्हें मालूम ही है। इससे भीम अवश्य ही उस पापी राक्षस को मारने में समर्थ होंगे। इन सब बातों का अच्छी तरह

विचार करके ही मैंने भीम को राक्षस के पास जाने का उपदेश दिया है। तुम अपने मन में ज़रा भी न डरो। डरने की बात नहीं।

यह सुन कर दुःखपूर्ण हृदय से युधिष्ठिर ने कहा:—

हे माता! अब मैंने जाना कि तुमने सचमुच ही धर्म्म का काम किया है। अब मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे इस इतने बड़े परोपकार के पुण्य-बल से भीमसेन ज़रूर ही राक्षस को मार सकेंगे।

अनन्तर, वह रात बीत जाने पर, बड़े भोर ही अन्न आदि लेकर भीमसेन बक राक्षस के स्थान पर गये। वहाँ जाकर उसे अपने पास आने के लिए उन्होंने बार बार बुलाया और उसके लिए खाने की जो सामग्री ले गये थे उसे खुद ही खाने लगे। राक्षस ने आकर जो यह तमाशा देखा तो क्रोध से लाल हो गया। बड़ी भयङ्कर गर्जना करके वह बोला:—

अरे! कौन मूर्ख मेरा अन्न खा रहा है!

यह कह कर भीम को मारने के लिए दोनों भुजायें फैलाये हुए वह बड़े वेग से दौड़ा। महाबली भीम ने उसे पकड़ कर बड़े ज़ोर से अपनी तरफ़ खींच लिया। दोनों वीरों में घोर युद्ध होने लगा। आस पास के वृक्ष टूट टूट कर गिरने लगे। पृथ्वी हिलने लगी। भीम की मार खाते खाते वह राक्षस बहुत थक गया। उसका दम फूल उठा। तब उसे भीम ने मुँह के बल ज़मीन पर दे मारा और पीठ पर घुटने लगा कर एक हाथ से उसकी गरदन पकड़ी दूसरे से उसका लँगोट। इस तरह इसकी रीढ़ को तोड़ कर उसके उन्होंने दो टुकड़े कर डाले। बक के बन्धु-बान्धव उसे मरा देख मारे डर के इधर उधर भाग गये।

बक के मरने की ख़बर नगर में पहुँची तो लोगों को महा आनन्द हुआ। ख़ुशी से सब लोग फूल उठे। चारों तरफ़ आनन्द-मङ्गल होने लगा। बहुतों ने देवी-देवताओं का विधिपूर्वक पूजन किया। तरह तरह से लोगों ने आनन्द मनाया। खोज करने पर जब यह मालूम हुआ कि आज इस ब्राह्मण की बारी थी तब सब लोग इस अचरज भरी घटना के विषय में उससे भाँति भाँति के प्रश्न करने लगे। पाण्डवों की सलाह से ब्राह्मण ने यथार्थ बात को छिपा कर कहा:—

परिवार समेत हमें दुःख-समुद्र में डूबा हुआ देख एक महा तेजस्वी ब्राह्मण को हम पर दया लगी। उन्होंने हमें धीरज देकर इस विपदा से बचाने का वचन दिया। यह उन्हीं का काम है। निश्चय जानिए, उन्हीं ने राक्षस को मारा है।

पहले की तरह इसी ब्राह्मण के घर पाण्डव रहने लगे। कुछ दिन बीतने पर एक ब्राह्मण, अनेक देश-देशान्तरों में घूमता हुआ, इस ब्राह्मण के घर आकर ठहरा। युधिष्ठिर आदि ने बड़े आदर और बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उसकी सेवा की। इससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने भ्रमण का सब हाल क्रम क्रम से कह सुनाया। नाना देश, नगर, तीर्थ, नदी आदि का वर्णन उसने किया। नाना राज्यों की बातें और नाना प्रकार की आश्चर्यभरी कथायें उसने सुनाईं। प्रसङ्ग आने पर उसने द्रोण के मारने के लिए राजा द्रुपद के यज्ञ की भी बात कही। उससे महाबली धृष्टद्युम्न, पुत्र की तरह पालन की गई शिखण्डिनी और परम सुन्दरी कृष्णा की उत्पत्ति का वृत्तान्त भी उसने बताया। अन्त में उसने महारूपवती द्रौपदी के स्वयंवर का भी हाल कहा। उसने कहा कि बहुत बड़े ठाट बाट से इस स्वयंवर के करने की तैयारियाँ हो रही हैं! ये सब कौतुकभरी बातें सुन कर पाण्डवों का चित्त चलायमान हो उठा। उनके मुँह पर उदासी छा गई। कुछ देर तक वे चुपचाप बैठे सोचते रहे। यह दशा देख बुद्धिमती कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा :—

बेटा! यहाँ इस ब्राह्मण के घर में रहते हमें बहुत दिन हो गये। इस स्थान में वन, उपवन आदि जो कुछ देखने योग्य था सब हम लोगों ने देख लिया। बार बार देखने के कारण अब उस दृश्य को देखने से मन में आनन्द नहीं होता। अब भिक्षा भी हम लोगों को कम मिलने लगी है। इससे यदि तुम सबकी इच्छा हो तो चलो हम लोग पाञ्चाल नगर में जाकर ब्राह्मण की कही हुई सारी घटनायें अपनी आँखों से देखें।

इस विषय में बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि वेदव्यास, अपने कहे अनुसार, वहाँ आकर फिर उपस्थित हुए। उन्होंने भी पाण्डवों को यही सलाह दी कि पाञ्चाल नगर तुम्हें जाना चाहिए। इससे पाण्डवों ने प्रसन्न होकर द्रुपद-देश की ओर प्रस्थान किया। व्यासदेव भी आदरपूर्वक सबसे बातचीत करके और शुभाशीर्वाद देकर बिदा हुए।

एक दिन माता को साथ लिये हुए पाण्डव लोग गङ्गा के किनारे सोमाश्रय नाम के तीर्थ में पहुँचे। उस समय सन्ध्या हो गई थी। अन्धकार चारों तरफ़ फैल गया था। इससे अर्जुन ने एक मशाल जला कर हाथ में ली और सबके आगे आगे चले। उसके उजियाले में उनके पीछे पीछे और सब लोग चले। इस समय गङ्गाजी के निर्मल जल में गन्धर्वों के राजा महाबली चित्ररथ अपनी स्त्रियों को लिये हुए जलक्रीड़ा कर रहे थे। गङ्गा के किनारे किनारे चलनेवाले पाण्डवों के पैरों की आहट उन्होंने सुनी।

यह उन्हें बहुत बुरा लगा। रङ्ग में भङ्ग होने से उन्हें क्रोध आ गया। वे अपने धन्वा की प्रत्यञ्चा का टंकार शब्द करते हुए अर्जुन से कहने लगे :—

सन्ध्या से लेकर प्रातःकाल तक सारी रात यक्ष, गन्धर्व और राक्षसों के लिए है। रात भर वे जहाँ चाहें जायँ और जो चाहें करें। बाकी बचा हुआ समय, अर्थात् सारा दिन, आदमियों के लिए है। जो कुछ उन्हें करना हो दिन ही में करना चाहिए। फिर, तुमने क्यों हमारी क्रीड़ा में विघ्न डाला ? तुम बड़े मूर्ख मालूम होते हो। बहुत जल्द हमारे सामने उपस्थित होकर यहाँ आने का कारण बतलाओ।

ऐसे कठोर वचन सुन कर अर्जुन को क्रोध हो आया। उन्होंने कहा :—

हे घमण्डी ! समुद्र, पर्वत और नदी तट पर कभी किसी का अधिकार नहीं। मनुष्य निर्बल है। इसी से लाचार होकर तुम्हारा बनाया हुआ यह अनोखा नियम उसे पालन करना पड़ता है। पर हम लोग उस तरह के मनुष्य नहीं। हम गङ्गाजी के इस पवित्र जल को स्पर्श न करने के विषय में किसी की आज्ञा नहीं मान सकते। गङ्गा का जलस्पर्श करने से हमें कोई नहीं रोक सकता।

अर्जुन का उत्तर सुन कर गन्धर्वराज चित्ररथ ने अपने धनुष को खींच कर पैने पैने बाण छोड़ना आरम्भ किया। पर अर्जुन ने अपनी ढाल के सहारे गन्धर्वराज के सारे बाण व्यर्थ कर दिये। इसके अनन्तर क्रोध से लाल होकर अर्जुन ने उस महातेजोमय दिव्य अस्त्र को लिया जिसे उन्होंने द्रोणाचार्य्य से प्राप्त किया था। इस अस्त्र को हाथ में लेकर बड़े वेग से उन्होंने चित्ररथ पर छोड़ा। बस उसके छूटने की देरी थी कि गन्धर्वराज का रथ जल कर ख़ाक हो गया और वे मुँह के बल ज़मीन पर जा गिरे।

इस समय गन्धर्वराज चित्ररथ की स्त्री युधिष्ठिर की शरण में आई और स्वामी की प्राणरक्षा के लिए विनती करने लगी। युधिष्ठिर तो स्वभाव ही से दयालु थे। उन्होंने चित्ररथ के प्राण लेने से अर्जुन को रोक दिया। वे बोले :—

शत्रुओं का नाश करनेवाले हे अर्जुन ! हारे हुए शत्रु को मारना उचित नहीं। फिर इसकी तो स्त्री भी हमारी शरण आई है। इससे, भाई, इसे छोड़ दो। इसके प्राण मत लो।

तब अर्जुन ने चित्ररथ से कहा :—

हे गन्धर्व ! अब तुम अपने प्राण लेकर चले जाव। हम अब तुम्हें नहीं मारेंगे। देखो, कुरुराज युधिष्ठिर तुम्हें अभयदान दे रहे हैं।

चित्ररथ प्रसन्न होकर उठे और बोले :—

हे महाबली ! हमने तुमसे हार मानी। अब हम तुमसे मित्रता स्थापन करना चाहते हैं। हे वीर ! हम तुम्हें अपने अतिवेगवान् घोड़े देते हैं। इनके बदले में तुम हमें अपना यह परमोत्तम आग्नेय अस्त्र देने की कृपा करो।

अर्जुन ने इस बात को मान लिया। वे बोले :—

इस समय घोड़ों को आप अपने ही पास रहने दें; ज़रूरत पड़ने पर हम आप से ले लेंगे।

उस दिन से अर्जुन और गन्धर्वराज चित्ररथ में परस्पर मित्रता हो गई। यह मित्रता बराबर बनी रही। कभी उसमें अन्तर नहीं पड़ा।

इसी गन्धर्व की सलाह से पाण्डव लोग उत्कोच तीर्थ को गये। वहाँ धौम्य नामक एक ब्राह्मण तपस्या करता था। उसे पाण्डवों ने अपना पुरोहित बनाया। वहाँ से द्रौपदी का स्वयंवर देखने की इच्छा से फिर उन्होंने पाञ्चाल नगर की ओर यात्रा की।

५—पाण्डवों का विवाह और राज्य की प्राप्ति

कुन्ती के साथ पाण्डव लोग रास्ते में रमणीय सरोवरों के पास ठहरते हुए, दक्षिण पाञ्चाल देश की तरफ़ चलने लगे। रास्ते में उनको बहुत से ब्राह्मण मिले जो स्वयंवर देखने के लिए जा रहे थे। ब्राह्मण लोग यह न जान कर कि पाण्डव कहाँ जा रहे हैं, और उनको भी अपनी ही तरह ब्राह्मण समझ कर कहने लगे :—

तुम लोग हमारे साथ पाञ्चाल देश चलो। वहाँ एक महा अद्भुत उत्सव होनेवाला है। राजा द्रुपद ने यज्ञ की वेदी से एक कन्या पाई थी। उसी कमलनयनी का स्वयंवर रचा जायगा। हम उसी का अनुपम रूप और उसी के स्वयंवर का ठाट-बाट देखने जाते हैं। वहाँ अनेक देशों से कितने ही बड़े बड़े योद्धा और अस्त्र-विद्या में निपुण राजे और राजकुमार आवेंगे। मङ्गल-पाठ करनेवाले सूत, पुराण जाननेवाले मागध, स्तुति करनेवाले वन्दीगण, नट, नाचनेवाले और अनेक देशों के योद्धा लोग वहाँ आकर अपने अपने करतब दिखावेंगे।

यह सुन कर पाण्डव लोग ब्राह्मणों के साथ हो लिये और शीघ्र ही पाञ्चाल नगर में जा पहुँचे। देश-देशान्तर से आये हुए राजा लोग जहाँ उतरे थे वे सब स्थान और नगर अच्छी तरह देख कर पाण्डव ब्राह्मणों की तरह एक कुम्हार के घर में जाकर उतरे।

राजा द्रुपद ने मन में यह ठान ली थी कि मैं अपनी कन्या उसी को दूँगा जो बहुत बड़ा धनुर्धारी होगा। इस इरादे से उन्होंने एक ऐसा धनुष बनवाया था जिस पर

प्रत्यञ्चा चढ़ा कर झुकाना बड़ा कठिन काम था। उन्होंने एक आकाश-यन्त्र भी तैयार करवाया था। यह यन्त्र अधर में लटका हुआ हिला करता था। इसी यन्त्र में, बहुत ऊँचाई पर, एक निशाना लटकाया गया था। यह सब करके राजा द्रुपद ने मनादी कर दी थी कि जो कोई इस धनुष को तान कर पाँच ही बाणों में हिलनेवाले यन्त्र के छेद के भीतर से निशाना मार सकेगा उसी को मैं कन्यादान दूँगा।

इसके लिए नगर से मिली हुई एक साफ़ चौरस ज़मीन पर स्वयंवर-स्थान बनाया गया। सभा-स्थल के चारों ओर दीवारें बनाई गईं और खाइयाँ खोदी गईं। फिर उसमें जगह जगह पर बड़े बड़े द्वार बनाये गये। रङ्ग-भूमि के चारों तरफ़ दूध के समान शुभ्र राजभवन, मणियों से जड़ी हुई उनकी छतें और आँगन, बराबर बराबर जगह पर बने हुए एक ही तरह के सब दरवाज़े, मनोहर सीढ़ियाँ, और विचित्र पुष्पों की मालाओं से शोभित चँदवे आदि अपूर्व शोभा को धारण किये हुए थे।

राजा द्रुपद के प्रण को सुन कर चारों तरफ़ से राजा लोग आने लगे। कर्ण के साथ दुर्योधन आदि कुरु लोग, तथा बलदेव और कृष्ण आदि यादव लोग भी आये। अनेक स्थानों से ऋषि और ब्राह्मण लोग उत्सव देखने के लिए आये। राजा द्रुपद ने सब का यथोचित सत्कार किया, और स्वयंवर का दिन आने तक, मेहमानों का मन बहलाने के लिए नाच, गाना-बजाना, तरह तरह के कला-कौशल और कसरतें दिखलाने की व्यवस्था की।

इस तरह पन्द्रह दिन बीत गये। स्वयंवर का शुभ दिन आ पहुँचा। रङ्गभूमि में सुगन्धित जल का छिड़काव हुआ। दर्शक लोगों के लिए बनाये गये मचानों पर जगह जगह पर अच्छे अच्छे आसन और दूध के समान सफ़ेद सेजें बिछाई गईं। अस्त्र-विद्या में निपुण बड़े बड़े वीर, बड़े बड़े बली, नौ जवान राजा लोग बड़े ही सुहावने वस्त्राभूषणों से सज कर और अस्त्र-शस्त्र धारण करके सभा में आये, और आसनों की सबसे ऊपर-वाली क़तार में बैठ कर कुल, शील और ऐश्वर्य्य के घमण्ड में चूर हो डाह-भरी आँखों से एक दूसरे का मुँह देखने लगे। शुभ मुहूर्त आ गया। राजा द्रुपद के चन्द्रवंशी पुरोहित ने यथाविधि आहुति देकर अग्नि को तृप्त किया और ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति-वाचन कराया। उसके समाप्त होते ही एक-दम से बाजा बजना बन्द हो गया। सभा-स्थल में सन्नाटा छा गया। स्नान किये हुए, अनुपम वस्त्राभूषणों से सजी हुई, हाथ में विचित्र काञ्चनी माला लिये हुए, अपूर्व लावण्यमयी द्रौपदी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ रङ्गभूमि में पधारी। धृष्टद्युम्न ने मीठे और गम्भीर स्वर से हाथ उठा कर सबसे कहा:—

हे उपस्थित नरेशगण ! आप लोग श्रवण कीजिए। यह धनुष-बाण और निशाना है। जो इस आकाश-यन्त्र के बीचों बीच के सूराख़ से पांच बाण चला कर निशाना मार सकेगा उसी को हमारी बहन जयमाल पहनावेगी।

उस समय तीनों लोकों की सुन्दरियों में श्रेष्ठ द्रौपदी के दर्शन से मोहित हुए राजा लोग एक दूसरे को जीतने की इच्छा से अपने अपने आसनों से उठे। सभा के सब लोग द्रौपदी की तरफ़ टकटकी लगा कर रह गये।

इसी समय बुद्धिमान् कृष्ण ने इधर उधर देखते देखते साधारण आदमियों के बीच में ब्राह्मण-वेश-धारी पाँच तेजस्वी पुरुषों को देखा। इससे उनका ध्यान सहसा उस ओर खिँच गया। कुछ देर सोच कर उन्होंने अपने बाल-मित्र अर्जुन को अच्छी तरह पहचान लिया और बलदेव को भी उधर देखने के लिए इशारा किया। बलदेव ने भी कृष्ण के अनुमान को सच समझा। तब कृष्ण-बलदेव दोनों को विश्वास हो गया कि पाण्डव लोग लाक्षागृह में जलने से बच गये हैं।

परन्तु और राजकुमारों के प्राण तो द्रौपदी पर निछावर हो चुके थे। उन्हें किसी दूसरी तरफ़ ध्यान देने की फ़ुरसत कहाँ ? वे ईर्ष्या और दुराशा के कारण अपने अपने ओंठ काट रहे थे और चञ्चल-चित्त से इधर उधर घूम घूम कर एक दूसरे के निशाना मारने की चेष्टा का नतीजा देख रहे थे। एक एक करके दुर्योधन, शाल्व, शल्य, वङ्ग-नरेश, विदेह-राज आदि अनेक राजकुमारों ने मुकुट, हार, बाज़ूबन्द और कड़े आदि अलङ्कारों से भूषित होकर अपने अपने बल-वीर्य को दिखलाया। किन्तु उस विकट धनुष को पूरी तौर से तान कर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा, उसको ज़रा सा झुकाते ही उसकी कड़ी चोट से वे इधर उधर गिरने और उनके मुकुट, कुण्डल, हार और भुजबन्द आदि टूट टूट कर चारों ओर बिखरने लगे। इससे राजकुमारों ने हार मानी। वे बड़े लज्जित हुए। उनके चेहरे फीके पड़ गये। उन्होंने द्रौपदी के पाने की आशा छोड़ दी।

महाधनुर्धारी कर्ण, राजा लोगों को इस तरह अपना सा मुँह लिये लौटते देख, झपट कर धनुष के पास जा पहुँचे। सहज ही में उन्होंने उस प्रचण्ड धनुष को उठा लिया और झुका कर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। इससे सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद पाँच बाण हाथ में लेकर वे उस आकाश-यन्त्र के पास पहुँचे और निशाना मारने के लिए तैयार हुए। उस समय सबने सोचा कि यही निशाने को मार कर वरमाला प्राप्त करेंगे। पाण्डव लोग कर्ण के कन्या पाने की सम्भावना से बहुत घबराये।

द्रौपदी सबके मुँह से यह सुन कर कि ये राधा के पुत्र हैं; इनका पालन सारथि अधिरथ ने किया है; इनका जन्म सूत-वंश में है; और अनेक राजों के मुँह पर तिरस्कार-सूचक हँसी देख कर सहसा बोल उठी :—

मैं सूत-पुत्र के साथ विवाह न करूँगी।

यह सुनते ही अभिमानी कर्ण को क्रोध-पूर्ण हँसी आई। उन्होंने उसी क्षण धनुषबाण रख दिया और चुपचाप सूर्य्य की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे।

इसके बाद बाक़ी क्षत्रिय लोग भी एक एक करके निशाना मारने को उठे; पर सब विफल-मनोरथ हुए। चेदि-राज शिशुपाल ने उस धनुष को कुछ झुका ज़रूर लिया, पर उसकी चोट को वे न सह सके। इससे उनका घुटना टूट गया। महाबली जरासंध भी धनुष के धक्के से ज़मीन पर आ रहे। मद्रदेश के राजा शाल्व भी घुटनों के बल गिर पड़े। मतलब यह कि सबने ठंडी साँसें भर कर हार मानी।

राजों की ऐसी दुर्दशा देख कर अर्जुन से बैठे न रहा गया। वे ब्राह्मण-वेश को भूल गये और अपने क्षत्रिय-तेज तथा द्रौपदी की सुन्दरता के वश में होकर सहसा उठ खड़े हुए। उठ कर वे उस तरफ़ बढ़े जिस तरफ़ से निशाना मारा जाता था।

इससे ब्राह्मणों में बड़ा कोलाहल मच गया। कोई चिल्ला कर अर्जुन को उत्साह देने लगा। कोई दुखी होकर कहने लगा :—

अहा! कैसे आश्चर्य की बात है! बड़े बड़े धनुर्द्धारी राजा लोग जो काम न कर सके उसको अस्त्र-विद्या न जाननेवाला ब्राह्मण-कुमार कैसे कर सकेगा। चाहे घमण्ड से चूर होकर हो, या कन्या पाने की इच्छा से मोहित होकर हो, यह आदमी अपनी शक्ति का विचार किये बिना ही ऐसा कठिन काम करने को तैयार हुआ है। यह सब ब्राह्मणों की हँसी करावेगा। इसलिए इसको इस काम से रोकना चाहिए। अर्जुन के पक्षवालों ने कहा :—

इस जवान के ऊँचे कंधों, लम्बी भुजाओं और चलने के उत्साह को देख कर हम लोगों को आशा होती है कि यह इस काम को ज़रूर करेगा। दुनिया में ऐसा कौन काम है जिसको ब्राह्मण नहीं कर सकते। वे फलाहार और वायु भक्षण करके ही नहीं, किन्तु यदि वे कुछ भी न खायँ तो भी शरीर का तेज बनाये रह सकते हैं। देखो महर्षि परशुराम ने तो पृथ्वी के सब क्षत्रियों को जीत लिया था। इसके सिवा यह ब्राह्मण-कुमार यदि इस काम को न भी कर सका तो भी कोई अपमान की बात नहीं। इसलिए सब लोग चुपचाप इसके काम को देखो।

इस बात से सब लोग शान्त होकर ध्यानपूर्वक अर्जुन को देखने लगे।

इसके बाद अर्जुन ने पहले वरदायक महादेवजी को प्रणाम करके उस विकट धनुष की प्रदक्षिणा की। फिर बालमित्र कृष्ण को स्नेहभरी दृष्टि से अपनी तरफ़ देखते हुए देख कर बड़े आनन्द और उत्साह के साथ उन्होंने धनुष को उठा लिया। ऐसा करते देख जिन धनुर्धारी और पराक्रमी राजों के हज़ार चेष्टा करने पर भी धनुष न उठा था उन्हें बड़ी लज्जा मालूम हुई। अर्जुन ने धनुष को तान कर झट उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और हिलनेवाले यन्त्र के छेद के बीच से पाँच बाण मार कर निशाने को ज़मीन पर गिरा दिया।

सभा में हलचल पड़ गई। देवता लोग अर्जुन के ऊपर फूल बरसाने लगे। हज़ारों ब्राह्मण अपने मृगचर्म और उत्तरीय वस्त्र हिला हिला कर बड़ी ख़ुशी प्रकट करने लगे। बाजेवालों ने तुरही बजाना और सूत-मागधों ने मधुर कण्ठ से स्तुति-पाठ करना आरम्भ किया।

द्रौपदी ने अर्जुन की अतुल कान्ति को देख कर ख़ुशी के साथ उनके गले में जय-माला पहना दी। राजा द्रुपद भी अर्जुन के अद्भुत बल और फुरतीलेपन से प्रसन्न होकर कन्यादान करने की तैयारी में लगे।

द्रुपद को इस ब्राह्मणकुमार के हाथ में कन्या देने के लिए तैयार देख कर आये हुए राजा लोगों को बड़ा क्रोध हो आया। वे एक दूसरे के मुँह की तरफ़ देख कर कहने लगे:—

राजा द्रुपद ने पहले तो हम लोगों का आदर-सत्कार ख़ूब किया; पर पीछे से हमारा निरादर किया। हम लोगों का बड़ा अपमान हुआ। देवताओं के समान राजों में इन्होंने किसी को अपनी कन्या देने के योग्य न समझा! ब्राह्मण को वरमाल पाने का क्या अधिकार है? स्वयंवर की चाल केवल क्षत्रियों ही के लिए शास्त्र में लिखी है। अपनी रीति छोड़नेवाले इस नीच राजा को, आओ, हम लोग मार डालें। इसके साथ इसके पुत्र को भी जीता न छोड़ें। कन्या यदि हम लोगों में से किसी को न पसन्द करे, तो उसे अग्नि में डाल कर हम लोग अपने अपने राज्य को लौट जायँ।

क्रोध से अन्धे हुए हज़ारों हथियार-बन्द राजे तब राजा द्रुपद की तरफ़ झपटे। इससे वे बहुत डर गये। अर्जुन और भीमसेन ने यह देख कर हथियार उठा लिये और पाञ्चाल-नरेश की रक्षा करने के लिए आगे बढ़े। भीमसेन ने पास के एक वृक्ष को उखाड़ लिया और उसके पत्ते तोड़ ताड़ कर उसे गदा की तरह काम में लाने लगे। अर्जुन ने परीक्षा के लिए रक्खे हुए धनुष को उठा लिया।

ब्राह्मण लोग अपने सजातियों के स्नेह के वश होकर कमण्डलु हिला हिला कर कहने लगे:—

तुम लोग ज़रा भी न डरना; हम तुम्हारी सहायता करेंगे।

यह देख कर अर्जुन कुछ मुसकराये और उनको धीरज देकर बोले :—

आप लोग एक तरफ़ खड़े होकर तमाशा देखिए, हम अकेले ही सब काम करेंगे।

महा तेजस्वी कर्ण ने अर्जुन पर और मद्रनरेश शल्य ने भीम पर हमला किया। अर्जुन तेज़ बाणों की मार से कर्ण की नाक में दम करने लगे। ब्राह्मण की ऐसी बेढब शक्ति को देख कर कर्ण आश्चर्य्य में आ गये। उन्होंने कहा:—

हे ब्राह्मण! तुम्हारा बल, हथियार चलाने में तुम्हारी योग्यता, और तुम्हारे शरीर की मज़बूती देख कर हम बड़े प्रसन्न हुए। मालूम होता है कि तुम साक्षात् धनुर्वेद हो। हमें क्रोध आने पर ख़ुद इन्द्र या कुन्ती के पुत्र अर्जुन को छोड़ कर हमारा कोई भी सामना नहीं कर सकता।

अर्जुन ने उत्तर दिया :—

हम न तो धनुर्वेद हैं, न इन्द्र; किन्तु अस्त्रविद्या जाननेवाले एक ब्राह्मण हैं। तुमको हराने के लिए लड़ाई के मैदान में आये हैं।

इस बात के सुनते ही कर्ण ने ब्रह्म-तेज की श्रेष्ठता स्वीकार की और युद्ध से पीछा छुड़ाया। इधर शल्य और भीम में घूँसों और ठोकरों के द्वारा और भी बेढब लड़ाई होने लगी। अन्त में भीम ने एक ऐसी उखाड़ मारी कि शल्य ज़मीन पर चारों खाने चित्त गिरे। इससे ब्राह्मण लोग मारे हँसी के लोट लोट गये। शल्य ने भी लज्जित होकर हार मानी। यह देख कर बाक़ी राजा लोग डर गये। वे आपस में बातचीत करने लगे:—

ये ब्राह्मणकुमार कौन हैं। ये किसके पुत्र हैं, और कहाँ के रहनेवाले हैं, यह जानना ज़रूरी है।

कृष्ण ने मौक़ा पाकर कहा :—

हे नरेश-गण! ब्राह्मणकुमार ने धर्म्म से राजकुमारी को प्राप्त किया है। इसलिए शान्त हूजिए। युद्ध की और ज़रूरत ही क्या है?

तब सबने लड़ाई का विचार छोड़ दिया और अपने अपने घर की राह ली।

इधर कुन्ती कुम्हार के घर में बैठी हुई चिन्ता कर रही थी। वह सोचती थी कि भिक्षा के लिए गये हुए मेरे पुत्र इतनी देर हो जाने पर भी क्यों नहीं आये। सायङ्काल

पाण्डव द्रौपदी को साथ लिये हुए कुम्हार के घर पहुँचे। दरवाज़े पर जाकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा:—

माता! भिक्षा में आज एक बड़ी ही सुन्दर वस्तु मिली है।

कुन्ती ने घर के भीतर ही से बिना समझे-बूझे उत्तर दिया :—

पुत्र! जो कुछ मिला है सब लोग मिल कर उसे भोग करो।

जब उसने द्रौपदी को देखा तब, यह सोच कर कि मैंने कैसा बुरा काम किया है, युधिष्ठिर से कहा :—

हे पुत्र! मुझे यह न मालूम था कि तुम क्या लाये हो। इसी लिए मेरे मुँह से यह बात निकल गई कि सब जने मिल कर उसे भोग करो। अब कोई ऐसी युक्ति निकालो कि न तो मेरी बात ही झूठ हो और न अधर्म्म ही हो।

बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने कुछ देर सोचने के बाद अपने स्वार्थ की कुछ भी परवा न करके कहा :—

हे अर्जुन! द्रौपदी को तुम्हीं ने जीता है; इसलिए तुम्हीं उसके साथ विवाह करो।

अर्जुन ने भी बड़े भाई की तरह धर्म्म का ख़याल करके कहा :—

हे आर्य्य! हमको अधर्म्म में लिप्त न कीजिए। पहले बड़े भाई का विवाह होना उचित है। इसलिए हमारी और पाञ्चाल-नरेश की भलाई का ख़याल रख कर कर्तव्य ठीक कीजिए। हम लोगों को आप अपना आज्ञाकारी समझिए।

युधिष्ठिर भाइयों को उदास बैठे देख कर उनके मन की बात ताड़ गये। शायद इस बात से पीछे भाइयों में अनबन हो जाय, इस डर से युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने एकान्त में ले जाकर उनसे कहा :—

हमने यह निश्चित किया है कि द्रौपदी हमारी सबकी हो। इस कठिनता से पार पाने का यही एक उपाय देख पड़ता है। इससे माता की बात भी रह जायगी और हम लोगों में भी एक दूसरे के साथ ईर्ष्या करने का कोई कारण न रहेगा।

इसी समय यादवों में श्रेष्ठ कृष्ण और बलदेव इस बात की खोज करते हुए कि, पाण्डव स्वयंवर-सभा से कहाँ चले गये हैं, उस कुम्हार के घर जा पहुँचे। दूर से पाण्डवों को एक जगह बैठे देख वे जल्दी जल्दी आगे बढ़े और सब भाइयों से अच्छी तरह मिले। सबको बेहद ख़ुशी हुई। तब युधिष्ठिर ने कुशल-प्रश्न के बाद पूछा :—

हे वासुदेव! हम तो अपना वेश बदले हुए थे, हमें तुमने कैसे पहचाना?

कृष्ण ने हँस कर उत्तर दिया :—

राजन् ! आग छिपी रहने पर भी सहज ही में प्रकट हो जाती है। पाण्डवों के सिवा ऐसा कौन मनुष्य है जो इतना पराक्रम दिखला सकता है। हे कुरुओं में श्रेष्ठ ! हम लोगों के भाग्य से धृतराष्ट्र के पुत्रों की जालसाज़ी बेकार हुई और तुम लोग लाख के घर से बच गये। ईश्वर करे तुम्हारे फिर अच्छे दिन आवें। इस समय आज्ञा दीजिए, हम डेरे पर लौट जायँ।

यह कह कर दोनों भाई चले गये।

जब पाण्डव लोग द्रौपदी को लेकर सभा-स्थल से चले तब यह जानने के लिए कि ये लोग कौन हैं और कहाँ जाते हैं, धृष्टद्युम्न ने छिपे छिपे उनका पीछा किया और उन्हें कुम्हार के घर में जाते देख पास ही एक गुप्त स्थान में वे छिप गये। इस स्थान से उन लोगों की बातचीत का कुछ अंश सुन करके वे पिता को सब हाल बताने के लिए शीघ्र ही राजसभा को लौट आये।

अपनी कन्या को ऐसे ब्राह्मण-कुमारों के साथ जाते देख, जिनके न कुल का पता न शील का, राजा द्रुपद उदास बैठे थे। धृष्टद्युम्न को देखते ही वे आग्रह के साथ पूछने लगे :—

हे पुत्र ! द्रौपदी किसके साथ कहाँ गई ? फूलों की माला श्मशान में तो नहीं गिरी ?

धृष्टद्युम्न ने धीरज देकर कहा :—

हे पिता ! पछताने का कोई कारण नहीं। हमने उनका पीछा करके उनके आचार-व्यवहार और बात-चीत का जो रङ्ग-ढङ्ग देखा उससे मालूम होता है कि वे क्षत्रिय हैं। कुछ दिनों से यह गप उड़ रही है कि पाण्डव लोग लाक्षाघर के साथ जल जाने से बच गये हैं और गुप्त वेश में घूम रहे हैं। निश्चय जानिए ये वही पाँचों भाई हैं। हमारे ही भाग्य से इन्होंने द्रौपदी को जीता है। अर्जुन के सिवा कर्ण के तेज को कौन सह सकता है ? भीम के सिवा शल्य को कौन ज़मीन पर पटकने की शक्ति रखता है ? पाण्डवों को छोड़ कर ऐसा कौन है जो दुर्योधन आदि बड़े बड़े राजों का सिर नीचा कर सके ?

यह सुन कर द्रुपद को सन्तोष हुआ। उन्होंने पुरोहित को बुला कर कहा कि आप कुम्हार की कुटी में जाकर निशाना मारनेवाले का कुल-शील आदि पूछ आइए।

पुरोहित पाण्डवों के पास गये। वहाँ बड़ी बड़ी बातें बना कर उन्होंने उनकी खूब प्रशंसा की। अनन्तर चतुरतापूर्वक वे कहने लगे :—

महात्मा पाण्डु राजा द्रुपद के प्यारे मित्र थे। इसलिए उनकी बहुत दिनों से इच्छा थी कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन से हो।

तब पुरोहित के लिए जल और पूजा की सामग्री लाने की आज्ञा भीम को देकर युधिष्ठिर बोले :—

पाञ्चाल-नरेश का मनोरथ सिद्ध हुआ है। अर्जुन ही ने उनकी पुत्री को जीता है।

इस तरह बातचीत हो ही रही थी कि द्रुपद का भेजा हुआ एक दूत उत्तम घोड़ों से जुते हुए राजसी ठाट बाट के दो रथ और तरह तरह की अच्छी अच्छी खाने की चीज़ें लेकर आया और कहने लगा :—

महाराज द्रुपद ने द्रौपदी के विवाह के लिए आप लोगों को महल में आदर के साथ बुलाया है। इसलिए देर न कीजिए।

यह बात सुन कर उन्होंने पहले पुरोहित को विदा किया। फिर द्रौपदी और कुन्ती को एक रथ में बिठा कर आप दूसरे रथ में सवार हुए और महलों की तरफ़ चले।

पुरोहित से यह जान कर कि वे सचमुच पाण्डव हैं द्रुपद ने उनके आदर-सत्कार का यथोचित प्रबन्ध कर रक्खा था। उनके आते ही उन्होंने गायें, गायों के बाँधने के लिए रस्सियाँ, खेती के लिए तरह तरह के बीज, कारीगरी और खेलने के काम की बहुत तरह की चीज़ें, घोड़े, रथ, धनुष, बाण, तलवार आदि लड़ाई के सामान, और रत्न जड़े हुए पलँग, उत्तमोत्तम कपड़े-लत्ते और आभूषण, तथा फल-मूल आदि कितनी ही चीज़ें उनको भेंट कीं। पर पाण्डव ने और चीज़ें नहीं लीं; सिर्फ़ लड़ाई का सामान ले लिया। यह देख कर सब लोगों को बड़ी ख़ुशी हुई। पुरुषों में श्रेष्ठ पाण्डवों को मृगचर्म्म धारण किये हुए देख कर राजा, राजकुमार, मन्त्री, मित्र लोग और नौकर-चाकर सब बड़े ख़ुश हुए। कुन्ती द्रौपदी के साथ घर के भीतर गई। वहाँ स्त्रियों ने उनका ख़ूब सत्कार किया।

इसके बाद पाण्डव लोग घर के भीतर गये और बहुमूल्य आसनों पर सङ्कोच छोड़ कर जा बैठे। सुन्दर सुन्दर कपड़े पहने हुए दास-दासियों और भोजन बनानेवालों ने उनके सामने तरह तरह के स्वादिष्ट भोजन परोस कर उनको तृप्त किया। भोजन करने के बाद युधिष्ठिर ने राज्य से निकाल दिये जाने पर वारणावत जाने, वहाँ जिस घर में रहते थे उसके जलाये जाने और अपने घूमने घामने का सब हाल शुरू से आख़िर तक कह सुनाया। पाञ्चाल लोगों ने धृतराष्ट्र के पुत्रों को बार बार धिक्कारा और पाण्डवों को, उनके बाप-दादे का राज्य फिरवाने के लिए, सहायता देना अङ्गीकार किया।

इसके बाद कुन्ती और द्रौपदी को घर के भीतर भेज कर द्रुपद ने सबके सामने युधिष्ठिर से कहा:—आज शुभ दिन है। इसलिए आज अर्जुन का विवाह द्रौपदी के साथ हो जाना चाहिए।

युधिष्ठिर बोले:—राजन्! हम जेठे हैं; हमारा विवाह हुए बिना अर्जुन का विवाह कैसे हो सकता है?

द्रुपद ने उत्तर दिया:—तब तुम्हीं हमारी कन्या के साथ विवाह करो; या और कोई कन्या यदि तुम्हें पसन्द हो तो बतलाओ।

तब युधिष्ठिर कहने लगे:—

महाराज! हमारा या भीमसेन आदि किसी का विवाह अभी तक नहीं हुआ। यह सच है कि अर्जुन ने आपकी कन्या को जीता है; किन्तु हम सब भाई एक दूसरे को इतना चाहते हैं कि यदि कोई किसी अच्छी चीज़ को पाता है तो हम सब मिल कर उसे भोग करते हैं। माता ने भी हम लोगों को इकट्ठे ही द्रौपदी के साथ विवाह करने की आज्ञा दी है। इसलिए अपने इस पुराने नियम को हम लोग इस विषय में भी नहीं तोड़ सकते। आपकी कन्या धर्म से हमारी सबकी स्त्री होगी। इसलिए अग्नि को साक्षी बना कर हम सबके साथ अपनी कन्या का विवाह कीजिए।

राजा द्रुपद यह बात सुन कर बड़े चक्कर में आये। उन्होंने कहा:—

हे कुरुनन्दन! एक पुरुष की बहुत स्त्रियाँ तो हो सकती हैं; पर एक स्त्री के बहुत पति होना हमने कभी नहीं सुना। यह बात प्रसिद्ध है कि तुम धर्म्मात्मा और पवित्र स्वभाव के हो। इसलिए तुम्हारे मुँह से ऐसी बात का निकलना शोभा नहीं देता। यह काम लोकाचार और वेद दोनों ही के विरुद्ध है।

युधिष्ठिर तरह तरह की युक्तियाँ दिखा कर कहने लगे:—

महाराज! धर्म्म की बातें बहुत गूढ़ हैं। हम बाप-दादों की चाल पर चलना धर्म समझते हैं। पर सच तो यों है कि जो बात एक जगह अधर्म है वही दूसरी जगह धर्म हो जाती है। इसी तरह जो बात एक जगह धर्म है वही दूसरी जगह अधर्म हो सकती है। एक तो हमारी माता विवाह के लिए आज्ञा दे चुकी है। दूसरे सबको मालूम है कि हमारे मन में कभी अधर्म की बात नहीं आती। इससे इस विषय में जो हम कहते हैं वही करना कई कारणों से ठीक मालूम होता है। अब आप अधिक पसोपेश न कीजिए। हमारे कहने ही को धर्म समझिए।

द्रुपद ने कहा:—हे धर्मराज! यदि तुम इसे ही सचमुच अच्छा काम समझते हो

तो हम कही क्या सकते हैं। जो हो, आज तुम माता के साथ इस विषय में फिर अच्छी तरह सलाह कर लो। कल तुम सब मिल कर जो बात ठीक करोगे वही हम करेंगे।

इस विषय में तरह तरह की बातें हो ही रही थीं कि इतने में महर्षि द्वैपायन वहाँ आ गये। उनको देख कर द्रुपद आदि पाञ्चाल लोग और युधिष्ठिर आदि पाण्डव लोग खड़े हो गये और भक्ति-भावपूर्वक प्रणाम किया। महर्षि की आज्ञा पा कर सब लोग बैठ गये। जब वे थोड़ी देर आराम कर चुके तब द्रुपद ने नम्रतापूर्वक कहा :—

भगवन् ! युधिष्ठिर कहते हैं कि द्रौपदी का विवाह पाँचों भाइयों से हो। किन्तु, हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! एक स्त्री के बहुत से पति तो कहीं नहीं देखे जाते। इसलिए धर्म के अनुसार यह बात कैसे हो सकती है ? इस विषय में जो उचित समझिए, आज्ञा दीजिए।

धृष्टद्युम्न ने कहा :—हे महर्षि ! बड़ा भाई यदि सुशील है तो छोटे भाई की स्त्री के साथ कैसे विवाह करेगा ? शायद हम धर्म की गूढ़ बातें अच्छी तरह नहीं समझते; पर द्रौपदी का विवाह पाँच पाण्डवों के साथ हम कदापि नहीं कर सकते।

व्यासदेव के उत्तर देने के पहले ही युधिष्ठिर कहने लगे :—

हे पितामह ! आप तो जानते हैं कि हमारे मुँह से कभी झूँठी बात नहीं निकलती। हम सच कहते हैं, हमारे मन में कभी अधर्म नहीं आता। इसलिए यदि यह बात धर्म्म के विरुद्ध होती तो हमारे मन में कैसे आती ? पुराणों में लिखा है कि गौतमवंश की जटिला नाम की एक कन्या का विवाह सात ऋषियों के साथ हुआ था और वार्क्षी नाम की मुनि-कन्या प्रचेता नामक दस भाइयों को व्याही गई थी। इसके सिवा माता ने भिक्षा में पाई हुई और चीज़ों की तरह द्रौपदी को भी सब लोगों को मिल कर भोग करने के लिए कहा है। जो कुछ बड़े लोग कहें वह अधर्म नहीं हो सकता। इसलिए, हे देव ! हम तो इसको परम धर्म ही समझते हैं।

कुन्ती बोली :—युधिष्ठिर ने जो कहा, हमने वही कह डाला था। हम झूँठ से बहुत डरती हैं। इसलिए, हे भगवन् ! ऐसी युक्ति कीजिए जिससे झूँठ से हमारी रक्षा हो।

व्यासदेव ने यथार्थ बात अच्छी तरह समझ कर सबको शान्त किया। द्रुपद को अलग ले जाकर उन्होंने धर्म की गूढ़ बातें अच्छी तरह समझा दीं। उन्होंने कह दिया कि देश, काल और अवस्था के भेद से धर्म्म का भेद होता है। अर्थात् जो बात एक समय, एक जगह, एक हालत में अधर्म्म होती है वही दूसरे समय, दूसरी जगह, दूसरी हालत में धर्म्म हो सकती है। फिर यह कहानी सुना कर उनका सन्देह दूर किया :—

किसी तपोवन में एक बड़ी ही सुन्दर ऋषिकन्या रहती थी। विवाह के योग्य

स्त्र होने पर उसने अच्छा पति पाने की इच्छा से महादेव की बड़ी तपस्या की। इससे महादेवजी प्रसन्न हुए। जब उनको इच्छा वर देने की हुई तब वह कन्या बार बार कहने लगी :—

हे भगवन् ! मैं चाहती हूँ कि मुझे ऐसा पति मिले कि जिसमे सब गुण हों—जो महागुणी हो।

महादेव जी बोले :—हे पुत्री ! तुमने पाँच दफ़े पति माँगा है। इसलिए अगले जन्म में तुमको पाँच पति मिलेंगे।

महाराज ! ऋषि की वही सुन्दर कन्या आपके यहाँ पैदा हुई है। द्रौपदी अपने ही कर्मों के फल से पाँच पाण्डवों की स्त्री होगी। इसलिए तुम इस बात को अधर्म समझ कर दुखी मत हो।

व्यासदेव की इन बातों से द्रुपद को धीरज आया। उन्होंने कहा:—

हे महर्षि ! पहले हमें यथार्थ बात अच्छी तरह मालूम न थी। इसी लिए हमने सन्देह किया था। अब आपसे सब हाल जान कर इस विवाह के करने में हमको कोई पसोपेश नहीं रहा।

इसके बाद सभा में आकर राजा द्रुपद ने सबके सामने कहा:—

पाण्डव लोग विधिपूर्वक द्रौपदी का विवाह करें। हमारी कन्या उन्हीं के लिए पैदा हुई है।

व्यासदेव ने युधिष्ठिर से कहा :—

आज चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में जायगा। इसलिए आज ही पहले तुम द्रौपदी के साथ विवाह करो।

इसके बाद द्रौपदी अच्छे अच्छे गहनों और वस्त्रों से सजा कर बहुत सी कन्याओं के साथ सभा में लाई गई। मन्त्री लोग, इष्ट-मित्र, पुरवासी और ब्राह्मण लोग विवाह देखने के लिए झुंड के झुंड आने लगे। धीरे धीरे राजभवन में बड़ी भीड़ हो गई। पाण्डवों ने स्नान करके विवाह के पहले की माङ्गलिक क्रिया समाप्त की; फिर अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर विवाह-मण्डप में आये। वेद जाननेवाले पुरोहित ने अग्नि की स्थापना की और विवाह के मन्त्र पढ़ पढ़ कर पहले युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी का विवाह किया। इसके बाद युधिष्ठिर को अलग बैठाल कर उसी तरह एक एक करके सब पाण्डवों की विवाह-क्रिया समाप्त की।

विवाह हो जाने पर राजा द्रुपद ने अपने दामादों को बहुत सा धन, बड़े बड़े हाथी, अच्छे अच्छे कपड़ों और गहनों से सजी हुई दासियाँ और चार घोड़ोंवाले सुनहले रथ दिये। अपने यहाँ आये हुए पाहुनों को भी धन और बड़े मोल की वस्तु आदि देकर बिदा किया।

पाण्डव लोग उस देवदुर्लभ स्त्री-रत्न को पाकर बड़े आनन्द से पाञ्चालराज्य में रहने लगे। पाञ्चाल और पाण्डव लोग एक दूसरे की सहायता पाकर अपने अपने वैरियों से निडर हो गये। पुरवासी लोग हमेशा कुन्ती का नाम लेकर चरण-वन्दना करने लगे।

इधर दूत के द्वारा हस्तिनापुर में खबर पहुँची कि पाण्डव लोग जीते हैं और द्रौपदी के साथ विवाह करके पाञ्चाल राज्य में रहते हैं। विदुर, यह जान कर कि कौरव लोग लज्जित होकर लौटे हैं और पाण्डवों ही ने द्रौपदी पाई है, बड़े प्रसन्न हुए। वे धृतराष्ट्र के पास जाकर कुछ ताने से बोले :—

महाराज! भाग्य के बल से द्रौपदी के स्वयंवर में कौरव लोग विजयी हुए हैं। (पाण्डव भी तो कुरु ही के वंश के थे। इससे वे भी कौरव कहलाते थे)।

धृतराष्ट्र इस बात के गूढ़ अर्थ को न समझे। उन्होंने जाना कि दुर्योधन ही ने द्रौपदी को पाया है। इससे आनन्द से प्रफुल्लित होकर बोले :—

बड़े सौभाग्य की बात है! विदुर! तुमने बड़ी अच्छी खबर सुनाई। पुत्र दुर्योधन से कहो कि वह द्रौपदी को सजा कर मेरे पास ले आवे।

तब विदुर ने खोल कर कहा :—

महाराज! हम दुर्योधन की बात नहीं कहते। पाण्डव लोग सौभाग्य से लाक्षागृह में जलने से बच गये हैं। उन्हीं को द्रौपदी ने वर-माला पहनाई है। वे इस समय पाञ्चाल नगर में राजा द्रुपद और अन्य भाई बन्धुओं के आश्रय में रह कर सुख से समय व्यतीत कर रहे हैं। तब धृतराष्ट्र ने कहा :—

अच्छा ही हुआ। पाण्डु के पुत्रों से हम हमेशा अपने लड़कों से भी अधिक स्नेह करते रहे हैं। यह सुन कर कि अब उनको राजा द्रुपद की सहायता मिली है हम बड़े प्रसन्न हुए।

विदुर बोले :—महाराज! ईश्वर करे आपकी समझ सदा ऐसी ही बनी रहे। इसी समय दुर्योधन और कर्ण आ कर बोले :—

पिता ! हमको आपसे कुछ कहना है। उसको हम सबके सामने नहीं कह सकते। इसलिए एकान्त में चल कर हमारी बात सुनिए।

इस बात को सुन कर विदुर चले गये। तब उन्होंने कहा :—

महाराज ! आपकी यह कैसी समझ है कि अपने शत्रुओं की बढ़ती को आप अपनी बढ़ती समझते हैं और विदुर के साथ शत्रुओं की प्रशंसा करते हुए अपने कर्तव्य को भूल जाते हैं। शत्रुओं की शक्ति तोड़ने के सम्बन्ध में विचार करने का अब सबसे अच्छा समय है। इसलिए अब देर न करके जो कुछ करना हो उसका निश्चय कर डालिए।

धृतराष्ट्र बोले :—पुत्र ! तुम जो अच्छा समझो हम वही करने को तैयार हैं। विदुर से जी की बातें साफ़ साफ़ नहीं कह सकते। इसी लिए हमने उनसे पाण्डवों की प्रशंसा की थी। इस समय, हे पुत्र ! हे कर्ण ! तुम क्या कहना चाहते हो कहो।

दुर्योधन ने कहा :—हे पिता ! हम समझते हैं कि कुछ चतुर ब्राह्मणों को भेज कर कुन्ती और माद्री के पुत्रों में द्रौपदी के लिए परस्पर झगड़ा पैदा किया जा सकता है; अथवा बहुत सा धन देकर द्रुपद और धृष्टद्युम्न वश में किये जा सकते हैं; अथवा रूप बदला कर कुछ आदमियों के द्वारा भीमसेन एकान्त में मार डाले जा सकते हैं; अथवा यहाँ बुला कर वे लोग किसी तरह चतुराई से सबके सब यम-लोक भेज दिये जा सकते हैं। इन सब उपायों में आप जिसको सबसे अच्छा समझिए कीजिए।

कर्ण ने कहा :—हे दुर्योधन ! हमारी समझ में तुम्हारी एक भी सलाह ठीक नहीं। चालाकी से पाण्डवों के नाश की चेष्टा करना व्यर्थ है। पहले तुम कई बार ऐसा कर चुके हो पर कभी सफलता नहीं हुई। एक ही पत्नी में सब पाण्डवों की प्रीति एक सी होने के कारण उनका परस्पर स्नेह और भी अधिक मज़बूत हो गया है। इससे उनमें परस्पर वैमनस्य नहीं पैदा किया जा सकता। पाञ्चाल लोग धर्म्मात्मा और विश्वासपात्र हैं, लोभी नहीं। अनन्त धन-राशि देने पर भी वे पाण्डवों को न छोड़ेंगे। इसलिए हे महाराज ! हमारी सलाह है कि जड़ पकड़ने के पहले ही पाण्डव लोग सामने की लड़ाई में नाश कर दिये जायँ। वीरता ही से हम लोग उन्हें जीत सकते हैं। जयलाभ करने का इनसे अच्छा उपाय और कोई नहीं है।

धृतराष्ट्र ने कर्ण की बात का आदर करके कहा :—

हे महा बुद्धिमान् कर्ण ! जैसे तुम वीर हो वैसा ही वीरों के समान तुम्हारा उपदेश

भी है। किन्तु भीष्म, द्रोण आदि से सलाह किये विना ऐसे बड़े काम के विषय में किसी तरह का निश्चय करना ठीक नहीं।

यह कह कर धृतराष्ट्र ने तुरन्त उक्त महात्माओं को सलाह करने के लिए बुला भेजा।

भीष्म ने कहा :—पाण्डु और धृतराष्ट्र हमारे लिए दोनों बराबर हैं। इसलिए ऐसे घरेलू झगड़े को हम किसी तरह पसन्द नहीं करते। हमारी समझ में पाण्डवों को आधा राज्य देकर उनके साथ मेल कर लेना दोनों पक्षवालों के लिए अच्छा होगा। इसमें कोई संदेह न समझिए। पुत्र दुर्योधन! जिस तरह तुम इसको अपने बाप दादे का राज्य समझते हो, उसी तरह पाण्डव लोग भी समझते हैं। इसलिए किस युक्ति से तुम अकेले अपने ही को राज्य करने का अधिकारी समझते हो? मित्र की तरह यदि तुम पाण्डवों को आधा राज्य दे दोगे, जिसके पाने का उनको हक़ भी है, तो इसमें दोनों ही की भलाई होगी। इसके सिवा तुम्हारा यश भी बहुत दिनों तक बना रहेगा।

द्रोणाचार्य्य ने कहा :—महाराज! शास्त्रों में लिखा है कि सलाह देने के लिए आये हुए हितैषियों को उचित है कि अपने मन की सच्ची बात निडर होकर कह दें। इसलिए हम साफ़ साफ़ कहते हैं कि जो राय भीष्म की है वही हमारी भी है। हमारी सलाह है कि पाण्डवों को भेंट करने के लिए बहुमूल्य चीज़ें लेकर कोई प्रियभाषी मनुष्य शीघ्र ही पाञ्चाल देश जाय। वह द्रुपद से भाई-बन्धुओं में मेल होने के गुणों का वर्णन करके पाण्डवों के यहाँ आने की बात चलावे। यदि राजा द्रुपद उनको यहाँ आने की सम्मति दें तो आपका कोई पुत्र, सजी हुई सेना लेकर, उनके स्वागत के लिए जाय। भीष्म की और हमारी, दोनों ही की, यह राय है कि पाण्डवों के साथ आपको भाइयों का सा व्यवहार करना ही इस समय सबसे अच्छा है।

भीष्म और द्रोण के उपदेश को सुन कर्ण को क्रोध हो आया। वे बोले :—

महाराज! आप धन के द्वारा जिनका सदा सत्कार किया करते हैं उन्होंने आपको अच्छी सलाह नहीं दी। इससे बढ़कर निन्दा की बात और क्या हो सकती है? बड़े आश्चर्य्य की बात है कि ये भले आदमी अपने मन की बात छिपा कर, अच्छी सलाह देने के बहाने, वैरी की तरफ़दारी करते हैं। अब हम समझे कि जिसे रुपये की तङ्गी होगी उससे सच्ची सलाह का मिलना मुश्किल है। निर्धन आदमी की मित्रता पर कभी विश्वास न करना चाहिए। वह तो रुपये का मित्र होता है। इसलिए सलाह देनेवालों के मन के भाव अच्छी तरह समझ कर तब उनका कहना आप कीजिएगा।

द्रोण ने कहा :—हे कर्ण! तुम अपने मन के दोष से ही हमको दोषी ठहराते हो।

तुम्हारे मन में पाप है, इससे तुम समझते हो कि हम भी वैसे ही हैं। जो हो, हमने कुरुवंश के लिए जो लाभदायक और अच्छा समझा वही कह दिया।

विदुर ने कहा :—महाराज ! आपके बन्धु-बान्धव उपदेश दे सकते हैं; पर आप उसे यदि सुनना ही न चाहें तो वह व्यर्थ है। कुरुओं में श्रेष्ठ भीष्म और आचार्य्य द्रोण ने जो बातें आपसे कही हैं वे सब धर्म्म के अनुकूल हैं और आपके मतलब की हैं। किन्तु कर्ण ने उन्हें लाभदायक नहीं समझा। इन दोनों में कौन अधिक बुद्धिमान् और आपका सच्चा मित्र है, यह इस समय आपही विचार कर देखिए।

महाराज ! आप यह भी सोच लीजिएगा कि यदि पाण्डव लोग रुष्ट हो जायँगे तो खुद देवता भी उन्हें जीत नहीं सकते। इसके सिवा यादवों में श्रेष्ठ कृष्ण और बलदेव उनके पक्ष में हैं। विवाह होने से अब पाञ्चाल लोग भी उनके सम्बन्धी हो गये हैं। और नहीं तो उनके इस अधिक बल ही का ख़याल करके इस समय अपने सम्मान की रक्षा कीजिए और पाण्डवों को राज्य का वह हिस्सा, जिसके पाने का उनको हक़ है, देकर पुरोचन के किये हुए पाप के कलंक का धब्बा मिटाइए। इससे पुराने वैरी द्रुपद से भी मित्रता हो जायगी। पाण्डवों के दर्शन की इच्छा रखनेवाले नगरनिवासी भी इसे पसन्द करेंगे ! दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि बड़े ही अधार्म्मिक और दुर्बुद्धि हैं। हमने पहले ही कहा था कि यदि आप सावधान न रहेंगे तो इनके अपराध से रघुवंश शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।

धृतराष्ट्र ने कहा :—हे विदुर ! भीष्म और द्रोण ने जो कुछ कहा वह निश्चय ही हमारे लिए मङ्गलकारक है। तुमने जो कुछ कहा वह भी ठीक है। महाबली पाण्डव भी हमारे पुत्र-तुल्य हैं और राज्य के बराबर के हिस्सेदार भी हैं। इसलिए आप खुद जाइए और आदर के साथ कुन्ती, द्रौपदी और पाण्डवों को ले आइए।

इसके बाद धर्म्म और सब शास्त्रों के जाननेवाले विदुर, धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार तरह तरह के रत्न और धन-सम्पत्ति लेकर पाञ्चाल राज्य में पहुँचे और द्रुपद से प्रीतिपूर्वक मिले। पाण्डवों को देख कर बड़े स्नेह से उनका आलिङ्गन किया और कुशल-समाचार पूँछे। इसके अनन्तर विदुर ने लाये हुए धन और अलङ्कार आदि को कुन्ती, द्रौपदी, पंच-पाण्डव और पाञ्चालों को देकर सबके सामने द्रुपद से निवेदन किया :—

महाराज ! पुत्र और मन्त्रियों समेत महाराज धृतराष्ट्र आपके साथ यह सम्बन्ध हो जाने से बड़े प्रसन्न हुए हैं और बार बार आपकी कुशल पूँछी है। कुरुओं में श्रेष्ठ भीष्म ने आपकी सब प्रकार से मङ्गलकामना की है। और, आपके मित्र द्रोण ने नाम

लेकर आपको आलिङ्गन किया है। बहुत दिनों की जुदाई के बाद पांण्डवों को देखने के लिए अब सब लोग बड़े उत्सुक हैं। ये भी बहुत दिन तक बाहर रहने के कारण राजधानी में जाने को व्यग्र हैं। कौरव और नगर-निवासी लोग द्रौपदी को देखने के लिए बड़ी व्याकुलता से रास्ता देख रहे हैं। इसलिए आप पत्नी-सहित पाण्डवों को शीघ्र ही अपने घर जाने की आज्ञा दीजिए।

द्रुपद ने कहा :—हे महा-बुद्धिमान् विदुर ! तुमने जो कहा सो ठीक है। कौरवों के साथ विवाह-सम्बन्ध हो जाने से हमें भी बहुत सन्तोष हुआ। और महात्मा पाण्डवों को भी अपने राज्य में जाना उचित है, इसमें सन्देह नहीं। पर इस विषय में हम खुद कुछ नहीं कह सकते। पाण्डव लोग यदि अपनी इच्छा से जाना चाहें और उनके परम मित्र कृष्ण जाने की सम्मति दें तो हमें कोई उज्र न होगा।

तब युधिष्ठिर ने नम्रतापूर्वक कहा :—

हे पाञ्चाल-नरेश ! हम और हमारे भाई सब आपके अधीन हैं। इसलिए आप जो आज्ञा देंगे हम वही करेंगे।

पीछे कृष्ण ने भी हस्तिनापुर जाने की सम्मति दी। तब कुन्ती और द्रौपदी को लेकर पाण्डवों ने कृष्ण और विदुर के साथ हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया।

उनके आने की खबर सुन कर धृतराष्ट्र ने उनकी अगवानी के लिए बहुत से कौरवों के साथ द्रोण और कृप को भेजा। महाबली पाण्डवों ने उन्हीं सब लोगों के साथ धीरे धीरे हस्तिनापुर में प्रवेश किया। उन्हें देख कर नगरनिवासी बड़े प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे :—

अहा ! यह कैसे आनन्द की बात है कि आज पाण्डव लोग इतने दिनों बाद नगर को लौटे हैं। हम लोगों ने यदि कभी दान, होम, या तपस्या की हो तो उसके पुण्यफल से पाण्डव लोग सौ वर्ष जीते हुए इस नगर में निवास करें।

इसके बाद पाण्डवों ने पितामह भीष्म, चचा धृतराष्ट्र और अन्य बड़े लोगों के चरण छुए और आज्ञा लेकर विश्राम करने के लिए घर में प्रवेश किया।

जब वे अच्छी तरह आराम कर चुके तब भीष्म और धृतराष्ट्र ने उन सबको बुला कर कहा :—

पुत्र युधिष्ठिर ! तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाओ और आनन्द से राज्य करो। इससे दुर्योधन आदि के साथ तुम्हारे विवाद का कोई

कारण न रहेगा। तुम अपने बाहुबल से सब अनिष्टों से सहज ही में अपनी रक्षा कर सकोगे।

आधा राज्य पाने की आज्ञा को पाण्डवों ने मान लिया और बड़े बूढ़ों को प्रणाम करके कृष्ण के साथ जङ्गल की राह से खाण्डवप्रस्थ की ओर चले। उनके आने के कारण नगरी खूब सजाई गई। चौड़ी सड़कें, ऊँचे ऊँचे सफ़ेद मकान, और चारों ओर के आम, नीम, अशोक, चम्पक, वकुल आदि वृक्षों की क़तारें देख कर पाण्डव लोग बड़े प्रसन्न हुए।

पाण्डवों के आने की ख़बर सुन कर बहुत से ब्राह्मण, बनिये और कारीगर वहाँ रहने के लिए आये। पाण्डवों को राज्य मिल जाने पर कृष्ण और बलदेव बिदा होकर द्वारका को लौट गये। सदा सच बोलनेवाले युधिष्ठिर सिंहासन पर बैठ कर चारों भाइयों के साथ धर्म्म के अनुसार प्रजा का पालन करने लगे।

एक बार पाँचों भाई सब इकट्ठे बैठे हुए थे कि देवर्षि नारद घूमते घामते वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिर ने जल और पूजा की सामग्री से उनका सत्कार करके उन्हें एक उत्तम आसन पर बिठाया। उनके आने की ख़बर सुनते ही द्रौपदी ने पवित्र होकर और मर्य्यादा-पूर्वक कपड़े-लत्ते पहन कर उनके चरणों में शीश नवाया। महर्षि बहुत प्रसन्न हुए और पूजा ग्रहण करके सबको तरह तरह के आशीर्वाद दिये। इसके बाद द्रौपदी को अन्तःपुर जाने की आज्ञा देकर नारद कहने लगे :—

हे पुरुषों में श्रेष्ठ पाण्डव! तुम तो पाँच भाई हो, पर धर्मपत्नी तुम्हारी अकेली द्रौपदी है। इस कारण कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए जिससे द्रौपदी के लिए भाइयों में फूट न पड़े। पूर्वकाल में सुन्द और उपसुन्द नामक दो भाई थे। वे एक ही राज्य के राजा थे। दोनों की आज्ञा सब लोग बराबर मानते थे। वे एक दूसरे को इतना चाहते थे कि सोते, जागते, खाते, यहाँ तक कि विहार करते समय भी हमेशा एक ही साथ रहते थे। अन्त में तिलोत्तमा नाम की एक अप्सरा पर वे आसक्त हो गये। इससे उनमें यहाँ तक विवाद हुआ कि उन्होंने एक दूसरे को मार डाला।

इसलिए हम कहते हैं कि कोई ऐसा अच्छा उपाय होना चाहिए जिसमें तुम्हारे बीच द्रौपदी के लिए कोई विवाद न हो। ऐसा होने से हम बड़े प्रसन्न होंगे।

इस युक्ति-पूर्ण बात को सुन कर पाण्डवों की आँखें खुल गईं। उन्होंने नारद की सलाह मान ली और यह नियम कर दिया कि जिस समय द्रौपदी एक भाई के साथ हो उस समय कोई दूसरा भाई उस जगह न जाय। इस नियम को जो तोड़ेगा उसे

बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य धारण कर वनवास करना पड़ेगा। नारद के इस उपदेश के अनुसार चलने से पाण्डवों में सदा स्नेह बना रहा।

पाण्डवों को राज्य करते हुए कुछ दिन बीत गये। एक दिन कुछ चोरों ने मिल कर किसी ब्राह्मण की गायें चुरा लीं। ब्राह्मण क्रोध से कांपता हुआ खाण्डवप्रस्थ में आया और रो रो कर कहने लगा :—

हे पाण्डव ! चोर लोग आपके राज्य से हमारी गायें चुराये लिये जाते हैं। आप शीघ्र ही रक्षा कीजिए। जो राजा प्रजा की आमदनी का छठा हिस्सा कर लेकर भी प्रजा की रक्षा नहीं करता वह राज्य भर के लोगों के पापों का भागी होता है।

ढाढ़ें मार कर रोते हुए ब्राह्मण का विलाप सुन कर अर्जुन ने यह कह कर उसे धीरज दिया कि डरो मत, डरने की कोई बात नहीं। पर जिस घर में अस्त्र-शस्त्र रक्खे थे उसमें इस समय द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर विद्यमान थे। इससे नियम तोड़ कर अस्त्र लेने के लिए वहाँ जाने में अर्जुन को बड़ा पसोपेश हुआ।

एक तरफ़ ब्राह्मण पर दया और राजधर्म, दूसरी तरफ़ युधिष्ठिर की अप्रतिष्ठा और बारह वर्ष का वनवास। इससे अर्जुन बड़े चक्कर में आये। अन्त में धर्म को सब से बढ़ कर समझ कर उन्होंने प्रतिज्ञा तोड़ने का फल-भोग करना ही अच्छा समझा।

ऐसा निश्चय करके वे अस्त्रागार में पहुँचे और युधिष्ठिर की आज्ञा से धनुष-बाण लेकर ब्राह्मण की सहायता के लिए उन्होंने चोरों का पीछा किया। जब चोरों को मार और ब्राह्मण को गायें लौटा कर अर्जुन घर लौटे तब सबने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

इसके बाद गुरुजनों को प्रणाम करके अर्जुन युधिष्ठिर के पास विदा मांगने गये और बोले :—

आर्य्य ! जिस समय आप द्रौपदी के साथ अस्त्रागार में थे उस समय हमने वहाँ जा कर नियम-भङ्ग किया है। इसलिए हमें वनवास के लिए जाने की आज्ञा दीजिए। युधिष्ठिर इस अप्रिय बात को सुन कर, जिसका उन्हें ख़याल भी न था, बड़े सन्नाटे में आये; उनकी आँखों में आँसू आ गये। गद्गद स्वर से उन्होंने कहा :—

हे भाई ! तुमने ब्राह्मण की मदद करने के लिए हमारे घर में प्रवेश किया था। इसलिए इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। इस काम में हमारी पूरी सम्मति थी। इससे हम किसी प्रकार अप्रसन्न नहीं हुए। यदि स्त्री के साथ छोटा भाई घर में हो और बड़ा भाई वहाँ जाय, तो ज़रूर अधर्म है। पर स्त्री के साथ बड़ा भाई यदि घर में

हों तो छोटे भाई का वहाँ जाना अनुचित नहीं है। इसलिए हे अर्जुन ! तुम हमारी बात मानो; वन को न जाव। तुमने ज़रा भी अधर्म का काम नहीं किया :—

पर अर्जुन ने किसी तरह न माना। उन्होंने कहा :—

हे प्रभो ! तुम सदा यही उपदेश दिया करते हो कि छलपूर्वक धर्म का काम भी न करना चाहिए। इसलिए, इस समय, स्नेह के वश हो कर आप हमें रोक कर हमारा सत्य भङ्ग न करें।

यह कह कर कुरुओं के कुल में श्रेष्ठ अर्जुन ने, जेठे भाई की आज्ञा लेकर, बारह वर्ष तक वनवास करने के लिए यात्रा की।

जब अर्जुन चलने लगे तब बहुत से ब्राह्मण और संन्यासी भी उनके साथ चलने को तैयार हुए। इन सब लोगों के साथ अर्जुन ने विचित्र जङ्गलों, सरोवरों, नदियों और पुण्यतीर्थों के दर्शन करते हुए अन्त में गंगा के किनारे एक स्थान पर रहना निश्चित किया। वहाँ जगह जगह पर ब्राह्मणों ने अग्निहोत्र करना आरम्भ किया। फूल, मालाओं से अलङ्कृत और मन्त्रों से पवित्र अग्नि के और संयम से पवित्रतापूर्वक रहनेवाले जितेन्द्रिय ब्राह्मणों के द्वारा गङ्गा का किनारा अत्यन्त शोभायमान हुआ।

इस प्रकार आश्रम में खूब चहल-पहल रहने लगी। एक दिन अर्जुन स्नान करने के लिए गङ्गा में उतरे। स्नान के बाद उन्होंने पितृ-तर्पण किया। फिर अग्निहोत्र करने के लिए ज्यों ही वे जल से निकलने लगे त्यों ही नाग-राज की पुत्री उलूपी उनकी सुन्दरता पर मोहित हो गई और उन्हें पानी में खींच कर नागलोक को ले गई। वहाँ जलती हुई अग्नि में होम करके अर्जुन उलूपी से बोले :—

हे नारी ! इस देश का क्या नाम है ? तुम कौन हो ? और हमको यहाँ किस लिए लाई हो ?

नाग की लड़की ने कहा :—मैं कौरव्य नामक सर्प की कन्या हूँ। मेरा नाम उलूपी है। आपकी सुन्दरता को देख कर आपके साथ विवाह करने की इच्छा हुई है। इसी लिए आपको अपने पिता के घर ले आई हूँ। इस समय जैसे बने मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिए।

अर्जुन ने कहा :—हे सुन्दरी ! मैं भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करना चाहता हूँ। पर आज कल मैंने ब्रह्मचर्य्य व्रत ग्रहण किया है। इसलिए इस समय धर्म्मानुसार मैं तुम से विवाह नहीं कर सकता।

उलूपी बोली :—हे पाण्डव ! आप किस लिए वन में घूमते हो सो मैं जानती हूँ।

जब आपने अपना ही बनाया हुआ नियम पालन करने के लिए ब्रह्मचर्य धारण किया है तब विवाह करने में कोई अधर्म न होगा। इसके सिवा, यदि इसमें आपके धर्म की थोड़ी बहुत हानि भी होगी तो वह हानि उस आनन्द के पुण्य के फल से खण्डित हो जायगी जो आप से मुझे मिलेगा। यदि आप न मानेंगे तो मैं निश्चय ही प्राण दे दूँगी। इसलिए मेरे साथ विवाह करने से आपको प्राण-दान करने का भी फल होगा।

यह युक्ति-पूर्ण बात सुन कर अर्जुन विवाह करने को राज़ी हुए। वह रात उन्होंने सर्पराज के घर ही में बिताई। दूसरे दिन सवेरे उलूपी को साथ लेकर वे गङ्गा के किनारे आश्रम में लौट आये और वहाँ कुछ दिन निवास किया।

इसके बाद अर्जुन अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग देशों के तीर्थ, देवालय और सिद्ध लोगों के आश्रमों के दर्शन करते हुए घूमने लगे। कलिङ्ग देश को पार करके वे समुद्र के किनारे के रास्ते से मणिपुर नामक नगर में पहुँचे। मणिपुर के राजा के चित्राङ्गदा नामक एक कन्या थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उस समय वह नगर में इधर उधर घूम रही थी। उस सुन्दरी को देख कर अर्जुन को उससे भी विवाह करने की इच्छा हुई। राजा के पास जा कर उन्होंने विवाह की बात चलाई। राजा ने पूछा, आप कौन हैं ?

अर्जुन ने कहा :—हम कुरुवंशी क्षत्रिय हैं। हमारा नाम अर्जुन है।

तब मणिपुर के राजा बोले :—

हे अर्जुन ! हमारे एक पूर्व-पुरुष की कठिन तपस्या से प्रसन्न हो कर महादेव जी ने यह वर दिया था कि हमारे वंश में सबके एक ही पुत्र होगा। अब तक सबके वही हुआ है। केवल हमारे ही यह कन्या हुई है। इसलिए हमने इसको पुत्र के समान पाला है। और इसीके द्वारा वंश की रक्षा करने के इरादे से इस कन्या के पुत्र को हमने अपना वारिस बनाना निश्चित किया है। इसलिए यदि तुम इसके गर्भ से पैदा हुए लड़के को हमारा ही वंशधर मानने को राज़ी हो तो इसके साथ तुम्हारा विवाह होने में कोई बाधा नहीं है।

अर्जुन ने इस बात को मान लिया और रीति के अनुसार चित्राङ्गदा से विवाह कर के तीन वर्ष तक वहाँ रहे।

इसके बाद अर्जुन को फिर यात्रा करने की इच्छा हुई। इस बार वे दक्षिणी महासागर के निकट-वासी तपस्वियों के प्यारे अति पवित्र तीर्थस्थानों को गये।

इसी बीच में चित्राङ्गदा के गर्भ से उनके बभ्रुवाहन नामक एक पुत्र हुआ। यह सुन

कर वे उसे देखने के लिए मणिपुर लौट आये। इसके बाद उन्होंने गोकर्ण तीर्थ की ओर यात्रा की।

भारतवर्ष के पश्चिमी तीर्थों में घूमते घामते अन्त में अर्जुन प्रभास-तीर्थ में पहुँचे। मित्र अर्जुन के आने का समाचार सुनते ही कृष्ण जल्दी से उनके पास गये और गले से लगा कर बड़े प्रेम से उनसे मिले। अर्जुन से वनवास का कारण सुन कर उन्होंने कहा कि जो कुछ तुमने किया, ठीक किया। अपने मित्र अर्जुन का मन बहलाने के लिए कृष्ण ने रैवतक पर्वत पर तरह तरह के आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध किया। थोड़े ही दिनों में उनको वे वहाँ ले गये। वहाँ सुन्दर सजे हुए और परम रमणीय स्थान में दिन को नाच, गाने आदि का आनन्द लेकर रात को दोनों मित्र दूध के समान सफ़ेद शय्या पर इकट्ठे सो जाते। अर्जुन ने अपनी यात्रा में जो जो रमणीय दृश्य और आश्चर्य-जनक घटनायें देखी थीं उनका वर्णन उस समय कृष्ण से करते। इस तरह सुख से बातें करते करते धीरे धीरे दोनों सो जाते और सबेरे मधुर गाने का शब्द सुन कर दोनों एक ही साथ जागते।

कुछ दिन इसी तरह विहार करके दोनों मित्र सोने के रथ में सवार होकर द्वारका गये। वहाँ यादवों ने अर्जुन का खूब आदर-सत्कार किया। उनको प्रसन्न करने के लिए द्वारकापुरी खूब सजाई गई। वहाँ जितने उपवन और विहार करने के स्थान थे वे भी तरह तरह के अलङ्कारों से सुशोभित किये गये। सुप्रसिद्ध कुरुवंश के शिरोमणि अर्जुन को देखने के लिए राजमार्ग पर लाखों आदमी इकट्ठे हुए; स्त्रियाँ भी खिड़कियों में आकर खड़ी हुईं। अर्जुन बड़ों को नमस्कार और बराबरवालों को गले से लगा कर एक रमणीय महल में रहने लगे।

कुछ दिनों के बाद यादवों का एक बड़ा भारी उत्सव आरम्भ हुआ। उसके लिए रैवतक पर्वत से मिली हुई जगह रत्न जड़े हुए मचानों और कल्पवृक्षों से सुशोभित की गई। स्थान स्थान पर नाच, गाना, बजाना होने लगा। राजकुमार लोग उत्तमोत्तम सवारियों में इधर उधर घूमने लगे। नगर-निवासी भी—कोई अच्छी अच्छी सवारियों पर, कोई मामूली रथों पर, कोई पैदल ही—सैर करने के लिए जाने लगे। धीरे धीरे सभी मद्यपान से मस्त होकर स्त्रियों के साथ उत्सव मनाने लगे। जब सब नशे में खूब चूर हो गये तब कृष्ण अर्जुन को लेकर उत्सव में गये।

वे बड़े कौतुक से चारों ओर घूम रहे थे कि इतने में सखियों से घिरी हुई, सब अलङ्कारों से सुशोभित, वसुदेव की पुत्री परम सुन्दरी सुभद्रा पर अर्जुन की दृष्टि

पड़ी। कृष्ण समझ गये कि मित्र का मन बहन की ओर खिंच गया है। उन्होंने हँस कर कहा :—

मित्र ! तुम वनवासी होकर भी स्त्री के नैनबाणों से चञ्चल हो उठे ! अपने मन की बात हमसे जी खोल कर कहो।

अर्जुन ने कहा :—हे कृष्ण ! तुम्हारी बहन बड़ी ही लावण्यमयी है। वह किसके मन को हरण नहीं कर सकती ? इसके साथ किस तरह हमारा विवाह हो सकता है, इसका तुम्हें कोई उपाय करना चाहिए।

कृष्ण कुछ देर सोच कर बोले :—

हे अर्जुन ! क्षत्रियों के लिए तो स्वयंवर ही सबसे अच्छा कहा जाता है। किन्तु स्त्रियों के मन की बात कोई क्या जाने। बलपूर्वक कन्या-हरण की चाल भी क्षत्रियों में है। यही एक उपाय ठीक मालूम होता है। स्वयंवर के समय सुभद्रा किसको पसन्द करेगी, इसका कुछ निश्चय नहीं। इसलिए तुम इसे बलपूर्वक ग्रहण करो।

अर्जुन ने कृष्ण से सलाह करके दूत-द्वारा सब हाल युधिष्ठिर को कहला भेजा। उत्तर में युधिष्ठिर ने भी वही सलाह दी जो कृष्ण ने दी थी। इसके बाद, उत्सव के समाप्त होने पर, जब सुभद्रा रैवतक पर गई तब अर्जुन ने कृष्ण की अनुमति से कवच, ढाल, दस्ताने और अस्त्र-शस्त्र धारण करके, सुन्दर रथ पर सवार हो, सुभद्रा का पीछा किया।

सुभद्रा देवताओं की पूजा कर, ब्राह्मणों का आशीर्वाद ले, और महापर्वत रैवतक की प्रदक्षिणा कर, द्वारका को लौट रही थी कि इतने में प्रेम से मस्त अर्जुन ने उसको सहसा पकड़ लिया और रथ में बिठा कर बड़ी फुर्ती से अपनी राजधानी खाण्डवप्रस्थ की ओर चले।

यादवों के सभा-रक्षक ने, एक सिपाही से सुभद्रा के हरे जाने का हाल सुन कर, सुनहली तुरही बजा कर सबको होशियार किया। तुरही का तेज़ शब्द सुनते ही भोज, वृष्णि और अन्धक वंश के बड़े बड़े लोग शीघ्र ही सभा में आ पहुँचे और मणियों से जड़े हुए सोने के सिंहासनों पर बैठ कर सभारक्षक से सब वृत्तान्त सुना।

अर्जुन के इस बुरे व्यवहार से यादव-वीरों को बड़ा क्रोध आया। उनकी आँखें लाल हो गईं। उन्होंने उठ कर सारथियों को रथ सजाने की आज्ञा दी। इस समय नशे में चूर, नील वस्त्र पहने हुए बलदेव सहसा बोले :—

हे वीरगण ! तुम क्या कहते हो ? कृष्ण स्थिर-चित्त से चुपचाप खड़े हैं; उनकी आज्ञा के बिना इतना क्रोध करना और गरजना व्यर्थ है।

यह बात सुन कर सब लोग चुप हो गये। तब बलदेव कृष्ण से कहने लगे :—

हे भाई! देखो, सभी तुम्हारी बात सुनने का रास्ता देख रहे हैं। तुम चुप क्यों हो? तुम्हारे ही कहने से हमने इस कुरुवंश के पापी अर्जुन का इतना आदर किया था। उसी का यह फल है जो आज इस नीच के द्वारा इस तरह अपमानित हुए हैं। उसका यह व्यवहार हमारे सिर पर लात मारने के तुल्य है। हे गोविन्द! इसे क्या हम चुपचाप सहेंगे? कहो तो हम अकेले ही पृथ्वी भर के कौरवों को मार इसका बदला ले लें।

अन्य यादवों ने भी बादलों की तरह गरज कर बलदेव की इस बात का समर्थन किया। तब कृष्ण, सबको शान्त करके, धीरे धीरे युक्ति से भरी हुई बातें कहने लगे :—

हे आर्य्य! हे यादव! अर्जुन ने हमारे कुल का अपमान नहीं किया; किन्तु उलटा हमारे सम्मान की रक्षा की है। उन्होंने हमको लालची नहीं समझा; इसलिए धन के द्वारा सुभद्रा को पाने की चेष्टा उन्होंने नहीं की। यह समझ कर कि स्वयंवर का फल न जाने क्या हो, उन्होंने उसकी परवा नहीं की। क्षत्रिय लोग माता-पिता की आज्ञा लेना वीरों का काम नहीं समझते। इसलिए उन्होंने सुभद्रा का हरण करना ही सबसे अच्छा समझा। यह हमारे भी कुल के योग्य हुआ है। अर्जुन को मामूली आदमी न समझना। उनकी उन्नति से भरतकुल की शोभा है। इसलिए दुख का कोई कारण नहीं है। हमारी समझ में शीघ्र ही अर्जुन के पास जाकर उनको शिष्टाचार से लौटा लाना उचित है। यदि उन तक हमारे पहुँचने के पहले ही वे अपने नगर पहुँच जायँगे तो हम लोगों के लिए यह बड़ी बदनामी की बात होगी।

कृष्ण की बातों से यादवों का क्रोध जाता रहा। उन्होंने उनका उपदेश मान लिया और अर्जुन तथा सुभद्रा को लौटा कर द्वारका में यथारीति उनका विवाह कर दिया। इसके बाद अर्जुन एक वर्ष तक वहाँ रहे।

फिर पुष्करतीर्थ में बाक़ी सब समय बिता कर वनवास के बारह वर्ष पूरे हो जाने पर सुभद्रा को लेकर अर्जुन खाण्डवप्रस्थ लौटे। वहाँ पहले वे राजा के पास गये। फिर ब्राह्मणों की पूजा की। तदनन्तर जल्दी से द्रौपदी के पास पहुँचे। किन्तु द्रौपदी ने स्त्रियों के स्वभाव के अनुसार बनावटी क्रोध दिखा कर कहा :—

जहाँ सुभद्रा हो वहीं जाइए। इसमें सन्देह नहीं कि यदि भारी चीज़ अच्छी तरह बाँध भी दी जाय तो भी उसका बन्धन धीरे धीरे ढीला पड़ जाता है। द्रौपदी ने ऐसी

ही तरह तरह की हँसी करना आरम्भ किया। अर्जुन ने उन्हें शान्त करने की चेष्टा की और बार बार उनसे क्षमा माँगी।

अन्त में उन्होंने सुभद्रा को ग्वालिन के वेश में अन्तःपुर भेजा। उस वेश में सुभद्रा और भी सुन्दर मालूम होने लगी। ग्वालिन का रूप बनाये ही वह घर गई और कुन्ती के चरण छुए। कुन्ती ने प्रसन्नमन से उस सर्वाङ्गसुन्दरी का माथा सूँघा और जी भर कर आशीर्वाद दिया। सुभद्रा वहाँ से द्रौपदी के यहाँ गई और प्रणाम करके बोली:—

आर्य्ये! आज से मैं तुम्हारी दासी हुई।

तब द्रौपदी कुछ शान्त हुई और यह कह कर उसे गले से लगाया कि तुम्हारे पति का वैरी न रहे!

सुभद्रा ने भी उत्तर में कहा—ऐसा ही हो।

अर्जुन के लौट आने से सब भाई बड़े आनन्दित हुए।

सुभद्रा और अर्जुन के कुशलपूर्वक पहुँच जाने की ख़बर द्वारका पहुँची। वहाँ से कृष्ण, बलदेव, सात्यकि और प्रद्युम्न आदि भोज, वृष्णि, अन्धक-वंशी यादव असंख्य सेना के साथ बहुत सा दायज का सामान लेकर खाण्डवप्रस्थ आये।

युधिष्ठिर ने उनकी अगवानी के लिए नकुल और सहदेव को आगे से भेजा। सड़कों पर शीतल सुगन्धित चन्दन के रस का छिड़काव हुआ; इससे उनमें धूल का नामो-निशान तक न रह गया। यादव लोगों से वे आदर के साथ मिले। ध्वजा-पताका से शोभित खाण्डवप्रस्थ में जब उन लोगों ने प्रवेश किया तब नगर-निवासियों ने उनका अच्छा सत्कार किया। जलते हुए गुग्गुल के धुयें और सुगन्धित फूलों की मालाओं से शोभित सड़कों को पार करते हुए वे इन्द्रपुरी के समान राजभवन में गये।

युधिष्ठिर ने बलदेव का यथोचित सत्कार करके कृष्ण को गले से लगाया। इसके पीछे बड़े बड़े यादव वीरों का यथोचित आदर किया। जब सब लोग बैठ गये तब कृष्ण ने अर्जुन को चार घोड़े का रथ, मथुरामण्डल की गायें, तेज़ चलनेवाले घोड़े, सेवा करने में कुशल दासियाँ और बहुत से वस्त्र, अलङ्कार आदि कितनी ही चीज़ें दायज में दीं।

कुछ दिन खाण्डवप्रस्थ में रह कर बलदेव और अन्य यादव लोग द्वारका लौट गये। लौटते समय बहुमूल्य चीज़ें उनकी भेंट की गईं। कृष्ण अर्जुन के साथ रह गये।

इसी समय सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु नामक अर्जुन का एक तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ। अभिमन्यु के उत्पन्न होते ही अर्जुन ने ब्राह्मणों को बहुत सी गायें और सुवर्ण-दान दिया। उसके जातकर्म्म आदि सब शुभ काम कृष्ण ने ख़ुद किये। द्रौपदी के

गर्भ से भी पाँच पतियों के पाँच पुत्र हुए। युधिष्ठिर के प्रतिविन्ध्य, भीमसेन के सुत-सोम, अर्जुन के श्रुतकर्म्मा, नकुल के शतानीक और सहदेव के श्रुतसेन।

एक दिन अर्जुन ने कृष्ण से कहा:—

मित्र! आज कल बड़ी गर्मी पड़ती है। इसलिए चलो कुछ दिन यमुना के किनारे रहें।

कृष्ण को भी यह बात पसन्द आई। दोनों यमुना के किनारे रमणीय स्थानों में भ्रमण करने लगे।

एक दिन नदी के किनारे बैठे वे तरह तरह की बातें कर रहे थे कि इतने में तपे हुए सोने के रङ्ग का, पिङ्गल वर्ण, घनी दाढ़ीवाला एक लम्बा पुरुष सामने आकर बोला:—

हम ब्राह्मण हैं। सदा अधिक भोजन करते हैं। तुमसे अपने भोजन के लिए कुछ माँगते हैं।

अर्जुन और कृष्ण ब्राह्मण को भोजन देने पर राज़ी होकर बोले:—

हे ब्राह्मण! अनेक प्रकार के अन्नों में से आप क्या खाना चाहते हैं?

तब ब्राह्मण बोला:—

हम अग्नि हैं। हम अन्न नहीं खाते। बहुत दिनों से हमारी इच्छा है कि खाण्डव वन जला कर और वहाँ के जीव-जन्तुओं को खाकर हम तृप्त हों। किन्तु उस वन में इन्द्र का मित्र नाग-राज तक्षक रहता है। हमने जितनी बार वन जलाने की चेष्टा की उतनी ही बार इन्द्र ने, इस डर से कि खाण्डव के जल जाने से तक्षक भी जल कर मर जायगा, हमको जलाते हुए देख पानी बरसा कर हमारा मतलब सिद्ध न होने दिया। इसलिए आप से हम यही माँगते हैं कि आप हमारी मदद कीजिए और अस्त्र लेकर न तो प्राणियों को ही भागने दीजिए और न इन्द्र को पानी ही बरसाने दीजिए।

अर्जुन ने उत्तर दिया:—

हे अग्नि! आपकी इच्छा हम अवश्य पूरी करेंगे। पर हमारे पास न तो ऐसा धनुष ही है जो देर तक हमारी भुजाओं के वेग को सह सके और न ऐसा रथ ही है जो अस्त्र रखने और अधिक समय तक युद्ध में काम देने के योग्य हो। कृष्ण के पास भी कोई ऐसा हथियार नहीं है जो उनके चलाने योग्य हो।

अर्जुन की बात सुनते ही अग्नि ने जल के देवता वरुण को याद किया। वरुण देवता के आने पर अग्नि महाराज बोले:—

हे जलेश्वर! सोमराज ने जो प्रचंड धनुष, कभी नाश न होनेवाली दो तरकशें,

और बन्दर के निशानेवाला रथ तुम्हें दिया था, उन सब चीज़ों को ले आओ। अर्जुन उनसे बहुत बड़ा काम करेंगे।

वरुणराज ने अग्नि की प्रार्थना मान ली और हमेशा तीरों से भरे रहनेवाले तरकश के साथ गाण्डीव नाम का प्रसिद्ध धनुष और वानर के चिह्नवाला, बड़े तेज़ घोड़ों से जुता हुआ, तथा लड़ाई के सामान से भरा हुआ एक रथ लाकर अर्जुन को दिया।

अग्नि ने कृष्ण को सुदर्शनचक्र नाम का एक बड़ा अच्छा अस्त्र देकर कहा :—

हे कृष्ण! यह चक्र फेंके जाने पर शत्रु को मार कर फिर आपके हाथ में लौट आवेगा।

तब अस्त्र-शस्त्र धारण कर और रथ में बैठ दोनों वीर बड़े प्रसन्न हुए और अग्नि से बोले :—

भगवन्! आप बे-खटके खाण्डव वन के चारों ओर प्रज्वलित होकर उसे जलाइए। इस रथ और इन हथियारों की बदौलत अब हमें किसी का डर नहीं। अब हमें कोई नहीं जीत सकता।

यह सुन भगवान् अग्नि ने बड़ा ही उग्र रूप धारण किया और अपनी सातों जीभें निकाल कर खाण्डव जलाना आरम्भ किया।

कृष्ण और अर्जुन वन के दोनों ओर खड़े होकर जीवधारियों को आग के मुँह में डालने लगे। क्या पशु, क्या पक्षी, कोई भी अर्जुन के बाणों और कृष्ण के चक्र से भागने न पाया। तालाब तेज़ आँच से उबलने लगे। मछलियों ने छटपटा कर प्राण दे दिये।

धीरे धीरे जब जलती हुई आग की लपटें आकाश तक पहुँचीं और देवताओं को जलाने लगीं तब इन्द्र ने पानी बरसाना आरम्भ किया। पर आग की विकट गर्मी से पानी की धारें आकाश ही में सूख कर न मालूम कहाँ चली गईं। तब इन्द्र को बड़ा क्रोध आया। सब बादलों को इकट्ठा करके वह मूसलधार पानी बरसाने लगा। पानी की धारा खाण्डव वन के ऊपर पड़ती देख अर्जुन ने अपने बाणों के जाल से आकाश ढक दिया। इससे एक बूँद भी पानी अग्नि तक न पहुँचा।

सर्पराज तक्षक इस समय कुरुक्षेत्र गये थे। पर उनका पुत्र अश्वसेन खाण्डव वन में ही रहता था। वह, आग से कई बार भागने की चेष्टा करने पर भी, अर्जुन के मारे न भागने पाया। तब तक्षक की स्त्री ने पुत्र को बचाने की चेष्टा करने में ख़ुद अपने प्राण गँवाये। यह दशा देख कर इन्द्र ने प्रचण्ड बाण-वर्षा के द्वारा अर्जुन को थोड़ी देर बेहोश करके अश्वसेन को भाग जाने का अवसर दिया।

अर्जुन इस धोखेबाज़ी से क्रुद्ध होकर इन्द्र से और भी घोर युद्ध करने लगे। इन्द्र

की प्रेरित बिजली की निरन्तर कड़क, वज्रों की लगातार मार और बादलों की घटाओं की विकट गर्जन से मानों प्रलय-काल आ पहुँचा। पर सब प्रकार के युद्धों में निपुण अर्जुन ने उत्तमोत्तम दिव्य अस्त्र चला कर, इन्द्र के शस्त्रास्त्रों को एकदम व्यर्थ कर दिया। अन्त में उन्होंने मन्त्र से पवित्र किये हुए वायु के अस्त्र द्वारा मेघों को न जाने कहाँ उड़ा कर क्षण मात्र में ही आकाश को साफ़ कर दिया। यह समझ कर कि अर्जुन को जीतना बड़ा कठिन काम है, इन्द्र ने भी अग्नि के जलाने के काम में विघ्न डालने से हार मानी। खाण्डव वन के रहनेवाले सभी दानव, राक्षस, साँप, हाथी और सिंह अग्नि के भयङ्कर मुख में पड़ कर मर गये। उनकी घोर ध्वनि से चारों दिशायें गूँज उठीं।

तक्षक के घर में मय नाम का एक दानव रहता था। वह कृष्ण के चक्र के भय से भागने का रास्ता न पा कर डर के मारे अर्जुन की शरण में आया और रक्षा करो, रक्षा करो, कह कर उनके पैरों पर गिर पड़ा। अर्जुन को दया आगई। उन्होंने यह कह कर उसे धीरज दिया कि डरो मत, डरने की कोई बात नहीं। कृष्ण ने उनकी बात रखने के लिए दानव को छोड़ दिया। अग्नि ने भी उसको जीव-दान देना स्वीकार किया।

इस भयङ्कर खाण्डव-दाह से सिर्फ़ अश्वसेन, मय दानव और मन्दपाल ऋषि के चार पुत्र जलने से बचे। ये चारों पुत्र शार्ङ्ग नामक पक्षी के छोटे छोटे बच्चों के रूप में थे। भगवान् अग्निदेव पन्द्रह दिन तक जलते रहे और अनन्त जीव भक्षण कर तृप्त हुए। इन्द्र भी कृष्ण और अर्जुन के अद्भुत बल-वीर्य्य से बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन को उन्होंने वर दिया कि महादेव को प्रसन्न करने से तुम्हें आग्नेय, वायव्य आदि जितने दिव्य अस्त्र हैं सब प्राप्त होंगे। कृष्ण ने सिर्फ़ यही वर माँगा कि अर्जुन के साथ उनकी मित्रता कभी न टूटे। जब अग्नि और इन्द्र चले गये तब मय दानव को लेकर दोनों मित्र फिर यमुना किनारे चले आये।

इसके बाद मय दानव ने हाथ जोड़ कर कहा:—

हे अर्जुन! आपने क्रुद्ध कृष्ण और जलाने के लिए तैयार अग्नि से हमें बचाया है। इसलिए आज्ञा दीजिए, बदले में मैं आपका क्या उपकार करूँ?

अर्जुन ने कहा:—हे महाशूर! तुम हमसे सदा सन्तुष्ट रहो। बदले में किसी उपकार के पाने की हमारी इच्छा बिलकुल नहीं है।

मय ने कहा:—हे प्रभो! आपने अपने बड़प्पन के अनुसार ही बात कही है। किन्तु हमारी बड़ी इच्छा है कि आप प्रीतिपूर्वक हमसे कुछ ज़रूर लें। हम दानव-कुल के विश्वकर्म्मा हैं। इसलिए आपका कोई न कोई काम हम ज़रूर कर सकेंगे।

अर्जुन ने कहा :—हे कृतज्ञ ! तुमको मौत के मुँह से बचा कर कृतज्ञता के रूप में हम उसका बदला नहीं लेना चाहते। पर तुमको भी चिरकाल तक अपना ऋणी बनाये रखने की हमारी इच्छा नहीं है। इसलिए यदि तुम कृष्ण का कोई प्रिय काम कर सको तो हम बहुत प्रसन्न होंगे।

तब मय दानव ने कृष्ण से आज्ञा माँगी। उन्होंने कुछ देर सोच कर कहा :—

हे शिल्प-कर्म्म-विशारद ! तुम महाराज युधिष्ठिर के लिए खाण्डवप्रस्थ में एक ऐसी सभा बनाओ जैसी किसी ने पहले भी न देखी हो और हज़ार कोशिश करने पर भविष्यत् में भी वैसी न बना सके।

मय दानव कृष्ण की आज्ञा पा कर सभा बनाने के प्रबन्ध में लगा।

६—पाण्डवों का सबसे बड़ा राजा होना

कृष्ण और अर्जुन ने, यमुना-तीर से नगर में लौट कर, खाण्डवदाह का सब हाल युधिष्ठिर से कह सुनाया। मय दानव ने जो सभा बनाना स्वीकार किया था उसकी भी सूचना उन्होंने दी। इसके सिवा और जितनी घटनायें हुई थीं वे भी युधिष्ठिर को सुनाईं।

उधर मय दानव पूर्वोत्तर दिशा की ओर रवाना हुआ और कैलास के उत्तरी भाग में, मैनाक पर्वत के पास, दानवों के राज्य में एक बड़े पर्वत पर पहुँचा। उसके पास ही बिन्दु नाम के एक सरोवर के निकट पूर्वकाल में दानवों ने एक बड़ा भारी यज्ञ किया था। उसके लिए बनाये गये सभा-मण्डप का आश्चर्य-जनक सामान वहाँ रक्खा था।

वहाँ से मनमानी चीज़ें लेकर मय खाण्डवप्रस्थ पहुँचा और युधिष्ठिर से मिला। युधिष्ठिर ने उसका अच्छा सत्कार किया। एक अच्छे दिन सभाभूमि का विस्तार पाँच हज़ार हाथ नाप कर उस पर उसने कृष्ण के अभिप्राय के अनुसार कुछ देवताओं, कुछ मनुष्यों, और कुछ दैत्यों के ढँग का, सुनहला, खूब ऊँचा, वृक्षों के समान खम्भोंवाला और मणियों से जड़ा हुआ एक अद्भुत सभा-मण्डप बनाना आरम्भ किया।

धीरे धीरे नाना प्रकार के स्फटिक मणि और माणिक्यों से सजी हुई सभा-मण्डप की छत, आँगन और दीवारें अपूर्व शोभा को धारण करने लगीं। सभा के बीचों बीच स्फटिक की सीढ़ियोंदार और रत्नों से जड़ी हुई वेदिका से शोभित एक स्वच्छ जल का सरोवर बनाया गया। मंडप के चारों ओर की भूमि कमलों से परिपूर्ण सरोवरों,

छायादार पेड़ों की क़तारों और सुगन्धित फूलों की वाटिकाओं से सजाई गई। जल और थल के फूलों की सुगन्ध से मिली हुई वायु से सभा ख़ूब सुगन्धित हो उठी।

खाण्डवप्रस्थ में कुछ दिन बड़े सुख से बिता कर कृष्ण ने, पिता के दर्शनों के लिए बड़े उत्सुक होकर, घर जाने की इच्छा प्रकट की। अपनी बुआ कुन्ती और युधिष्ठिर की चरण-वन्दना करके उन्होंने घर जाने की आज्ञा प्राप्त की। फिर अपनी बहन सुभद्रा को तरह तरह की उपदेश-पूर्ण बातें सुना कर उन्होंने धीरज दिया और सुभद्रा ने माता तथा स्वजनों के लिए जो सन्देसा कहा उसे कह देने का भार अपने ऊपर लिया।

इसके बाद उन्होंने स्नान करके अलङ्कार आदि पहने और पूजा कर चुकने पर चलने के लिए तैयार होकर घर से बाहर निकले। वहाँ स्वस्ति-पाठ करनेवाले ब्राह्मणों ने उनका अभिनन्दन किया—उन्हें नाना प्रकार के आशीर्वाद दिये। कृष्ण अपने गरुड़ के चिह्नवाले रथ पर सवार हुए। युधिष्ठिर और अर्जुन भी बड़े प्रेम से उनके साथ बैठे। युधिष्ठिर ने, दारुक सारथि को अलग बिठा कर, घोड़ों की रास ख़ुद अपने हाथ में ली। बाक़ी पाण्डव लोग उनके पीछे पीछे रथ पर चले।

इस तरह दो कोस जाने पर कृष्ण ने युधिष्ठिर के चरणों पर शीश रख कर उनसे लौट जाने के लिए कहा। तब युधिष्ठिर ने पैरों पर पड़े हुए कृष्ण को उठा कर उन्हें द्वारका जाने की अनुमति दी। अर्जुन और भीम ने आलिङ्गन तथा नकुल और सहदेव ने प्रणाम करके उनको बिदा किया।

कृष्ण के चलने पर पाण्डव लोग उस समय तक उनके वायु की तरह तेज़ चलने-वाले रथ की ओर एकटक देखते रहे जिस समय तक रथ उनकी निगाह के सामने रहा। उन लोगों का मन कृष्ण ही के साथ गया। शरीर मात्र वहाँ रह गया। कुछ देर बाद, कृष्ण का रथ अदृश्य हो जाने पर, कृष्ण की याद और उनके सम्बन्ध की प्रीति से भरी हुई बातें करते हुए वे अपने घर लौटे।

इधर चौदह महीने तक सभा बनने का काम बराबर जारी रहा। अन्त में मय दानव ने युधिष्ठिर को सभा बन जाने की ख़बर दी। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अनेक देशों से आये हुए ब्राह्मणों को घी-दूध से बनी हुई चीज़ें, फल, मूल, मृगमांस आदि भोजन, और वस्त्र—माला आदि से तृप्त करके सभा में प्रवेश किया। वहाँ मङ्गल-पाठ की ध्वनि आकाश तक गूँजने लगी। युधिष्ठिर के मन में भक्ति-भाव का वेग प्रबल हो उठा। उन्होंने गीत, वाद्य और फूलों के द्वारा देवताओं की पूजा और स्थापना की।

इसके बाद आये हुए लोगों के द्वारा पूजित होकर भाइयों के साथ युधिष्ठिर उस

जी लुभानेवाली सभाभूमि में घूमने लगे। घूमघाम कर मण्डप के बीचों बीच सिंहासन पर वे बैठे। इसी समय कुछ तेजस्वी ऋषियों के साथ देवर्षि नारद आ पहुँचे। पहले तो उन श्रेष्ठ ऋषियों ने तरह तरह के क़िस्से-कहानियों और प्रश्नों के बहाने युधिष्ठिर को राज-धर्म-सम्बन्धी नाना प्रकार के सार-गर्भित उपदेश दिये। फिर सभा की मनोहरता से प्रसन्न होकर वे बोले :—

महाराज! मणियों से जड़ी हुई तुम्हारी इस सभा के समान दूसरी सभा मनुष्य-लोक में न हमने और कहीं देखी और न सुनी। यह सिर्फ़ देवताओं की सभाओं के साथ तुलना के योग्य है।

यह कह कर सभा में बैठे हुए लोगों का कौतूहल दूर करने के लिए, तीनों लोकों में घूमनेवाले, वर्णन करने में चतुर, महामुनि नारद देवलोक की तरह तरह की सभाओं का हाल कहने लगे।

यम की सभा के राजा लोगों का, वरुण देव की सभा के नाग और दैत्यकुल का, कुबेर की सभा में विहार करनेवाले यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और अप्सराओं का, तथा ब्रह्मा की सभा के महर्षि और देवताओं का वर्णन करके, अन्त में, नारद ने सुरलोक के स्वामी इन्द्र की सभा में रहनेवाले पुण्यात्मा राजा हरिश्चन्द्र का हाल कहा।

उनकी बात समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने पूछा :—

हे मुनिवर! राजा हरिश्चन्द्र ने ऐसा कौन सा पुण्यकर्म्म और तपश्चर्य्या की थी जिससे उन्होंने इन्द्र की बराबरी का दर्जा पाया।

देवर्षि नारद ने कहा :—

महाराज! सातों द्वीपों को जीत कर उन्होंने अन्त में राजराजेश्वरों ही के करने योग्य राजसूय नामक यज्ञ किया था। हे धर्मराज! जो चारों दिशाओं के राजाओं को अपने वश में करके इस बड़े यज्ञ को करता है वही इन्द्र के पद को पा सकता है।

यह कह कर नारद ने विदा माँगी और चल दिया।

राजसूय यज्ञ की महिमा सुन कर युधिष्ठिर ने ठंडी साँस ली। राजा हरिश्चन्द्र के आश्चर्य्यजनक फल पाने की बात वे जितनी ही अधिक सोचने लगे उतनी ही अधिक इस यज्ञ के करने की इच्छा उनके मन में बलवती होने लगी।

इसके लिए पहले तो उन्होंने बहुत ही अच्छी तरह राज्य करके प्रजा को ख़ूब प्रसन्न किया। युधिष्ठिर के धर्म्माचरण, भीम के पालन-पोषण, अर्जुन के शत्रु-नाश, नकुल की नम्रता और सहदेव के धर्मोपदेश से सबकी व्यथा, भय, रोग और चिन्ता

आदि दूर हो गई। शास्त्र के अनुसार कर लेने और धर्म के अनुसार राज्यशासन करने से सारी प्रजा सुखी हो गई। धन-जन की कोई शिकायत बाक़ी न रही। पाण्डवों के शील-स्वभाव और अच्छे कामों से प्रसन्न होकर जीते हुए राजा लोगों ने बिना सिर हिलाये कर देकर पूरे तौर पर उनकी अधीनता स्वीकार की।

धीरे धीरे युधिष्ठिर ने जब अवस्था अनुकूल समझी तब वे मन्त्रियों और भाइयों से राजसूय यज्ञ की बार बार चर्चा करने लगे।

मन्त्री प्रशंसापूर्वक कहने लगे :—

महाराज ! क्षत्रियों में जैसा बल होना चाहिए वैसा होने से राजसूय यज्ञ सहज ही में हो सकता है। इस समय सभी आपके अधीन हैं। इसलिए बिना किसी चिन्ता के आप इस यज्ञ को आरम्भ कर सकते हैं।

भाइयों ने अपने अपने बल-वीर्य्य के द्वारा युधिष्ठिर को भारतवर्ष का सबसे बड़ा राजा बनाने में सहायता देना स्वीकार किया।

यह देख कर कि सबने उनकी बात का समर्थन किया, युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु इतने पर भी उनका सन्देह अच्छी तरह दूर नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया कि राज-काज की बातों को सबसे अधिक समझनेवाले अद्भुत बुद्धिमान् कृष्ण से सलाह लिये बिना कोई काम करना अच्छा नहीं।

इस इरादे से उन्होंने तेज़ चलनेवाले रथ पर एक दूत द्वारका भेजा। युधिष्ठिर हमसे मिलना चाहते हैं, यह बात मालूम होते ही कृष्ण आये हुए रथ पर तुरन्त बैठ गये और खाण्डवप्रस्थ पहुँच कर बुलाने का कारण पूछा।

युधिष्ठिर बोले :—हे कृष्ण ! हम राजसूय यज्ञ करने के लिए बड़े उत्सुक हैं। किन्तु तुम्हारी सलाह लिये बिना हम कुछ नहीं कर सकते। यहाँ कोई तो बन्धुत्व के कारण हमारी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहता। कोई स्वार्थ के वश होकर ख़ुशामद के मारे हमारी सब बातों का समर्थन करता है। हे बुद्धिमान् ! हम अकेले तुम्हीं से यथार्थ उपदेश पाने की आशा रखते हैं।

इसके उत्तर में कृष्ण ने कहा :—

महाराज ! आप बड़े गुणवान् हैं। कौन बातें ऐसी हैं जो आपमें नहीं ? इसलिए आप इस यज्ञ को हर तरह से कर सकते हैं। पूर्वकाल में कोई राजा प्रजा-पालन से, कोई धन के बल से, कोई भुजाओं के बल से, कोई तपस्या के बल से साम्राज्य प्राप्त करके सारे भारत के राजा होते थे, अर्थात् वे सम्राट् बनते थे। उन्हें सारे माण्डलिक

राजे सिर झुकाते थे। किन्तु तुममें ये सब गुण इकट्ठे देखे जाते हैं। पर इच्छानुसार साम्राज्य पाने में इस समय एक बाधा है। पहले उसे दूर करना ज़रूरी है।

परम प्रतापी मगध के राजा जरासन्ध के भयानक प्रभाव से आस-पास के सब राजे डरते हैं। जो भाग नहीं गये वे सब जरासन्ध के अधीन हुए हैं। हे धर्म्मराज! तुम्हें तो मालूम ही है कि कुछ दिन पहले जब हमारे मामा दानवराज कंस ने यादवों पर घोर अत्याचार करना आरम्भ किया था तब हमने सबका उद्धार करने के लिए उसे मारा था। कंस को जरासन्ध ने अपनी कन्या दी थी। इसलिए उस समय से वह दुरात्मा हम पर अत्यन्त क्रुद्ध है। तुम्हारे मामा वसुदेव को उसकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी है। उसी के कारण बाकी यादवों के साथ हम लोगों को मथुरा से भाग कर द्वारका में रहना पड़ता है। कभी कभी उसकी दुष्टता से द्वारका भी छोड़ कर रैवतक पर्वत पर कुशस्थली नामक सुरक्षित किले में हम लोगों को आश्रय लेना पड़ता है। महाबली शिशुपाल, जरासन्ध से हार कर, उसका सेनापति हुआ है। तुम्हारे पिता के मित्र, यवननरेश भगदत्त, उसे कर देने के लिए लाचार हुए हैं। इससे भी सन्तुष्ट न होकर बल के घमंड से चूर मगधराज ने बहुत से राजों को जीत कर और उन्हें अपने राज्य में लाकर महादेव के मन्दिर में बलि चढ़ाने के इरादे से उनको क़ैद कर रक्खा है। हे युधिष्ठिर! तुम्हारे सिवा कम शक्तिवाले किसी राजा में यह ताब नहीं कि इस नीच राजा के घमण्ड को चूर्ण करे। बिना उसे मारे सम्राट् होने की आशा करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है।

मगधनरेश के प्रचण्ड पराक्रम की बात सुन कर युधिष्ठिर अधीर हो उठे। उन्होंने कहा :—

हे कृष्ण! अच्छा हुआ जो हमने तुमसे सलाह ली। अब तक किसी ने हमको जरासन्ध के पराक्रम की ख़बर नहीं दी थी। यदुवीरों के साथ जब तुम्हें भी भागना पड़ा तब हम उसको कैसे जीत सकते हैं? और साम्राज्य पाने के लोभ से स्वार्थ के वशीभूत होकर भीम और अर्जुन को हम उस अद्भुत बलवान्, सब तरह की सहायतावाले, दुरात्मा के साथ युद्ध करने कैसे भेजें। जो हो, हम सब कुछ तुम्हीं पर छोड़ते हैं। इसलिए तुम्हीं कहो, अब क्या करना चाहिए?

यह सुन कर भीम बोले :—

इसमें सन्देह नहीं कि कमज़ोर और हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहनेवाले मनुष्य के लिए कोई उपाय नहीं है। पर हाँ, कमज़ोर आदमी कौशल और उत्साह से अपने से

अधिक बली को ज़रूर हरा सकता है। यह निश्चय समझिए कि हमारा बल और अर्जुन की अस्त्र-शिक्षा, कृष्ण की बुद्धि की सहायता पाकर, सहज ही में सब काम सिद्ध कर सकती है।

अर्जुन बोले :—हे आर्य्य! वीरता, यश, बल और अपना पक्ष लेनेवाले योग्य पुरुष बड़ी कठिनता से मिलते हैं। पर ईश्वर की कृपा से ये सब हमें प्राप्त हैं। इस समय हम इन साधनों को क्यों व्यर्थ जाने दें। यदि प्राण-नाश होने के डर से युद्ध से जी चुराना हो तो शान्तभाव से वनवास करना ही अच्छा है। शत्रु को जीत कर अपनी बढ़ती करना ही क्षत्रियों का सच्चा धर्म है।

कृष्ण बोले :—हे धर्मनन्दन! अर्जुन ने वही बात कही जो उन्हें कहनी चाहिए। उनका कहना यथार्थ है। चाहे दिन हो चाहे रात, मृत्यु कभी न कभी ज़रूर ही आवेगी। युद्ध से दूर रह कर कोई अमर हो गया हो, यह तो हमने कभी सुना नहीं। यदि दोनों पक्षवालों का बल बराबर है तो जो चतुराई से काम लेता है वही जीतता है। हम यह तो कहते नहीं कि जरासन्ध से रीति के अनुसार युद्ध किया जाय। यदि हम अपने छिद्र छिपाकर उसके छिद्रों का सहारा ले सकें तो निश्चय ही हमारी जीत होगी। और यदि हम लोग हार भी जायँ तो भी हम लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होगी, क्योंकि हमारा उद्देश अच्छा है।

कुछ देर सोच कर बुद्धिमान् कृष्ण फिर कहने लगे :—

देखिए महाराज! हम नीति जानते हैं, भीम बलवान् हैं, और अर्जुन अस्त्र-विद्या में निपुण हैं। हम लोग यदि छिपे छिपे जरासन्ध के घर में घुस कर उससे युद्ध करने को कहें तो वह निश्चय ही बल के नशे में चूर होकर भीमसेन के साथ मल्लयुद्ध करने पर राज़ी हो जायगा। उस समय हम लोग भीम की रक्षा करेंगे और अपने उपदेश द्वारा उन्हें मदद पहुँचायेंगे। इस तरकीब से जरासन्ध के साथ मल्लयुद्ध करने में भीम निश्चय ही जीतेंगे। इसलिए अधिक द्विविधा न कीजिए; विश्वासपूर्वक भीम और अर्जुन को हमारे साथ कर दीजिए।

तब युधिष्ठिर को धीरज हुआ। उन्होंने कहा :—

हे मधुसूदन! तुम्हें हमसे अब पूछ पाछ की ज़रूरत नहीं। तुम अपने को पाण्डवों का नायक समझो। हम सब तुम्हारे आश्रित हैं। जो जी में आवे करो।

कृष्ण, युधिष्ठिर की इस आज्ञा के अनुसार, भीम और अर्जुन के साथ, स्नातक

ब्राह्मणों के समान कपड़े पहन कर, मगध देश की ओर चले। तीनों वीरों को जाते देख सबने मन ही मन निश्चय किया कि अबकी बार जरासन्ध मारा जायगा।

कुरु और कुरुजाङ्गल देशों के बाद और बहुत से देश, नद नदी पार करके अन्त में तीनों बन्धु कुण्ड, तालाब और वृक्षों से युक्त गोरथ पर्वत पर पहुँचे। वहाँ से उन्हें सामने फैली हुई मगध की राजधानी दिखाई पड़ी।

कृष्ण बोले :—हे अर्जुन ! यह देखो सुन्दर रमणीक राजभवनों से सजा हुआ मगध-राज्य देख पड़ता है। इन पहाड़ों से घिरे हुए देश में रह कर इतने दिनों तक जरासन्ध ने राजों पर मनमाना अत्याचार किया है। यह स्थान ही ऐसा विकट है कि इस पर कोई सहज में धावा नहीं कर सकता। आज हम जरासन्ध का घमण्ड चूर्ण करेंगे।

इसके बाद तीनों वीरों ने नगर में जाकर देखा कि फाटक पर एक ऊँचा चबूतरा सा बना हुआ है, जिसे सब लोग पूज रहे हैं। उसी के निकट जीत कर मारे गये एक दानव के चमड़े की बनी हुई प्रचण्ड गर्जना करनेवाली तीन भेरियाँ रक्खी हैं। चबूतरे और भेरियों को तोड़-फोड़ कर कृष्ण, भीम और अर्जुन को लिये हुए, प्रसन्नतापूर्वक नगर में घुसे और राज-पथ से जरासन्ध के महल की ओर चलने लगे। रास्ते में तरह तरह की खाने की चीज़ों और फूल-मालाओं से शोभित दूकानें देख कर उन्होंने मालियों से ज़बरदस्ती तीन मालायें छीन कर अपने अपने कंठ में धारण कर लीं।

इधर मगध नगर में उस दिन तरह तरह के अशकुन हो रहे थे। पुरोहितों ने राजा को इस बात की ख़बर दी और ग्रहों की शान्ति के लिए उसे हाथी पर चढ़ा कर अग्नि की प्रदक्षिणा करवाई। इसके बाद व्रत-उपवास करके जरासन्ध एक एकान्त कमरे में बैठे।

इसी समय दोनों पाण्डवों के साथ कृष्ण राजभवन में पहुँचे और कई कमरों और दालानों से होते हुए अन्त में मगधराज के पास उपस्थित हुए।

मगधराज जरासन्ध उनको देखते ही खड़े हो गये और आगत ब्राह्मणों पर यथोचित भक्ति-भाव दिखाकर, जल, पूजा की सामग्री और मधुपर्क से उनका सत्कार किया।

किन्तु उस पूजा को ग्रहण न करके भीम और अर्जुन तो चुप रहे, किन्तु कृष्ण बोले :—

हे राजेन्द्र ! हमारे दोनों साथी इस समय व्रतस्थ हैं। आधी रात के पहले ये न बोलेंगे। इसलिए आधी रात बीत जाने पर आप फिर आकर इनके साथ बात-चीत कीजिएगा।

जरासन्ध ने यह बात मान ली और तीनों स्नातकों को यज्ञशाला में रहने के लिए कह कर चले गये। आधी रात होने पर फिर वे उनके पास आये और यथाविधि उनकी पूजा की।

किन्तु इस बार भी उन्होंने पूजा न ली। इस अद्भुत व्यवहार और उनकी अपूर्व वेशभूषा को देख कर मगधराज विस्मित हुए। वे कहने लगे:—

हे विप्रगण! आप लोग कौन हैं? स्नातक ब्राह्मण तो सभा में जाने के समय छोड़ कर और कभी लाल कपड़े नहीं पहनते और चन्दन तथा माला नहीं धारण करते। आपके वस्त्र आदि तो ब्राह्मणों के से हैं; पर आपके बलिष्ठ शरीर और धनुष् की प्रत्यञ्चा की रगड़ के चिह्नवाली भुजाओं से मालूम होता है कि आप क्षत्रिय हैं। मैंने सुना है कि नगर में घुसते समय आप चैत्य नामक चबूतरे का ऊपरी हिस्सा और तीन भेरियाँ तोड़ फोड़ आये हैं। इसका क्या मतलब है? हमारे यहाँ अतिथि के रूप में आकर हमारी दी हुई पूजा आप क्यों नहीं लेते? इन सब गूढ़ बातों को खोल कर साफ़ साफ़ कहिए, क्या मामला है। तब कृष्ण बोले:—

महाराज! तुम हम लोगों को स्नातक ब्राह्मण क्यों समझते हो? ब्राह्मणों के सिवा क्षत्रिय और वैश्य भी स्नातक व्रत धारण करने के अधिकारी हैं। तुमने ठीक कहा है, बल ही से क्षत्रियों का परिचय मिलता है। इसलिए आज ही हमारे बाहुबल की आप परीक्षा कर सकते हैं। मित्र के घर प्रकाशभाव से और शत्रु के घर गुप्तरूप से जाना चाहिए। इसलिए हे राजन्! शत्रु की दी हुई पूजा न लेने के नियम का पालन करते हुए हम गुप्त-वेश में आपके घर आये हैं।

इस पर भी जरासन्ध की समझ में ठीक बात न आई। वे बोले:—

हे स्नातक-ब्राह्मणगण! हमें तो याद नहीं कि कभी हमने तुम्हारे साथ शत्रुता की हो, या तुम्हारा कोई अपकार किया हो। मालूम होता है, तुम्हें भ्रम हो गया है।

इसके उत्तर में कृष्ण ने कहा:—

हे नृपाधम! तुम जब अपने ही वर्ण के राजों को पशु की तरह समझ कर बलिदान देने को तैयार हो तब सभी क्षत्रिय तुम्हारे वैरी हैं। तुम अपने को क्षत्रिय-वंश में सबसे बढ़कर बलवान् समझते हो, यह तुम्हारी भूल है। राजा युधिष्ठिर ने तुम्हारे इस भ्रम को दूर करने के लिए हमें भेजा है। इस समय या तो अपने क़ैद किये हुए राजों को छोड़ कर कुरुराज युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करो या हमसे युद्ध करो।

जरासन्ध ने कहा :—हम बिना जीते किसी राजा को नहीं लाये। इसलिए उन पर मनमाना व्यवहार करने का हमें अधिकार है। तुम चाहे जिस राजा के भेजे हो, हम तुमसे बिलकुल नहीं डरते। इसलिए, चाहे अलग अलग चाहे एक ही साथ, हम तुम तीनों से युद्ध करने को तैयार हैं।

तब यदुवंश-श्रेष्ठ कृष्ण बोले :—

हे राजन् ! हम अन्याययुद्ध नहीं करना चाहते। तुम तीन जनों में किसके साथ युद्ध करना चाहते हो, बतलाओ ?

जरासन्ध ने भीमसेन ही को प्रधान समझा; इसलिए उन्हीं को युद्ध के लिए चुना।

इसके बाद, युद्ध की ख़बर फैल जाने से, पुरोहित मङ्गल-कारक वस्तु और घाव लगने से पैदा हुई बेहोशी दूर करनेवाला बाज़ूबन्द और ओषधियाँ लेकर वहाँ पहुँचा। ब्राह्मण का स्वस्तिपाठ समाप्त होते ही जरासन्ध ने मुकुट उतार कर कवच धारण किया। भीमसेन भी, कृष्ण से एकान्त में बातें करके, युद्ध के लिए तैयार हुए। इसके बाद दोनों वीर मल्ल-युद्ध करने लगे।

पहले उन्होंने परस्पर हाथ मिलाया और पैर छूकर ताल ठोंका। फिर भुजाओं से कंधे पर प्रचण्ड आघात किया। धीरे धीरे दोनों लिपट गये। तरह तरह के दाँव पेंच खेलने लगे। एक दूसरे को बग़ल में दबा कर बलपूर्वक पीस डालने और ज़मीन पर पटक देने की कोशिश होने लगी।

इसके बाद बल में एक दूसरे को बराबर समझ कर दोनों वीर थोड़ी देर तक गम्भीर गर्जना करके एक दूसरे को क्रुद्ध हुए सिंह की तरह देखते रहे। फिर घूँसेबाज़ी करते हुए भुजाओं के द्वारा ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, इधर, उधर खींच कर एक दूसरे को जीतने का उद्योग करने लगे।

धीरे धीरे दोनों वीर क्रोध से पागल हो उठे। वे प्रचण्ड घूँसेबाज़ी करने लगे; एक दूसरे को सिर से टक्करें मारने लगे; माथे पर लात मारने तक की चेष्टा करने लगे। युद्ध ने महाभयङ्कर रूप धारण किया। बिना कुछ खाये-पिये दिनरात यह विकट बाहु-युद्ध होता रहा।

कृष्ण तो बड़े बुद्धिमान् थे। वे ताड़ गये कि जरासन्ध कुछ थक गया है। इस बात की सूचना उन्होंने भीमसेन को देनी चाही। भीमसेन को इशारे से होशियार करने के लिए वे बोले :—

हे भीम ! थके हुए शत्रु को पीड़ा पहुँचाना उचित नहीं।

यह सुन कर भीम क्रोध से और भी उबल उठे। जरासन्ध कुछ कुछ असावधान था ही कि भीम ने एकदम से अपना सब बल लगा कर उसे उठा लिया। कई बार घुमा कर भीमसेन ने उसको ज़मीन पर पटका और पीठ पर घुटने रख उसकी रीढ़ तोड़ दी। रीढ़ तोड़ते ही जरासन्ध का प्राणपखी उड़ गया।

इसके बाद शत्रु का संहार करनेवाले उन तीनों वीरों ने जरासन्ध के मृतक शरीर को वहीं राजद्वार पर छोड़ा और वहाँ से निकल कारागार में पहुँचे। वहाँ जितने राजे क़ैद थे सबको एक साथ छोड़ दिया।

वे बड़े प्रसन्न होकर कृष्ण से बोले :—

हे वासुदेव ! आपने हमें इस घोर विपद से उद्धार किया। इसके बदले में आप का क्या उपकार करें ? कहिए।

कृष्ण बोले :—हे राजगण ! राजा युधिष्ठिर की इच्छा राजसूय यज्ञ करने की है। वे साम्राज्य प्राप्त करने के अभिलाषी हैं। इस काम में आप उनकी सहायता कीजिए।

राजों ने प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिर की अधीनता अङ्गीकार की और नाना प्रकार के रत्न भेंट करके अपनी कृतज्ञता दिखाई।

इसी समय जरासन्ध का पुत्र, पुरोहित को आगे करके, अपने मन्त्रियों और कुटुम्बियों के साथ, डरते डरते कृष्ण के पास आया। कृष्ण ने उस भयातुर राजकुमार को धीरज दिया और उसे मगधराज की गद्दी पर बिठाया। उसने युधिष्ठिर के लिए कर-स्वरूप बहुत सा धन-रत्न कृष्ण को दिया।

इसके बाद मगधराज की पताका जिस पर फहरा रही थी ऐसे रथ पर बैठकर दोनों पाण्डवों के साथ कृष्ण जल्दी जल्दी खाण्डवप्रस्थ पहुँचे और युधिष्ठिर से बोले :—

हे राजों में श्रेष्ठ ! सौभाग्य से भीम ने जरासन्ध को लड़ाई में मार डाला और क़ैदी राजों को कारागार से छुड़ा दिया। अब आपके इच्छित साम्राज्य पाने और राजसूय यज्ञ करने में कोई बाधा नहीं देख पड़ती।

युधिष्ठिर इस खुशख़बरी को सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कृष्ण का सत्कार करके उन्हें और भीम अर्जुन को बड़े स्नेह से गले लगाया। कृष्ण सबको आशीर्वाद-प्रणाम करके अपने नगर गये।

इसके बाद साम्राज्य की जड़ मज़बूत करने, और अपने अधीन राजों से कर ले कर यज्ञ के लिए बहुत सा धन इकट्ठा करने, के इरादे से युधिष्ठिर ने चारों भाइयों को दिग्विजय के लिए भेजा।

अर्जुन उत्तर दिशा की ओर गये। वहाँ उन्होंने प्राग्ज्योतिष देश के राजा भगदत्त को, उलूक देश के निवासी बृहन्त को और काश्मीर देश के सारे क्षत्रिय-वीरों को अपने वश में किया। पीछे उत्तरकुरु नामक गान्धर्व देश में जाकर युद्ध की तैयारी की। तब नगर के महाविकट डीलडौलवाले द्वारपालों ने अर्जुन के पास आकर कहा :—

हे भाग्यशाली अर्जुन! इस नगरी को मनुष्य नहीं जीत सकते। इस नगरी में तुम्हारा प्रवेश करना ही तुम्हारी शक्ति का परिचय देता है। देखो, माया के प्रभाव से यहाँ कोई चीज़ जीतने के योग्य नहीं देख पड़ती। पर हम तुम पर प्रसन्न हैं। इसलिए बतलाओ, तुम क्या चाहते हो?

अर्जुन हँस कर बोले :—

हम राजा युधिष्ठिर की साम्राज्य स्थापना के लिए युद्ध करते हुए फिर रहे हैं। इसलिए यदि आप हमें कर के तौर पर कुछ दे देंगे तो हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा।

तब द्वारपालों ने अर्जुन को वस्त्र, गहने, सुन्दर मृगचर्म और अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र कर के तौर पर दिये।

भीमसेन पूर्व दिशा की ओर गये और पाञ्चाल, विदेह आदि बहुत से देशों से कर इकट्ठा करके चेदिराज शिशुपाल के पास पहुँचे। शिशुपाल ने मित्र की तरह उनका सत्कार किया और बिना कहे ही अधीनता स्वीकार करके पूछा :—

हे महाबाहो! कहिए, हमारे लिए क्या आज्ञा है? जो कुछ आप कहें, हम करने को तैयार हैं।

भीमसेन बोले :—हम धर्मराज युधिष्ठिर के आज्ञानुसार कर इकट्ठा कर रहे हैं। यह सुनते ही शिशुपाल ने यथोचित कर दे दिया।

इसके बाद भीमसेन ने कोशलनरेश, बृहद्बल, काशिराज और राजपति क्रथ आदि बहुत से राजों को बाहुबल से जीत कर रत्न, चन्दन, अगर, वस्त्र, मणि, मुक्ता, कम्बल, सोना, चाँदी आदि बहुत सी चीज़ें संग्रह कीं।

सहदेव ने बड़ी भारी सेना लेकर दक्षिण की यात्रा की। उन्होंने मथुरानरेश, मत्स्यराज, कुन्तिभोज आदि मित्रों को राजसूय यज्ञ की ख़बर देकर बहुत सा धन प्राप्त किया। अन्त में वे किष्किन्धा नामक वानरों की नगरी में पहुँचे। वहाँवालों के साथ सहदेव ने लगातार सात दिन तक युद्ध किया। किन्तु वे लोग न तो थके, न घबराये। पर सहदेव की वीरता से प्रसन्न होकर बोले :—

जो काम तुम करना चाहते हो उसमें विघ्न डालने की हमारी इच्छा नहीं है। इसलिए तुम ये सब रत्न लेकर यहाँ से प्रस्थान करो।

इसके बाद समुद्रकच्छ देश में ठहर कर सहदेव ने दूत के द्वारा द्राविड़, कलिङ्ग, पुरी, और यवनपुर आदि के राजों तथा पुलस्त्यनन्दन विभीषण से धन, रत्न आदि उपहार वहीं बैठे बैठे मँगा लिये।

महाबली नकुल पश्चिम की तरफ़ रवाना हुए। पहले रोहितक देश में मयूरों से उनका विकट युद्ध हुआ। मयूर युद्ध में हार गये। फिर उन्होंने जैरीषक नामक मरुभूमि और महेश्व नामक धनधान्य-सम्पन्न देश पर पूरी तौर से अपना अधिकार जमाया। इसके बाद दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त आदि बहुत से देश जीते। अन्त में यादवों से कर लेकर लौट आये।

इसी तरह किसी ने प्रीतिपूर्वक, किसी ने हार मान कर, चारों भाइयों को बहुत सा धन दिया। पूर्ण-रूप से विजयी होकर उन लोगों ने चारों दिशाओं से अनन्त धन बड़े कष्ट से इकट्ठा किया। उसे वे अपने अपने साथ खाण्डवप्रस्थ ले आये।

इससे युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए; भाइयों की बदौलत उनके इच्छित यज्ञ का सामान पूरा हो गया।

युधिष्ठिर के मित्र कहने लगे:—

आपके यज्ञ करने का अवसर अब आगया है। इसलिए शीघ्र ही इस शुभ काम को आरम्भ कीजिए।

यह सलाह हो ही रही थी कि युधिष्ठिर के दिग्विजय और साम्राज्य पाने का हाल सुन कर यादवों की तरफ़ से बहुत सा धन-रत्न-रूपी कर लिये हुए श्रीकृष्णजी खाण्डवप्रस्थ आ पहुँचे। उनके साथ उनकी चतुरङ्गिनी सेना भी थी। उसके सेनापति वसुदेव जी थे।

चारों भाइयों और धौम्य पुरोहित से घिरे हुए धर्म्मराज युधिष्ठिर, कुशल-समाचार पूछ कर, सुख से बैठे हुए कृष्ण से बोले:—

हे वासुदेव! केवल तुम्हारे अनुग्रह से यह पृथ्वी समुद्र के किनारे तक हमारे वश में हुई है। अब हम यही चाहते हैं कि तुम्हारे और भाइयों के साथ मिल कर यज्ञ करें। इसलिए काम आरम्भ करने की अनुमति देकर हमें कृतार्थ करो।

यह सुन कर कृष्ण ने जी भर कर युधिष्ठिर के गुण गाये। फिर वे बोले:—

महाराज! आप ही यह महान् राजसूय यज्ञ करने योग्य हैं। इसलिए शीघ्र ही

यज्ञ की दीक्षा लीजिए। आपका यज्ञ समाप्त होने से हम सब कृतार्थ होंगे, आपकी भलाई करने में हम हमेशा ही तत्पर रहे हैं। आप जिस काम के लिए कहेंगे, हम वही करेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे कृष्ण! हमारे भाग्य से जब तुम आगये हो तब हमें अपने इस काम में ज़रूर ही सिद्धि होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसके बाद युधिष्ठिर ने सहदेव और मन्त्रियों को ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार शीघ्र ही यज्ञ का सब सामान लाने को कहा।

युधिष्ठिर की बात समाप्त होने के पहले ही सहदेव नम्रतापूर्वक कहने लगे:—

प्रभो! आपकी आज्ञा के पहले ही सब चीज़ें आ गई हैं।

इसके बाद महर्षि द्वैपायन स्वयं यज्ञ के ब्रह्मा बने। धनञ्जय सुसामा बन कर साम वेद का गान करने लगे। ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य, वसु के पुत्र पैल और धौम्य होता और उनके शिष्य सदस्य हुए। यज्ञ-सम्बन्धी बातों के विषय में नाना प्रकार के तर्क वितर्क हो चुकने पर स्वस्तिवाचन प्रारम्भ हुआ। फिर संकल्प छोड़ने के बाद उस बड़ी यज्ञशाला की शास्त्र के अनुसार पूजा की गई। इसके अनन्तर कारीगरों ने आज्ञा पाकर वहाँ अच्छे अच्छे घर बनाये।

यथाशास्त्र सब प्रबन्ध हो चुकने पर युधिष्ठिर ने सहदेव को आज्ञा दी:—

भाई! तेज़ चलनेवाले दूतों को निमन्त्रण देने के लिए सब कहीं भेजो:—

सहदेव ने आज्ञा सिर माथे पर चढ़ाकर सब कहीं योग्य दूत तुरन्त ही भेज दिये। उन्होंने दूतों से कह दिया कि हमारे देश में जितने ब्राह्मण और वैश्य हैं उन्हीं को नहीं, किन्तु शूद्रों तक को यज्ञ की ख़बर दे देना।

इसके बाद राजा युधिष्ठिर ने भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि को बुलाने के लिए नकुल को हस्तिनापुर भेजा। उन्होंने बड़े आदर से सबको नेवता दिया। भीष्म, द्रोण, कृप और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने उसे स्वीकार करके यज्ञकार्य्य देखने के लिए शीघ्र ही प्रस्थान किया।

ठीक समय पर अनेक देशों से राजा लोग आने लगे। सिन्धुनरेश जयद्रथ, सपुत्र द्रुपदराज, सपुत्र विराट्राज, सपुत्र शिशुपाल, बलराम आदि यादव-वीर, काश्मीरनरेश तथा सिंहलनरेश आदि पहाड़ी राजों से लेकर दक्षिण समुद्र के तट पर रहनेवाले म्लेच्छ तक, तरह तरह के उपहार लेकर, खाण्डवप्रस्थ में आने लगे।

धर्मराज ने आये हुए राजों का यथोचित सम्मान किया और ठहरने के लिए उन्हें अलग अलग घर दिये। जितने घर थे सब जी लुभानेवाले तरह तरह के राजसी ठाठ के सामान से सजे हुए थे और तालाब तथा वृक्षों से शोभायमान थे। राजा लोगों की थकावट वहाँ पहुँचते ही मिट गई। वे लोग चित्त को हर लेनेवाली सभा की शोभा देखने और सभासदों तथा ब्रह्मर्षियों से घिरे हुए युधिष्ठिर का दर्शन करने लगे।

इसके बाद युधिष्ठिर ने भीष्म आदि कौरवों से कहा :—

आप लोग इस यज्ञ में सब तरह हम पर कृपा कीजिए। हमारे धनदौलत के हमारी ही तरह आप भी मालिक हैं। जिसमें हमारी भलाई हो वही आप कीजिए।

इस प्रकार सबसे कह कर, यज्ञ की दीक्षा लिये हुए पाण्डवराज युधिष्ठिर ने सबको अपना अपना काम अलग अलग बाँट दिया। दुःशासन को खाने की चीज़ों का, अश्वत्थामा को ब्राह्मणों की सेवा का, धृतराष्ट्र के पुत्र सञ्जय को राजों की शुश्रूषा का, दुर्योधन को आया हुआ उपहार लेने का, कृपाचार्य्य को रत्न आदि की निगरानी का और कृष्ण को ब्राह्मणों के पैर धोने का काम सौंपा गया। धृतराष्ट्र आदि बूढ़े लोग घर के मालिक की तरह रहे। भीष्म और द्रोण सब बातों की देख भाल करने लगे।

शुभ मुहूर्त आने पर ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को नियम के अनुसार राजसूय यज्ञ की दीक्षा दी। इसके बाद धर्म्मराज युधिष्ठिर हज़ारों ब्राह्मणों, भाइयों, मित्रों, सजातियों, अधीन राजों और क्षत्रियों से घिरे हुए मूर्तिमान धर्म्म के समान यज्ञशाला में गये। वहाँ सभामण्डप में पहुँच कर भीतर की वेदी पर बैठ गये। उनके चारों तरफ़ नारद आदि महर्षि और राजा लोग बैठे, और उन पर मन्त्र से पवित्र किया हुआ जल छिड़कने लगे।

इस काम के समाप्त होने पर ऋषि लोग तरह तरह की बातें करने लगे। धीरे धीरे बात बढ़ गई और उनमें बड़ी बेढब बहस होने लगी। किसी ने भारी चीज़ को छोटी बताया, किसी ने छोटी को भारी। कोई दूसरे के बताये हुए अर्थ का खण्डन करने लगा।

तब कुरुओं में श्रेष्ठ भीष्म सभा के बीच में खड़े होकर युधिष्ठिर से बोले :—

हे भारत! इस समय राजों का यथायोग्य सत्कार करने का समय आ गया है। आचार्य्य, ऋत्विक्, सम्बन्धी, स्नातक, राजा और स्नेही जन यही छः प्रकार के लोग पूजा के योग्य हैं। इसलिए इनमें से हर एक की उचित पूजा करो। किन्तु आज की सभा में जिसे सबसे बड़ा समझना उसी को पहले अर्घ देकर सत्कार करना।

इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा :—

हे पितामह ! आप ही कहिए इनमें से आप किसको सबसे बड़ा, अतएव पहले अर्घ पाने के योग्य, समझते हैं।

भीष्म ने सोच कर कहा :—

इस यज्ञ के सम्बन्ध में कृष्ण ने तुम्हारा बड़ा उपकार किया है। बुद्धि, बल और पराक्रम में भी वे सबसे श्रेष्ठ हैं। इससे उन्हीं को हम सबसे पहले अर्घ पाने के योग्य समझते हैं।

इसके बाद भीष्म की आज्ञा पाकर, सहदेव ने रीति के अनुसार कृष्ण को पहले अर्घ दिया। कृष्ण ने उस अर्घ को शास्त्ररीति से ग्रहण किया।

कृष्ण की यह पूजा महाबली शिशुपाल को बहुत बुरी लगी। वह क्रोध से अधीर हो उठा। भरी सभा में वह कृष्ण का और पाण्डवों का तिरस्कार करने लगा। वह बोला :—

हे पाण्डव ! इन सब राजों के उपस्थित रहते कृष्ण किस तरह पूजा के योग्य हुए? तुम अभी बालक हो; इन बातों को नहीं जानते। पर भीष्म ने क्या समझ कर तुमको ऐसी सलाह दी ? कृष्ण तो राजा ही नहीं; और यदि यादववंश को तुम इतना श्रेष्ठ समझते हो तो वृद्ध वसुदेव के बदले उनके पुत्र ने क्यों अर्घ पाया ? यह हम जानते हैं कि कृष्ण सदा ही से तुम्हारी हाँ में हाँ मिलानेवाले हैं; वे तुम्हें प्रसन्न रखने की सदा ही चेष्टा किया करते हैं। पर आत्मीय समझ कर यदि उनका सम्मान किया गया है तो तुम्हारे परम आत्मीय और उपकारकर्त्ता राजा द्रुपद की उपेक्षा क्यों की गई। उन्हें तुम कैसे भूल गये ? यदि कृष्ण को आचार्य्य या ऋत्विक् समझा है तो द्रोणाचार्य्य और महामान्य महर्षि द्वैपायन से कोई भी बढ़ कर नहीं। पुरुषों में उत्तम भीष्म, सब शास्त्रों के जाननेवाले अश्वत्थामा, राजों के राजा दुर्योधन, वीरों में श्रेष्ठ कर्ण को छोड़ कर कृष्ण किस गुण से अर्घ पाने के अधिकारी हुए ?

हे कृष्ण ! डरपोक और नासमझ होने से पाण्डव लोग ऐसा कर सकते हैं। पर तुमने क्या समझ कर पहले अर्घ लिया ? मालिक की नज़र छिपा कर कुत्ता यदि धेले भर भी घी चाट जाता है तो वह अपनी तारीफ़ करता और कहता है, वाह आज ख़ूब घी खाया। यही हाल तुम्हारा है। इस पूजा के तुम कदापि अधिकारी न थे। वह दैव-योग से तुम्हें प्राप्त हो गई है। इस पर तुम्हें इतना घमण्ड ! सच पूछो तो राजों का इससे कुछ भी अपमान नहीं हुआ; उलटी तुम्हारी ही भद्द हुई है।

यह कह कर शिशुपाल आसन से उठा और अन्य राजों को उकसाने लगा। महा-पराक्रमी चेदिराज का क्षोभ और दूसरे राजों का क्रोध देख कर युधिष्ठिर बड़े व्याकुल हुए। वे ख़ुद ही शिशुपाल के पास गये और मीठी मीठी बातें करके उसे समझाने लगे :—

हे महीपाल! आपने जो कुछ कहा, सो समझ कर नहीं कहा। इस प्रकार कहना आपको शोभा नहीं देता। आपकी बातें अधर्म से भरी हुई हैं, कड़वी हैं, और व्यर्थ हैं। देखिए, आपसे अधिक उम्रवाले राजों ने कृष्ण की पूजा अनुचित नहीं समझी। हे चेदिराज! कृष्ण को अच्छी तरह पहचानिए। कौरवों ने इनका जैसा परिचय पाया है वैसा आपने नहीं पाया। इन्होंने बार बार क्षत्रियों को युद्ध में हरा कर उन्हें छोड़ दिया है। क्षत्रियों के लिए यह सच्ची तारीफ़ की बात है। इस सभा में ऐसा कोई नहीं जिसे कृष्ण अपने तेज के बल से हरा न सकते हों। कृष्ण ने पैदा होने के दिन ही से जो बड़े बड़े अद्भुत काम किये हैं क्या आपने उन्हें नहीं सुना? आपने अलग अलग राजों के जिन गुणों का वर्णन किया वे सब गुण अकेले कृष्ण में एकत्र विराजमान हैं। इसी लिए हमने आज पहले इन्हीं की पूजा की; सम्बन्ध के ख़याल से, या इसके बदले उनसे अपना उपकार होने की आशा से, नहीं की।

भीष्म बोले :—युधिष्ठिर! सब लोगों के प्यारे कृष्ण की पूजा जिसे अच्छी नहीं लगती उससे विनती न करना चाहिए। मूर्ख शिशुपाल कृष्ण से डाह करता है; इससे वह उनके विषय में सदा ऐसी ही बातें किया करता है। इसलिए यदि कृष्ण की पूजा उससे बिलकुल न सही गई हो तो जो उसके मन में आवे करे।

अपने दिये हुए अर्घ के सम्बन्ध में ऐसी अपमानकारक बातें सुन कर और यज्ञ के काम में विघ्न पड़ता हुआ देख कर सहदेव क्रोध से जल उठे। उन्होंने कहा :—

जो नीच राजा लोग कृष्ण की पूजा को बुरा कहते हैं उनके सिर पर मैं लात मारने को तैयार हूँ। जिसमें शक्ति हो; वह इस बात का उचित उत्तर दे। यह कह कर सहदेव ने पैर उठाया और पैर को उठाये हुए चारों तरफ़ देखा। फिर, जिन और पूजनीय जनों को अर्घ देना था उन्हें, रीति के अनुसार, अर्घ देना आरम्भ किया।

अभिमानी राजों में से किसी के मुँह से उस समय बात न निकली। किन्तु शिशुपाल आदि क्रुद्ध हुए कुछ राजा लोग उठ कर इधर उधर आपस में बात-चीत करने लगे। वे बोले :—

हमें कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें इस धर्मपूर्ण और रीति के विरुद्ध यज्ञ में युधिष्ठिर का तिलक न हो सके।

क्रोध से भरे हुए राजों के इस तरह आपस में सलाह करने से यह अच्छी तरह साबित हो गया कि वे युद्ध के लिए तैयारी कर रहे हैं।

युधिष्ठिर डर कर भीष्म से बोले :—

हे पितामह ! ये राजा लोग खीझ उठे हैं। इस समय क्या करना चाहिए, इसका आप ही निश्चय कीजिए।

पितामह भीष्म बोले :—

हे बुद्धिमान् ! शिशुपाल आदि राजों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। कृष्ण जब हमारे पक्ष में हैं, तब डरने का कोई कारण नहीं।

इस बात को सुनते ही शिशुपाल फिर कठोर वचन बोलने लगा :—

हे भीष्म ! राजों को व्यर्थ डराते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुम तुच्छ से भी तुच्छ कामों के लिए कृष्ण की प्रशंसा करते हो। इससे मालूम होता है कि तुम सठिया गये हो। लड़कपन में इस अहीर ने सिर्फ़ एक चिड़िया, एक घोड़ा और एक बैल मारा था। इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ? महाबली कंस के ही अन्न से पल कर इस दुरात्मा ने उन्हें मार डाला ! क्या इसके इस पुरुषार्थ से तुमको इतना आश्चर्य हुआ है ? स्त्री, गाय, ब्राह्मण, अन्नदाता और शरण में आये हुए मनुष्य पर हथियार उठाना महात्माओं ने सबसे बढ़ कर पाप माना है। वही पाप इस कुलाङ्गार ने किया है। इसलिए, कुरुवंश में उत्पन्न हुए हे नीच ! हम तुम्हें कुछ उपदेश देते हैं, सुनो। बुढ़ापे से पैदा हुए डर के कारण यदि तुम्हें झूँठी प्रशंसा ही करना हो तो कृष्ण से अधिक बलवान् जो राजा लोग यहाँ उपस्थित हैं उनकी करो। उनकी प्रशंसा और स्तुति से तुम्हारा अधिक भला होने की आशा है। सिंह के दाँतों में लगा हुआ मांस का टुकड़ा खाने की इच्छा रखने-वाले गीध की तरह अधिक साहस न करना। याद रखना, इन राजों की कृपा के ऊपर ही तुम्हारे जीवन का दारोमदार है।

महाबली और महापराक्रमी भीमसेन, भीष्म का यह अपमान न सह सके। वे लाल लाल आँखें करके शिशुपाल की ओर झपटने ही वाले थे कि पितामह ने उनको रोक कर शान्त किया और कहने लगे :—

हे शिशुपाल ! मालूम होता है कि यह झगड़ा यों न समाप्त होगा। जिन कृष्ण को हमने पूजा की है और जिनका तुम अपमान कर रहे हो वे तो सामने ही मौजूद हैं। इसलिए यदि तुममें दम हो तो उनसे लड़ कर अपनी वीरता दिखाओ।

इस बात से उत्तेजित होकर शिशुपाल ने कृष्ण को ललकारा :—

जनार्दन ! आ हमारे साथ युद्ध कर। जरासन्ध ने तुझे दास समझा था। इसलिए तुझे छोड़ कर भीम से युद्ध किया था। आज हमारे हाथ से तू किसी तरह नहीं बच सकता।

तब कृष्ण धीरे से खड़े हुए और मीठे तथा गम्भीर स्वर में सबसे कहने लगे :—

हे राजेन्द्रगण ! इस मन्दमति ने कई बार हमारी बुराई, हमारा अपमान और हमसे शत्रुता की है। पर हमने इसकी माता से एक समय प्रतिज्ञा की थी कि हम तुम्हारे पुत्र के सौ अपराध क्षमा कर देंगे—और अपराध भी ऐसे जिनका प्रायश्चित्त मृत्यु ही से हो सकता है। इसी लिए हम इस पापी को अब तक छोड़ते आये हैं। पर इस समय इसके सौ से भी अधिक अपराध हो चुके। इसलिए आज इसका काल आ पहुँचा है।

यह कह कृष्ण ने सहसा सुदर्शन चक्र फेंक कर शिशुपाल का सिर काट लिया। शिशुपाल वज्र की चोट से फटे हुए पर्वत की तरह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा।

कृष्ण का तेज देख कर राजा लोग दंग रह गये। ब्राह्मण लोग उनकी स्तुति करने लगे। युधिष्ठिर ने भाइयों को शिशुपाल की अन्त्येष्टिक्रिया करने की आज्ञा देकर, शिशुपाल के पुत्र को तुरन्त चेदिराज्य की गद्दी दी।

इसके बाद यज्ञ के सब काम निर्विघ्न होते गये और राजसूय महायज्ञ अच्छी तरह समाप्त हुआ।

यज्ञ के बाद युधिष्ठिर ने अवभृथ नाम का आख़िरी स्नान किया। स्नान हो चुकने पर निमन्त्रित राजा लोग उनके सामने आकर उपस्थित हुए और अपनी अपनी भेंट देकर बोले :—

हे धर्म्मराज ! आज सौभाग्य से आपने निर्विघ्न साम्राज्य पाया है। इससे हम लोगों को परमानन्द हुआ है, क्योंकि यह काम हमारे भी यश बढ़ाने का कारण है। अब आज्ञा दीजिए, हम लोग अपने अपने राज्य को लौट जायँ।

युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर राजों की पूजा ग्रहण की और भाइयों से बोले :—

हे भाइयो ! ये राजा लोग प्रीतिपूर्वक हमारे राज्य में आये थे। अब हमारी अनुमति से विदा होते हैं। हमारे राज्य की हद तक इनके साथ साथ जाव।

इसके बाद सबके द्वारा पूजित होकर और अपने गरुड़ के चिह्नवाले रथ पर चढ़ कर कृष्ण द्वारका को लौट गये। हस्तिनापुर से आये हुए कौरव लोग भी अपने घर गये

केवल दुर्योधन और उनके मामा शकुनि मय दानव की बनाई हुई सभा अच्छी तरह देखने के लिए रह गये।

७—पाण्डवों का राज्यहरण

राजा दुर्योधन धीरे धीरे शकुनि के साथ घूमते हुए मय दानव की बनाई हुई युधिष्ठिर की सभा देखने लगे। उन्होंने उसकी बनावट का जैसा आश्चर्य-जनक ढंग देखा वैसा उसके पहले कभी न देखा था।

एक घर में स्फटिक के फ़र्श पर स्फटिक ही के पत्तोंवाले खिले हुए कमल देख कर जल के भ्रम से वहाँ उन्होंने जो पैर रक्खा तो सहसा ज़मीन पर गिर पड़े। यह देख कर भीम और उनके नौकर-चाकर हँस पड़े।

फिर एक बार स्फटिक की बनी हुई दीवार को दरवाज़ा समझ कर उन्होंने उससे निकलने की चेष्टा की। इससे उनके माथे पर बड़ी कड़ी चोट लगी। चक्कर आ जाने से गिरने ही वाले थे कि सहदेव ने जल्दी से आकर उनको पकड़ लिया।

और एक जगह सरोवर के स्वच्छ जल को स्फटिक समझ कर वे कपड़े पहने हुए उसमें जा गिरे। तब भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव कोई भी हँसी न रोक सके। उस समय युधिष्ठिर की आज्ञा से नौकरों ने जल्दी से अच्छे अच्छे वस्त्र लाकर उनको दिये।

इसके बाद दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने न रही। वह चकरा सी गई। वे सब जगह जल को थल और थल को जल समझने लगे। कई जगह पर स्फटिक की दीवार का धोखा खाकर हाथ से उसे टटोलने की कोशिश में वे गिरते गिरते बचे।

दुर्योधन की इस दुर्दशा को देख कर पाण्डव लोग उनकी दिल्लगी करने लगे। दुर्योधन स्वभाव ही से क्रोधी थे। तथापि उन्होंने उस दिल्लगी को सुनी अनसुनी करके टाल दिया। पर सच पूछिए तो ये बातें उनके हृदय में काँटे की तरह चुभ गईं। उन्होंने मन ही मन कहा, चाहे जैसे हो, इसका बदला ज़रूर लेना होगा। इसके बाद अनेक प्रकार के अद्भुत अद्भुत दृश्य देख कर युधिष्ठिर की आज्ञा से दुर्योधन ने हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया।

रास्ते में वे महात्मा पाण्डवों की अतुल महिमा, राजा लोगों का पूरी तौर से उनके वश में होना, युधिष्ठिर का अनन्त ऐश्वर्य्य और सभा की अपूर्व शोभा की चिन्तना

करते हुए बड़े उदास मन से चलने लगे। शकुनि समझ गये कि ये किसी सोच में ज़रूर हैं। अतएव उन्हें चुपचाप देख कर शकुनि ने कहा :—

हे दुर्योधन! मालूम होता है, तुम किसी सोच में हो। कहो, क्या बात है?

दुर्योधन ने कहा :—मामा! सागर पर्य्यन्त इस पृथ्वी को पूरी तौर से युधिष्ठिर के वश में देख और इन्द्र के यज्ञ की तरह इस महायज्ञ को अवलोकन कर हम क्रोध से जल रहे हैं। अधिक क्या कहें, हम भीतर ही भीतर इस तरह जल रहे हैं कि इसकी अपेक्षा दहकती हुई आग में घुस जाना, अथवा विष खाकर मर जाना, या नहीं तो पानी में डूब कर इस प्रचण्ड ज्वाला से अपनी रक्षा करना हम अच्छा समझते हैं। कौन आत्माभिमानी पुरुष अपने वैरी की बढ़ती और अपनी गिरी दशा को सह सकता है? परन्तु हमने इसे सह लिया है, इससे हम स्त्री और पुरुष दोनों ही से नीच हैं। यदि हम स्त्री होते तो ऐसी दुर्दशा में न पड़ते और यदि हम पुरुष होते तो इस आपदा से उद्धार पाने की चेष्टा करते। युधिष्ठिर का ऐश्वर्य्य देख कर और पाण्डवों के मुँह से अपनी दिल्लगी सुन कर हम बड़े ही दुःखित हुए हैं। इसलिए हे मामा! हमें मरने की आज्ञा देकर यह सब हाल पिता से कह देना।

शकुनि ने दुर्योधन को धीरज देकर कहा :—

हे दुर्योधन! पाण्डवों ने तुम्हारी ही तरह आधा राज्य पाकर अपनी चेष्टा से उसे बढ़ाया है। इसमें दुःख की कौन सी बात है? अधीर होने का हम कोई कारण नहीं देखते। उलटा तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए। तुम भी वीर हो। तुम्हारे भी सहायक हैं। क्या तुम इस अखण्ड भूमण्डल को न जीत सकोगे?

तब दुर्योधन ने कुछ धीरज धर के कहा :—

हे राजन्, यदि तुम्हारी सलाह हो तो हम तुम्हारी और अन्य मित्रों की सहायता से अभी पाण्डवों को जीत सकते हैं। उनके हार जाने से जो राजा लोग उनके अधीन हैं वे भी हमारे वश में हो जायँगे और यह अनन्त धन, सभा और सारी पृथ्वी हमारे हाथ में आ जायगी।

दुर्योधन को बहुत आग्रह करते देख सुबल के पुत्र शकुनि मुसकरा कर बोले :—

हे राजन्! यदि मित्रों के सहित पाण्डव लोग इकट्ठे हों तो उनके सम्मुख युद्ध में देवता लोग भी उन्हें नहीं हरा सकते। इसलिए सोच समझ कर काम करना होगा। जिस उपाय से युधिष्ठिर को हराना सम्भव हो वही उपाय करना ज़रूरी है।

यह बात सुन कर दुर्योधन खुशी से उछल पड़े और कहने लगे :—

तुम जिस उपाय को ठीक करोगे हम, और हमारे सहायक, उसी को करेंगे।

तब धूर्त शकुनि कहने लगा :—

राजा युधिष्ठिर को जुआ खेलने का बड़ा शौक़ है। पर उसमें वे निपुण नहीं हैं। हम पक्के जुआरी ही नहीं, किन्तु जुआरियों के उस्ताद हैं। आज तक इस खेल में हमें कोई भी नहीं हरा सका। इसलिए युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए बुलाओ। आने पर यदि उनकी इच्छा भी न होगी तो भी लज्जा के मारे वे बिना खेले न रहेंगे। तब हम चालबाज़ी से युधिष्ठिर का राजपाट तुम्हारे लिए जीत लेंगे। पर इस विषय में पहले तुम्हें अपने पिता को राज़ी करना होगा। उनकी आज्ञा से युधिष्ठिर को नेवता दिया जायगा।

दुर्योधन ने कहा :—हममें इतना साहस नहीं कि पिता से इस तरह का प्रस्ताव करें। तुम्हीं किसी अच्छे मौक़े पर उन्हें राज़ी कर लेना।

राजधानी में लौटने पर यह बात शकुनि के ध्यान में चढ़ी रही। मौक़ा पाकर एक दिन शकुनि धृतराष्ट्र से कहने लगे :—

महाराज! दुर्योधन बहुत दुबले हो गये हैं। उनका मुँह पीला पड़ गया है। वे सदा चिन्ता में मग्न रहते हैं। आपको उचित है कि अपने जेठे पुत्र के दुःख का कारण जान लें।

यह सुन कर धृतराष्ट्र बड़े व्याकुल हुए। उन्होंने दुर्योधन को बुला कर पूछा :—

पुत्र! यदि हमसे कहने के योग्य हो तो बताओ, तुम क्यों दुखी रहते हो? तुम्हारे मामा कहते हैं कि तुम दुबले-पतले और पीले पड़ते जाते हो। हमने बहुत सोचा, पर दुःख का कोई कारण न जान पाया। यह सारा राज-पाट तुम्हारा ही है। तुम्हारे भाई और राजपुरुष तुम्हारे ही आज्ञाकारी हैं। इच्छा करते ही तुम्हें सब चीज़ें सहज में मिल सकती हैं। तब किस लिए तुम दुखी रहते हो?

इसके उत्तर में दुर्योधन ने कहा :—

हे पिता! आपने ठीक ही कहा कि अब तक हम, कायरों की तरह, भोजन और वस्त्र से ही सन्तुष्ट रहे। किन्तु महाराज! सन्तोष से ही धन-दौलत, राज-पाट नष्ट होता है। वैरी पर क्रोध न करने से बड़प्पन नहीं मिलता—महिमा नहीं बढ़ती। जिस दिन से हमने युधिष्ठिर का राज्यवैभव देखा उसी दिन से सुखभोग की चीज़ों से हमारी तृप्ति नहीं होती। स्फटिक और मणियों से जड़ा हुआ वह अद्भुत सभा-मण्डप, वैश्यों की तरह बड़े बड़े राजों का युधिष्ठिर को कर देना, असंख्य ब्राह्मणों का वह स्तुति करना,

देवताओं के समान वह राज-लक्ष्मी जब से हमने देखी तभी से हमारा मन ऐसा बेचैन हो रहा है कि किसी तरह हमें शान्ति नहीं मिलती।

पुत्र के दुःख से धृतराष्ट्र को अत्यन्त दुखी देख शकुनि ने समझा कि यह अच्छा मौक़ा है। इससे वे दुर्योधन से कहने लगे :—

हे पराक्रमी वीर! पाण्डवों का जो यह अद्भुत ऐश्वर्य्य देखते हो उसका पाना असम्भव नहीं है। युधिष्ठिर को जुआ खेलने का शौक़ है। हम भी खेलना जानते हैं। इसलिए उनको खेलने के लिए बुलाओ। फिर देखना, हम उन्हें हराकर तुम्हारे लिए वह राज-पाट, धन-दौलत ला सकते हैं या नहीं?

शकुनि की बात समाप्त होते ही दुर्योधन पिता से बोले :—

हे पिता! गान्धारराज मामा शकुनि निश्चय ही जुआ खेलने में बड़े चतुर हैं। हमारी समझ में उनका प्रस्ताव उत्तम है और सम्भव भी है। इसलिए आप इस विषय में आज्ञा दें।

धृतराष्ट्र बोले :—महाबुद्धिमान् विदुर हमारे मन्त्री हैं। ऐसे भारी मामले में बिना उनकी सलाह के कोई काम करने का साहस हम नहीं कर सकते। वे निश्चय ही हम लोगों को धर्म के अनुसार सलाह देंगे।

दुर्योधन बोले :—हे राजेन्द्र! हम पहले ही से कह सकते हैं कि विदुर ऐसा करने के लिए आपको मना करेंगे। पर हम कहे रखते हैं कि ऐसा न होने से हम प्राण नहीं रक्खेंगे।

पुत्र का यह हाल देख कर उसे शान्त करने के लिए धृतराष्ट्र उसकी बात पर राज़ी हो गये और नौकरों को बुला कर बोले :—

कारीगरों से कह दो कि एक हज़ार खम्भे लगा कर सौ द्वारोंवाला स्फटिक का एक रत्नमण्डित खेलघर शीघ्र ही बनावें।

दुर्योधन इससे प्रसन्न होकर चले गये। पर विदुर को बुलाये बिना धृतराष्ट्र से न रहा गया। कारण यह कि वे जुए को अनेक दोषों का घर समझते थे। जुआ खेलने का समाचार पाकर, सोच-विचार में डूबे हुए विदुर जल्दी से जेठे भाई धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और घबराहट से कहने लगे :—

महाराज! हम आपकी इस बात को अच्छा नहीं समझते। इस खेल के कारण आपके पुत्रों में वैर की विकट आग जल उठने की सम्भावना है। अब भी समय है। आप इसे रोकिए।

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को मना करना असम्भव समझ कर विदुर की सलाह न मानी। वे बोले :—

हे विदुर ! तुम इस इरादे को हमारा क्यों कहते हो ? सब कुछ दैव के हाथ है। दैव ही इसका कारण है। यदि दैव प्रसन्न हो गया तो कोई विपद न आवेगी। इसलिए तुम निडर होकर खाण्डवप्रस्थ जाव और युधिष्ठिर को खेलने के लिए हमारी तरफ़ से न्योता दो।

जब विदुर दुखी होकर चले गये तब धृतराष्ट्र ने फिर दुर्योधन को एकान्त में बुला कर समझाने की आख़िरी चेष्टा की।

वे बोले :—हे बेटा ! विदुर हम लोगों को कभी ऐसा उपदेश नहीं देते जो हमारे लिए भला न हो। इसलिए जब वे इस बात पर राज़ी नहीं हैं तब जुआ खेलने की कोई ज़रूरत नहीं। देखो, तुम विद्वान् हो। तुमने राजगद्दी पाकर अपने बाप-दादे के राज्य को ख़ूब बढ़ाया है। दिन पर दिन तुम्हारा तेज बढ़ता जाता है। इसलिए तुम्हारे दुखी होने का कोई कारण हम नहीं देखते। दूसरे की बढ़ती से दुखी होकर क्या तुम अपना भी अधिकार खोना चाहते हो ?

दुर्योधन बोले :—हे राजन् ! हम जिस तरह दुख से दिन बिताते हैं उससे जो हो जाय सो ही अच्छा है। युधिष्ठिर की सभा में जो अपमान हमने लाचार होकर सहे हैं उनका बदला लिये बिना हम क्षण भर भी नहीं रह सकते। शत्रु के तरफ़दार विदुर की बातों में आकर आप किस लिए अपने पुत्रों के वैभव की वृद्धि को रोकते हैं ? यदि इस तरह चुपचाप बैठे रहना ही आप अच्छा समझते हैं तो ऐसे जीने से मर जाना ही अच्छा है।

धृतराष्ट्र ने कहा :—पुत्र ! तुम जो कहते हो उसे हम अच्छा नहीं समझते। ख़ैर, तुम जो चाहो करो; पर ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े।

इसके बाद विदुर, धृतराष्ट्र के आज्ञानुसार, इच्छा न होने पर भी, घोड़े पर सवार होकर पाण्डवों की राजधानी में पहुँचे और कुबेर के महल के समान राजभवन में जाकर युधिष्ठिर के पास बैठ गये। सबके प्यारे युधिष्ठिर, विदुर की यथोचित पूजा करके पूछने लगे :—

हे विदुर ! आपकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई है न ? कौरवों के कुशल-समाचार सुनने के लिए हम बड़े उत्सुक हैं। दुर्योधन आदि भाई लोग, चचा धृतराष्ट्र के आज्ञाकारी तो हैं ?

विदुर ने कहा :—पुत्र और सम्बन्धियों समेत महात्मा धृतराष्ट्र कुशल से हैं। इस समय उन्होंने तुम्हारे कुशल-समाचार पूछे हैं और जुआ खेलने के लिए भाइयों समेत तुम्हें न्योता दिया है। वहाँ तुम अपनी सभा की तरह खेलने की एक सभा देखोगे। तुम्हारे दर्शन करके कौरव लोग बड़े प्रसन्न होंगे। तुम्हें यही समाचार देने के लिए हम आये हैं। कहो, इस समय तुम्हारा क्या अभिप्राय है?

युधिष्ठिर ने कहा :—महाशय! जुआ लड़ाई का घर है। इसलिए उसमें फँसना क्या आप अच्छा समझते हैं?

इसके उत्तर में विदुर बोले :—

जुआ अनर्थ की जड़ है, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। हमने धृतराष्ट्र को इस काम से रोकने की चेष्टा भी की थी। किन्तु उन्होंने हमारी बात न मानी। इस समय जो तुम अच्छा समझो करो।

युधिष्ठिर ने कुछ देर सोच कर पूछा :—

अच्छा यह तो कहिए, खेलने के लिए कौन कौन से जुआरी वहाँ उपस्थित होंगे?

विदुर ने कहा :—सुनते हैं कि जुआ खेलने में चतुर शकुनि, चित्रसेन, राजा सत्यव्रत और पुरुमित्र वहाँ आवेंगे।

युधिष्ठिर बोले :—अकेले धृतराष्ट्र के कहने से हम न जाते। क्योंकि हम जानते हैं कि वे अपने पुत्रों के बड़े पक्षपाती हैं; वे सर्वथा उन्हीं के वश में हैं। पर जब ख़ुद आप हमें सभा में खेलने के लिए बुलाने आये हैं तब निमन्त्रण स्वीकार करना ही होगा। यदि हमें कोई खेलने के लिए बुलाता है तो हम अवश्य जाते हैं। यही हमारा नियम है। यदि ऐसा न होता तो कपटी जुआरी शकुनी के साथ खेलने के लिए हम कभी राज़ी न होते।

यह कह कर युधिष्ठिर ने साथ चलनेवालों को तैयार होने के लिए कहा और दूसरे दिन द्रौपदी आदि स्त्रियों और भाइयों के साथ रथ पर सवार होकर चल दिये।

जब युधिष्ठिर आदि हस्तिनापुर पहुँचे तब धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि सब लोग उनसे मिले। प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र ने सबका माथा सूँघा। कौरव लोग देखने में सुन्दर पाण्डवों को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। धृतराष्ट्र की बहुवें द्रौपदी के अत्यन्त सुन्दर वस्त्र और गहनों को बड़ी चञ्चलता से देखने लगीं।

पहले तो थके हुए पाण्डवों ने कसरत आदि करके स्नान किया; फिर चन्दन लगा

कर और नित्यकर्म करके उन्होंने भोजन किया। इसके बाद वे दूध की तरह सफ़ेद पलँगों पर सो गये। अच्छी नींद आने से सारी थकावट जाती रही।

सबेरे वे लोग खेलने के मण्डप में गये और पूजनीय राजों की क्रम क्रम से पूजा करके सब लोग चित्र विचित्र आसनों पर जा बैठे। तब शकुनि, महाराज युधिष्ठिर से बोले :—

हे युधिष्ठिर! सभा के सब लोग तुम्हारा रास्ता देख रहे हैं। आओ, खेल शुरू करें। शकुनि को बहुत आग्रह करते देख युधिष्ठिर को सन्देह हुआ। वे कहने लगे :—

देखो, जुआ खेलने में कपट करना बड़ा पाप है। कपट करना कोई बहादुरी की बात नहीं। शठता से सुख और धन नहीं मिलते। और धूर्त आदमी अपने को चाहे कैसा ही बड़ा समझे, पर वह कभी प्रशंसा के योग्य नहीं।

शकुनि ने कहा :—बलवान् आदमी यदि दुर्बल को मारे तो उसे कोई धूर्त नहीं कहता। अथवा यदि पण्डित मूर्ख को हरा दे तो उसे कोई शठ नहीं कहता। खेलने में हमें अपनी अपेक्षा अधिक जानकार समझ कर यदि डर से हमें कपटी कहते हो तो खेलने की कोई ज़रूरत नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा :—यदि खेलने के लिए कोई हमें बुलाये तो हम ज़रूर खेलते हैं। जुआ खेलने में भाग्य ही बलवान् होता है। भाग्य में जो बदा होता है वही होता है। इसलिए उसी का भरोसा करके आज हम खेलेंगे। हमारे साथ दाँव लगाने के लिए कौन तैयार है?

दुर्योधन ने कहा :—हे युधिष्ठिर! हमारे राज्य में जितना धन और जितने रत्न हैं, सब हम देंगे; पर खेलेंगे हमारे बदले हमारे मामा।

युधिष्ठिर ने कहा :—भाई, एक आदमी का दूसरे के बदले खेलना हमारी समझ में ठीक नहीं। ख़ैर, खेल शुरू कीजिए।

जुआ शुरू होने की ख़बर पाकर सारे राजपुरुष धृतराष्ट्र को आगे करके सभा में पहुँचे। महात्मा भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर दुखी मन से उनके पीछे पीछे आये। सबके बैठ जाने पर खेल शुरू हुआ।

युधिष्ठिर दुर्योधन से बोले :—

हे राजन्! हमने यह सोने का बना हुआ और मणियों से जड़ा हुआ हार दाँव में रक्खा। तुम क्या रखते हो?

दुर्योधन ने कहा:—लो हम ये इतने मणि दाँव में लगाते हैं। किन्तु इसके लिए हम अहङ्कार नहीं करते। ख़ैर आप इन्हें जीतिए।

युधिष्ठिर के पाँसे फेंकने के बाद शकुनि ने उन्हें लिया और बड़ी चालाकी से फेंक कर कहा :—

देखिए महाराज! हमी जीते।

इस अचानक हार से रुष्ट होकर युधिष्ठिर बोले :—

हे शकुनि! क्या तुमने सोच रक्खा है कि चतुराई से पाँसे फेंक कर बार बार हमीं जीतेंगे। आओ हमने अपना अनन्त ख़ज़ाना और ढेर का ढेर सोना दाँव में रक्खा।

इस बार भी शकुनि ने पाँसा डालते ही दाँव जीत लिया।

युधिष्ठिर ने कहा, इस बार नहीं तो अगली बार ज़रूर ही हमारा भाग्य चमकेगा। इससे पुनर्वार हारने की लज्जा से उत्तेजित होकर वे बढ़ बढ़ कर दाँव लगाने लगे। उन्होंने रथ, हाथी, घोड़े, दास, दासी और अन्त में अच्छे अच्छे रथी और योद्धा एक एक करके दाँव में लगाये। पर युधिष्ठिर के वैरी दुरात्मा शकुनि को अपने बनाये हुए पाँसे फेंकने का इतना अभ्यास था कि जैसे वह चाहता था वैसे ही उनको फेंक सकता था। इसलिए छल-कपट से उसने उन सब चीज़ों को भी जीत लिया।

जब इस सर्वनाशकारी जुए ने ऐसा भयानक रूप धारण किया तब विदुर से चुप-चाप न रहा गया। वे बोल उठे :—

महाराज! मरते हुए आदमी को जैसे ओषधि खाना अच्छा नहीं लगता, वैसे ही हमारा उपदेश भी शायद आपको न रुचे। तब भी जो कुछ हम कहते हैं, एक बार सुन लीजिए। जिस पापी के पैदा होते ही बड़े बड़े अशकुन हुए थे वही दुर्योधन हमारे विनाश का कारण होगा। इस समय इसमें सन्देह नहीं मालूम होता। शराब के कारण शराबियों की जो दुर्दशा होती है क्या वे उसे समझ सकते हैं? जुए में मस्त आपका पुत्र भी पाण्डवों के साथ शत्रुता करने का बुरा फल उसी तरह नहीं समझ सकता। कितने ही राजों ने राज्य की, कुल की और अपनी रक्षा के लिए पुत्र छोड़ दिये हैं। इसलिए हे भारत! यदि आप चाहते हैं कि पीछे पछताना न पड़े तो इस समय भी, समय रहते, इस दुरात्मा को छोड़ दीजिए। आप पाण्डवों का धन पाने की इच्छा से घर बैठे विपद बुलाते हैं। शकुनि जिस तरह दग़ाबाज़ी से खेल रहे हैं वह हम अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए उनको अपने घर जाने की आज्ञा दीजिए।

यह सुन कर दुर्योधन को बड़ा क्रोध हुआ। वे सभा में गरज उठे :—

हे विदुर! तुम सदा जिसकी तरफ़दारी किया करते हो उसे हम अच्छी तरह जानते हैं। नमकहराम आदमी क्या पापी नहीं होता? तब तुम किसलिए धर्म्म के बहाने हम लोगों का सदा तिरस्कार किया करते हो? हम तुमसे भलाई या बुराई की बातें नहीं सुनना चाहते। इसलिए अपने ही को कर्त्ता-धर्ता समझ कर अब कभी व्यर्थ उपदेश न देना। यह जान लेना कि क्षमाशीलता की भी हद होती है।

धृतराष्ट्र हक्का बक्का से रह गये। उन्हें कुछ भी न सूझा कि क्या कहना चाहिए या क्या करना चाहिए।

उधर युधिष्ठिर जुआ खेलने में इतने मस्त थे कि उन्होंने इस बातचीत की तरफ़ ध्यान ही न दिया। इससे शकुनि को और भी अच्छा मौक़ा मिला। वह बातें बना बना कर उन्हें और भी उत्तेजित करने लगा।

वह बोला :—हे युधिष्ठिर! तुमने तो पाण्डवों की सभी सम्पत्ति नष्ट कर दी। कहो, अब तुम्हारे पास और भी कुछ है कि नहीं; यदि न हो तो खेल बन्द करना ही अच्छा है।

युधिष्ठिर रुष्ट होकर बोले :—

हे सुबल के पुत्र! हमारे पास धन न होने के सम्बन्ध में तुम क्यों सन्देह करते हो। हमारे पास अब भी बहुत सा धन बाक़ी है।

यह कह कर अपना सब सोना, चाँदी, मणि, माणिक्य, तथा भाई और नौकर लोग जो गहने पहने थे वे सब उतार कर उन्होंने दाँव पर रख दिये। इस बार भी वे, पहले ही की तरह, हार गये।

अन्त में बिना समझे बूझे उन्होंने कहा :—

हे शकुनि! हमारे दोनों छोटे भाई हमें बहुत प्यारे हैं। यद्यपि वे दाँव में रखने के योग्य नहीं तथापि हम उन्हें दाँव में रख कर तुम्हारे साथ खेलेंगे। शकुनि पाँसे फेंकते ही जीत गया और बोला :—

तुम्हारे प्यारे माद्री के इन दोनों पुत्रों को हमने जीत लिया। हम समझते हैं कि अब तुम अपने विशेष प्यारे भीम और अर्जुन को इन्हीं की तरह दाँव में रख कर खेलने का साहस न करोगे। इसलिए अब खेल ख़तम होने दो।

युधिष्ठिर ने क्रुद्ध होकर कहा :—

रे मूढ़! ऐसी अनुचित बातें करके क्या तू हम लोगों के बीच में भेद डालना

चाहता है ? यद्यपि भीम और अर्जुन दाँव पर रखने योग्य बिलकुल नहीं हैं तथापि हम उन्हें रक्खे देते हैं। हाँ, चला पाँसे।

तब शकुनि ने उनको भी पाँसे के बल से अपने वश में कर लिया।

अन्त में क्षोभ से पागल होकर युधिष्ठिर ने अपने को भी दाँव पर रख दिया और हार गये। इस तरह पाँचों भाई ग़ुलामी की ज़ंजीर में बँध गये।

इससे भी तृप्त न होकर दुरात्मा शकुनि कहने लगा :—

मालूम होता है कि पागल आदमी बार बार गढ़े ही में गिरता है। हे धर्मराज! तुम पाण्डवों में श्रेष्ठ हो। इसलिए तुम्हें नमस्कार है। लोग सच कहते हैं कि जुआरी आदमी के मुँह से जो बातें निकल जाती हैं उनकी कल्पना स्वप्न में भी नहीं हो सकती। हे राजन्! अभी तुम्हारी प्यारी द्रौपदी बची हुई है। फिर क्या समझ कर तुम अपने को हार गये? और सम्पत्ति के रहते अपने को दाँव पर रखना मूर्खों का काम है! हे उन्मत्त! हम तुमको दाँव पर रखते हैं; तुम द्रौपदी को दाँव पर रख कर अपने को छुड़ाओ।

युधिष्ठिर ने कहा :—हे शकुनि! जो सुशीला, प्रिय बोलनेवाली और लक्ष्मी के समान है उसी अत्यन्त सुन्दरी द्रौपदी को हमने दाँव पर रक्खा।

धर्मराज के मुँह से यह अंडबंड बात सुनते ही जितने आदमी सभा में बैठे थे वे सब उन्हें धिक्कारने लगे। राजा लोग शोक के समुद्र में डूब गये। भीष्म, द्रोण, कृप आदि महात्माओं के शरीर से पसीना निकलने लगा। विदुर माथा पकड़ कर लम्बी लम्बी साँसें लेने लगे और अचेत आदमी की तरह मुँह लटका कर रह गये। पुत्र की इस जीत से धृतराष्ट्र को जो आनन्द हुआ उसे वे छिपा न सके। वे बार बार पूछने लगे—"क्या जीता? क्या जीता?" धृतराष्ट्र की मति बदलते देख कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस बार भी पहले की तरह सकुनि ही की जीत हुई। तब बदला लेने की इच्छा से फूल कर दुर्योधन बोले :—

हे विदुर! तुम शीघ्र जाकर पाण्डवों की प्राणप्यारी द्रौपदी को ले आओ। दासियों के साथ द्रौपदी भी हमारे घर में बुहारी लगावे।

विदुर ने कहा :—हे मूढ़! तुम नहीं जानते कि तुम्हारे बुरे दिन आनेवाले हैं। इसी से तुमने ऐसे दुर्वाक्य कहने का साहस किया है। हिरन होकर तुमने बाघ को

कुपित किया है। तुमने लोभ के वश होकर किसी का सदुपदेश नहीं सुना। इससे निश्चय जानना, वंशसहित शीघ्र ही तुम्हारा नाश होगा।

मदमाते दुर्योधन ने विदुर से केवल धिक् कहा और सभा में बैठे हुए सूतपुत्र की तरफ़ देख कर वे बोले :—

हे सूतपुत्र ! मालूम होता है, विदुर डर गये हैं। इससे तुम जल्दी से जाकर द्रौपदी को ले आओ। पाण्डव लोग तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते।

आज्ञा पाकर सूतपुत्र शीघ्र ही पाण्डवों के घर गया और द्रौपदी से बोला :—

हे द्रौपदी ! जुआ खेलते खेलते पागल से होकर युधिष्ठिर ने तुमको दाँव पर रक्खा था। दुर्योधन ने तुमको जीत लिया है। वे तुम्हें सभा में बुलाते हैं।

द्रौपदी ने कहा :—हे सूतपुत्र ! तुम कैसी बातें करते हो ? कोई राजकुमार क्या कभी स्त्री को भी दाँव में रख कर खेलता है ? युधिष्ठिर के पास क्या और कुछ सम्पत्ति न थी ?

सूतपुत्र ने कहा :—हे द्रुपदनन्दिनी ! महाराज युधिष्ठिर पहले अपने सब धन को, फिर अपने भाइयों समेत अपने को हार गये थे। अन्त में उन्होंने तुमको जुए के मुँह में फेंका है।

द्रौपदी ने कहा :—हे सूतनन्दन ! तुम सभा में जाकर युधिष्ठिर से पूछो कि उन्होंने पहले हमें दाँव पर रक्खा था या अपने को ?

द्रौपदी के आज्ञानुसार सूतपुत्र ने भरी सभा में मुँह लटकाये बैठे हुए युधिष्ठिर से द्रौपदी का प्रश्न पूछा। पर उस समय युधिष्ठिर अपने होश में न थे। इससे उसकी बात का कुछ भी उत्तर न मिला।

दुर्योधन ने कहा :—हे सूतकुमार ! द्रौपदी को जो कुछ पूछना हो यहाँ आकर पूछे।

तब सूतपुत्र फिर द्रौपदी के पास गया और दुःख से भरे हुए वचन बोला :—हे राजपुत्रि ! मदमत्त पापी दुर्योधन बार बार तुम्हें बुलाता है।

द्रौपदी ने कहा :—हे सूतनन्दन ! हमारे भाग्य ही में ऐसा लिखा था। संसार में धर्म्म ही सबसे बड़ा है। इसलिए सभ्य लोगों से पूछ आओ कि इस समय धर्म के अनुसार हमें क्या करना चाहिए। वे लोग जो कुछ कहेंगे हम वही करेंगी।

सूतपुत्र ने, लौट कर, पहले की तरह, भरी सभा में द्रौपदी की बात कह सुनाई। सभासदों ने दुर्योधन का आग्रह देख कर उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी कहने का

साहस न किया। द्रौपदी से भी कोई अधर्म की बात कहने को उनकी इच्छा न हुई। इस कारण उन लोगों ने मुँह लटका लिया और चुपचाप बैठे रहे।

यह देख कर कि द्रौपदी को सभा में लाने के लिए दुर्योधन ने दृढ़ संकल्प कर लिया है युधिष्ठिर ने छिपे छिपे दूत के द्वारा द्रौपदी से कहला भेजा कि वह सभा में चली आवे और ससुर के सामने अपना दुख रोवे।

सूतपुत्र समझ गया कि अब विपद आई। इससे दुर्योधन की कुछ भी परवा न करके वह सभासदों को उत्तेजित करने के लिए फिर बोला :—

मैं द्रौपदी से जाकर क्या कहूँ ? यह सुन क्रुद्ध होकर दुर्योधन ने कहा :—

हे दुःशासन ! यह सूत का लड़का बिलकुल ही कम समझ है। मालूम होता है कि यह भीमसेन से डरता है। इससे तुम खुद ही जाकर द्रौपदी को ले आओ। शत्रु लोग बे-बस हो रहे हैं। वे तुम्हारा क्या कर सकते हैं ?

आज्ञा पाते ही दुरात्मा दुःशासन जल्दी से द्रौपदी के घर जाकर बोला :—

हे द्रौपदी ! तुम जुए में जीत ली गई हो। इसलिए लज्जा छोड़ कर सभा में चलो।

द्रौपदी दुःशासन की लाल लाल आँखें देख कर बहुत डरी। उसने कहा, बहुत सी स्त्रियों के बीच में बैठी हुई गान्धारी की शरण जाना चाहिए। इससे वह बड़ी शीघ्रता से गान्धारी के यहाँ जाने को दौड़ी।

निर्लज्ज दुःशासन ने क्रोध से गरजते हुए द्रौपदी का पीछा किया और उसके लम्बे लम्बे बाल दौड़ कर पकड़ लिये। हवा से हिलते हुए केले के पत्ते की तरह काँप कर द्रौपदी बहुत नम्रता से बोली :—

हे दुःशासन ! हम इस समय एकवस्त्रा हैं। ऐसी हालत में हमें सभा में ले जाना उचित नहीं।

पर दुःशासन, उसकी बात सुनी अनसुनी करके, बोला :—

चाहे एकवस्त्रा हो चाहे बिना वस्त्र की हो, तुम हमारी जीती हुई दासी हो। इसलिए तुम्हें हमारी आज्ञापालन करना ही होगा।

यह कह कर दुष्ट दुःशासन, द्रौपदी के बाल ज़ोर से खींचते हुए, महा अनाथ की तरह उसे सभा में ले आया।

जो बाल, राजसूय यज्ञ के अन्तिम स्नान के समय, मन्त्र से पवित्र किये हुए जल से भींगे थे उन्हीं को पाखण्डी दुःशासन के हाथ के स्पर्श से कलङ्कित होते देख, सभा में बैठे हुए सब लोग मारे शोक के व्याकुल हो उठे।

ज़ोर से खींचे जाने से द्रौपदी के बाल बिखर गये और उसके शरीर पर का आधा वस्त्र कुछ खिसक पड़ा। इस पर वह लज्जा और क्रोध से जल कर बोली :—

रे दुरात्मा ! इस सभा में इन्द्र के समान पराक्रमी हमारे गुरुजन बैठे हैं। उनके सामने तू क्या समझ कर हमको इस अवस्था में ले आया ? तुझे इतना साहस हुआ कैसे ? यदि खुद इन्द्र भी तेरी सहायता करें तो भी राजपुत्र लोग तुझे क्षमा न करेंगे।

पर, यह देख कर कि दुःशासन को कोई मना नहीं करता, अभिमानिनी द्रौपदी फिर बोली :—

हाय ! भरतवंशी लोगों के धर्म को धिक्कार है ! आज मैं समझ गई कि क्षत्रियों का पवित्र धर्म नष्ट हो गया। इसी से तो कुल-धर्म की मर्य्यादा टूटती हुई देख कर भी सभा के सब लोग कुछ नहीं कहते; चुपचाप बैठे हुए मेरा अपमान देख रहे हैं।

यह कह कर रोती हुई द्रौपदी ने अपने पतियों की ओर आँख उठाई। राज्य, धन, मान, सम्मान आदि सब कुछ चले जाने से जो कुछ पीड़ा न हुई थी वही पीड़ा द्रौपदी की करुणापूर्ण दृष्टि से हुई। पाण्डवों के हृदय में विषम अन्तर्दाह उत्पन्न हुआ—ऐसा अन्तर्दाह जिसका किसी तरह निवारण न हो सकता था।

कर्ण, अपना पहले का अपमान याद करके, बड़े प्रसन्न हुए। शकुनि ने भी द्रौपदी का अपमान करने में सहायता दी। दुःशासन तो दासी ! दासी ! कह कर ज़ोर से हँस पड़ा। भीष्म कहने लगे :—

हे सुन्दरी ! एक तरह से तो परवश आदमी किसी भी चीज़ को अपना धन कह कर दाँव पर नहीं रख सकता। दूसरी तरह से स्त्री के ऊपर स्वामी का सदा ही अधिकार है। इसलिए हम ठीक तौर से नहीं कह सकते कि तुम धर्मानुसार दुर्योधन के अधीन हुई हो या नहीं।

प्रियतमा द्रौपदी के इस अपमान से पागल होकर भीमसेन बोले :—

हे युधिष्ठिर ! जुआरी आदमी घर की दासी तक को दाँव पर नहीं रखते; उस पर भी वे दया करते हैं। देखो, तुमने, बड़े कष्ट से मिले हुए धन को, और अपने अधीनस्थ हम लोगों को, एक एक करके, दूसरे को दे डाला। इस पर भी हमने क्रोध नहीं किया। पर तुम्हारा यह पिछला काम अत्यन्त निन्दनीय हुआ है। तुम्हारे ही अपराध से नीच कौरवों ने इस असहाय स्त्री को क्लेश पहुँचाने का साहस किया है। जुआ खेलनेवाले तुम्हारे ये दोनों हाथ भस्म कर देने से तुम्हारे इस पाप का प्रायश्चित्त हो जायगा। सहदेव ! जल्दी से आग ले आओ।

यह सुन कर अर्जुन ने जेठे भाई भीम का तिरस्कार करके कहा :—

हे आर्य्य ! तुमने तो पहले कभी ऐसे दुर्वाक्य नहीं कहे ; जोश में आकर शत्रुओं के मन की बात न कर बैठना। वे तो यही चाहते हैं ! देखो, बड़े भाई ने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार ही जुआ खेला है। और धर्मानुसार ही सिर झुका कर हार मान ली है।

भीमसेन बोले :—उन्होंने ज़रूर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार काम किया है ; इसी से तो हमने उनके दोनों हाथ अब तक नहीं जलाये।

पाण्डवों और द्रौपदी की दुर्दशा देख कर धृतराष्ट्र के पुत्र विकर्ण को बड़ी दया आई। वे बोले :—

हे नरेश्वरो ! तुममें से कोई भी द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर नहीं देता। यह काम धर्म के विरुद्ध है। पाञ्चाली बराबर रो रही है। पर सब बूढ़े बूढ़े कौरव चुप बैठे हैं !

तब भी सबको निरुत्तर देख विकर्ण आप ही कहने लगे :—

और कोई बोले चाहे न बोले, हमारी समझ में तो जुआरी आदमी का किया हुआ काम नहीं माना जा सकता। द्रौपदी तो पाँचों पाण्डवों की पत्नी है। फिर अकेले युधिष्ठिर उसको किस तरह दाँव पर रख सकते हैं ? इससे यह नहीं कहा जा सकता कि द्रौपदी जुए में जीत ली गई है।

विकर्ण की बात सुनते ही सभासद लोग बड़े ज़ोर से उनकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि विकर्ण ने बहुत ठीक कहा। थोड़ी देर में जब वह हाहाकार शान्त हो गया तब क्रोध से भरे हुए कर्ण ने विकर्ण का हाथ पकड़ कर कहा :—

हे विकर्ण ! सब सभासदों के मन की बात जानने के लिए ही कौरववृद्ध मौन थे। तुम लड़कों की तरह अधीर होकर और ऊटपटाँग बातें कह कर सभासदों को चंचल करते हो, यह बहुत बुरी बात है। युधिष्ठिर ने जब अपना सर्वस्व दाँव पर रख दिया तब वे अपनी पत्नी को भी अवश्य ही दाँव पर रख सकते हैं। फिर जो तुम यह कहते हो कि द्रौपदी जीत नहीं ली गई, इसका क्या मतलब है ? इसके साथ दासियों का सा व्यवहार करने में बाधा क्यों ? देखो, पाण्डव लोग यहाँ प्रत्यक्ष उपस्थित हैं। वे कुछ नहीं कहते। वे इस तरह के व्यवहार में कोई बात अनुचित नहीं देखते। क्या तुम समझते हो कि सभा में एकवस्त्रा अवस्था में लाई जाने से द्रौपदी को लज्जा आती होगी ? जिसके पाँच पति हों उसे संसार में किसकी लज्जा ? हे दुःशासन ! यह विकर्ण अभी कल का छोकड़ा है। पाण्डवों के पास जो कुछ था वह धर्म से जीता गया है। इसलिए पाण्डवों के और द्रौपदी के दुपट्टे ले लो।

पाण्डवों ने यह सुनते ही अपने अपने दुपट्टे दे दिये। याद रहे, द्रौपदी के पास एक ही साड़ी थी। वही वह पहने थी, वही ओढ़े। इससे जब दुःशासन एकवस्त्रा द्रौपदी का कपड़ा, भरी सभा में, खींचने लगा तब द्रौपदी अत्यन्त दुखी होकर आर्तनाद करने लगी। इस विपद् में स्वयं धर्म ने आकर द्रौपदी की लाज रक्खी। उसे कपड़े की कमी नहीं होने दी।

यह देख कर सभा में बड़ा गोलमाल होने लगा। राजों ने दुःशासन को डाँट कर रोका। भीमसेन से बैठे न रहा गया। क्रोध से उनके ओंठ काँपने लगे। उन्होंने हाथ मल कर क़सम खाई और कहा :—

हे क्षत्रिय लोग, सुनो! भरत-वंश में उत्पन्न हुए इस नीच कुलाङ्गार दुःशासन की छाती युद्ध में फाड़ कर यदि हम उसका रुधिर न पियें तो हमें अपने पूर्व-पुरुषों की गति न प्राप्त हो।

जब दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र न खींच सके तब लज्जित होकर सभा में बैठ गये। सारे सभासद धृतराष्ट्र के पुत्रों को धिक्कारने लगे। कितने ही सज्जन धृतराष्ट्र की निन्दा करके दुःख प्रकाशित करने लगे। विदुर ने देखा कि सभा के सब लोग पाण्डवों के साथ अन्याय किये जाने के कारण क्षुब्ध हो उठे हैं और कौरवों से अप्रसन्न होकर कोलाहल मचा रहे हैं। इससे अपने दोनों हाथ उठा कर उन्होंने उस गोलमाल को बन्द कराया और कहने लगे:—

हे सभासद! इसके पहले कि इस निरपराध द्रौपदी पर और अत्याचार किया जाय, आप लोग उसके प्रश्न का उत्तर देकर इस मामले का निपटारा करें। जहाँ अधर्म होता है वहाँ चुप रहना भी पाप है। इसलिए यह शीघ्र ही निश्चय कीजिए कि युधिष्ठिर द्रौपदी को दाँव में रख सकते थे या नहीं।

किन्तु आँखों में आँसू भरे हुए द्रौपदी को देख कर भी धृतराष्ट्र के डर से कोई न बोला। तब दुर्योधन ने द्रौपदी से कहा :—

हे द्रौपदी! तुम अपने पतियों से अपने प्रश्न का उत्तर पूछो। वे जो कुछ कहेंगे हम उसी को मान लेंगे। यदि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव यह बात सबके सामने कह दें कि उन पर युधिष्ठिर का अधिकार नहीं है तो तुम दासीपन से छूट सकती हो।

पाँचों पाण्डवों को चुप देख कर दुर्योधन अपनी जीत से बड़े प्रसन्न हुए। हँसते हुए द्रौपदी की ओर देख कर और अपनी बाईं जाँघ पर हाथ रख कर उन्होंने अपमानसूचक इशारा किया।



द्रौपदी का वस्त्र-हरण ।

इससे महाक्रोधी भीमसेन ने मदमाते हाथी की तरह गरज कर फिर प्रतिज्ञा की :—

हे भूपतिगण! यदि मैं युद्ध में अपनी गदा से इस जाँघ को न तोड़ दूँ तो अन्त-काल में मैं उस गति को न प्राप्त हूँ जिसको पितर प्राप्त हुए हैं।

विदुर ने कहा :—हे नरेशगण! देखिए, भीमसेन ने बड़ी भयानक प्रतिज्ञा की है। स्त्री पर अत्याचार आदि अधर्म सभा में हो रहे हैं। हमारी समझ में तो द्रौपदी को युधिष्ठिर दाँव पर न रख सकते थे। आप लोग शीघ्र ही इस मामले को तै कीजिए। इस अशुभ काम को और अधिक देर तक पड़ा रखना उचित नहीं।

विदुर की बात का कुछ फल न हुआ। उनके कह चुकने पर दुर्योधन ने फिर द्रौपदी से कहा :—

हे द्रौपदी! यदि सब भाई युधिष्ठिर की प्रभुता न मानें तो दासीपन से तुम्हें शीघ्र ही छुटकारा मिल सकता है।

तब अर्जुन बोले :—

इसमें सन्देह नहीं कि धर्म्मराज पहले हमारे प्रभु थे। पर अब वे खुद ही दूसरे के वश में हैं। इसलिए किस तरह वे किसी के मालिक हो सकते हैं? इस बात का विचार कौरव लोग ही करें।

इस तरह बातचीत हो ही रही थी कि ख़बर आई कि बड़े बड़े अशकुन हो रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र बहुत डरे और अमङ्गल शान्त करने के लिए पुत्र के किये हुए पापों को दूर करने की चेष्टा करने लगे। दुर्योधन को डाँट कर वे बोले:—

ओ उद्दण्ड दुर्योधन! क्या समझ कर तुम पाण्डवों की स्त्री से सभा में ऐसी बातें करते हो?

फिर उन्होंने धीरज देते हुए द्रौपदी से कहा :—

हे कल्याणि! तुम हमारी बहुओं में सबसे श्रेष्ठ हो। तुम मनमाना वर माँगो।

द्रौपदी ने कहा:—यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे पतियों को दासत्व से छोड़ दिये जाने की आज्ञा दीजिए।

धृतराष्ट्र ने—ऐसा ही हो!—कह कर पाण्डवों को स्वतन्त्रता दे दी।

इस पर कर्ण इस तरह दिल्लगी करते हुए बोले:—

स्त्रियों के अद्भुत कामों की बातें बहुत सुनी हैं। किन्तु अकेली द्रौपदी ही ने नाव के समान होकर पतियों को विपद के समुद्र से उद्धार किया।

इस पर भीम ने कहा :—

हाँ ! स्त्री ही ने पाण्डवों की रक्षा की !

यह कह कर वे युधिष्ठिर से बोले :—

महाराज ! आज्ञा हो तो इस सभा में ही आपके शत्रुओं का हम जड़ से नाश कर दें। ऐसा होने से आप इस पृथ्वी पर बेखटके राज्य कर सकेंगे।

युधिष्ठिर ने भीम को रोक कर धृतराष्ट्र से हाथ जोड़ कर कहा:—

हे राजन् ! इस समय हम लोग आप ही के अधीन हैं। इसलिए जो आज्ञा हो सो करें।

धृतराष्ट्र ने कहा :—हे धर्म्मराज ! हारी हुई अपनी सब धन-सम्पत्ति लेकर तुम अपना राज्य करो। हे पुत्र ! हमारा इतना ही आग्रह तुमसे है कि तुम दुर्योधन के कटु वाक्य और निष्ठुर व्यवहार को अपने गुणों से क्षमा कर दो।

यह सुनते ही कि धृतराष्ट्र के आज्ञानुसार पाण्डव लोग अपने हारे हुए धन-रत्न लेकर अपने राज्य को लौट जाने के लिए तैयार हैं, दुःशासन व्याकुल होकर मन्त्री सहित दुर्योधन के पास पहुँचा और रो रो कर कहने लगा !

हे आर्य्य ! बड़े कष्ट से जो कुछ हम लोगों ने इकट्ठा किया था, वृद्ध राजा ने वह सब नष्ट कर दिया। धन आदि सभी चीज़ें शत्रुओं को दे दी गईं। अब जो उचित समझिए कीजिए।

यह बात सुनते ही घमंडी दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तुरन्त धृतराष्ट्र के पास जाकर बोले :—

महाराज ! आपने यह क्या किया ? सताये हुए साँपों के बीच में रह कर क्या कोई बच सकता है ? क्या आप नहीं जानते कि क्रोधान्ध पाण्डव लोग रथ पर सवार होकर लड़ने की तैयारी कर रहे हैं ? हमने उन लोगों को बहुत हानि पहुँचाई है; उनका बहुत कुछ अपकार हमने किया है। क्या वे कभी उसे भूल सकेंगे ? द्रौपदी के साथ दासियों का सा व्यवहार जो हमने किया है क्या वे कभी उसे सहन कर सकेंगे ?

यह बात सुनते ही डर से धृतराष्ट्र व्याकुल हो उठे। तब दुर्योधन ने फिर कहा :—

इसलिए इस बार इस तरह काम करना होगा जिससे पाण्डवों के बदला लेने का रास्ता एकदम ही बन्द हो जाय। उनको जुए में फिर हराना होगा। पर ऐसी कोई चीज़ दाँव पर न लगाई जायगी जिससे क्रोध उत्पन्न हो। अब की बार यह बदा जाय कि जो हारे वह बहुत वर्ष तक वनवास करे। शकुनि अपनी चतुराई के द्वारा निश्चय

ही जीतेंगे। इससे न तो इस समय ही कोई झगड़ा फ़साद होगा और न आगे होने ही की संभावना रहेगी।

इस प्रस्ताव से धृतराष्ट्र को धीरज हुआ। उन्होंने कहा :—

पुत्र ! तुम शीघ्र ही पाण्डवों को फिर जुआ खेलने के लिए बुलाओ !

यह बात सुनते ही भीष्म, द्रोण, विदुर, अश्वत्थामा और धृतराष्ट्र के किसी किसी पुत्र आदि ने धृतराष्ट्र को मना करके कहा :—

महाराज ! बड़े कष्ट से शान्ति हुई है। बार बार वंशनाश करनेवाले झगड़े का बीज न बोइए।

पर डरपोक, पुत्रवत्सल और मोह से अन्धे धृतराष्ट्र ने इस उपदेश की तरफ़ ध्यान न दिया। धर्म्मपरायण राजरानी गान्धारी पुत्रों के निष्ठुर और दुष्ट व्यवहार से एक तो वैसे ही महाशोकाकुल थीं, जब उन्होंने यह बात सुनी तब और भी व्याकुल हुईं। उन्होंने कहा :—

महाराज ! दुर्योधन के पैदा होते ही सबने कहा था कि इसे त्याग दीजिए, पर तुमने वैसा न किया। आज उसका बुरा फल एक दफ़े देख चुके हो। क्या समझ कर तुम फिर इस कुलाङ्गार, कुमार्गी बालक की बात मानते हो ? यदि इसे अपना आज्ञाकारी नहीं बना सकते तो निकाल दो। पुल बँध जाने पर उसे क्या कोई अपनी इच्छा से थोड़े ही तोड़ता है ? हे महाराज ! पुत्रों के स्नेह के फंदे में पड़ कर बुझी हुई आग को जला कर कुलनाश का कारण न हो।

धृतराष्ट्र ने उदास होकर उत्तर दिया :—

प्रिये ! यदि वंशनाश हो जाय तो भी कोई उपाय नहीं। किन्तु प्राणों से भी अधिक प्यारे अपने पुत्रों के विरुद्ध हम कोई काम नहीं कर सकते।

पिता की आज्ञा पाते ही दुर्योधन तुरन्त युधिष्ठिर के पास पहुँचे। उस समय युधिष्ठिर जाने की तैयारी कर रहे थे। दुर्योधन ने कहा :—

हे युधिष्ठिर ! सभा में अब भी बहुत लोग बैठे हैं। पिता की आज्ञा है कि तुम्हारे जाने के पहले हम सब मिल कर फिर एक दफ़े जुआ खेलें।

युधिष्ठिर बोले:—जुआ सर्वनाशकारी खेल है। यह हम अच्छी तरह जानते हैं। पर यदि चचा की ऐसी ही आज्ञा है तो इस बात को जान कर भी हम एक दफ़े और खेल डालेंगे।

यह कह कर भाइयों के साथ युधिष्ठिर चुपचाप खेलने के घर में पहुँचे।

शकुनि बोले :—महाराज ! वृद्ध राजा ने तुमको जो कुछ लौटाया है उसमें हम दख़ल देना नहीं चाहते। इस बार और तरह की बदावदी हो। हममें या तुममें से जो हारे वह बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करे। अज्ञात वास के समय यदि पता लग जाय तो बारह वर्ष फिर वनवास करे। यदि इस तरह के खेल से तुम डरते न हो तो आओ खेल शुरू करें।

यह सुन कर जो लोग सभा में बैठे थे घबरा गये। बड़ी व्याकुलता से हाथ उठा कर वे कहने लगे :—

भाइयो ! तुम लोगों को धिक्कार है ! मालूम होता है, युधिष्ठिर इस भयङ्कर दाँव के नतीजे को नहीं समझते; इसी से वे खेलने को तैयार हैं। पर युधिष्ठिर ने यह सोचा कि यदि हम न खेलेंगे तो लोग यह कह कर निन्दा करेंगे कि ये खेलने से डरते हैं। इससे, मरने के समय मनुष्य का हिताहित ज्ञान मोह के मारे जैसे जाता रहता है उसी तरह युधिष्ठिर को भले बुरे का ज्ञान न रहा। उन्होंने शर्त स्वीकार कर ली और पाँसे फेंकने लगे। किन्तु सिद्धहस्त शकुनि ही की जीत हुई। पाण्डव लोग वनवास की प्रतिज्ञा में बँध गये।

इसके बाद धर्मात्मा पाण्डव लोग चुपचाप हार मान कर वनवास की तैयारी करने लगे। दीनभाव से छाल और मृगचर्म पहन कर जब वे खेल-घर से निकले तब धृतराष्ट्र के दुर्म्मति पुत्र बड़े प्रसन्न हुए और तरह तरह से पाण्डवों का अपमान करने लगे। निर्दयी दुःशासन द्रौपदी से कहने लगा :—

हे द्रौपदी ! वनवासी पाण्डवों की सेवा करके तुम प्रसन्न नहीं रह सकतीं। इसलिए हममें से किसी को तुम अपना पति बनाओ जो तुम्हें जुए में न हार दे।

तब भीम बोले :—

रे पाखण्डी ! इस समय तू हमको जिस तरह मर्मविद्ध करता है उसी तरह तुझे भी हम, एक दिन, लड़ाई के मैदान में, मर्म्मविद्ध करेंगे। सिर्फ़ तुझको ही नहीं, धृतराष्ट्र के जिन जिन पुत्रों ने तेरा अनुकरण किया है उन सबको यदि हम यमलोक न भेज दें तो हमें पुण्यलोक न प्राप्त हो।

यह सुन कर निर्लज्ज दुःशासन मृगचर्मधारी भीमसेन की दिल्लगी करते हुए चारों ओर नाचने लगा।

सिंह की तरह चलनेवाले भीमसेन और अन्य पाण्डवों के पीछे पीछे चल कर दुर्योधन उनकी चाल की नक़ल करने लगे। उन्हें ऐसा करते देख दुर्योधन के सब

भाई हँस पड़े। इस पर अभिमानी भीमसेन ने बड़े कष्ट से अपना क्रोध रोक कर पीछे की तरफ़ देखा और बोले :—

हम तुमको वंशसहित मरा हुआ समझ कर इसका उचित उत्तर नहीं देते। तुम इस समय जो चाहो बे-खटके करो। लड़ाई के मैदान में हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को, अर्जुन कर्ण को, और सहदेव शकुनि को मारेंगे।

अर्जुन ने कहा :—हे भीम! जिस आदमी ने किसी बात की प्रतिज्ञा करली उसे बातें बनाने से क्या मतलब? तेरह वर्ष बाद जो कुछ होगा वह सब लोग आप ही देख लेंगे। जो हो, तुम्हारे ही कहने के अनुसार हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम तीक्ष्ण बाणों के द्वारा इस हँसोड़ सूत-पुत्र का रक्त पृथ्वी को पिलायेंगे। हिमालय अपना स्थान छोड़ सकता है, सूर्य्य का तेज भी नष्ट हो सकता है, पर हमारी यह प्रतिज्ञा नहीं टल सकती।

अर्जुन की बात समाप्त होते ही माद्री के पुत्र सहदेव आँखें गुरेर कर बोले :—

हे धूर्त शकुनि! पाँसे समझ कर तुमने जिन चीज़ों की सेवा की है वही चीज़ें, लड़ाई के मैदान में, बाणों के रूप में, तुम्हें माथे पर धारण करनी होंगी।

नकुल ने कहा :—जो दुष्ट, खेल में, द्रौपदी के अपमान से प्रसन्न हुए हैं उन सबको हम यमलोक भेजे बिना न रहेंगे।

इसके बाद युधिष्ठिर राजसभा में आकर बोले :—

अब हम पितामह भीष्म से, बड़े बड़े कौरवों से, द्रोण आदि गुरुजनों से, धृत-राष्ट्र से और उनके पुत्रों तथा विदुर से बिदा होते हैं। यदि वनवास के बाद लौटेंगे तो फिर मिलेंगे।

यह सुन कर सब लोग चुपचाप रहे। पर मन ही मन, पाण्डवों को तरह तरह के आशीर्वाद उन्होंने दिये।

विदुर ने कहा :—हे पाण्डव! सब कहीं तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारी माता सुकु-मारी हैं; सुख ही में पली हैं; अब वृद्ध भी हुई हैं। उनका वन जाना किसी तरह उचित नहीं। इसलिए वे हमारे घर रहें। हम उन्हें बड़े आदर से रक्खेंगे।

पाण्डवों ने कहा :—

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! आप हमारे पिता के तुल्य हैं और परम गुरु हैं। आपकी आज्ञा हम अवश्य मानेंगे। और जो आपकी इच्छा हो सो कहिए।

विदुर बोले :—हे धर्म्मराज! जिस धर्म्म-बुद्धि के बल से तुमने इन सब लाञ्छ-

नाओं और अपमानों की परवा नहीं की, ईश्वर करे, वह तुममें सदा बनी रहे। तुम निर्विघ्न लौट आओ, यही हमारा आशीर्वाद है।

इसके बाद युधिष्ठिर ने सबको यथोचित अभिवादन करके चल दिया। तब द्रौपदी दुःखी मन से कुन्ती के पास गईं और उनको तथा वहाँ बैठी हुई राजवधुओं को प्रणाम करके उनसे मिलीं। फिर उन्होंने उनसे अपने पतियों के साथ जाने की आज्ञा माँगी।

यह देख कर कि द्रौपदी बिना गये न मानेगी, कुन्ती शोक से विह्वल हो गईं। उनका कंठ भर आया। वे कहने लगीं :—

बेटी! इस घोर दुःख में व्याकुल न होना। तुम सदा ही से सुशीला और पतिव्रता हो। तुम्हें हम और क्या उपदेश दें। तुमसे हमारे कुल की शोभा है। कौरव लोग बड़े भाग्यशाली थे जो तुम्हारे कोप की आग में नहीं जले। हे बहू! हम सदा ही तुम्हारी मङ्गलकामना करेंगी। तुम बे-खटके जाओ; तुम्हारा बाल न बाँका होगा। नकुल और सहदेव को तुम अच्छी तरह रखना।

द्रौपदी ने कहा :—आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है। फिर उन्होंने अपनी चोटी खोल डाली और सिर्फ़ एक वस्त्र पहन कर आँखों में आँसू भरे पाण्डवों के पीछे पीछे चलीं।

तब दुःख से व्याकुल कुन्ती से और न रहा गया। वे उनके पीछे दौड़ीं और कुछ दूर जाकर देखा कि उनके पुत्र वस्त्र और गहनों की जगह मृगचर्म धारण किये और लज्जा से सिर झुकाये चले जा रहे हैं। पुत्रवत्सला कुन्ती उनको इस दशा में देख कर उनके पास पहुँची और लिपट कर विलाप करने लगी :—

हाय, समय का फेर! जो भूल से भी धर्म-भ्रष्ट नहीं हुए, जिनके आचरण संसार भर से श्रेष्ठ हैं वही ऐसी भयङ्कर विपद में पड़े! इस समय किसे अपराधी समझें? हमारे ही भाग्य के दोष से ऐसा हुआ है। हा पुत्रगण! इस हतभागिनी के गर्भ से पैदा होकर तुम इतने गुणवान् हुए; तो भी तुम्हें इतना दुःसह दुःख भोगना पड़ा। तुम्हारे पिता को धन्य है जो उन्होंने तुम्हारे इस असह्य क्लेश को न देखा। हाय! हमारे जीने की लालसा को धिक्कार है! मालूम होता है कि विधाता हमारे मरने का समय निश्चय करना भूल गये; नहीं तो यह दुःखदायी दृश्य देख कर भी हम कैसे जीती रहतीं?

इस तरह विलाप करती हुई कुन्ती का पाण्डवों ने पैर छुआ और वन को चल दिया। उस समय विदुर ने शोकातुरा कुन्ती को तरह तरह से समझा बुझा कर धीरज दिया और धीरे धीरे अन्तःपुर में पहुँचा दिया।

धृतराष्ट्र मन ही मन चिन्ता करते हुए चुपचाप राजसभा में बैठे रहे। पाण्डवों के चले जाने पर विदुर को वहाँ सहसा आ गया देख उन्होंने लज्जा से काँपते हुए पूछा :—

हे विदुर ! पाण्डव लोग किस भाव से वन को गये हैं ?

विदुर बोले :—महाराज ! सबके आगे धर्म्मराज अपना मुँह ढक कर और सिर झुका कर गये हैं, नहीं तो उनकी दृष्टि के पुण्य-प्रभाव से यह पापराज्य जल जाता। लम्बी भुजाओंवाले भीमसेन अपने विशाल भुजदण्डों को देखते हुए गये हैं; मानों वे मन में यह कह रहे थे कि किसी समय इन्हीं के द्वारा धृतराष्ट्र के पुत्रों का विनाश करेंगे। धनुर्धारी अर्जुन धूल उड़ाते हुए गये हैं। हाय ! एक दिन वे इसी धूल के कणों के इतने बाण बरसा कर कौरवों को व्याकुल करेंगे। सबके पीछे बड़ी बड़ी आँखोंवाली, सुकुमारी द्रौपदी बाल खोले और मुँह छिपाये रोती हुई गई है। उसके ढंग से मालूम होता था कि वह उस दिन की राह देख रही है जिस दिन अपने पतियों की क्रोधाग्नि में पड़ कर जले हुए कौरवों की स्त्रियों की भी उसी की तरह दीन दशा होगी।

इस समय राजमान्य बूढ़ा सारथि सञ्जय धृतराष्ट्र को दुःखी और ठंडी साँसें भरते देख कर बोला :—

महाराज ! जब आपने सब बातें जान कर भी अपने हितचिन्तकों की सलाह न मानी तब आप इस समय क्यों दुखी होते हैं ? और, आप ही के अपराध से जब भयङ्कर युद्ध की आग प्रज्वलित होकर चारों दिशाओं को जलावेगी तब भी आपके पछताने से क्या होगा ? अब रोना, धोना और दुःख करना व्यर्थ है।

८—पाण्डवों का वनवास

जुए का हाल सुन कर नगरनिवासी लोग क्रोध से जल उठे और खुल्लमखुल्ला धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर को बार बार दोषी ठहरा कर कहने लगे :—

जब शकुनि, कर्ण और दुःशासन के उपदेश से दुर्योधन राज्य करते हैं तब हमें अपनी भलाई की आशा नहीं। इसलिए, आओ, धर्म्मराज युधिष्ठिर और महात्मा पाण्डव लोग जहाँ रहेंगे वहीं जाकर हम भी रहें।

वे लोग युधिष्ठिर से बोले :—

हे धर्म्मराज ! इस अन्यायी कुरुराज्य में हम और नहीं रहना चाहते। हम आपके परम मित्र और भक्त हैं। यह सुन कर कि आप लोगों के साथ अधर्म किया गया है,

हम बड़े दु:खित और भयभीत हुए हैं। इसलिए हम लोगों को आप न छोड़िए; अपने साथ लेते चलिए।

युधिष्ठिर ने कहा :—आप लोग हमें इतना गुणवान् समझते हैं, इसलिए हम धन्य हैं किन्तु जब आपने हम पर स्नेह और दया प्रकट की है तब हमारी बात भी आपको माननी चाहिए। देखिए, यहाँ कुरुओं में निरपराध बूढ़े लोग और शोकातुर माता रह गई हैं। यदि आप लोग यहाँ न रहेंगे तो उन्हें कौन देखेगा। यदि इनकी भलाई और देख भाल आप करेंगे तो सचमुच ही हम बड़े प्रसन्न होंगे। इसी को हम अपना सच्चा सत्कार समझेंगे। इससे हमें परम सन्तोष होगा।

यह सुन कर नगरनिवासी अनेक प्रकार से विलाप करते हुए लौट गये। उनके चले जाने पर पाण्डव लोग द्रौपदी के साथ रथ पर सवार होकर नगर के मुख्य फाटक से हस्तिनापुर से निकले और उत्तर की ओर चले। स्त्रियों समेत इन्द्रसेन आदि चौदह नौकर भी उनके साथ चले।

संध्या तक बराबर चल कर वे गङ्गाजी के किनारे बरगद के एक बड़े वृक्ष के नीचे उतरे। उनके साथ बहुत से भिक्षुक ब्राह्मण भी थे। सबने बड़े कष्ट से सिर्फ़ जल पीकर वह रात बिताई। सबेरा होने पर जब पाण्डव लोग चलने लगे तब ब्राह्मण भी उनके पीछे चलने को तैयार हुए। यह देख कर युधिष्ठिर कहने लगे:—

हे विप्रगण! हमारा राजपाट और धन-लक्ष्मी सब कुछ छिन गया; हमारे पास अब कुछ नहीं है। ऐसी दशा में हम वन जा रहे हैं। हिंसक जन्तुओं से पूर्ण जंगल के महा भयङ्कर स्थानों में आप लोगों को बड़ा कष्ट होगा। इसलिए आप हमारे साथ न चलिए।

ब्राह्मणों ने कहा:—अनुरागी ब्राह्मणों पर देवता भी दया दिखाते हैं। इसलिए आप हमारा उत्साह भंग न कीजिए—हमें अपने साथ चलने दीजिए।

युधिष्ठिर ने कहा :—हे द्विजवर! ब्राह्मणों पर हमारी यथेष्ट भक्ति है। इस निराश्रय दशा से हम लाचार हैं। हमारे भाई शिकार और फलमूल लाकर खाने पीने की बहुत सी चीज़ें इकट्ठा कर सकते हैं; पर वे इस समय प्यारी पत्नी के क्लेशों को देख कर दुखी हैं। इसलिए हम उनको कोई मेहनत का काम करने को नहीं कह सकते।

ब्राह्मण लोग बोले :—महाराज! हमारे खाने पीने की चिन्ता न कीजिए। हम खुद अन्न लाकर अपना जीवन-निर्वाह करेंगे और कथा-कहानी कह कर आप लोगों का मन बहलायेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा :—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आप लोगों के पास रहने से

हमारा कष्ट बहुत कुछ हलका हो जायगा। किन्तु आप लोगों के ख़ुद अन्न लाने का क्लेश हम कैसे देख सकेंगे? हाय, धृतराष्ट्र के पापी पुत्रों को धिक्कार है!

यह कह कर युधिष्ठिर शोक से विह्वल होकर ज़मीन पर बैठ गये। ब्राह्मणों ने उनको धीरज देकर बहुत विलाप किया। पुरोहित धौम्य कुछ देर सोच कर कहने लगे :—

भगवान् सूर्य्य ही सांसारिक जीवों को अन्न देनेवाले हैं। इसलिए हे महाराज! यदि आप सूर्य देव की उपासना करें तो निश्चय ही सिद्धि प्राप्त करेंगे और उनके प्रसाद से ब्राह्मणों का भरण पोषण कर सकेंगे।

इसके बाद धौम्य के सिखलाये हुए महास्तोत्र के द्वारा युधिष्ठिर ने सूर्य्य भगवान् की यथाविधि पूजा की। तब वे प्रसन्न हुए। जलती हुई आग की तरह प्रकाशमान देह धारण कर वे युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुए और बोले :—

हे युधिष्ठिर! हम तुम पर प्रसन्न हुए। तुमको यह अक्षय-स्थाली देते हैं। प्रति दिन जब तक द्रौपदी भोजन न करेगी तब तक इस थाली में अनेक प्रकार के अन्न बराबर बने रहेंगे—तब तक यह नाना प्रकार के भोजन दिया करेगी।

यह कह कर सूर्य्य भगवान् अन्तर्धान हो गये। धर्म्मराज ने द्रौपदी को वह थाली दे दी।

द्रौपदी प्रति दिन भोजन बना कर पहले वनवासी ब्राह्मणों को भोजन कराती, फिर पतियों को और सबसे पीछे आप करती। तब तक इस थाली से तरह तरह का षट्रस अन्न प्राप्त होता रहता।

इसके बाद पाण्डव लोग गङ्गातीर से कुरुक्षेत्र गये और उसके निकट सरस्वती नदी के किनारे, कुरु-जाङ्गल देश के काम्यक वन में डेरा डाल कर बड़े कष्ट से दिन बिताने लगे।

एक दिन सब भाई एकान्त में द्रौपदी के साथ बैठे थे। इसी समय दूर से उन्होंने देखा कि चचा विदुर जल्दी जल्दी पैर उठाते हुए वहाँ आ रहे हैं। बड़े आश्चर्य में आकर युधिष्ठिर भीम से बोले :—

हे भीम! न मालूम किस मतलब से विदुर यहाँ आते हैं? क्या दुर्योधन फिर जुआ खेल कर हमारे एकमात्र आधार ये अस्त्र-शस्त्र भी छीनना चाहते हैं। यदि गाण्डीव धनुष दूसरे के हाथ में चला गया तो हम सचमुच ही असहाय हो जायँगे।

इसके बाद पाण्डव लोग आगे बढ़ कर विदुर को लिवा लाये। जब विदुर का सत्कार हो चुका और वे विश्राम भी कर चुके तब सब लोगों ने बड़ी घबराहट से उनके आने का कारण पूछा। विदुर कहने लगे :—

हे पाण्डव ! एक दिन महाराज धृतराष्ट्र ने सलाह करने के लिए हमें एकान्त में बुला भेजा और इस प्रकार कहा : —

हे विदुर ! जो होना था हो गया। अब यह बतलाओ कि हमें क्या करना चाहिए। इसके उत्तर में हमने फिर भी वही कहा जो हम सदा से कहते आये हैं :—

हे नरेन्द्र ! हम बार बार कहते हैं कि आपके पुत्रों के किये हुए पापों का प्रायश्चित्त तभी हो सकता है जब आप पाण्डवों को उनका पैतृक राज्य लौटा दें। यदि दुर्योधन खुशी से पाण्डवों के साथ एकत्र राज्य न करना चाहें तो उनको अलग करके पाण्डवों ही के हाथ में सब राज्य दे दीजिए। इसके सिवा कुल को नाश होने से बचाने का और कोई उपाय नहीं।

तब महाराज पुत्र के सम्बन्ध में ऐसी कठोर बात सुनकर रुष्ट हुए और हमसे बोले :—

हे विदुर ! जब सभा में पहले पहल तुमने ये बातें कही थीं तब हमने समझा था कि तुम सचमुच ही हमारी भलाई करनेवाला उपदेश देते हो। पर अब साफ़ साफ़ मालूम होता है कि किसी न किसी तरह पाण्डवों को राज्य दिलाना ही तुम्हारा मतलब है। जान पड़ता है, उनकी भलाई करना ही तुम्हारा एक-मात्र उद्देश है। हमारी भलाई बुराई की तरफ़ तुम कुछ भी ध्यान नहीं देते। अब हम समझे कि विश्वासघातक का यदि बहुत कुछ सम्मान भी किया जाय तो भी वह पूरी तौर से सम्मानकर्ता की तरफ़दारी नहीं करता—उसकी हितचिन्तना नहीं करता। इसलिए चाहे तुम यहाँ रहो, चाहे कहीं चले जाव, इसमें हमारी कोई हानि नहीं। यहाँ पर तुम्हारा रहना और न रहना हमारे लिए दोनों समान हैं।

यह कह कर भाई सहसा उठ खड़े हुए और भीतर चले गये। हम भी तुम्हें यह ख़बर देने आये हैं कि धर्म के अनुसार सिद्धि प्राप्त होने की कोई आशा नहीं। इसलिए हे पाण्डवगण ! तुम अब धीरज धर कर समय की प्रतीक्षा करो। अवसर आने पर अपने सहायकों को इकट्ठा करना ही तुम्हारे लिए एक-मात्र उपाय है।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे विदुर ! जहाँ तक हो सकेगा हम आपके उपदेश के अनुसार ही काम करेंगे।

इधर विदुर की जुदाई से धृतराष्ट्र बड़े दुःखित हुए। उन्होंने समझा कि विदुर की सलाह से पाण्डवों का ज़रूर भला होगा। इससे वे डर गये और पास बैठे हुए संजय से घबरा कर कहने लगे:—

हम बड़े पापी हैं जो हमने अपने प्यारे भाई को निकाल दिया। वह बड़ा धार्म्मिक



धृतराष्ट्र और विदुर

है। उसने हमारा कभी कोई अपराध नहीं किया। हमने मोह के वश होकर बिना अपराध के इसका अपमान किया है। तुम शीघ्र जाकर उसे लिवा लाओ।

इस आज्ञा के अनुसार संजय काम्यक वन पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के बीच में विदुर बैठे हैं। संजय ने विदुर से कहा कि महाराज धृतराष्ट्र ने आपको बुलाया है। उन्हें अपने किये का बहुत पछतावा है। वे अब आपके देखने को तड़प रहे हैं। यह सुन कर अपने भाई बन्धुओं से स्नेह रखनेवाले विदुर, युधिष्ठिर से विदा होकर जल्द हस्तिनापुर लौट गये।

अपने प्यारे भाई के आते ही धृतराष्ट्र ने उन्हें गोद में लेकर माथा सूँघा और कहने लगे:—

भाई! हमारा बड़ा भाग्य है जो तुम फिर हमारे पास आये। तुम्हारे वियोग में हमें नींद नहीं आई। हमारा अपराध क्षमा करो।

विदुर बोले:—हे राजन्! आप हमारे परम गुरु हैं। हम ख़ुद ही आपके दर्शनों के अभिलाषी थे, इसी से हम इतनी जल्द आ गये। हे भरत-कुल के तिलक! आपके पुत्र और पाण्डु के पुत्र हमारे लिए बराबर हैं। पर पाण्डव लोग इस समय दीन-अवस्था में हैं; इसी से हमें उन पर दया आती है और हम उन पर अधिक स्नेह प्रकट करते हैं।

धृतराष्ट्र और विदुर इसी तरह बातचीत करते हुए दोबारा मिलने से बड़े प्रसन्न हुए। पर विदुर का लौट आना दुर्योधन को अच्छा नहीं लगा। इससे उन्हें उलटा दुःख हुआ। वे शकुनि, कर्ण और दुःशासन को बुला कर कहने लगे:—

हे मित्रगण! पाण्डवों की भलाई चाहनेवाला विदुर तो फिर आ गया। मालूम होता है कि पिता से पाण्डवों को राज्य दिलाये बिना वह न मानेगा। इससे उसके पहले ही हमें जो कुछ करना हो करना चाहिए।

शकुनि बोले:—हे दुर्योधन! तुम मूर्खों की तरह सदा अनिष्ट की चिन्ता क्यों किया करते हो। यह तुम्हारी नादानी है। अपना अनिष्ट मनुष्य को न सोचना चाहिए। पाण्डव लोग जब वनवास की प्रतिज्ञा में बँधे हैं तब वे तुम्हारे पिता के कहने पर भी न आवेंगे। यदि मोह के वश होकर वे प्रतिज्ञा भंग भी करें तो ऊपर से तो हम लोग धृतराष्ट्र की हाँ में हाँ मिलायेंगे, पर छिपे छिपे किसी न किसी तरह पाण्डवों का अनिष्ट ज़रूर करेंगे।

दुःशासन ने कहा:—हे मामा! आप जो कहते हैं वही हमें भी ठीक मालूम होता है।

कर्ण ने मुसकरा कर कहा:—

हे दुर्योधन ! तुम्हें किस बात का डर है ? यदि पाण्डव लोग प्रतिज्ञा भंग करके आवेंगे तो हम लोग सहज ही में उन्हें कपट-जुए में हरा सकेंगे।

यह बात दुर्योधन को अच्छी न लगी। यह देख कर्ण अपने मन की बात खोल कर कहने लगे :—

हे भाई ! जब हम सब विषयों में दुर्योधन की बात मानते हैं, तब, आओ, हम लोग दल बाँध कर और रथ पर सवार होकर पाण्डवों के साथ युद्ध करके उनको इस दुर्बल अवस्था में मार डालें। ऐसा होने से सदा के लिए विवाद मिट जायगा।

सब लोगों ने कर्ण की इस युक्ति की प्रशंसा की और वे अलग अलग रथ पर सवार होकर कुरुजाङ्गल देश की ओर रवाना हुए। रास्ते में महर्षि द्वैपायन ने उन्हें देख कर और यह समझ कर कि वे कहाँ और किस लिए जा रहे हैं, उनको रोका और धृतराष्ट्र के पास लिवा लाकर बोले :—

हे महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्रों ने छल करके पाण्डवों को वनवास दिया है, यह बात हमें अच्छी नहीं लगी। मालूम होता है, तुम्हारा बड़ा पुत्र बड़ा दुर्मति है। राज्य के लोभ से क्यों वह पाण्डवों को सदा सताया करता है ? उसे रोको, नहीं तो वनवासी पाण्डवों का अनिष्ट करने जाकर वह खुद ही मारा जायगा। भीष्म ! तुम या विदुर क्या उसको किसी तरह अपने वश में नहीं रख सकते ?

धृतराष्ट्र ने कहा :—हे महर्षे ! जुआ खेलने में हमारी और हमारे बन्धु-बान्धवों की सम्मति न थी। भीष्म, विदुर, गान्धारी आदि ने इस बात को बार बार रोका था। पर पुत्र-स्नेह के कारण दुर्योधन से हमारा बस न चल सका।

व्यासदेव ने कहा :—यह सच है कि दुनिया में पुत्र से अधिक प्यारी और कोई चीज़ नहीं। हम भी तुम्हें पुत्र ही की तरह स्नेह करते हैं; इसीलिए कहते हैं कि यदि तुम अपने पुत्रों का भला चाहो तो दुर्योधन को रोको; उसे शान्त और क्षमाशील बनाने की चेष्टा करो।

पाण्डवों के वनवास की ख़बर द्वारका पहुँची। उसे सुन कर यादव लोग बड़े दुखी हुए। पाण्डवों को देखने के लिए वे काम्यक वन की ओर चले। धृतराष्ट्र के पुत्रों की निन्दा, और अब क्या करना चाहिए इस बात का विचार, करते हुए वे लोग शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये।

जब सब लोग युधिष्ठिर को घेर कर बैठ गये तब कृष्ण कहने लगे :—

हे धर्म्मराज ! पृथ्वी अवश्य ही दुर्योधन आदि का रक्त पियेगी। इन दुष्टों को हरा कर हम तुम्हें शीघ्र ही राजा बनावेंगे।

द्रौपदी इस तरह अपने मन की बात सुनते ही बहुत दिनों के छिपे हुए भाव को प्रकट करके बोली :—

हे कृष्ण ! मैं धृष्टद्युम्न की बहन, पाण्डवों की स्त्री और तुम्हारी प्यारी सखी होकर क्या भरी सभा में दुष्ट दुःशासन के द्वारा खींचे जाने के योग्य हूँ ? हाय ! पाण्डवों, पाञ्चालों और यादवों के जीवित रहते मेरे साथ दासियों का सा व्यवहार किया गया। भीमसेन के बाहुबल को और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है। क्योंकि, यह देख कर भी कि एक तुच्छ आदमी मेरा अपमान कर रहा है उन्होंने कुछ परवा न की। हे मधुसूदन ! पाण्डव लोग शरण में आये हुए को कभी नहीं छोड़ते। किन्तु उस समय शरण माँगने पर भी किसी ने मेरी रक्षा न की।

मधुरभाषिणी द्रौपदी अपने कोमल कोमल हाथों से मुँह छिपा कर इसी तरह दुख-भरी बातें कह कह कर रोने लगी। परन्तु इतने पर भी जब कृष्ण कुछ न बोले तब आँसू पोंछ कर आर्त्तस्वर से द्रौपदी फिर बोली :—

मैं समझ गई कि इस समय मेरा कोई नहीं; पिता नहीं, भाई नहीं, पति नहीं, पुत्र नहीं, रहे सहे तुम भी मुझे छोड़ बैठे !

तब कृष्ण ने द्रौपदी को धीरज देने के लिए कहा :—

हे सुन्दरी ! जिसने तुम्हारा अपमान किया है उसकी स्त्रियाँ, लड़ाई के मैदान में, अर्जुन के बाणों से अपने स्वामी को छिन्न भिन्न और ख़ून से लथ-पथ देख कर, तुमसे अधिक दुखी होंगी। जहाँ तक हो सकेगा हम पाण्डवों की सहायता में कोई कसर न करेंगे। हे द्रौपदी ! चाहे आकाश टूट पड़े, चाहे हिमालय चूर चूर हो जाय, चाहे समुद्र सूख जाय, पर हमारी यह बात कभी झूठ न होगी।

कृष्ण की इस बात से कुछ शान्त होकर द्रौपदी ने जब अर्जुन की ओर कटाक्ष किया तब अर्जुन ने भी कृष्ण की बात का समर्थन करके कहा :—

प्रिये ! रोओ मत। कृष्ण की बात व्यर्थ न जायगी।

तब कृष्ण युधिष्ठिर से कहने लगे :—

हे धर्म्मराज ! यदि हम उस समय द्वारका में होते तो आपको ये क्लेश न भोगने पड़ते। यदि कौरव लोग हमें बुलाते भी नहीं तो भी हम जुआघर में पहुँच कर और भीष्म तथा धृतराष्ट्र को जुए के बहुत से दोष दिखा कर खेल न होने देते। और यदि

हमारी बात न मानी जाती तो हम दुर्योधन को दण्ड दिये बिना न रहते। किन्तु दुर्भाग्य से हम उस समय वहाँ न थे। यह सुन कर कि हमने आपकी राजसूय यज्ञवाली सभा में शिशुपाल को मारा है सौभराज शाल्व ने, जब हम खाण्डवप्रस्थ में थे तभी, द्वारका पर चढ़ाई करके बहुत उपद्रव किया था। लौट कर ज्योंही हमने यह ख़बर पाई त्योंही उस दुष्ट और उसकी राजधानी दोनों ही को विनष्ट कर दिया। जिस समय तुम पर यह विपत्ति आई, हम इसी बखेड़े में लगे थे। इसके बाद ही हमने आपकी यह दुःख-दायिनी व्यवस्था सुनी। यदि उस समय यह ज़रूरी काम न होता तो निश्चय ही हम हस्तिनापुर पहुँचते। अब क्या करें, पुल टूट जाने पर पानी का ज़ोर रोकना कठिन है।

इस तरह सबको धीरज देकर यादव लोग विदा हुए। युधिष्ठिर और भीमसेन ने माथा सूँघ कर, अर्जुन ने गले लगाकर, नकुल और सहदेव ने प्रणाम करके और द्रौपदी ने रोकर कृष्ण का यथोचित सत्कार किया।

यादवों के चले जाने पर युधिष्ठिर ने भाइयों से कहा :—

हमें जब बारह वर्ष इसी तरह बिताने हैं तब कोई ऐसी अच्छी जगह ढूँढ़ना चाहिए जहाँ पशु, पक्षी, फल, फूल आदि ख़ूब हों।

अर्जुन ने कहा:—आपने यदि कोई विशेष स्थान सोच न रक्खा हो तो द्वैतवन नामक एक जी लुभानेवाला स्थान हमें मालूम है। वहाँ आनन्द से हम लोग बारह वर्ष बिता सकेंगे। वह पास ही है। उसमें एक स्वच्छ सरोवर भी है।

यह सुन सबने द्वैतवन जाना ही निश्चय किया।

पाण्डव लोग रथ पर सवार होकर उस सुन्दर स्थान में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि वर्षाऋतु का आरम्भ है। ताल, तमाल, आम, जामुन, कदम्ब आदि के फूले और फले हुए वृक्ष वन की शोभा को बढ़ा रहे हैं। मोर, चकोर और कोयल आदि पक्षी वृक्षों पर बैठे हुए आनन्द से बोल रहे हैं। ऐसे मनोहर स्थान को देख कर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। थके थकाये सब लोग रथ से उतरे और वृक्षों के नीचे शीतल छाया में बैठ गये। उस समय वनवासियों और धर्म्मात्मा तपस्वियों ने कुशल-प्रश्न के बाद उनका आदर-सत्कार किया। पाण्डव लोग उनके सत्कार से प्रसन्न होकर वहीं रहने लगे।

शिकार खेलने, फल मूल लाने, तपस्वियों के साथ धर्म्मचर्चा और आपस में तरह तरह की बात-चीत करने में बड़े बड़े दिन शान्ति के साथ बीतने लगे।

एक दिन शाम को युधिष्ठिर और भीमसेन के साथ बैठी हुई द्रौपदी युधिष्ठिर से कहने लगी :—

हे नाथ ! देखिए दुष्ट दुर्योधन कैसा निर्दयी है। वह हम लोगों को इतना कष्ट देकर कुछ भी दुःखित न हुआ। आपने जब वनवास के लिए मृगचर्म पहना था तब दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन, सिर्फ़ इन्हीं चार कठोर-हृदय पापियों के आँसू नहीं आये। हा नाथ ! आपको प्रति दिन सभा में राजाओं से घिरा हुआ देखती थी; आज आपको कुशासन पर देख कर कैसे धीरज धरूँ ? जिन भीमसेन का सदा तरह तरह से आदर होता था वही आज दीन मनुष्यों की तरह दासों का काम करते हैं। जो अर्जुन तमाम दुनिया का धन जीत कर धनञ्जय नाम से प्रसिद्ध हुए वही आज तपस्वियों के वेश में दुख पा रहे हैं। तरुण अवस्थावाले नकुल और सहदेव का सुकुमार शरीर भी वनवास के कठोर क्लेश से दुबला हो रहा है। हे पाण्डवनाथ ! जब ये ऐसी हृदय दहलाने वाली बातें देख कर भी आप शान्त रह सकते हैं तब निस्सन्देह आप में ज़रा भी क्रोध नहीं। किन्तु लोग कहते हैं कि क्रोधशून्य क्षत्रिय को जो चाहता है दबा लेता है—उसका सदा तिरस्कार होता है। जो शत्रु को क्षमा करता है उसकी उन्नति नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर ने कहा :—प्रिये ! क्रोध से भलाई भी हो सकती है और बुराई भी। इसलिए देश, काल का विचार करके क्रोध करना उचित है। अर्थात् जिस समय और जिस जगह क्रोध करना बहुत ही ज़रूरी हो वहीं क्रोध करना चाहिए। ज़रूरत पड़ने पर जो मनुष्य क्रोध नहीं रोक सकता उसका विनाश हुए बिना नहीं रहता। दुखी होने पर दुख देना, घायल होने पर घायल करना, सताये या मारे जाने पर सताना या मारना बहुत बुरी बात है। यदि लोग ऐसा करते तो सम्पूर्ण पृथ्वी अब तक विनष्ट हो जाती। क्षमा करना ही सनातन धर्म है। इसलिए हमने दुर्योधन आदि से क्षमा का बरताव किया है।

द्रौपदी ने कहा:—राज्य की रक्षा करना आपका कर्तव्य था। सो जिस सनातन धर्म ने मोह पैदा करके उस कर्तव्य के सम्बन्ध में आपकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया उसे नमस्कार है ! आप कर्तव्य काम छोड़ कर अब कौन सा धर्म कमा रहे हैं सो भी तो मैं नहीं जानती। हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहना ही आपको पसन्द है। आर्य्य लोग कह गये हैं कि जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म भी करता है। पर आपके धर्म ने आपकी रक्षा कहाँ की ? हे राजन् ! ब्रह्मा, पिता-माता की तरह जीवधारियों से स्नेह नहीं करता, नहीं तो अधर्म की जीत कैसे होती ? और इस अधर्म से उत्पन्न हुए पाप का फल खुद ब्रह्मा को क्यों नहीं भोगना पड़ता, आप जानते हैं ? कारण

इसका यह है कि वह बलवान् है! इसलिए हे महाराज! बल ही मुख्य है। दुर्बल मनुष्य ही पराधीन होते हैं; उन्हीं की दशा शोचनीय होती है।

युधिष्ठिर बोले :—द्रौपदी! तुम्हारी बात ऊपर से ज़रूर बहुत अच्छी जान पड़ती है। किन्तु मालूम होता है कि तुम उसका पूरा पूरा मतलब नहीं समझतीं। हे सुन्दरी, तुम्हें अपनी अल्पबुद्धि का भरोसा करके विधाता का तिरस्कार न करना चाहिए। तुरन्त फल पाने की ओर सदा दृष्टि रखने से कभी कभी अन्तिम फल नहीं मिलता। हम आनेवाले नित्य सुख की ओर दृष्टि रख कर वर्त्तमान समय के शीघ्र ही नाश हो जानेवाले दुखों की परवा न करने की शक्ति रखते हैं।

द्रौपदी ने कहा :—हे पार्थ! मैं धर्म का अपमान या विधाता की निन्दा नहीं करना चाहती। मैंने जो दुख सहे हैं उन्हीं का रोना रोती हूँ और उन्हीं के विषय में विलाप करती हूँ। अभी और भी कुछ रोना है; सुनिए। मेरी समझ में तो काम करने ही से सुख होता है। काम करने में चतुर मनुष्य ही ऐश्वर्य प्राप्त करता है। सदा विचार करते बैठना और संशय में लीन रहना ही अनर्थ की जड़ है। आज कल हम लोगों को वही अनर्थ प्राप्त हुआ है। यह सोच कर कि शायद पीछे काम सफल न हो, यदि आप कुछ न करेंगे तो कभी राज्य न पा सकेंगे। देखिए, किसान के जोतने पर भी जब पानी नहीं बरसता तब उसे यह जान कर सन्तोष होता है कि जो कुछ मुझे करना था सो कर लिया। यदि किसी के चेष्टा करने पर भी उसका फल न हुआ तो उसका कोई अपराध नहीं। यदि आप पुरुषों का सा काम करें तो राज्य न मिलने पर भी उसमें सुख है।

भीमसेन प्रियतमा द्रौपदी की उत्तेजनापूर्ण बातों से उत्तेजित होकर कहने लगे :—

द्रौपदी ने ठीक ही कहा। जिस तरह भले आदमी राज्य लेते हैं उसी तरह हमें भी लेना चाहिए। दुर्योधन ने धर्म के अनुकूल उपायों से हमारा राज्य नहीं छीना। हम लोग कपट के द्वारा राज्य से हटाये गये हैं। इसलिए वह कौन सा धर्म है जो तुम्हें अपना राज्य ले लेने में बाधा देता है? सूक्ष्म धर्म की रक्षा के लिए तुम राज्य-शासन-रूपी महाधर्म को छोड़ रहे हो। तुम्हारे इन्हीं सूक्ष्म विचारों के कारण हमारा राज्य गया। तुम डरते हो कि हार जायँगे। पर इस वनवास के क्लेशों की अपेक्षा युद्ध में मर जाना अधिक दुखदाई नहीं। जिन कामों से मित्र को दुख और शत्रु को सुख हो उनको धर्म नहीं, किन्तु पाप कहते हैं। इस समय तो यह बात प्रत्यक्ष देख पड़ती है कि सदा धर्म की चिन्ता करनेवाले मनुष्य को धर्म और अर्थ दोनों ही छोड़ जाते हैं।

इसके उत्तर में महात्मा युधिष्ठिर ने कहा :—

भाई ! यद्यपि तुम्हारे वाक्यबाणों से हम बड़े दुखित हुए हैं तथापि तुम्हें दोष नहीं दे सकते। हमारे ही अन्याय से तुम विपद के समुद्र में गिरे हो। चतुर जुआरी न होने पर भी हम खेल के नशे में चूर हो गये और शकुनि की दुष्टता समझ कर भी हम जीतने की इच्छा से बराबर खेलते रहे। अन्त में द्रौपदी के द्वारा दासत्व से छूट जाने पर भी वनवास की भयङ्कर शर्त में हम फिर बँध गये। उस समय तुमने भी हमें न रोका। और, हम भी इस डर से कि पीछे से लोग हमें कायर कहेंगे, जुआ खेलने से इनकार न कर सके। यदि हममें जुआ खेलने की नीच और बुरी आदत न होती तो हम लोग हार कर वनवास क्यों भोगते ? किन्तु एक बार प्रतिज्ञा में बँध जाने पर उसे कैसे तोड़ें ? हे भीम ! यदि तुम उस समय हमारी दोनों भुजायें सचमुच ही भस्म कर डालते तो बड़ा अच्छा होता। वैसा होने से ये सब बातें न होतीं। आज इस तरह तुम्हारे वाक्य-बाणों से मर्मविद्ध होने की अपेक्षा हमें उससे कम क्लेश होता। हे भाई ! उस समय प्रियतमा द्रौपदी का अपमान जो हमें चुपचाप देखना पड़ा था उसके शोक से अब तक हमारा हृदय जल रहा है। हे भीम ! इस समय क्या कह कर हम तुम्हें धीरज दें। जैसे किसान बीज बोकर फल पाने का रास्ता देखते हैं वैसे ही तुम भी अनुकूल समय की प्रतीक्षा करो।

भीम ने कहा:—महाराज ! मौत सदा सिर पर नाचा करती है। संभव है, तेरह वर्ष ही में हमारी मृत्यु हो जाय। यही सोच कर हमें महा दुःख होता है—यही कारण है जो विलम्ब हमें दुःसह हो रहा है।

युधिष्ठिर ने ठंडी साँस भर कर कहा:—

हे भीम ! तुमने जो कहा सो ठीक है। किन्तु इस विषय में एक बात विचारणीय है। वह यह है कि जितना तुममें साहस है उतनी समझ नहीं। दुर्योधन की तरफ़ जितने योद्धा और सिपाही हैं उनको तुम इस समय कैसे जीतोगे ? हमें तो अकेले दृढ़-कवच-धारी महाबली कर्ण की युद्ध-निपुणता को सोच कर अच्छी तरह नींद भी नहीं आती।

जेठे भाई की ये बातें सुन कर भीमसेन बहुत उदास हुए और चुप हो रहे।

इस तरह बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि द्वैपायन वहाँ आ पहुँचे। पाण्डवों की बातें सुन कर वे युधिष्ठिर से बोले:—

हे धर्म्मराज ! भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि दुर्योधन के पक्षवाले धनुर्धरों से जो तुम डरते हो सो तुम्हारा डरना बहुत ठीक है। जिस तरह वह डर दूर हो सकता है उसकी तरकीब हम तुम्हें बताते हैं। हे भरतवंश में श्रेष्ठ ! श्रुतिस्मृति नाम की यह विद्या हम

तुम्हें देते हैं। महाबली अर्जुन से कहो कि इसकी सहायता से वे दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए तपस्या करें। तपस्या द्वारा इन्द्र और महादेव को प्रसन्न करके वे तरह तरह के दिव्यास्त्र प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही, उनके चलाने की तरकीब भी मालूम कर सकेंगे। इस तरह भावी युद्ध में तुम्हारे भय का कारण पूर्णरूप से मिट जायगा।

विद्या देकर व्यासदेव चले गये। पाण्डव लोग द्वैत वन से फिर काम्यक वन को लौट आये और वहीं रहने लगे। व्यासजी की दी हुई विद्या युधिष्ठिर ने जब अपने वश में कर ली तब एक दिन एकान्त में अर्जुन के कन्धे पर अपना हाथ रख कर कहा :—

वत्स! यह निश्चय है कि युद्ध के सिवा हमारे लिए और कोई उपाय नहीं। हम समझते हैं कि आनेवाले उस भयङ्कर युद्ध में दुर्योधन की तरफ़वाले योद्धाओं का तुम्हीं सामना करोगे। इससे उसके लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए। महर्षि व्यासदेव के बताये हुए उपाय के अनुसार तुम कैलास पर्वत पर जाकर दिव्यास्त्र पा सकते हो। तुम व्यास की दी हुई यह विद्या सीखो और अस्त्र-धारण तथा व्रत-ग्रहण करके उत्तर को जाव।

युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार अर्जुन ने कवच और अंगुलत्राने पहने; गाण्डीव धनुष लिया; अपनी दोनों तरकसें भी लीं, जिनके भीतर भरे हुए बाण सैकड़ों दफ़े चलाये जाने पर भी कभी कम न होते थे। फिर उन्होंने अग्निहोत्र किया और ब्राह्मणों के आशीर्वाद से उत्साहित होकर सबसे विदा हुए। उस समय द्रौपदी की करुणरस से भरी हुई बातें सुन कर सबकी छाती उमड़ आई। वह कहने लगी :—

हे विशालबाहु! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। कौरवों के अपमानित करने से मुझे जो दुख हुआ था उससे अधिक दुख तुम्हारी जुदाई के शोक से हो रहा है। किन्तु भविष्यत् में हम लोगों के सुख की आशा केवल तुम्हीं पर अवलम्बित है। इसलिए, हे वीर! मैं तुम्हारी हितचिन्तना करती हूँ; तुम विदा हो; और जहाँ तुम्हें जाना है वहाँ विना किसी विघ्न-बाधा के पहुँचो। परमेश्वर को नमस्कार है; वह तुम्हारा सब जगह मङ्गल करे।

द्रौपदी की मङ्गलकामना से सन्तुष्ट होकर अर्जुन भाइयों की और पुरोहित धौम्य की परिक्रमा करके चल दिये।

अर्जुन जल्दी जल्दी चल कर थोड़े ही दिनों में देवताओं के निवास-स्थान पवित्र हिमालय पर्वत पर पहुँचे। गन्धमादन पर्वत आदि दुर्गम स्थानों को पार करके अन्त में वे कैलाश पर्वत के पास जा पहुँचे। उस पर वे कुछ ही दूर चढ़े होंगे कि आकाश से

सहसा—ठहरो !— यह शब्द उन्हें सुनाई पड़ा। इधर उधर घूम कर जो उन्होंने देखा तो मालूम हुआ कि एक पेड़ के नीचे लम्बी लम्बी पिंगट जटाओंवाला एक दुबला पतला तपस्वी खड़ा है।

तपस्वी ने पूछा :—

तुम व्रतधारी होकर भी किस लिए हथियार बाँधे हो ? यह शान्त स्वभाववाले तपस्वियों का आश्रम है। युद्ध की चीज़ों का यहाँ क्या काम ? इसलिए धनुष छोड़ कर पुण्य-मार्ग का अवलम्बन करो।

पर अर्जुन अपनी बात और अपने व्रत के पक्के थे। वे उस तपस्वी की बात से ज़रा भी न डिगे। तब वह तपस्वी प्रसन्न होकर बोला :—

वत्स ! तुम जो वर चाहो माँगो। हम देवराज इन्द्र हैं।

यह सुन कर महाबली अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बोले:—

भगवन् ! मैं आप से सारी दिव्यास्त्र विद्या सीखने आया हूँ; कृपा करके आप यही वर मुझे दीजिए।

अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए इन्द्र फिर बोले :—

पुत्र ! तुम्हें अस्त्रों की क्या ज़रूरत ? मर्त्यलोक में रहनेवाले सब लोग इन्द्रलोक पाने ही के लिए परिश्रम करते हैं। इस समय उस स्थान का पाना तुम्हारे हाथ में है।

अर्जुन ने कहा :—हमने लोभ और काम के वश होकर इन कठिन रास्तों को नहीं पार किया। हमारे भाई बड़े दुख से वनवास कर रहे हैं। उन्हीं के उद्धार का उपाय करने के लिए हमने राह के क्लेशों को तुच्छ समझा है।

सब लोकों में पूजनीय देवताओं के राजा इन्द्र अर्जुन की दृढ़ता और उत्साह से प्रसन्न होकर बोले :—

हे पुत्र ! यदि तुम महादेवजी के दर्शन प्राप्त कर लो तो हम तुम्हें अपने सब अस्त्र दे दें। इससे उनके दर्शनों के लिए तुम तपस्या करो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।

देवराज इन्द्र के अन्तर्धान हो जाने पर अर्जुन कठोर तपस्या में मन लगा कर वहीं रहने लगे। पहले उन्होंने भोजन कम कर दिया; धीरे धीरे कुछ न खाने लगे; अन्त में ऊर्ध्ववाहु होकर खड़े रहे। इस तरह वे चार महीने तक बराबर तपस्या की मात्रा बढ़ाते गये। अर्जुन के इस शारीरिक क्लेश से दुखी होकर वहाँ के महर्षियों ने महादेव के पास जाकर निवेदन किया :—

हे शङ्कर ! महातेजस्वी अर्जुन की कठिन तपस्या से हम लोग बड़े दुखी हैं। हम

नहीं जानते इससे उनका क्या मतलब है। आप उनकी मनोवाञ्छा पूर्ण करके उनको शान्त कीजिए।

ब्राह्मणों की बातें सुन कर भूतों के स्वामी शिवजी बोले :—

हे तपस्विगण! अर्जुन के लिए तुम लोग दुखी मत हो। हम शीघ्र ही उनकी इच्छा पूरी करेंगे।

इसके बाद तपस्या के पाँचवें महीने के शुरू में एक दिन अर्जुन ने देखा कि एक सुअर बड़ी तेज़ी से उनकी तरफ़ दौड़ा आ रहा है। अर्जुन ने रुष्ट होकर धनुष उठा लिया और उसे मारने के लिए बाण छोड़ा। सुअर के पीछे एक व्याध भी दौड़ा आ रहा था। उसने भी उसी समय बाण चलाया। दोनों बाण प्रचण्ड वेग से सुअर की देह में घुस गये। इससे उसने बड़ा भयङ्कर दानव रूप धारण किया; पर तुरन्त ही मर गया। अर्जुन क्रुद्ध होकर व्याध से कहने लगे :—

सुअर को पहले हमीं ने अपना निशाना बनाया था, फिर क्यों तुमने उस पर बाण छोड़ा? क्या तुम्हें अपने प्राणों का ज़रा भी भय नहीं? शिकार के नियमों के विरुद्ध तुमने हमारे साथ बरताव किया है। इससे हम तुम्हें ज़रूर ही यमलोक को भेजेंगे।

वह तेजस्वी व्याध बोला :—

हे तपस्वी! तुम बड़े घमण्डी हो। इस वन के हमीं मालिक हैं और हमीं ने पहले उस जानवर को अपने बाण का निशाना बनाया था। हे मूर्ख! तुम अपना दोष दूसरे पर क्यों मढ़ते हो?

अर्जुन रूखा उत्तर सुन कर बड़े रुष्ट हुए और बाण बरसाने लगे। पर यह देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह व्याध प्रसन्नता से उनके तेज़ बाण सह रहा है। तब दूने क्रोध से अर्जुनताबड़-तोड़ और भी पैने बाण छोड़ने लगे। पर जब उन्होंने देखा कि अग्नि के दिये हुए उनके दोनों तरकस ख़ाली होने लगे और वह तेजस्वी पुरुष बिना किसी घाव के लगे खड़ा मुसकरा रहा है। तब वे बड़े ही विस्मित हुए और सोचने लगे :—

ये हैं कौन? कोई देवता हैं या ख़ुद महादेवजी हमारे सामने प्रकट हुए हैं? जो हो, यदि ये शिवजी नहीं तो और कोई भी देवता, दानव और यक्ष क्यों न हो, निश्चय ही हम इसे हरा सकेंगे।

तब बचे हुए बाण अलग फेंक कर अर्जुन अपने धनुष की दोनों नोकों से आघात करने लगे। किन्तु उस तेजस्वी पुरुष ने बलपूर्वक उनके गाण्डीव धनुष को पकड़ लिया।

तब उन्होंने तलवार की वार की; पर वह भी उस अद्भुत तेजवाले मनुष्य के मस्तक पर लग कर चूर चूर हो गई। अन्त में अर्जुन मल्लयुद्ध करने लगे। तब उस महापुरुष के गले में अपनी चढ़ाई हुई माला देख कर अर्जुन समझ गये कि उन्हें खुद महादेवजी के दर्शन और स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उस समय आनन्द में मग्न होकर वे उनके पैरों पर गिर पड़े।

तपस्या के कारण दुबले पतले अर्जुन के युद्ध के उत्साह और दृढ़ता से महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए। मुसकरा कर उन्होंने अर्जुन का हाथ पकड़ा और कहा—हमने तुम्हें क्षमा किया। फिर उन्होंने अर्जुन को गले से लगा लिया।

अर्जुन बोले :—भगवन्! यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो आनेवाले घोर युद्ध में भीष्म, द्रोण आदि वीरों के साथ युद्ध करने के योग्य हमें अस्त्र दीजिए।

महादेवजी ने—"तथास्तु"—कहा। फिर पाशुपत अस्त्र देख कर उसके छोड़ने और लौटाने के मन्त्र भी सिखलाये। उन्होंने अर्जुन से कहा :—

हे अर्जुन! तुम इसे सामान्य मनुष्यों पर कभी न चलाना। दुनिया में ऐसा कोई नहीं जिसको यह न मार सके।

डूबते हुए सूर्य्य की तरह महादेवजी देखते देखते अर्जुन की निगाह से गायब हो गये। स्वयं शिवजी के दर्शन पाने से अपने को धन्य समझ कर अर्जुन थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे।

इसी समय इन्द्रदेव, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, देवताओं को साथ लिये हुए, ऐरावत पर चढ़ कर, वहाँ आये। तब उनके दाहिनी तरफ़वाले धर्म और बाईं तरफ़वाले वरुण देव इन्द्र के सब दिव्यास्त्र अर्जुन को देकर बोले :—

हे अर्जुन! तुम क्षत्रियों में श्रेष्ठ हो। इन हथियारों के द्वारा तुम युद्ध के मैदान में सिद्धि-लाभ करोगे। महाबली अर्जुन ने नम्रतापूर्वक और नियमानुसार उनके दिव्यास्त्रों को लेकर अपने को कृतार्थ माना।

तब देवराज इन्द्र कहने लगे :—

हे अर्जुन! तुम्हारा काम तो हो गया। अब देवताओं का काम करने के लिए तुम्हें एक बार इन्द्रलोक चलना होगा। इसलिए तैयार हो जाव। हमारा सारथि मातलि शीघ्र ही तुम्हारे लिए रथ लावेगा। इस बीच में हम महर्षि लोमस को मर्त्यलोक में तुम्हारे भाइयों के पास भेजते हैं। वे तुम्हारी कार्यसिद्धि, कुशल-समाचार और देर का कारण प्रकट करके उनकी चिन्ता दूर कर देंगे।

इधर काम्यक वन में रहनेवाले पाण्डवों ने अर्जुन के वियोग से दुखी होकर, उनकी राह देखते हुए वेदपाठ, जप, होम आदि करके अपने दिन बिताये। इस तरह कई वर्ष बीत गये। शिकार किये हुए मृगों के मांस और फल मूल आदि के द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराके तब वे लोग भोजन करते थे। अर्जुन की याद करके वे बहुत व्याकुल होते थे। सदा उनके लिए वे दुःख किया करते थे। निर्जन और हरे भरे स्थान में बैठे हुए युधिष्ठिर से एक दिन भीम कहने लगे :—

हे धर्मराज ! हमारे उपकार के लिए, देखिए, अर्जुन कितना क्लेश उठा रहे हैं। यह जान कर भी कि दिव्यास्त्र बड़े कठिन परिश्रम से मिलेंगे उन्होंने आपकी बात नहीं टाली। उन्हें हम लोग और अधिक दुःख क्यों दें ? आइए हम लोग उन्हें लिवा लावें और धृतराष्ट्र के पुत्रों को शीघ्र ही यमलोक भेजने का प्रबन्ध करें। तेरह वर्ष का वन-वास जो हम लोगों ने अङ्गीकार किया है उसे यह काम करके पूरा करेंगे। कपटी आदमी के साथ यह इतना ज़रा सा असत्य व्यवहार अधर्म में नहीं गिना जा सकता।

युधिष्ठिर ने भाई को बहुत तरह से धीरज देकर कहा :—

हे भीम ! तेरह वर्ष बीत जाने पर हम लोग निश्चय ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। जब इतना सह लिया है तब कुछ और धीरज धरो। समय आने पर बिना कपट किये ही तुम शत्रुओं का नाश कर सकोगे।

भीमसेन और युधिष्ठिर की ये बातें हो ही रही थीं कि महर्षि बृहदश्व वहाँ आ गये। धर्म्मराज यथोचित मधुपर्क के द्वारा उनका सत्कार करके अपनी दुखकहानी सुनाने लगे :—

हे भगवन् ! हम जुआ खेलने में निपुण नहीं; इसी से हमारी यह दुर्दशा हुई है। अर्जुन का हमें बड़ा भरोसा था; सो उनके वियोग में आज कल हम जीते ही मृतक से हो रहे हैं। हाय ! कब वे लौटेंगे और कब हम फिर उन्हें देखेंगे ? क्या हमसे भी बढ़ कर अभागा राजा और कोई होगा ?

बृहदश्व ने धीरज देनेवाली और आशा बँधानेवाली बहुत सी कथायें सुना कर सबको शान्त किया। फिर कहा :—

हे राजेन्द्र ! जो होना था हो गया; अब उसके विषय में सोच करना वृथा है। अब रंज न करो। यदि फिर कोई जुए के द्वारा तुम्हें छलने की चेष्टा करे तो हमें बुला भेजना। जुआ खेलने में हम बड़े होशियार हैं।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने आग्रह के साथ कहा :—

हे महर्षि ! जुए में निपुणता प्राप्त करने की हमारी बड़ी इच्छा है। इसलिए हम पर कृपा कीजिए। यह विद्या आप हमें अच्छी तरह सिखा दीजिए।

महर्षि ने इस बात को स्वीकार किया और कुछ दिन वहाँ रहे। उनकी कृपा से युधिष्ठिर जुआ खेलने में बड़े निपुण हो गये।

बृहदश्व के चले जाने पर एक दिन कैलास से कुछ तपस्वी आये। उनसे यह हाल जान कर कि अर्जुन तपस्या के लिए घोर शारीरिक क्लेश सह रहे हैं, पाण्डव लोग फिर शोकसमुद्र में डूब गये। पतिव्रता द्रौपदी अधीर होकर युधिष्ठिर से कहने लगी :—

महाराज ! अर्जुन के विरह में इस जगह मेरा मन नहीं लगता। जिधर दृष्टि उठाती हूँ उधर ही मुझे अन्धकार देख पड़ता है। अब यहाँ किसी तरह मुझसे नहीं रहा जाता। यहाँ उनकी याद आने पर मुझे असह्य दुःख होता है। हाय ! उस महाबाहु अर्जुन के कब दर्शन होंगे।

यह सुन कर भीमसेन बोले :—

प्रिये ! जो कुछ तुमने कहा उससे हम बड़े प्रसन्न हुए। तुमने हमारे हृदय में अमृत की सी वर्षा की। अर्जुन के बिना हमें भी इस काम्यक वन में किसी तरह सुख नहीं मिलता। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा जान पड़ता है।

तब गला भर कर नकुल और सहदेव भी युधिष्ठिर से कहने लगे :—

हे राजन् ! ये लोग हमारे मन ही की बात कहते हैं। अब यहाँ क्षण भर भी रहने की इच्छा नहीं। इसलिए कहीं दूसरी जगह चलिए।

इस तरह के विलाप-वाक्य सुन कर युधिष्ठिर पहले से भी अधिक व्याकुल हुए और चिन्ता करने लगे। इसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ गये। द्रौपदी समेत पाण्डवों ने उनका यथोचित सत्कार किया। नारद ने पूजा ग्रहण करके प्रेमपूर्वक कहा: —

कहिए, यह इतनी चिन्ता किस लिए है ? मालूम होने पर हम कुछ सदुपदेश देने की चेष्टा करेंगे।

तब युधिष्ठिर ने सब हाल कह सुनाया। सुन कर वे बोले :—

सुना है कि महर्षि लोमश इन्द्रलोक से अर्जुन की ख़बर लेकर तुम्हारे पास आते हैं। उनसे अर्जुन का कुशल-समाचार जान कर तुम निश्चय ही प्रसन्न होगे। हमारी समझ में भी तुम लोगों का यहाँ रहना अच्छा नहीं। महर्षि लोमश ने बहुत से देश देखे हैं और वे उनका इतिहास भी जानते हैं। उनके साथ तीर्थयात्रा करने से तुम

अपना बचा हुआ समय बड़े आराम से बिता सकोगे और किसी अच्छे स्थान पर पहुँच कर अर्जुन के आने का इन्तिज़ार कर सकोगे।

यह कह कर देवर्षि नारद ने कितने ही तीर्थों की कथायें सुनाईं। इससे पाण्डव लोग उनके देखने के लिए और भी उत्सुक हो उठे। कुछ देर ठहर कर नारद युधिष्ठिर से बिदा हुए।

उनके जाने के थोड़े ही देर बाद इन्द्र के आज्ञानुसार महर्षि लोमश अर्जुन की ख़बर लेकर आये। आग्रहपूर्वक युधिष्ठिर के पूछने पर वे कहने लगे :—

हे युधिष्ठिर! हम इन्द्र की आज्ञा से तुम्हें ख़ुशख़बरी सुनाने आये हैं। तुम लोग द्रौपदी समेत एकत्र होकर सुनो। इन्द्र की कृपा से यम, वरुण और कुबेर आदि देवताओं ने अर्जुन को अच्छे अच्छे दिव्य अस्त्र दिये हैं और उनके चलाने की तरकीब भी बताई है। सिर्फ़ यही नहीं, अर्जुन ने तपस्या करके ख़ुद महादेव जी के दर्शन किये और उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया है। इसके बाद इन्द्र के बुलाने पर उन्होंने देवकार्य्य करने के लिए स्वर्ग जाकर शान्तिलाभ किया है। वहाँ गाने बजाने से सम्बन्ध रखनेवाली गान्धर्व विद्या भी सीखी है। उसमें उन्होंने अच्छी निपुणता प्राप्त की है। इस समय वे वहाँ आदर के साथ रहते हैं। इन्द्र ने यह भी कहा है कि सहज में न टूटनेवाले कर्ण के कवच के लिए जो तुम शङ्का करते हो सो उसके तोड़ने के लिए वे ख़ुद यत्न करते रहेंगे।

ये आनन्द देनेवाली बातें द्रौपदी सहित पाण्डव लोग बड़े आनन्द से सुनते रहे। इसके बाद रीति के अनुसार लोमश की पूजा करके उन्होंने उनके साथ तीर्थों में घूमने की बात चलाई। महर्षि ने इस बात को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। उन्होंने कहा:—

हे राजन्! हमने दो बार सब तीर्थों के दर्शन किये हैं। तुम्हारे साथ तीसरी बार उनकी यात्रा करेंगे। तुम्हें अच्छे अच्छे स्थानों के दर्शन करा कर अन्त में दुर्गम गन्ध-मादन पर्वत पर चलेंगे। लौटती दफ़े अर्जुन उसी रास्ते आवेंगे। इसलिए उस रमणीक स्थान में तुम लोग बड़े आराम से उनके आने की प्रतीक्षा कर सकोगे। किन्तु महाराज! यात्रा आरम्भ करने के पहले तुम्हें अपने साथियों को कम कर देना होगा। क्योंकि बहुत आदमियों के साथ आराम से न घूम सकेंगे।

यह बात सुन कर युधिष्ठिर ने आज्ञा दी:—

जो भिक्षुक ब्राह्मण अच्छे अच्छे भोजन चाहते हैं या जो थकावट और सर्दी-गर्मी नहीं सह सकते वे तीर्थयात्रा का विचार छोड़ कर अपने अपने घर लौट जायँ। जो पुरवासी तथा देशवासी हमारे ऊपर अनुरक्त होने के कारण अब तक हमारे साथ रहे

हैं वे अब धृतराष्ट्र के पास लौट जायँ। यदि वे अपने यहाँ न रहने दें तो पाञ्चालराज निश्चय ही उनकी रक्षा करेंगे। क्योंकि, हमें विश्वास है, वे ज़रूर ही हमारे प्रणयानुरोध को मान लेंगे।

इन लोगों के चले जाने पर पाण्डव लोग तीर्थयात्रा का निश्चय करके थोड़े से ब्राह्मणों के साथ काम्यक वन में तीन रात और रहे। जब मृगशिरा नक्षत्रवाली पूर्णमासी बीत गई और पुष्य नक्षत्र आया तब स्वस्तिपाठ होने के बाद छाल और मृगचर्म पहने हुए पाण्डव लोग हथियार लेकर, और पुरोहित धौम्य तथा बचे हुए ब्राह्मणों के साथ रथ पर सवार होकर, पूर्व की ओर तीर्थयात्रा के लिए चले। इन्द्रसेन आदि नौकर और भोजन बनानेवाले ब्राह्मण उनके पीछे पीछे चौदह रथों पर सवार होकर चले।

तरह तरह की बातचीत से थकावट मिटाते हुए पहले उन्होंने नैमिषारण्य के अन्तर्गत गोमती नदी के अति पवित्र तीर्थों में स्नान किया। इसके बाद रास्ते में बहुत से तीर्थस्थानों का दर्शन करते हुए वे प्रयाग पहुँचे। वहाँ गङ्गा-यमुना के प्रसिद्ध सङ्गम पर कुछ दिन रहे।

महर्षि लोमश तीर्थों की उत्पत्ति का हाल, इतिहास और माहात्म्य तथा उनके सम्बन्ध की तरह तरह की जी लुभानेवाली कथायें कह कर पाण्डवों के भ्रमण और दर्शन सुख को दूना करने लगे।

इसके बाद उन्होंने यात्रियों को पितामह के वेदितीर्थ में तर्पण कराया। फिर गया के संस्कार किये हुए महीधरतीर्थ को ले गये। इसके अनन्तर कौशिकी तीर्थ में घुमाते हुए उनको गङ्गासागर-सङ्गम पर पहुँचाया।

इस स्थान से समुद्र के किनारे किनारे वे दक्षिण की ओर गये। कुछ दिनों में उन्होंने वैतरणी नदीवाले कलिङ्ग देश को पार किया। धीरे धीरे दक्षिण-सागर के किनारेवाले तीर्थों के दर्शन करके और वहाँ अर्जुन के वनवास-समय का यश सुन कर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए।

इसके बाद लोमश और अन्य साथियों के साथ पाण्डव लोग प्रभास तीर्थ में पहुँचे। वहाँ उन्हें कुछ दिन विश्राम करने का अच्छा मौक़ा मिला। यादव लोग पाण्डवों के आने की ख़बर पाते ही शीघ्र ही उनसे मिले और बहुत कुछ आदर-सत्कार किया। प्यारे पाण्डवों की दुर्दशा देख कर उदार यादव-वीर लोग बड़े दुखी हुए। बलदेव विलाप करने लगे:—

हा धर्म! युधिष्ठिर को जटा रखाये और मृगचर्म पहने, और पापी दुर्योधन को

राज-सुख भोगते हुए देख कर अब तुम्हें कोई भी मङ्गलजनक न समझेगा। हे कृष्ण! अधर्म में रुचि रखनेवाले भरत-कुल के वृद्ध लोगों को धिक्कार है! बूढ़े धृतराष्ट्र परलोक में पितरों के सामने इस सम्बन्ध में क्या उत्तर देंगे, क्या इसकी चिन्ता उन्हें नहीं है?

अर्जुन के प्यारे शिष्य सात्यकि बोले:—

हे बलदेव! जो होना था सो हो गया। अब शोक करने का समय नहीं है। इस विषय में युधिष्ठिर चाहे हमसे कहें चाहे न कहें, आओ तुम्हारे साथ हम, कृष्ण, प्रद्युम्न आदि मिल कर प्रसिद्ध यादव-सेना की सहायता से धृतराष्ट्र-वंश का ध्वंस करके पाण्डवों को उनका साम्राज्य लौटा दें। भाई-बन्धुओं के रहते हुए ये सत्यप्रतिज्ञ वीर अनाथों की तरह क्यों वनवास करें?

कृष्ण ने कहा:—हे वीरवर! तुम इस बात को नहीं सोचते कि महाराज युधिष्ठिर दूसरे का जीता हुआ राज्य कैसे लेंगे। इससे तो यह अच्छा है कि अर्जुन को कैलास से लाकर और पाण्डवों की सहायता करके हम लोग उनके शत्रुओं का नाश करें।

तब युधिष्ठिर नम्रतापूर्वक बोले:—

हे भाई! तुम्हारी कृपा हमारे लिए बड़े गौरव की बात है। किन्तु कृष्ण हमको अच्छी तरह जानते हैं। उन्हें मालूम है कि राज्य के लोभ से हम अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकते। तेरह वर्ष का वनवास जो हमने अङ्गीकार किया है उसके पूरे हो जाने पर तुम्हारी सहायता से हम निश्चय ही सिद्धिलाभ करेंगे। इसलिए हे यादववीर! इस समय तुम लोग लौट जाव। समय आने पर फिर सब लोग इकट्ठे होकर सुख से रहेंगे।

इसके बाद पाण्डव लोग फिर यात्रा के लिए निकले। प्रभास से उत्तर की ओर चलते हुए सरस्वती नदी पार करके वे सिन्धु तीर्थ को गये। वहाँ से काश्मीर देश को उत्तर की ओर छोड़ते हुए विपाशा नदी पार करके अन्त में वे हिमालय के सुबाहु राज्य में पहुँचे। वहाँ के राजा ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। इससे कुछ दिन वहाँ उन्होंने विश्राम किया।

वहाँ से पहाड़ी देश प्रारम्भ हुआ। उसका पार करना बहुत ही कष्टदायक और विपदों से भरा हुआ था। वहाँ से चलते समय लोमश ने कहा:—

हे पाण्डव! न मालूम कितनी नदियों, नगरों, वनों, पर्वतों और जी लुभानेवाले तीर्थों के दर्शन हमने किये हैं। अब इस दुर्गम रास्ते से चल कर कितने ही ऊँचे ऊँचे

पहाड़ों को पार करके सुन्दर रमणीक आश्रमोंवाले गन्धमादन में पहुँचेंगे। रास्ते में पग पग पर संकटों का सामना करना पड़ेगा। इसलिए बहुत सावधानी से चलना चाहिए।

महर्षि लोमश की ये बातें सुन कर युधिष्ठिर घबरा गये और कहने लगे:—

हे भीम ! अर्जुन के विरह में दुखी द्रौपदी अब सिर्फ़ तुम्हारे ही सहारे है। इसलिए प्रियतमा का ख़ूब ख़याल रखना। हे नकुल ! हे सहदेव ! तुम बेखटके हमारे साथ रहना। हम तुम्हारी मदद करेंगे। हे तपस्वियो ! आप लोग अच्छी तरह खा पी कर पहाड़ पर चढ़ने के लिए यथेष्ट शक्ति प्राप्त कीजिए।

रथ आदि के साथ इन्द्रसेन आदि नौकर चाकर और दुबले-पतले ब्राह्मण लोग सुबाहुराज के यहाँ छोड़ दिये गये। पाण्डवों ने बहुत थोड़े आदमियों को साथ लिया और गन्धमादन की ओर चले। द्रौपदी पर निगाह रख कर सब लोग ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को धीरे धीरे पार करने लगे।

एक दिन महर्षि लोमश अकस्मात् हाथ उठा कर बोले:—

यह देखो सामने जो जलधारा लहराती हुई बह रही है वह गन्धमादन के बदरिकाश्रम से निकली है। सब लोग इस भगवती भागीरथी को प्रणाम करो। जिस स्थान को हम जा रहे हैं वह यहाँ से दूर नहीं है।

तब पाण्डव लोग पुण्यसलिला गङ्गा की वन्दना करके प्रसन्न-मन और नये उत्साह से फिर चलने लगे।

इसके बाद धीरे धीरे गन्धमादन के नीचे पहुँच कर सब लोग पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे। कुछ ही दूर वे गये होंगे कि बड़े ज़ोर से आँधी उठी। पत्तों और धूल के उड़ने से आकाश में ग़ुबार छा गया। पत्थर का चूर मिली हुई हवा के झोंकों से यात्रियों को चोट पर चोट लगने लगी। ख़ूब गहरा अन्धकार हो जाने से न तो एक दूसरे को देख ही सकता था और न बातचीत ही कर सकता था। हवा के ज़ोर से और ज़मीन फट जाने से गिरते हुए वृक्षों के भयङ्कर शब्द बार बार सुन पड़ने लगे। भीम द्रौपदी को लेकर धनुष की सहायता से एक बड़े वृक्ष के सहारे बैठ गये। कोई गुफा में, कोई विकट जङ्गल में घुस कर, कोई वृक्ष से लिपट कर, कोई पत्थर का मज़बूत टुकड़ा पकड़ कर, किसी न किसी तरह, ठहर गया।

हवा के रुकते ही ग़ुबार को दूर करके मूसलधार पानी बरसने लगा। वृष्टि की घरराहट के साथ साथ बादलों में बिजली दम दम पर चमकने लगी और गड़गड़ाहट

के साथ वज्रपात होने लगा। टूटे हुए पेड़ों को लिये हुए झरने उमड़ते घुमड़ते और कलकल करते बड़े वेग से वह चले।

धीरे धीरे पानी बहने की घरराहट मिट गई, हवा शान्त हो गई, बादल फट गये और सूर्य्य भगवान् निकल आये। तब भीम को ज़ोर से बुलाते सुन कर पाण्डव लोग जल्दी जल्दी उनके पास आये। उन्होंने देखा कि सुकुमारी द्रौपदी टूटी हुई टहनी की तरह भीम की गोद में बेहोश पड़ी है। यह देख कर कि उन्हें बड़ा क्लेश हुआ है और उनका मुँह पीला पड़ गया है वे लोग व्याकुल होकर विलाप करने लगे। युधिष्ठिर द्रौपदी को अपनी गोद में लेकर बोले:—

हाय! जो पहरा चौकीवाले घरों में दूध की तरह सफ़ेद सेजों पर सोती थी वह आज हमारे ही दोष से भूमि पर पड़ी है।

जब उन्होंने बार बार द्रौपदी के शरीर पर हाथ फेरा और गीले पंखे से हवा की तब उसे धीरे धीरे होश आया। उसे तरह तरह से धीरज देकर धर्म्मराज भीम से कहने लगे:—

हे भाई! अब भी ऐसे बहुत से पहाड़ी स्थान पार करने हैं जिन पर बरफ़ के कारण चलना कठिन है। द्रौपदी उन्हें कैसे पार कर सकेगी?

भीम बोले:—महाराज! चिन्ता न कीजिए। हम खुद द्रौपदी को उठा ले चलेंगे और आवश्यकता होने पर आप सब लोगों को भी सहारा देंगे। हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच राक्षसों की सी अद्भुत शक्ति रखता है। याद करते ही उसने आजाने का वचन दिया है। उसे बुला लेने से वह हम सबको ले कर चल सकेगा।

तब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच को याद किया। वह तुरन्त आगया और आते ही उसने हाथ जोड़ कर गुरुजनों को प्रणाम किया। भीम प्रसन्नता से उसका आलिङ्गन करके बोले:—

पुत्र! तुम्हारी माता बहुत थक गई है और चल नहीं सकती। इसलिए उसे कंधे पर चढ़ा कर आकाश में हमारे पीछे पीछे चलो।

घटोत्कच ने कहा:— हे पिता! आप चिन्ता न कीजिए। हम अपने साथी और बहुत से राक्षसों को बुलाते हैं। हम खुद माता को ले चलेंगे और वे आप लोगों को ले चलेंगे।

इसके बाद अपने गुरुजनों के भक्त घटोत्कच के आज्ञाकारी राक्षस आकर दल बल

के साथ पाण्डवों को उठा ले चले। उन्होंने शीघ्र ही बदरिकाश्रम के पासवाले एक अत्यन्त रमणीय वन में सबको उतार दिया।

वहाँ फलों के बोझ से झुके हुए पेड़ों की घनी छाया में, जहाँ चिड़ियाँ चहचहा रही थीं, सबने थकावट दूर की। गङ्गातट के उस पवित्र स्थान में, बदरिकाश्रम-निवासियों के जप तप में सहायता करते हुए, सब लोग बड़े सुख से रहने लगे।

यह देख कर कि नाना प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्य्य अवलोकन करके द्रौपदी को बड़ा आनन्द मिलता है; और मौज में आकर वह जल थल में सब जगह तरह तरह के खेल खेलती है, पाण्डव लोग सदा बड़े प्रसन्न रहते थे। कुछ दिनों बाद एक दफ़े सूर्य्य के समान हज़ार पत्तोंवाला एक कमल हवा के झोंके से उड़ कर अकस्मात् द्रौपदी के पास आ गिरा। उसने बड़ी प्रसन्नता से उसे उठाया और हँस कर भीम से कहा:—

देखो, यह सुन्दर फूल कैसा सुगन्धित है। मैं इसे धर्मराज को उपहार दूँगी। हे भीम! यदि मुझे तुम प्यार करते हो तो इस तरह के बहुत से फूल ला दो।

मस्त चकोर के से नेत्रोंवाली द्रौपदी यह कह कर धर्मराज के पास चली गई।

महाबली भीमसेन, प्रियतमा की इच्छा पूरी करने के इरादे से, हथियार लेकर हवा का रुख़ देख कर फूलों की तलाश में पहाड़ पर चढ़ने लगे। उनको बहुत दिन तक न देखने से शायद युधिष्ठिर को चिन्ता हो, इस डर से भीम लताओं को हटाते, पेड़-पौधों को तोड़ते फोड़ते, और पहाड़ के अगले भाग पर तेज़ निगाह रखते हुए बड़ी जल्दी जल्दी चलने लगे। मुँह में हरी हरी घास दबाये हुए निडर हिरन उनको बड़ी उत्सुकता से देखने लगे।

कुछ देर बाद भीम केले के एक बड़े भारी वन में पहुँचे। वन के बीच के एक तङ्ग रास्ते से चलते हुए जब वे केलों को उखाड़ कर इधर उधर फेंकने लगे तब वन में रहनेवाले बन्दर, मृग आदि डर कर चारों तरफ़ भाग गये। किन्तु एकाएक भीमसेन ने देखा कि एक बड़ा भारी बूढ़ा बन्दर रास्ता रोके हुए सो रहा है। निडर भीम उसके पास गये और इतने ज़ोर से गरजे कि सब पशु-पक्षी डर गये। यह सुन कर उस बन्दर ने दोनों आँखें थोड़ी थोड़ी खोलीं और भीम की तरफ़ गर्व से देख कर कहा:—

हम सुख से सो रहे थे। क्यों तुमने हमें जगा दिया? अब हमको अधिक तङ्ग करके व्यर्थ अपनी मौत न बुलाना।

भीम बोले:—चाहे हमारी मृत्यु हो, चाहे और को विपद आवे, इस विषय में हम

तुम्हारा उपदेश नहीं लेना चाहते। इस समय हमें रास्ता दो, हमारे हाथों को वृथा कष्ट न देना।

वन्दर बोला:—हम वृद्ध हैं, इससे उठ नहीं सकते। हमारी पूँछ रास्ते से हटा कर चले जाव।

भीम ने गर्व से सोचा था कि वन्दर की पूँछ पकड़ कर उसे दूर फेंक देंगे। पर ज़ोर से खींचने पर भी जब वे पूँछ को ज़रा भी न हटा सके तब बड़े विस्मित हुए। भीम ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया और वन्दर के सामने खड़े होकर तथा हाथ जोड़ कर पूछा:—

हे वन्दरों में श्रेष्ठ! तुम कौन हो? वानर के वेश में यहाँ क्यों रहते हो? कृपा करके अपना परिचय दो।

तब वन्दर ने प्रसन्न हो कर कहा:—

हम सुग्रीव के भाई, रामचन्द्र के पुराने सेवक, वायु के पुत्र हनूमान् हैं। बुढ़ापे में प्रभु का ध्यान करते हुए यहाँ दिन बिताते हैं। तुम हमारे ही पिता के वर दिये हुए पुत्र हो। इसलिए तुम पर हमारा भाइयों का सा स्नेह हो आया है। हे भाई! इस रास्ते मनुष्य नहीं जा सकते। इसलिए हमने तुम्हें रास्ता नहीं दिया।

इसके बाद भीम के आने का अभिप्राय जान कर हनूमान् ने उन्हें प्रसन्नता से आलिङ्गन किया और कहा:—

तुम जिन फूलों को ढूँढ़ते हो वे सिर्फ़ कुवेर के सरोवर ही में पैदा होते हैं। वह सरोवर पास ही है।

यह कह कर और कुवेर के घर का रास्ता बताकर हनूमान् वहाँ से चल दिये।

वनवास से दुखी प्रियतमा की इच्छा पूरी करने की धुन में भीमसेन दिन रात वन पर वन पार करते हुए, बहुत दूर तक फैले हुए गन्धमादन पर्वत पर हनूमान् के बताये हुए रास्ते से चले गये।

दूसरे दिन, सवेरे, गन्धमादन पर माला की तरह शोभा देनेवाली एक नदी उन्हें देख पड़ी। उसमें दो पहर के सूर्य के समान सुगन्धित बहुत से वही कमल खिले हुए थे। वह नदी बह कर कुवेर के सरोवर में गिरती थी।

भीम प्रसन्नता से उस सरोवर में उतर गये और आनन्दपूर्वक बड़ी देर तक उन्होंने स्नान किया। इस समय कुवेर के बाग़ की रक्षा करनेवाले यक्षों ने भीम को देख कर गर्व से पूछा:—

तुम कौन हो ? एक ही साथ मुनि और वीर के वेश में यहाँ क्यों आये हो ?

भीम ने उत्तर दिया:—

हम दूसरे पाण्डव भीमसेन हैं। अपनी पत्नी के लिए फूल लेने आये हैं।

यक्ष बोले:—हे भीमसेन ! यह सरोवर यक्षों के राजा कुबेर का है। यह उन्हें बहुत ही प्रिय है। यहाँ वे क्रीड़ा करते हैं। उनकी आज्ञा के बिना यहाँ कोई नहीं घूम सकता।

भीम बोले:—यह सरोवर पहाड़ पर बहनेवाले झरने से पैदा हुआ है। इसलिए इसमें कुबेर की तरह सबका अधिकार है। फूल चुनना एक छोटी सी बात है; उसके लिए हम किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं समझते।

यह उत्तर सुन कर यक्ष लोग रुष्ट हुए। उन्होंने कहा—इसे पकड़ो ! इसे मारो ! इसे काटो ! इस तरह चिल्लाकर उन्होंने गोल माल मचा दिया। भीम, ठहरो ! ठहरो ! कह कर और गदा उठा कर उनकी तरफ़ दौड़े। धीरे धीरे घोर युद्ध होने लगा।

इधर युधिष्ठिर ने भीम को न देख कर द्रौपदी से पूछा:—

हे द्रौपदी ! भीम कहाँ हैं ?

प्रिया द्रौपदी ने कहा:—

राजन् ! हमने जो मनोहर सुगन्धित फूल आपको दिया था उसे पाकर हमने भीमसेन से कहा था:—

हे भीम ! ऐसा अच्छा फूल क्या और भी कहीं देखा है ?

मालूम होता है, हमारा बहुत अधिक प्यार करने के कारण वे वैसे ही फूल लाने के लिए पूर्वोत्तर-दिशा को गये हैं।

युधिष्ठिर बोले:—चलो हम भी उधर ही जाकर उनसे मिलें। हमें डर लगा रहता है कि घमण्ड में आकर कहीं वे सिद्ध लोगों का कोई अपराध न कर बैठें।

घटोत्कच आदि आज्ञाकारी राक्षसों की सहायता से पाण्डव लोग जल्दी जल्दी चल कर भीम के जाने के चिह्नोंवाले रास्ते से कुबेर के सरोवर के पास पहुँच गये। वहाँ देखा कि भीमसेन गदा हाथ में लिये किनारे पर खड़े हैं और ओंठ चबा रहे हैं; तथा उनके चारों तरफ़ बहुत से यक्ष घायल पड़े हुए हैं। यह देख कर कि खुद भीम के ज़रा भी चोट नहीं लगी युधिष्ठिर ने उन्हें बार बार आलिङ्गन किया और पूछा:—

भाई ! यह क्या किया ? निश्चय ही तुमने किसी देवता को अप्रसन्न किया है। जो हो, यदि हमें चाहते हो तो अब कभी ऐसा न करना।

धर्म्मराज इस तरह बातें कर ही रहे थे कि कुबेर ने उनके आने का हाल सुनते ही

विश्वास-पात्र सेवक भेज कर उनका आतिथ्य-सत्कार किया और यह आज्ञा दे दी कि जब तक अर्जुन लौट न आवें तब तक इच्छानुसार विहार करते हुए वे लोग गन्धमादन पर निवास करें। प्रियतमा द्रौपदी को सन्तुष्ट करके भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए।

इसके बाद द्रौपदी के साथ पाण्डव लोग बड़े चाव से गन्धमादन की अद्भुत शोभा का, बिना किसी विघ्न-बाधा के, आनन्द लूटते और पवित्र स्वभाववाले ऋषियों के आश्रमों में घूमते तथा रसीले फल खाते और साफ़ पानी पीते हुए शान्त चित्त से अर्जुन के आने की राह देखने लगे।

इधर अर्जुन ने इन्द्र-लोक में पाँच वर्ष रह कर पाये हुए हथियारों के चलाने में निपुणता प्राप्त करके मर्त्यलोक आने के लिए इन्द्र से आज्ञा ली।

माथे पर मुकुट, गले में माला, और अङ्ग में तरह तरह के सुन्दर गहने पहने हुए महाबली अर्जुन इन्द्र के सारथि मातलि के चलाये हुए रथ पर सवार होकर उल्का की तरह एकाएक गन्धमादन में आ पहुँचे। पाण्डव उन्हें पाकर और अर्जुन भी सबसे मिल कर बड़े आनन्दित हुए।

धीरे धीरे सबसे यथोचित प्रणाम और कुशल-प्रश्न करके धनञ्जय ने स्वर्ग में पाये हुए गहने प्रियतमा द्रौपदी को दिये। फिर सबके बीच में बैठ कर, उनके तरह तरह के प्रश्नों के उत्तर में, अर्जुन इतने दिन सफ़र में रहने का अपना सब हाल कहने लगे। पहले कैलास पर्वत पर निवास और तपस्या, इन्द्र के दर्शन, महादेव की आराधना, उनके दर्शन-स्पर्श, और उनसे पाशुपत अस्त्र पाना, इन्द्र आदि देवताओं से प्रयोग के सहित दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति आदि सब घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन करके अर्जुन कहने लगे:—

हे धर्म्मराज! इसके बाद जब देवराज इन्द्र ने देवकार्य के लिए हमें बुलाया तब हमने, उससे अपना बेहद गौरव समझ कर, कहा:—

हे देवराज! जो कुछ हम कर सकते हैं उसके करने में ज़रा भी कसर न करेंगे। तब इन्द्र भगवान् ने हँस कर कहा:—

हे अर्जुन! निवात-कवच नामक महा भयङ्कर दानवों का एक दल हमसे सदा ही शत्रुता किया करता है। समुद्र के बीच की एक अत्यन्त मनोहर नगरी, जो पहले हमारे अधिकार में थी, आज कल उन लोगों ने ज़बरदस्ती छीन ली है। किन्तु महादेवजी के वर के प्रभाव से हम उन्हें नहीं मार सकते। इसलिए उनके विनाश के लिए हम तुम्हें नियुक्त करते हैं।

इसके बाद इन्द्र ने हमको अपने सारथि मातलि के चलाये हुए प्रकाशमान दिव्य रथ पर सवार कराके अपना निज का अभेद्य कवच और गहने पहनाये और अपने हाथ से हमारे माथे में यह मुकुट बाँध कर यात्रा करने की आज्ञा दी।

तब हमने विमान के रास्ते अनेक लोकों के दर्शन करते हुए, फेनेदार पहाड़ी की तरह उठती हुई लहरोंवाले महासागर के निकट पहुँच कर, उस समुद्र के बीच में रहनेवाले दानवों का घर देखा। उसे देखते ही जब हम बड़ा शब्द करनेवाला अपना देवदत्त शङ्ख धीरे धीरे बजाने लगे तब आकाश में सन्नाटा छा गया।

निवातकवच लोग कवच पहन कर और तरह तरह के हथियार लेकर निकलने लगे। मातलि सब अवस्था और स्थान देख भाल कर चौरस ज़मीन पर इतनी ज़ोर से रथ चलाने लगा कि उस समय हमें और कुछ न देख पड़ता था।

अनन्तर, दानव लोग तरह तरह के बेडौल बाजे बजाते और तेज़ बाणों की वर्षा करते हुए हमारी तरफ़ दौड़े। अन्त में हमारे रथ का रास्ता रोक और हमको घेर कर चारों ओर से लगातार बाण बरसाने और हमारे रथ पर त्रिशूल, गदा, पट्टिश आदि तरह तरह के हथियार चलाने लगे। मातलि ने रथ चलाने की आश्चर्य्य-जनक कुशलता दिखाते हुए इस तरह उसे चलाया कि हम तो बचे रहे, पर वे लोग उसके धक्के से चारों तरफ़ गिरने लगे। हमने भी विचित्र अस्त्र चला कर एक लाख दानवों को छिन्न भिन्न किया।

तब दैत्य लोग माया के प्रभाव से छिप कर लड़ने लगे। हम भी शब्दभेदी बाणों के द्वारा न दिखाई देनेवाले शत्रुओं से युद्ध करने लगे। हमारे गाण्डीव से निकले हुए तेज़ बाणों के द्वारा बहुत से दानवों के सिर कट कट कर गिरने लगे। अन्त में निवातकवच लोग आकाश में उड़ कर पत्थर बरसाने लगे। कोई मिट्टी में घुस कर घोड़ों के पैर और रथ के पहिये पकड़ने लगे। इस अपूर्व युद्ध-कौशल के कारण हमें कुछ चकित हुआ देख मातलि बोला:—

हे अर्जुन! डरना मत। रथ में रक्खा हुआ वज्र उठा कर चलाओ।

तब हमने गाण्डीव रख दिया और इन्द्र का प्यारा अस्त्र वज्र दृढ़ता से पकड़ कर ज्यों ही दानवों की तरफ़ चलाया त्यों ही उसमें से लोहे के तरह तरह के दिव्य अस्त्र निकल कर ढेर के ढेर उन निवातकवचों को मारने और एक दूसरे के ऊपर ज़मीन पर गिराने लगे। जब मातलि ने शत्रुओं को पूरे तौर से परास्त देखा तब हँस कर कहने लगा:—

आज जैसा बलवीर्य मैंने तुममें देखा वैसा देवताओं में भी नहीं देखा था।

इसके बाद मातलि ने हमें शीघ्र ही इन्द्रलोक में पहुँचा दिया। वहाँ देवताओं ने प्रसन्न होकर हमें बार बार धन्यवाद दिया।

देवराज इन्द्र ने कहा:—बेटा! तुम्हें जो अस्त्रशिक्षा हमने दी है उसके बदले में तुम्हारी यह बढ़िया गुरुदक्षिणा पाकर हम बड़े प्रसन्न हुए। हम तुम्हारे लिए ऐसा यत्न करेंगे जिसमें तुम्हें अपने शत्रुओं से बिलकुल ही भय न रहे।

इसके बाद दुर्योधन के पक्षवाले विकट योद्धाओं की वीरता का ख़याल रख कर हम लगातार पाँच वर्ष इन्द्रलोक में रहे और सब अस्त्रों का चलाना सीख लिया।

अन्त में सुरराज इन्द्र ने आज्ञा दी:—

हे अर्जुन! इस समय तुम्हारे भाई बड़ी उत्कण्ठा से तुम्हारी राह देख रहे हैं। इसलिए तुम अब मर्त्यलोक को लौट कर उन्हें सुखी करो:—

उनकी इस आज्ञा के अनुसार मर्त्यलोक को लौटते समय रास्ते में हमने इस गन्धमादन पर्वत पर आप सब लोगों को देखा।

युधिष्ठिर ने कहा:—भाई! बड़े भाग्य थे जो तुमने ये सब दिव्य अस्त्र प्राप्त किये और अद्भुत अद्भुत काम करके इन्द्र को प्रसन्न किया। अब इसमें कोई सन्देह नहीं कि कौरवों के साथ युद्ध में हमीं जीतेंगे।

इसके बाद पाण्डव लोग अपने भाई अर्जुन से मिल कर चुपचाप और चार वर्ष तक वहाँ रहे। छः वर्ष पहले ही बीत चुके थे। इसलिए वनवास के अब सिर्फ़ दो वर्ष बाक़ी रहे।

एक दिन पाण्डवों ने मिल कर युधिष्ठिर से निवेदन किया:—

हे राजन्! हम स्वर्ग के समान इस परम रमणीय स्थान में बड़े आनन्द से बहुत दिनों तक रह सकते हैं। किन्तु अभी हमें अपना राज्य कौरवों से लेना है और वह काम बहुत ज़रूरी है। उसे भुला देने से काम न चलेगा। इसलिए हमको अपने राज्य के पास ही किसी जगह लौट चलना उचित है। वहाँ, समय आने पर, कृष्ण आदि यादवों के साथ हम लोग अपना कर्तव्य-निश्चय कर सकेंगे।

धर्मराज ने भाइयों की बात मान ली। सब लोगों ने वहाँ के वन, नदी, सरोवरों को फिर एक बार देख कर कुबेरपुरी की प्रदक्षिणा की और यक्षों को बुला कर गन्धमादन-निवासियों से विदा ली।

अनन्तर, द्रौपदी और ब्राह्मणों के साथ पाण्डव लोग उसी पहले के परिचित रास्ते से लौटने लगे। पहाड़ी देश के भयङ्कर स्थानों में घटोत्कच आदि राक्षसों ने पहले ही

की तरह उनको सहारा दिया। महर्षि लोमश, पिता की तरह सबको उपदेश देकर, फिर देवलोक को पधारे।

रास्ते में एक महीना बदरिकाश्रम में रह कर पाण्डव लोग सुबाहु-राज के देश में पहुँचे और अपने नौकरों तथा अवशिष्ट तपस्वियों से मिले। फिर कुछ दिन वहाँ रह कर द्वैत वन की ओर यात्रा की।

द्वैत वन में पहुँचते पहुँचते गर्मी बीत गई और सुखमय वर्षा ऋतु आ पहुँची। काली काली घटायें आकाश में छा गईं और गरज घुमड़ कर दिन रात बरसने लगीं। सूर्य्य के अखण्ड प्रकाश के बदले क्षण क्षण पर बिजली चमकने लगी। लहलहाती हुई हरी हरी घास से भरी हुई शान्त पृथ्वी मनुष्यों का जी लुभाने लगी। सूखी हुई नदियाँ उमड़ कर बह चलीं। पाण्डवों ने आगे बढ़ने का विचार छोड़ कर सुख से वहीं वर्षा बिताई।

धीरे धीरे शरद ऋतु का आगमन हुआ। तब वनों में और पहाड़ों की चोटियों पर खूब घास देख पड़ने लगी, नदियों का जल निर्म्मल हो गया, आकाश से मेघ जाते रहे। रात को नक्षत्र और भी अधिक उज्ज्वल हो उठे। शरद ऋतु की कार्त्तिकी पौर्ण-मासी आने पर वहाँ से चलने की तैयारी हुई। कृष्णपक्ष के लगते ही पाण्डव लोग ब्राह्मणों को साथ लिये हुए काम्यक वन की ओर चल दिये।

जब वे काम्यक वन पहुँचे तब वहाँ के ब्राह्मणों ने उनका यथोचित सत्कार करके कहा:—

हे पाण्डवगण! अर्जुन के प्यारे मित्र कृष्ण आपके दर्शनों की इच्छा से आपके आने की खबर सदा ही पूछते रहे हैं। निश्चय है कि अब वे शीघ्र ही आवेंगे।

ब्राह्मणों के कहने के अनुसार थोड़े ही दिनों में कृष्ण अच्छे लक्षणोंवाले घोड़े जुते हुए रथ पर सवार होकर प्रियतमा सत्यभामा के साथ काम्यक वन आ पहुँचे। जल्दी जल्दी रथ से उतर कर उन्होंने धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन और पुरोहित धौम्य को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया और नकुल सहदेव का नमस्कार लेकर द्रौपदी से कुशल-समाचार पूछा; फिर प्रियतम अर्जुन को जी खोल कर हृदय से लगाया। इधर कृष्ण की प्रियतमा सत्यभामा ने द्रौपदी को बार बार भेंटा। अर्जुन ने कृष्ण से अपने भ्रमण का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह कर सुभद्रा और अभिमन्यु के कुशल-समाचार पूछे।

कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा:—

हे राजन्! आपने जो राज्य पाने की अपेक्षा धर्म ही को बड़ा समझा है सो यह

बात आपके योग्य ही हुई है। अर्जुन ने भी इतने दिन तक दिव्य अस्त्र चलाना सीख कर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार ही काम किया है। आपकी प्रतिज्ञा पूरी होने पर, आज्ञा पाते ही, हम कुरुवंश निर्मूल करके आपको साम्राज्य लौटा देंगे।

फिर वे द्रौपदी से बोले:—

हे द्रौपदी! प्रतिविन्ध्य आदि तुम्हारे पुत्र बड़े सुशील बालक हैं। भले आदमियों के लड़कों को जिस तरह रहना चाहिए उसी तरह वे रहते हैं। सुभद्रा उनका पालन-पोषण तुम्हारी ही तरह बड़ी सावधानी से करती है। उन्हें सब बातों की शिक्षा देने की देख-भाल प्रद्युम्न करते हैं।

तब युधिष्ठिर ने कृष्ण की बहुत कुछ प्रशंसा करके उत्तर दिया:—

हे केशव! सब विषयों में पाण्डवों को उपदेश देनेवाले और कर्ता धर्ता तुम्हीं हो। अब हमारे वनवास के बारह वर्ष लगभग पूरे हो चुके। और एक वर्ष अज्ञात वास पूरा करके तुमसे फिर मिलेंगे और तुम्हारी सहायता चाहेंगे।

इस तरह बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि मार्कण्डेय वहाँ आ गये। सबने भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा की। कुछ दिन वे वहाँ रहे और अनेक प्रकार की कथायें और पुराने वृत्तान्त कह कर सबका मन बहलाया।

इस समय द्रौपदी और सत्यभामा, ये दोनों प्रिय बोलनेवाली स्त्रियाँ, बहुत दिनों के बाद एक दूसरे से मिलने पर, कुरु और यदु के वंश से सम्बन्ध रखनेवाली तरह तरह की बातें बड़ी प्रसन्नता से करके अपना समय बिताती थीं।

एक बार कृष्ण की प्यारी सत्यभामा एकान्त में द्रौपदी से कहने लगी:—

हे द्रौपदी! महाबली पाण्डव लोग तुमसे इतने प्रसन्न रहते हैं कि उनके प्रेम को देख कर मुझे आश्चर्य्य होता है। तुम्हारे पति तो एक दिन के लिए भी तुमसे जुदा नहीं होते; तुम्हारे सिवा किसी और को वे चाहते भी नहीं। मुझे यह बताओ कि किस व्रत, मन्त्र या ओषधि से तुमने उनको इस तरह वश में कर लिया है। मालूम होने से मैं भी कृष्ण को अपने वश में करके तुम्हारी ही तरह सौभाग्यवती बनूँगी।

पतिव्रता द्रौपदी ने कहा:—

देखो सखी! तुमने जिन उपायों की बात कही, उन्हें केवल नीच स्त्रियाँ ही करती हैं। कृष्ण की स्त्री होकर तुम्हें ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं। यह जानने से कि मुझे वश में करने के लिए मेरी स्त्री मन्त्र-यन्त्र सिद्ध करती है कभी किसी स्त्री का स्वामी शान्त और सुखी नहीं रह सकता। ओषधि देने से केवल शरीर ही नहीं, किन्तु प्राण तक नष्ट

हो सकते हैं। हे सुन्दरी ! इन उपायों से पति कभी वशीभूत नहीं होते। मैं जैसा व्यवहार करती हूँ, इच्छा हो तो, सुनो। मैं पाण्डवों की दूसरी स्त्रियों के साथ कभी बुरा बरताव नहीं करती। अभिमान छोड़ कर पतियों की इच्छा के अनुसार सदा काम करती हूँ। मैं इस बात का सदा ख़याल रखती हूँ कि कहीं मेरे मुँह से कोई बुरी बात न निकल जाय। इशारा पाते ही मैं सबकी बराबर सेवा करती हूँ। इसके सिवा मैं घर सदा साफ़ रखती हूँ और भोजन आदि ठीक समय पर तैयार करती हूँ। मैं सदा सच्चा प्रेम दिखाती हूँ और रमणीय वेश बना कर जी लुभानेवाली सुगन्धित मालाओं से सजी रहती हूँ। हे सत्यभामा ! पतियों को वश में करने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय जानती हूँ। दुराचारिणी स्त्रियों की तरह बुरा व्यवहार करने की इच्छा कभी न करना।

सत्यभामा बोली—हे द्रौपदी ! अपराध हुआ; क्षमा करो; सखियों की हँसी-दिल्लगी से क्रोध न करना।

द्रौपदी ने कहा:—सखी ! स्वामी को रिझाने का जो सार्थक उपाय मैंने बताया, उसके अनुसार चलने से कृष्ण पूरी तौर से तुम्हारे वश में हो जायँगे। इसमें सन्देह नहीं। सती स्त्रियों को पहले तो दुख भोगना पड़ता है, पर अन्त में वही सुख पाती हैं।

इसके बाद जब कृष्ण के जाने का समय आया तब रथ पर चढ़ कर उन्होंने सत्यभामा को बुलाया। सत्यभामा ने द्रौपदी को बड़े प्रेम से भेंट कर कहा:—

प्यारी सखी ! दुख न करो। तुम्हारे स्वामी अपने बाहुबल से शीघ्र ही फिर राज्य करेंगे। तब तक हम लोग तुम्हारे लड़कों का बड़े यत्न और स्नेह से लालन-पालन करेंगी।

यह कह कर और कृष्ण के रथ पर सवार होकर सत्यभामा ने प्रस्थान किया।

पाण्डवों के बहुत दिन तक एक स्थान पर रहने से मृग और फल-फूल आदि खाने की चीज़ें जब न मिलने लगीं तब फिर स्थान बदलने के इरादे से वे द्वैतवन गये और वहाँ सरोवर के किनारे एक घर बना कर रहने लगे।

६—धृतराष्ट्र के पुत्रों का राज्य करना

पाण्डव लोग द्वैतवन में वनवास का बचा हुआ अंश बिता रहे थे कि इतने में पाण्डवों के यहाँ से एक ब्राह्मण हस्तिनापुर में महाराज धृतराष्ट्र के पास गया। बातचीत

करने में ब्राह्मण बड़ा चतुर था। धृतराष्ट्र ने उसका अच्छा सत्कार किया और पाण्डवों का हाल उससे पूछा। ब्राह्मण ने महादुखी पाँचों पाण्डवों और क्लेशों से घिरी हुई द्रौपदी का सच्चा सच्चा हाल कह सुनाया।

पाण्डवों का वृत्तान्त सुन कर राजा धृतराष्ट्र को बड़ी दया आई। अपने ही को इन सब दुखों की जड़ समझ कर पाण्डवों की प्रशंसा और अपने पुत्रों की निन्दा करते हुए उन्होंने बहुत विलाप किया। साथ ही अर्जुन की तपस्या और उसके द्वारा दिव्य अस्त्र-शस्त्र पाने के समाचार सुन कर वे बहुत डरे भी।

महाराज को विलाप करते देख दुर्योधन और कर्ण को शकुनि एकान्त में ले गया और उनसे सब हाल कहा। मूर्ख दुर्योधन इससे बड़ा दुखी हुआ। शकुनि ने धीरज देकर कहा:—

महाराज! जब तुमने पाण्डवों को वनवास की प्रतिज्ञा में बाँध लिया है तब चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। तुम अकेले इतने बड़े राज्य को निष्कंटक भोग कर सकते हो।

इतने में दुर्योधन का दुःख दूर करने की एक बड़ी अच्छी तरकीब कर्ण को सहसा सूझ गई। वे बोले:—

हे कुरुश्रेष्ठ! सुनते हैं कि इस समय पाण्डव लोग पास ही द्वैतवन के एक सरोवर से कुछ ही दूर पर रहते हैं। यदि तुम अपना अतुल ऐश्वर्य दिखा कर उनको इस दरिद्र और दीन हीन दशा में उनसे एक बार मिलने जाव तो बड़ी दिल्लगी आवे। शत्रुओं को दुर्दशाग्रस्त देखने से बढ़ कर और भला किस बात में अधिक सुख हो सकता है?

यह बात सुन कर थोड़ी देर के लिए दुर्योधन प्रसन्न हो गये। पर पीछे से मुँह लटका कर कहने लगे:—

हे कर्ण! तुमने जो कहा उससे बढ़ कर प्रसन्नता की बात और नहीं हो सकती। भीम और अर्जुन को छाल और मृगचर्म, और द्रौपदी को गेरुआ वस्त्र पहने देख हमारे सब दुःख दूर हो जायँगे, इसमें सन्देह ही क्या है? किन्तु पिता की आज्ञा कैसे मिलेगी? उसके लिए क्या करें? तुम शकुनि से सलाह करके हमें इसका उपाय बताओ। तुम जिस तरह कहोगे हम सब मिल कर उसी के अनुसार विनती करके किसी न किसी तरह पिता से आज्ञा प्राप्त कर लेंगे।

दुर्योधन की बात सुन कर कर्ण और शकुनि अपने अपने घर चले गये।

दूसरे दिन सवेरे दोनों भाई आ कर हँसते हुए कहने लगे:—

महाराज! उपाय ठीक हो गया। सुनिए द्वैतवन के पास अहीरों की जो बस्तियाँ हैं उनकी निगरानी रखना आपका ज़रूरी काम है। अतएव उनकी देख-भाल करने के लिए जाने की आज्ञा आपके पिता ज़रूर ही दे देंगे।

दुर्योधन ने यह सलाह मान ली। सब लोग आनन्द से एक दूसरे का हाथ पकड़ कर ज़ोर ज़ोर हँसने लगे।

इसके बाद वे लोग धृतराष्ट्र के पास गये और उनसे कुशल-समाचार पूछे। धृतराष्ट्र ने भी उनकी कुशल आदि पूछी। तब पहले से सिखाया हुआ एक ग्वाला आ कर बोला:—

महाराज! गाय और बछड़ों की उम्र और रंग का लेखा रखने और उनके गिनने का समय आ गया है।

तब कर्ण और शकुनि कहने लगे:—

हे कौरवराज! इन ग्वालों की बस्ती बड़ी रमणीक है और वहाँ शिकार खेलने का भी अच्छा सुभीता है। इसलिए आज्ञा हो तो हम लोग दुर्योधन को लेकर वहाँ शिकार खेलने जायँ। उसी के साथ साथ गायों की देख भाल का ज़रूरी काम भी पूरा हो सकता है।

धृतराष्ट्र बोले:—गायों के आँकने का काम ज़रूरी है; शिकार खेलने में भी कोई दोष नहीं है। किन्तु हमने सुना है कि अहीरटोले के पास ही पाण्डव लोग रहते हैं। हम डरते हैं कि कहीं उनसे तुम लोगों का झगड़ा न हो जाय। अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों की उत्तम शिक्षा पाई है। उससे वे तुम्हारा बहुत कुछ अनिष्ट कर सकते हैं। इसके सिवा तुम लोग गिनती में बहुत अधिक हो। इससे जो कहीं तुम्हीं उन्हें हरा दो तो भी बड़े अधर्म्म की बात होगी। इसलिए उधर जाने का काम नहीं।

शकुनि बोले:—महाराज पाण्डवों में युधिष्ठिर श्रेष्ठ हैं। वे बड़े धर्म्मात्मा हैं। वन-वास का समय पूरा होने के पहले वे हमसे कोई झगड़ा न करेंगे। हम भी शिकार खेलने और गायों की देख-भाल करने के लिए वहाँ जाते हैं। पाण्डवों से मिलने की हमें कोई ज़रूरत नहीं।

महाराज धृतराष्ट्र इस बात का खण्डन न कर सके। लाचार बे-मन उन्होंने जाने की सम्मति दी।

उनकी आज्ञा पाते ही दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ने दुःशासन और अन्य कितने ही कौरवों को भी साथ चलने को कहा। तरह तरह के रत्न और गहनों से भूषित स्त्रियों

को भी उन्होंने साथ लिया। अच्छे अच्छे सुनहले रथों पर सवार होकर बड़ी धूमधाम से वे लोग चले। शिकार खेलने के अभिलाषी बहुत से नगरनिवासी भी अपनी अपनी सवारियों पर उनके पीछे पीछे चले। पहले तो अहीर-टोले में सबके लिए अलग अलग घर बनाये गये। वहाँ रह कर वे बछड़ों के गिनने, चुनने और आँकने का काम धीरे धीरे करने लगे। ग्वालों और ग्वालियों ने तरह तरह के नाच-गान आदि के द्वारा दुर्योधन को प्रसन्न करके बहुत अन्न-वस्त्र प्राप्त किया।

जब यह काम हो गया तब सब लोग शिकार खेलने के लिए निकले और हिरन, भैंसे, सुअर, भालू आदि का पीछा करने लगे। राजा दुर्योधन जंगली हाथी आदि तरह तरह के जानवरों को मारते हुए धीरे धीरे द्वैतवन के सरोवर के पास पहुँचे। दुर्योधन को यह जगह बहुत ही रमणीय मालूम हुई। पाण्डवों को अपना ऐश्वर्य भी उन्हें दिखाना था। इससे उन्होंने नौकरों को आज्ञा दी कि सरोवर के एक तरफ़ एक बहुत ही अच्छा खेल-घर बनाया जाय।

इस समय अप्सराओं के साथ विहार करने के इरादे से गन्धर्वराज चित्रसेन ने वह सरोवर घेर रक्खा था। जब दुर्योधन के नौकर वहाँ पहुँचे तब गन्धर्वराज के द्वारपालों ने उन्हें रोका।

उन्होंने लौट कर दुर्योधन से सब हाल कहा। दुर्योधन को यह बात बुरी लगी। वे बोले:—

शीघ्र ही जाकर गन्धर्वों को निकाल दो।

सेनानायक लोग राजा के आज्ञानुसार सरोवर के तट पर जा कर बोले:—

हे गन्धर्वगण! धृतराष्ट्र के पुत्र महाबली और महापराक्रमी राजा दुर्योधन यहाँ विहार करने आते हैं। इसलिए तुम लोग शीघ्र ही चले जाव।

गन्धर्वों ने हँस कर रुखाई से उत्तर दिया:—

अरे मूढ़ सिपाहियो! तुम्हारा राजा महामूर्ख है। इसलिए वैश्यों की तरह हमें आज्ञा देने को तैयार हुआ है। क्या तुम्हें भी अपने प्राणों का भय नहीं है जो हम लोगों को उसकी आज्ञा सुनाने आये हो?

यह सुनते ही सेनानायक लोग जल्दी जल्दी दुर्योधन के पास लौट आये और जो कुछ गन्धर्वों ने कहा था वह सब कह सुनाया। प्रतापी दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया; उन्होंने कहा:—

हे सैनिकगण ! तुम शीघ्र ही इन गन्धर्वों को इनकी ढिठाई का मज़ा चखाओ। यदि ख़ुद इन्द्र भी इनकी सहायता करें तो भी न डरना।

यह सुनते ही सब योद्धा कमर कस कर और सिंह की तरह गरज कर दशों दिशाओं को गुँजाते हुए सरोवर की तरफ़ दौड़े।

ख़ुद दुर्योधन को सैनिकों के साथ आते देख बड़े बड़े गन्धर्वों ने उन्हें समझा बुझा कर रोकने की चेष्टा की। पर जब देखा कि कोरी बातों से काम नहीं चल सकता तब उन्होंने गन्धर्वराज से सब हाल कह सुनाया। उन्हें बड़ा क्रोध आया। फल यह हुआ कि दोनों पक्षों में घोर युद्ध होने लगा।

कौरवों के सैनिक गन्धर्वों का प्रबल प्रताप और मायायुद्ध ज़रा देर भी न सह सके। दुर्योधन के सामने ही वे भागने लगे।

महाबली कर्ण सैनिकों को भागते हुए देख कर भी युद्ध से नहीं हटे। तरह तरह के अस्त्रों से उन्होंने बहुत से गन्धर्व मारे। यह देख कर वह जगह गन्धर्व-सेना से भर गई। जब वे भी कर्ण, दुर्योधन आदि वीरों को न हरा सके तब ख़ुद गन्धर्वराज चित्रसेन आकर मायावी अस्त्र चलाने लगे। तब किसी ने कर्ण के रथ के बम को, किसी ने पहियों को, किसी ने सारथि को, किसी ने घोड़ों को नष्ट किया। इससे कर्ण बिलकुल ही बेबस हो गये। उन्होंने अपना रथ छोड़ दिया और विकर्ण के रथ पर चढ़ कर भागे।

किन्तु राजा दुर्योधन ने क्रोध और घमण्ड के कारण अन्त तक युद्ध का मैदान न छोड़ा। गन्धर्वों ने उन्हें घेर कर उनका रथ नष्ट कर दिया और उन्हें जीते जी पकड़ लिया। उन्होंने दुर्योधन की असहाय रानियों को भी क़ैद कर लिया और सबको लेकर वे इधर उधर चल दिये।

दुर्योधन के मन्त्री लोग यह दशा देख हक्का बक्का हो गये। उन्हें और कोई उपाय न सूझा। सरोवर की दूसरी तरफ़ रहनेवाले पाण्डवों के पास वे दौड़े गये और उनकी शरण ली। दुर्योधन की दुर्दशा का हाल सुन कर भीमसेन हँसे और स्वर बदल कर बोले:—

जिस काम के लिए हम लोग बड़ी बड़ी तैयारियाँ कर रहे थे वह काम आज गन्धर्वों ने हमारे जाने बिना ही कर डाला। दुर्योधन समझता था कि छल से प्राप्त किया हुआ धन वह सुख से भोग करेगा। किन्तु कैसे सौभाग्य की बात है कि हमारे कुछ न करने पर भी दुर्योधन ने दूसरे ही के हाथ से अपने पाप का दण्ड पा लिया।

भीम की यह बात युधिष्ठिर को अच्छी न लगी। वे असन्तुष्ट होकर बोले:—

हे भीम! इस समय ऐसे दुर्वाक्य कहना उचित नहीं। कौरव लोग, विशेष कर कौरव-स्त्रियाँ, दुर्दशा में फँस कर हमारी शरण आई हैं। दूसरे के हाथ से उनका अपमान होते हम कैसे चुपचाप देख सकते हैं। हे भीम! हे अर्जुन! तुम नकुल और सहदेव को साथ लेकर दुर्योधन को गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाओ। हमारी शरण आकर कौरव लोग यदि हमारी चेष्टा से छूट जायँ तो इससे बढ़ कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है? यदि हम यज्ञ न करते होते तो खुद ही उठ दौड़ते।

युधिष्ठिर की बात सुन कर मन्त्रियों को धीरज हुआ। पाण्डवों ने भी जेठे भाई की आज्ञा से शीघ्र ही अस्त्र उठाये और इन्द्रसेन आदि नौकरों के साथ गन्धर्वों पर आक्रमण किया। बड़े उत्साह से अर्जुन गन्धर्व सेना का नाश करने को तैयार हुए। इसी समय सहसा उनके कान में यह बात पड़ी।

ठहरो! ठहरो! हम तुम्हारे मित्र चित्रसेन हैं।

गन्धर्वराज को देख कर अर्जुन ने हथियार रख दिये और उनको हृदय से लगाया। अन्यान्य पाण्डवों ने भी अपने घोड़ों की रासें खींच लीं और ताने हुए बाण धनुष से उतार लिये। इससे लड़ाई थम गई।

अर्जुन ने कहा:—हे वीर! तुमने रानियों सहित दुर्योधन को किस लिए क़ैद किया है?

चित्रसेन ने कहा:—हे अर्जुन! अपना अपमान करने के कारण हम उतना क्रुद्ध नहीं हुए। किन्तु हमें मालूम हो गया था कि ये लोग तुम्हें सताने और द्रौपदी की हँसी करने के लिए यहाँ आये हैं। इसीसे हमने दुर्योधन को उचित दंड देने की ठानी है। दुर्योधन की बुरी नियत धर्म्मराज नहीं समझ सके। इसी लिए वे इन सबको छोड़ देना चाहते हैं। चलो उनके पास जाकर सब हाल कहें।

युधिष्ठिर ने सब हाल सुन कर भी दुर्योधन को छोड़ देने की प्रार्थना की। गन्धर्वराज की प्रशंसा करके वे कहने लगे:—

हे चित्रसेन! तुमने समर्थ होकर भी कौरवों को नहीं मारा, यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। इन्हें छोड़ देने से हमारे कुल की मर्यादा की रक्षा होगी। हम तुम्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। आज्ञा दो, हम तुम्हारी कौन अभिलाषा पूरी करें।

युधिष्ठिर के शिष्टाचार से गन्धर्वराज बहुत प्रसन्न हुए। वे उनसे विदा माँग कर अप्सराओं के साथ अपने स्थान को चले गये।

तब धर्म्मराज ने दुर्योधन और उनके भाइयों से बड़े प्यार से कहा:—

भाई ! ऐसे बेडौल साहस का काम कभी न करना। अब बिना किसी विघ्न-बाधा के तुम आनन्द से घर जा सकते हो।

युधिष्ठिर की ऐसी आज्ञा पाकर दुर्योधन ने उन्हें प्रणाम किया। बेहद लज्जित हो कर वे नगर की ओर धीरे धीरे चलने लगे। उस समय उनकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी। उनका पैर न उठता था। उनकी इन्द्रियाँ उनके क़ाबू में न थीं। वे बड़े ही आतुर थे। सब बातें याद करके क्षोभ से उनका हृदय फट रहा था। रास्ते में उन्हें एक मैदान देख पड़ा। वहाँ उन्होंने ठहर कर कुछ देर विश्राम करने का विचार किया। रथों से घोड़े खोल दिये गये। सब लोग वहीं आराम करने लगे। इतने में राहुग्रस्त चन्द्रमा की तरह मलिनमुख दुर्योधन के पास कर्ण आये। उन्हें सच्ची अवस्था तो मालूम न थी, इससे वे बड़े उत्साह से कहने लगे:—

हे कुरुनन्दन ! बड़े सौभाग्य की बात है जो तुम स्त्री, सेना और सवारियों के साथ अपनी रक्षा कर सके। हमारी सेना भाग गई थी। इससे हम लड़ाई के मैदान में न ठहर सके। किन्तु तुमने देवताओं के समान युद्ध करके उन मायावी गन्धर्वों को परास्त किया। यह काम बड़ा ही आश्चर्यकारक हुआ। इसे और कोई न कर सकता था।

यह सुन कर दुर्योधन बेतरह कातर हो उठे। उन्होंने रुँधे हुए कण्ठ से कहा:—

हे कर्ण ! तुम्हें सच्ची घटना का कुछ भी हाल मालूम नहीं। इसी से हम तुम्हारी बात से क्रुद्ध नहीं होते। हमने गन्धर्वों के साथ बड़ी देर तक युद्ध किया। पर उन्होंने माया के प्रभाव से हम लोगों को हरा दिया और हमारी स्त्री, पुत्र, मन्त्री, सेना और वाहन आदि लेकर चल दिया। तब हमारे मन्त्रियों में से कुछ लोग एकत्र होकर पाण्डवों की शरण गये। युधिष्ठिर की आज्ञा से हमें छुड़ाने के लिए भीम और अर्जुन ने पहले तो घोर युद्ध किया। पर पीछे से अर्जुन ने जब अपने मित्र चित्रसेन को पहचाना तब युद्ध बन्द कर दिया और हमें छोड़ देने के लिए उनसे कहा। चित्रसेन ने हमारे आने का असल मतलब पाण्डवों पर प्रकट करके हमें बेहद लज्जित किया। उस समय हमारे मन में यही आता था कि पृथ्वी फट जाय और हम उसमें समा जायँ।

भाई ! हमें गन्धर्वों ने क़ैद कर लिया था। हमारे शत्रु पाण्डवों ही ने हमें प्रिया के सामने छुड़ाया। फिर, युधिष्ठिर के पास हमें वे मानों उपहार की तरह ले गये। जिन्हें मारने की हमने बार बार चेष्टा की उन्हीं ने हमें प्राणदान दिया। यह अपमान सह कर अब हम नहीं जी सकते। इसकी अपेक्षा गन्धर्वों के हाथ से मर कर इन्द्रलोक पाना हमारे लिए सौगुना अच्छा था। यह हाल सुन कर भीष्म, द्रोण, विदुर आदि हमें क्या

कहेंगे। इसके लिए वे हमारी जैसी दिल्लगी उड़ावेंगे उसे सोच कर क्षण भर भी जीने की इच्छा नहीं होती।

हे दुःशासन ! हम तुम्हें राज्य सौंपते हैं। तुम सजातियों पर प्रीतिभाव रखना और गुरुजनों का पालन करना।

यह कह कर दुर्योधन ने दुःशासन को गले से लगाया।

दुःशासन डबडबाई हुई आँखों से—महाराज ! प्रसन्न हो—कह कर जेठे भाई के पैरों तले लोट गये। वे कुछ न कह सके। कुछ देर बाद धीरज धर के बोले:—

महाराज ! भूमि फट सकती है और आकाश के टुकड़े टुकड़े हो सकते हैं। किन्तु तुमने जो कहा वह नहीं हो सकता। तुम जीते रहो और सौ वर्ष तक राज्य करो। हमारे वंश में तुम्हीं राज्य करने योग्य हो।

यह कह कर दुःशासन भाई के दोनों पैर आँसुओं से भिगोने लगे। ऐसी शोचनीय दशा देख कर महाबली कर्ण को बड़ा दुःख हुआ। वे समझाने लगे:—

हे कौरवगण ! यह कौन बड़ी बात है। ऐसी छोटी छोटी बातों के लिए तुम मामूली आदमियों की तरह व्यर्थ दुखी होते हो। राजन् ! शोक करना वृथा है। उससे वैरियों का आनन्द बढ़ता है। शोक करने से कोई लाभ नहीं। इसलिए धीरज धरो। पाण्डव लोग तुम्हारे राज्य में तुम्हारे ही आसरे रहते हैं। अतएव वे तुम्हारी प्रजा के समान हैं। जैसे अन्यान्य प्रजा का काम तुम्हारी रक्षा करना है वैसे पाण्डवों का भी है। जिसका पालन किया जाता है उसे राजा को प्रसन्न रखना ही चाहिए। पाण्डवों ने जो तुम्हारा प्रिय कार्य्य किया तो उसमें विचित्रता ही क्या है ? यह कोई नई बात नहीं। इसके लिए मरने की कामना करना उचित नहीं। देखो, तुम्हारे भाई तुम्हारी दीन दशा देख कर कितने शोकाकुल हो रहे हैं। अब तुम उन्हें धीरज देकर घर चलो। यदि तुम हमारी बात न मानोगे तो हम भी तुम्हारे साथ यहीं प्राण दे देंगे।

परन्तु कर्ण की बात पर भी दुर्योधन ने ध्यान न दिया। वे शय्या से न उठे; वहीं भूखे प्यासे पड़े रहने का उन्होंने निश्चय किया। तब शकुनि कहने लगे:—

हे महाराज ! आप कर्ण की न्यायानुकूल बात क्यों नहीं सुनते ? हमारा पैदा किया हुआ अनन्त ऐश्वर्य्य बिना किसी कारण के आप क्यों छोड़ने को तैयार हैं ? जो मनुष्य हर्ष या शोक के वेग को नहीं रोक सकता उससे अधिक नादान और कौन है ? इसमें सन्देह नहीं कि पाण्डवों ने आपका बड़ा उपकार किया है। इसके लिए शोक न करके उलटा प्रसन्न होना चाहिए और उनका उचित सत्कार करना चाहिए। यदि आप

लज्जित हैं तो बदले में उनके साथ कोई भलाई करके कृतज्ञता-रूपी ऋण से छूटिए। शोक करना व्यर्थ है। प्रसन्न हूजिए। इच्छा हो तो पाण्डवों को राज्य दे दीजिए और उनसे मेल कर लीजिए। इससे आपका यश भी होगा। आप प्राण छोड़ देने का इरादा क्यों करते हैं? शकुनि की बात समाप्त होने पर दुर्योधन ने पैरों तले पड़े हुए अपने भाई दुःशासन को बड़े स्नेह के साथ दोनों हाथों से उठाकर छाती से लगाया और माथा सूँघ कर दीन भाव से कहा:—

क्या धर्म, क्या धन, क्या सुख, क्या प्रभुता अब हमें किसी से प्रयोजन नहीं है। हमने अन्न-जल ग्रहण न करने ही का निश्चय किया है। इस विषय में हमसे अब कोई कुछ न कहे।

तब सब लोग बोले:—

महाराज! तो हम भी अब नगर को न लौटेंगे। जो तुम्हारा हाल होगा वही हमारा भी होगा।

परन्तु दुर्योधन अपनी बात पर दृढ़ रहे। उन्होंने किसी की भी विनती न सुनी। स्वर्ग पाने की इच्छा से उन्होंने जल छूकर कोरा वस्त्र पहना और कुशासन पर बैठ गये।

इस तरह बिना कुछ खाये पिये दुर्योधन ने वह रात प्रायः बेहोशी की दशा में बिताई। रात को स्वप्न में उन्होंने देखा, मानों दानवों का एक झुंड उनको पाताल में ले जाकर कहने लगा:—

महाराज! तुम पाण्डवों से क्यों डरते हो? हम सब तुम्हारी सहायता करेंगे। भीष्म, द्रोण आदि के शरीर में हम लोगों के घुसने पर वे विकट युद्ध करके पाण्डवों का संहार करेंगे। अर्जुन से हारने की शङ्का भी तुम्हारी व्यर्थ है। नरकासुर की आत्मा जब कर्ण के शरीर में प्रवेश करेगी तब खुद इन्द्र भी अर्जुन की रक्षा न कर सकेंगे।

इस पर, स्वप्न में, दुर्योधन ने सोचा कि हम निश्चय ही पाण्डवों को हरा देंगे।

उनकी आशा बे-तरह बलवती हो उठी। उसके वेग में उन्हें ऐसा मालूम होने लगा मानों भीष्म, द्रोण और कर्ण के शरीर में दानवों ने सचमुच ही प्रवेश किया है और वे निर्दयता से पाण्डवों का नाश कर रहे हैं। इस ख़याल ने उनके शोक को बहुत कुछ कम कर दिया। किन्तु यह बात उन्होंने किसी से नहीं कही।

दूसरे दिन सवेरे कर्ण आदि सब लोग फिर दुर्योधन को तरह तरह से धीरज देकर समझाने और दुःशासन आदि भाई घिघिया कर बार बार मनाने लगे। तब दुर्योधन

रात के स्वप्न की कल्पना के प्रभाव से पाण्डवों को मरा हुआ समझ कर उठ बैठे और घर लौट चलने पर राज़ी हुए।

कर्ण और शकुनि आदि के साथ राजसी ठाट बाट से दुर्योधन हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही दुर्योधन का तिरस्कार करके भीष्म कहने लगे:—

बेटा! द्वैतवन जाने के लिए हमने तुम्हें मना किया था। पर तुमने हमारी बात न मानी। देखो, पाण्डव कैसे धर्मज्ञ हैं। उन्होंने गन्धर्वों के हाथ से बचा कर तुम्हारी प्राण-रक्षा की। इससे क्या तुम्हें ज़रा भी लज्जा न आई? अपने मुँह अपनी प्रशंसा करनेवाले कर्ण और पाण्डवों के पराक्रम का भेद समझ लिया? जिस कर्ण के बल पर तुम पाण्डवों के साथ सदा द्वेष किया करते हो वह लड़ाई के मैदान में तुम्हें छोड़ कर बिना किसी सोच विचार के भाग गया।

किन्तु, राजा दुर्योधन ने भीष्म की बात की कुछ भी परवा न करके उसे हँसी में उड़ा दिया और शकुनि के साथ वहाँ से चल दिया।

दुर्योधन की इस उजड्डता से कुरुवंश में श्रेष्ठ भीष्म बड़े लज्जित होकर अपने घर चले आये।

इसके अनन्तर भीष्म की बात से क्रुद्ध होकर कर्ण कहने लगे:—

हे दुर्योधन! भीष्म सदा पाण्डवों की प्रशंसा और हम लोगों की निन्दा किया करते हैं। तुमसे वे द्वेष रखते हैं, इस कारण हमें भी वे सदा भला बुरा कहा करते हैं। यह अपमान अब हमसे नहीं सहा जाता। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो सारी पृथ्वी जीत कर जो काम चार पाण्डवों ने मिल कर किया था वही सिर्फ़ चतुरङ्गिनी सेना की सहायता से हम अकेले ही कर दिखावें। कुरुकुल में यह भीष्म मानो नीच पैदा हुआ है। द्वेष के कारण ही वह हमें तुच्छ समझता है। उसे हम अपनी वीरता दिखाना चाहते हैं।

दुर्योधन इस बात से बड़े प्रसन्न होकर बोले:—

हे कर्ण! हम जानते हैं कि तुम हमारी भलाई करने की चेष्टा में सदा ही लगे रहते हो; इससे हम अपने को धन्य और कृतार्थ समझते हैं। तुम ख़ुशी से दिग्विजय के लिए जाने की तैयारी करो।

इस तरह आज्ञा पाकर महाबली कर्ण, अच्छे मुहूर्त में, धनुष-बाण लेकर और रथ पर सवार होकर चतुरङ्गिनी सेना के साथ चले। पहले उन्होंने द्रुपदराज को क़ैद करके उनसे एक रथ लिया। फिर, उत्तर की ओर जाकर, भगदत्त, आदि राजों को अपने वश में किया। फिर, हिमालय के पहाड़ी राजों को अपने अधीन किया। इसके बाद

पूर्व दिशा की ओर जाकर अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, मिथिला आदि देशों को कुरुराज्य में मिलाया। फिर, दक्षिण में युद्ध करके वहाँ के राजों को जीता। अन्त को पश्चिम दिशा में अवन्ति देश के राजा और यादवों के साथ संधि की। इस तरह थोड़े ही दिनों में चारों दिशाओं के राजों को हरा कर और उनसे बहुत सा धन लेकर कर्ण हस्तिनापुर को लौट आये।

राजा दुर्योधन ने भाइयों और बन्धु-बान्धवों के साथ आगे बढ़ कर उन्हें लिया और उनका यथोचित सत्कार किया। फिर उन्होंने डंके की चोट से यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध कर दी कि कर्ण दिग्विजय कर आये; कोई देश उनसे जीतने से नहीं बचा। इसके बाद उन्होंने कर्ण से कहा:—

हे कर्ण! तुम्हारा मङ्गल हो। भीष्म, द्रोण आदि वीरों से जो बात नहीं बन पड़ी सो तुमने कर दिखाई। तुमसे हमने सब कुछ पाया। आओ, राजा धृतराष्ट्र और पूजनीया गान्धारी का आशीर्वाद लो।

इस समय पाण्डवों को जीतने के सम्बन्ध में कौरवों को कोई सन्देह न रहा। तब कर्ण ने कहा:—

हे दुर्योधन! इस पृथ्वी पर अब तुम्हारा कोई शत्रु बाकी नहीं। इसलिए ब्राह्मणों को बुला कर इस समय तुम किसी महायज्ञ के करने की तैयारी करो। इस उपदेश के अनुसार दुर्योधन ने पुरोहित को बुला कर कहा:—

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! हमारे लिए विधि के अनुसार राजसूय महायज्ञ करने की तैयारी करो।

पुरोहित ने कहा:—महाराज! आपके पिता और धर्मराज युधिष्ठिर के जीवित रहते आपका राजसूय यज्ञ करना उचित नहीं। किन्तु, हे राजन्! राजसूय ही की तरह का और भी एक महायज्ञ है। आप वही कीजिए। आपके जीते हुए राजा लोग सोने के रूप में आपको कर दें। आप उसी का एक हल बनवाइए और उससे यज्ञ-भूमि जुतवाइए। वहीं शास्त्र के अनुसार यज्ञ कीजिए। इस महायज्ञ का नाम वैष्णव यज्ञ है। यह राजसूय ही के बराबर है और शास्त्र के अनुसार आप उसे कर भी सकते हैं।

जब सब लोगों ने ब्राह्मण की बात का अनुमोदन किया तब दुर्योधन ने यज्ञ की तैयारी करने की आज्ञा दी। शीघ्र ही सब सामग्री के जुट जाने पर कारीगरों, मन्त्रियों और महाबुद्धिमान् विदुर ने दुर्योधन से कहा:—

महाराज ! सोने का मूल्यवान् हल तैयार है और यज्ञ आरम्भ करने का शुभ दिन भी आ गया है।

यह सुन कर दुर्योधन ने यज्ञ आरम्भ करने की आज्ञा दी और विधि के अनुसार दीक्षा ग्रहण की। राजों और ब्राह्मणों को बुलाने के लिए चारों तरफ़ दूत भेजे गये। इस समय दुःशासन ने उनमें से एक आदमी से कहा:—

हे दूत ! तुम द्वैतवन में जाकर पाण्डवों को भी निमन्त्रण देना।

दुःशासन के आज्ञानुसार वह दूत युधिष्ठिर के पास गया और प्रणाम करके बोला:—

महाराज ! राजा दुर्योधन अपनी वीरता से प्राप्त किये हुए धन द्वारा यज्ञ करने जाते हैं। उनकी इच्छा है कि आप भी वहाँ उपस्थित होकर यज्ञ का दर्शन करें।

धर्मराज ने कहा:—हे दूत ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि पूर्व-पुरुषों की कीर्ति बढ़ानेवाले महाराज दुर्योधन इतने बड़े यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। किन्तु हम लोग वनवास की प्रतिज्ञा में बँधे हुए हैं; इस कारण नगर में नहीं जा सकते।

भीमसेन से न रहा गया। वे बोल उठे:—

हे दूत ! तुम दुर्योधन से कहना कि प्रतिज्ञा किये हुए तेरह वर्ष बीत जाने पर जिस समय महाराज युधिष्ठिर युद्ध-यज्ञ की शस्त्राग्नि में उन्हें डालेंगे उसी समय हम लोग उनसे मिलेंगे।

इसके बाद जगह जगह के राजा और ब्राह्मण लोग यज्ञ के लिए हस्तिनापुर आने लगे। धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोण, कर्ण और यशस्विनी गान्धारी ने बड़ी प्रसन्नता से सबका आदर-सत्कार किया। दुर्योधन ने सबके लिए अच्छे अच्छे घर बनवाये और विदुर ने खाने पीने आदि का प्रबन्ध किया। यथासमय सब काम बड़ी धूमधाम के साथ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

यज्ञ-भूमि से दुर्योधन के निकलने का समय आने पर स्तुति होने लगी, स्तोत्रपाठ होने लगा, चन्दन का चूर्ण और खीलें उन पर फेंकी जाने लगीं। शुभ घड़ी में दुर्योधन ने यज्ञशाला छोड़ी और नगर में आये। वहाँ उन्होंने अपने माता-पिता के पैर छुए और गुरुजनों को प्रणाम करके ऊँचे सिंहासन पर जा बैठे। महावीर कर्ण ने खड़े होकर कहा:—

महाराज ! आज सौभाग्य से बिना किसी विघ्न के यज्ञ समाप्त हो गया और सारे राजा लोगों ने आपका सत्कार भी किया। परन्तु जिस दिन पाण्डवों का नाश करके आप धूमधाम से राजसूय यज्ञ करेंगे उसी दिन मैं आपका यथेष्ट सत्कार करूँगा।

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कर्ण को गले से लगा लिया। फिर वे पाण्डवों को हराने के सम्बन्ध में अपने भाइयों से तरह तरह की बातचीत करने लगे। किसी ने कहा, पाण्डवों को हराना कौन बड़ी बात है; किसी ने कहा, अर्जुन को परास्त करना असाध्य है। तब सबको उत्साहित करके कर्ण ने प्रतिज्ञा की:—

हे कौरव लोग! सुनो। जब तक हम अर्जुन को न मारेंगे तब तक आसुर व्रत धारण करके मद्य-मांस को हाथ न लगावेंगे। व्रत के दिनों में हमसे जो कुछ कोई माँगेगा हम वही देंगे।

कर्ण की अर्जुन-वध-सम्बन्धिनी प्रतिज्ञा सुन कर सबको सन्तोष हुआ। सब लोग प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये। दुर्योधन को विश्वास था कि किसी न किसी दिन पाण्डवों से ज़रूर ही युद्ध होगा। इस कारण उस दिन से वे अपने अधीन राजों को सब तरह से सन्तुष्ट करने और अपने पक्ष में रखने की चेष्टा करने लगे।

दुर्योधन का यज्ञ करना और कर्ण की प्रतिज्ञा सुन कर पाण्डवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे द्वैतवन से काम्यक वन चले गये और वहीं रहने लगे। उस समय देवराज इन्द्र को पाण्डवों पर बड़ी दया आई। अर्जुन से उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी वह उन्हें याद आगई। अतएव कर्ण के व्रत की बात सोच कर इन्द्र ने कर्ण का कभी न टूटनेवाला कवच ले लेने का इरादा किया। उन्होंने कहा, अच्छा हुआ जो कर्ण ने माँगने पर सब कुछ दे डालने का व्रत किया। उनसे कवच छीन लेने का यह अच्छा मौक़ा है। इसलिए कर्ण के पास ब्राह्मण के वेश में भीख माँगने के लिए जाने का सङ्कल्प इन्द्र ने किया।

सूर्यदेव इस बात को जान गये। इस कारण अपने वर-पुत्र को होशियार करने के लिए वे उसके पास जाकर बोले:—

हे पुत्र! जन्म के साथ ही प्राप्त हुआ तुम्हारा कवच छीनने के लिए इन्द्र उद्योग कर रहे हैं। व्रत के कारण इस समय तुम किसी को भी विमुख नहीं लौटाते। किन्तु इसे इन्द्र को दे देना अच्छा नहीं। किसी न किसी तरह विनय करके इससे निस्तार पाने की चेष्टा तुम्हें करनी चाहिए; नहीं तो तुम ज़रूर विपद में पड़ोगे।

कर्ण ने कहा:—जब खुद सूर्य्य भगवान् हमारी भलाई चाहते हैं और हमें कवच न देने के लिए उपदेश देते हैं तब उनकी आज्ञा मानना ही हमारे लिए अच्छा है; इसमें सन्देह नहीं किन्तु हे वरदायक भगवान् भास्कर! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें अपनी व्रतरक्षा से पराङ्मुख न कीजिए। यदि कवच देने से हमारे प्राण तक

चले जायँ तो भी कोई हर्ज नहीं। चणभङ्गुर शरीर देकर चिरस्थायी कीर्त्तिलाभ करना ही हम अच्छा समझते हैं।

सूर्यदेव ने कहा:—पुत्र! इसी अभेद्य कवच और कुण्डल के प्रभाव से संसार में तुम्हें कोई नहीं मार सकता। यदि अर्जुन की सहायता खुद इन्द्र भी करते तो भी वे तुम्हें हरा न सकते। यदि तुम अपना व्रत किसी तरह नहीं तोड़ना चाहते तो एक बात ज़रूर करना। इन्द्र को कवच देकर उसके बदले कभी निष्फल न जानेवाली उनकी शत्रुघातिनी शक्ति माँग लेना।

यह कह कर सूर्यदेव अन्तर्द्धान हो गये। जब तक कर्ण आसुर व्रत धारण किये रहे तब तक उनका यह नियम था कि दोपहर के स्नान के बाद जल से निकल कर वे सूर्य की स्तुति करते थे। फिर जो कुछ उनसे कोई माँगता था उसे वे तुरन्त वही देते थे। सुरराज इन्द्र को यह हाल मालूम हो गया। वे ठीक समय पर ब्राह्मण का वेश धारण कर कर्ण के पास आये। कर्ण ने कुशल-प्रश्न पूछ कर कहा:—

हे ब्रह्मन्! कहिए, आपको कौन चीज़ चाहिए?

इन्द्र ने कहा:—हम सोना, चाँदी, धन-धान्य कोई भी भोग्य वस्तु नहीं चाहते, यदि आप सच्चे व्रत धारण करनेवाले हैं तो हमें आप अपने सहजात कवच और कुण्डल दे दीजिए।

इस बात से कर्ण समझ गये कि ये इन्द्र ही हैं। इससे परीक्षा लेने के लिए उन्होंने पूछा:—

हे ब्राह्मण, हम अपने सहजात कवच और कुण्डल कैसे दे सकते हैं? यदि चाहो तो हमारा सारा राज्य और सारी धन-सम्पदा ले सकते हो।

पर जब उन्होंने देखा कि ब्राह्मण कवच-कुण्डल के सिवा और कुछ नहीं लेना चाहता तब कर्ण को सूर्यदेव का उपदेश याद आगया। इससे उन्होंने हँस कर कहा:—हे देवराज! हम आपको पहचान गये। हम आपको भला क्या वर दे सकते हैं? आप सारे संसार के स्वामी हैं। आपही को हमें वर देना चाहिए। हमारा कवच-कुण्डल लेकर यदि आप हमें इतना निर्बल कर डालना चाहते हैं कि जो चाहे हमें मार डाले, तो इसमें आप ही की हँसी है—आपही को लोग हँसेंगे। इसलिए उसके बदले हमें कोई ऐसा अस्त्र दीजिए जिसका चलाना कभी निष्फल न जाय।

इन्द्र ने कहा—हे कर्ण! मालूम होता है कि हमारे आने के पहले ही सूर्य्य ने

तुमसे हमारी याचना का मतलब बतला दिया है। जो हो, वज्र को छोड़ कर जो अस्त्र तुम माँगोगे हम दे देंगे।

तब कर्ण ने अपने कवच-कुण्डल के बदले इन्द्र से उनकी शत्रुनाशिनी शक्ति माँगी। इन्द्र ने कहाः—

लो, यह शक्ति हम तुम्हें देते हैं। पर एक शर्त पर यह तुम्हें मिलेगी। यह शक्ति अमोघ है। यह जिस पर छोड़ी जाती है उसे मारे बिना नहीं रहती। इसे छोड़ने पर शत्रु का नाश करके यह हमारे ही पास लौट आती है। किन्तु तुम इससे केवल एक ही शत्रु को मार सकोगे। एक बार चलाने के बाद यह फिर हमारे पास आजायगी। एक बात और है। जब तुम्हें अपने प्राण जाने का भय हो तभी इसे चलाना। यदि किसी और समय में इसे चलाओगे तो यह तुम्हीं को मार डालेगी।

कर्ण ने कहाः—हे देवराज! जिस शत्रु की हम सदा चिन्ता किया करते हैं उसी को मारने के लिए हम यह शक्ति चाहते हैं। उसका नाश होने से ही हमारी मनोकामना सिद्ध हो जायगी। प्राणों पर संकट पड़ने के समय के सिवा और किसी समय हमें आपकी इस शक्ति की सहायता की ज़रूरत ही न होगी। इसलिए हम आपकी शर्तों को मंज़ूर करते हैं। हे भगवन्! ये अपने अभिलषित कवच-कुण्डल लीजिए।

यह कह कर महावीर कर्ण ने इन्द्र से उनकी वह चमचमाती हुई अमोघ शक्ति ले ली। फिर उन्होंने एक पैने शस्त्र से अपने चमड़े से उतार कर खून से भीगा हुआ वह कवच और कुण्डल इन्द्र के हाथ में दे दिया। उस समय ज़रा देर के लिए भी न तो उनका मुँह ही फीका पड़ा और न हाथ ही काँपा।

इस भयङ्कर काम के समाप्त होने पर महावीर कर्ण के माथे पर स्वर्ग से फूल बरसने लगे और देवता लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। तभी से इस महाव्रती वीर को सब लोग कर्ण के नाम से पुकारते हैं।

इन्द्र ने कर्ण को ठगा तो सही, पर इससे कर्ण की बड़ी कीर्त्ति हुई। उनका यश पहले से भी सौगुना अधिक चारों तरफ़ फैल गया। कर्ण के इस प्रकार ठगे जाने का वृत्तान्त सुन कर धृतराष्ट्र के पुत्र को दुख और पाण्डवों को कुछ धीरज हुआ। उधर पाण्डवों का हित-साधन करके इन्द्रदेव हँसते हुए देवलोक को लौट गये।

१०—वनवास के बाद अज्ञात वास का उद्योग

इधर दुर्योधन का यज्ञ सिद्ध हो गया; धृतराष्ट्र के पुत्रों की महिमा बढ़ी; कर्ण की वीरता सब पर विदित हो गई; उन्होंने इन्द्र से अमोघ शक्ति पाई। उधर कर्ण की दृढ़ शत्रुता और इन सब बातों पर विचार करके युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ दुखी मन से वे किसी तरह काम्यक वन में रहने लगे।

एक दिन द्रौपदी को उन्होंने महर्षि तृणविन्दु के आश्रम में रख कर पुरोहित धौम्य से कहा कि आप इनकी रक्षा कीजिएगा—इन्हें देखते रहिएगा; किसी बात की तकलीफ़ न होने पावे। यह करके सब लोग भिन्न भिन्न दिशाओं को शिकार खेलने के लिए निकल गये।

इसी समय धृतराष्ट्र के दामाद, सिन्धु देश के राजा जयद्रथ, फिर विवाह करने की इच्छा से अनेक राजों के साथ काम्यक वन से होकर शाल्वदेश को जाते थे।

जिस तरह बिजली काले काले बादलों को प्रकाशमान कर देती है उसी तरह पाण्डवों की प्रिया द्रौपदी उस घने जङ्गल को प्रकाशित करती हुई आश्रम के द्वार पर कदम्ब की एक झुकी हुई डाली के सहारे रात की हवा से काँपती हुई आग की लौ की तरह खड़ी थी। रथ पर सवार राजों ने उसे इसी अवस्था में देखा।

वे सब चौंक कर आपस में कहने लगे:—

यह क्या मानवी है, या अप्सरा है, या दैवी माया है? काँटों से भरे हुए इस जङ्गल में इसके आने का क्या कारण है?

जयद्रथ द्रौपदी की अलौकिक सुन्दरता पर मोहित होकर कोटिकास्य नाम के एक राजपुरुष से बोले:—

हे कोटिक! जल्द जाकर तुम इसका पता तो लगाओ कि यह कौन है?

आश्रम के द्वार पर जाकर कोटिकास्य ने कहा:—

हे सुन्दर नेत्रोंवाली! तुम अकेली इस जङ्गल में क्या करती हो? अपने पिता और पति का नाम बता कर हमारा कौतूहल निवृत्त करो। हम शिविराज के पुत्र हैं; हमारा नाम कोटिकास्य है। जो सोने के रथ पर सवार हैं वे त्रिगर्त्तराज के पुत्र हैं। और यह सुन्दर युवा जो तालाब के पास खड़ा तुमको एकटक देख रहा है महाबली सिन्धु-सौवीर नरेश जयद्रथ है। उनका नाम तुमने ज़रूर सुना होगा। हे सुकेशी! अब तुम अपना परिचय देकर हम लोगों को सन्तुष्ट करो।



द्रौपदी और जयद्रथ।

कोटिकास्य को देखते ही द्रौपदी ने कदम्ब की डाल छोड़ दी और दुपट्टे को सँभाल कर तथा उसको कनखियों से देख कर कहा:—

हे राजपुत्र ! यहाँ अकेली रह कर तुमसे बातचीत करना मेरे समान स्त्रियों के लिए शिष्टाचार के विरुद्ध है। पर इस समय तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने के लिए और कोई मौजूद नहीं है। तुम अपने सत्कुल का परिचय भी देते हो। इसलिए मैं भी स्वयं अपना परिचय देती हूँ। हे महात्मन् ! मैं द्रुपदराज की कन्या और पञ्च पाण्डवों की धर्मपत्नी द्रौपदी हूँ। मेरे पति इस समय शिकार खेलने गये हैं, पर शीघ्र ही आते होंगे। तब तक आप लोग रथ से उतर कर यहाँ विश्राम करें। महात्मा पाण्डव लोग लौट कर बड़ी प्रसन्नता से आपका उचित सत्कार करेंगे।

यह कह कर द्रौपदी ने, अतिथि-सत्कार की तैयारी करने के इरादे से, पर्णकुटीर में प्रवेश किया। कोटिकास्य ने जाकर जयद्रथ से सब हाल कहा। इस बीच में पापी जयद्रथ द्रौपदी पर अत्यन्त आसक्त हो गया था। उसे उसने अपनी स्त्री बनाने का पक्का इरादा कर लिया। इसलिए वह खुद आश्रम के भीतर जाकर कहने लगा:—

हे सुन्दरी ! तुम अच्छी तो हो ? तुम और तुम्हारे पति जिनकी कुशल चाहते हैं वे लोग भी सब अच्छे तो हैं ?

द्रौपदी ने भी शिष्टाचार के अनुसार उत्तर दिया:—

हे राजन् ! तुम्हारे राज्य का, ख़ज़ाने का और सेना का मङ्गल तो है न ? हमारे पति और जिन लोगों की बात तुमने पूछी वे सब कुशल से हैं। यह जल और आसन तथा प्रातःकाल के भोजन के लिए यह मृग, फल, मूल आदि लीजिए। पाण्डव लोगों के शिकार खेल कर लौटने पर उचित भोजन का प्रबन्ध कर सकूँगी।

निर्लज्ज जयद्रथ ने कहा:—

हे सुन्दर मुखवाली ! प्रातःकालीन भोजन की हमारे पास कमी नहीं है। उसके देने की तुम्हारी इच्छा ही से हम तृप्त हो गये। हे सुन्दरि ! हम भोजन करना नहीं चाहते। बिना तुम्हें पाये इस समय हमें शान्ति नहीं मिल सकती। तुम राज्यरहित दरिद्र पाण्डवों के पास रहने के योग्य नहीं। इससे तो यह अच्छा है कि तुम हमारी स्त्री बन कर चलो और सारे सिन्धु-सौवीर राज्य का सुख से भोग करो।

जिसका उसे कभी स्वप्न में भी ख़याल न था ऐसी हृदय को कँपा देनेवाली बात सिन्धुराज के मुँह से सुन कर द्रुपद की पुत्री पाञ्चाली ने भौंहें टेढ़ी करके जयद्रथ को

बे तरह धिक्कारा और यह कह कर कि—रे दुरात्मन् ! क्या तुझे शर्म नहीं आती ! दूर हट जाने को तैयार हुई।

परन्तु जयद्रथ इससे भी शान्त न हुआ। यह देख कर डर और क्रोध से द्रौपदी काँप उठी। पर पाण्डवों के आने तक समय बिताने के लिए वह उससे तरह तरह की बातें करने लगी।

द्रौपदी बोली:—हे राजन् ! तुम्हारे साथ ऐसा एक भी राजपुरुष नहीं जो किसी को गढ़े में गिरते देख हाथ पकड़ कर उसे निकाल लेने की चेष्टा न करे। और तुम अच्छे वंश के होने पर भी विपद में पड़े हुए पाण्डवों का इस तरह अपमान करने में सङ्कोच नहीं करते ? अरे मूढ़ ! तुमने मूर्खों की तरह मस्त हाथी पर केवल दण्डे से आक्रमण करने का इरादा किया है। जब तुम क्रुद्ध भीम और अर्जुन को देखोगे तब तुम्हें मालूम होगा कि सुख से सोये हुए सिंह की देह पर अथवा तीक्ष्ण विषवाले काले साँप की पूँछ पर बिना समझे बूझे तुमने पैर रख दिया है।

जयद्रथ बोले:—हे द्रौपदी ! तुम बातें बना कर या डरा कर हमें रोक नहीं सकतीं। हमें कम शूरवीर न समझो; पाण्डवों से हम ज़रा भी नहीं डरते। अब यदि तुम हमारे रथ पर या हाथी पर चुपचाप न चढ़ोगी तो हम तुम्हें ज़बरदस्ती पकड़ ले जायँगे।

द्रौपदी ने कहा:—क्या तुमने मुझे अबला समझ वश में करने का इरादा किया है ? यह तुम्हारी भूल है। मुझे अबला मत समझो। मेरी रक्षा करनेवाले महाबली हैं। तुम मुझे धमकी देकर नहीं डरा सकते। रे नीच ! जिस समय हाथ में गदा लिये हुए बड़े वेग से भीम आवेंगे उस समय सदा के लिए तुम्हें दुःखसागर में गोता लगाना पड़ेगा। जब महावीर अर्जुन के गाण्डीव से निकले हुए कठिन बाण तुम्हारी छाती छेदेंगे तब तुम्हारी क्या दशा होगी—क्या इसका भी विचार किया है ?

द्रौपदी जब ये बातें कर रही थी तब जयद्रथ धीरे धीरे उसकी तरफ़ बढ़ रहा था। द्रौपदी ने बार बार उसे अपना शरीर छूने से रोका और पुरोहित धौम्य को कातर स्वर से बुलाने लगी। पर दुरात्मा जयद्रथ ने उसकी बात पर ध्यान न दिया और उस रोती हुई स्त्री की चादर पकड़ ली।

तब द्रौपदी ने जल्दी से अपना वस्त्र खींच लिया। इससे जयद्रथ, वायु से टूटे हुए पेड़ की तरह, ज़मीन पर गिर पड़ा। परन्तु वह तुरन्त उठ बैठा और द्रौपदी को बड़े ज़ोर से खींच कर रथ पर चढ़ा लिया।

इस समय महात्मा धौम्य आकर कहने लगे:—

रे पापी ! क्षत्रियों के धर्म के अनुसार युद्ध में पाण्डवों को तू पहले हरा ले तब द्रौपदी को ले जाना। नहीं तो महात्मा पाण्डवों के आने पर तुझे इस पाप का फल शीघ्र ही मिल जायगा।

यह देख कर कि हमारी बात का जयद्रथ पर कुछ भी असर न हुआ धौम्य इसी तरह कहते हुए पैदल सेना के साथ जयद्रथ के रथ के पीछे पीछे चले।

इधर पाण्डव लोग अनेक वनों में घूमते घामते और मृग आदि इकट्ठा करते हुए सब एक ही साथ आश्रम की ओर लौटे। युधिष्ठिर कहने लगे :—

आज और शिकार खेलने की ज़रूरत नहीं। तरह तरह के अशकुन हो रहे हैं। इससे हमारा मन चञ्चल हो रहा है। कौरवों ने आश्रम में आकर कोई उपद्रव तो नहीं मचाया? चलो, जल्दी चल कर देखें।

सब लोग इस तरह मन में सन्देह करते हुए जल्दी जल्दी आश्रम की ओर दौड़े। काम्यक वन में घुसते ही उन्होंने देखा कि द्रौपदी की दासी धूल में लोटती हुई रो रही है।

यह देख कर सारथि इन्द्रसेन रथ से तुरन्त कूद पड़ा और जल्दी जल्दी उसके पास जाकर कातर कण्ठ से पूछा :—

क्यों तुम ज़मीन पर पड़ी रो रही हो? क्यों तुम्हारा मुँह फीका पड़ गया है और सूख गया है? किसी दुष्ट ने राजपुत्री द्रौपदी का अपमान तो नहीं किया?

दासी ने कहा :— हे सारथि ! इन्द्र के समान तेजस्वी पाण्डवों की परवा न करके पापी जयद्रथ द्रौपदी को हर ले गया। वे लोग इसी रास्ते से गये हैं। अभी राजपुत्री बहुत दूर न गई होंगी; क्योंकि इस टूटी हुई डाल के पत्ते अभी तक नहीं मुरझाये। इसलिए अब देर न करो। शीघ्र ही इस मार्ग से उनका पीछा करो।

इन्द्रसेन ने कहा :—डरने की कोई बात नहीं। दुर्जय पाण्डवों की प्रियतमा द्रौपदी अनाथ नहीं हैं। आज ही पाण्डवों के तेज़ बाण उस अभागे का हृदय फाड़ कर भूमि में घुस जायँगे; इसमें सन्देह नहीं।

तब युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े क्रोध में आकर धनुष टङ्कार करते हुए बताये हुए रास्ते से दौड़े। वे कुछ ही दूर गये होंगे कि जयद्रथ की सेना के घोड़ों की टाप से उड़ी हुई धूल का, आकाश से बातें करनेवाला गुबार उन्हें देख पड़ा और पैदल सेना के बीच में धौम्य की पुकार सुनाई देने लगी। उस समय पाण्डवों का क्रोध दूना हो गया। सेना की कुछ भी परवा न करके वे सीधे जयद्रथ के रथ की तरफ़ दौड़े।

जयद्रथ की रक्षा करने के लिए कोटिकास्य अपना रथ भीमसेन के सामने ले आये। भीमसेन ने गदा की एक ही चोट से उसे चूर कर दिया और प्रास नाम के अस्त्र द्वारा उस राजपुत्र को भी मार डाला। महाबली अर्जुन ने अकेले ही पाँच सौ पहाड़ी योद्धाओं का नाश किया। उधर त्रिगर्त्तराज ने युधिष्ठिर पर आक्रमण करके उनके चारों घोड़ों को मार गिराया। किन्तु धर्म्मराज इससे ज़रा भी शङ्कित न हुए। पहले तो उन्होंने एक अर्धचन्द्र बाण से त्रिगर्त्तराज को ज़मीन पर गिरा दिया; फिर वे घोड़ों के अपने रथ को छोड़ सहदेव के रथ पर जा बैठे। नकुल रथ से उतर पड़े और तलवार से आश्चर्य-जनक काम करते हुए सिपाहियों के मस्तक बीज की तरह ज़मीन पर छितराने लगे। यह देख कर राजा सुरथ ने नकुल को मारने के लिए एक बड़ा हाथी दौड़ाया। परन्तु नकुल ने तलवार का एक ऐसा हाथ मारा कि उसके दोनों दाँत और सूँड़ कट गई और वह मर कर धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा।

क्षत्रियों के कुल के कलङ्क जयद्रथ ने अपने पक्ष के हज़ारों वीरों को मरा हुआ और पाण्डवों को बेहद क्रुद्ध देख सेना से भरे हुए उस स्थान में द्रौपदी को रथ से उतार दिया और रथ लेकर लड़ाई के मैदान से भागा। यह देख कर भीमसेन द्रौपदी को युधिष्ठिर के पास ले गये और बोले :—

महाराज! इस समय शत्रुओं की प्रायः सारी सेना मारी जा चुकी है। जो लोग बचे हैं वे भी भाग रहे हैं। इसलिए आप प्रियतमा द्रौपदी को आश्रम में ले जाकर ढाढ़स दीजिए। हम देखें कि नीच जयद्रथ किधर गया। यदि वह पाताल में भी घुस गया होगा तो भी आज वह नहीं बच सकता।

युधिष्ठिर ने कहा :—हे वीर! इसमें सन्देह नहीं कि जयद्रथ ने बड़ा बुरा काम किया है; किन्तु बहन दुःशला और माता गान्धारी का ख़याल करके उसे मारना मत।

युधिष्ठिर की बात सुन कर क्रोध से काँपती हुई द्रौपदी व्याकुल होकर भीम और अर्जुन से बोली :—

हे वीर! यदि हमें प्रसन्न रखने की कुछ भी इच्छा हो तो उस पापी को जीता न छोड़ना। स्त्री और राज्य का हरण करनेवाला यदि शरण आवे तो भी उसे ज़रूर मारना चाहिए।

द्रौपदी की बात सुन कर भीम और अर्जुन जयद्रथ को ढूँढ़ने के लिए बड़ी तेज़ी से दौड़े। इधर द्रौपदी को लेकर धौम्य के साथ युधिष्ठिर आश्रम में लौट आये। द्रौपदी को कुशलपूर्वक लौट आई देख वहाँ के ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। उनकी चिन्ता जाती

रहीं। नकुल और सहदेव के साथ द्रौपदी कुटीर में गई। ब्राह्मणों के बीच में बैठ कर युधिष्ठिर सब हाल सिलसिलेवार कहने लगे।

जयद्रथ कुछ ही दूर गया होगा कि हवा की तरह दौड़ते हुए भीम और अर्जुन उसके पास पहुँच गये। दूर ही से अर्जुन ने उसके घोड़ों को मार गिराया। तब रथ छोड़ कर जयद्रथ पैदल ही भागने लगा। यह देख कर भीमसेन भी रथ से कूद पड़े और—ठहर! ठहर!—कह कर उसके पीछे दौड़े। पर दयालु अर्जुन ने यह कह कर कि—उसे मारना नहीं—भीम को रोका।

भीम ने कहा:—अरे राजपुत्र! क्या तुमने इसी साहस पर द्रौपदी हरने का इरादा किया था? नौकरों को वैरी के हाथ में देकर क्यों तुम भागते हो?

भीम के रोकने से जयद्रथ न रुका। वह भागता ही गया। पर भीमसेन ने इस वेग से उसका पीछा किया कि शीघ्र ही उसके पास पहुँच गये और उसके बाल पकड़ लिये। फिर उसको उठा कर ज़मीन पर पटक दिया और लगे धड़ाधड़ मारने। जयद्रथ ने ज़मीन से जो उठने की चेष्टा की तो भीमसेन ने उसके माथे पर ऐसी लात मारी और छाती पर इस तरह दोनों घुटने रख दिये कि वह अत्यन्त पीड़ित होकर बेहोश होगया।

तब अर्जुन ने फिर कहा:—

भाई! दुःशला के विषय में धर्मराज ने जो बात कही है उसे न भूल जाना।

भीम ने कहा:—इस पापी ने द्रौपदी को दुःख दिया है। हम तो इसे मारही डालते। पर तुम्हारे कहने से छोड़ देते हैं।

इसके बाद भीमसेन ने धारदार अर्द्धचन्द्र बाण से जयद्रथ का सिर मूँड़ दिया; सिर्फ़ पाँच चोटियाँ रहने दीं। जब उसे होश आया तब उसका धिक्कार करके भीम बोले:—

रे मूढ़! यदि तू जीना चाहता है तो तुझे सबके सामने हमारा दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।

लाचार जयद्रथ को भीमसेन की बात माननी पड़ी। तब ज़मीन पर पड़े हुए सिन्धुराज को उन्होंने खूब जकड़ कर बाँधा और रथ पर चढ़ा लिया। फिर भीम और अर्जुन उसे आश्रम में धर्मराज के पास ले गये। युधिष्ठिर ने हँस कर भीमसेन से कहा:—

हे भीम! तुम इसे यथेष्ट दंड दे चुके; अब छोड़ दो।

भीम ने कहा:—हे महाराज! यह हमारा दास है। इसलिए इसके सम्बन्ध में जो द्रौपदी कहेगी वही करेंगे।

युधिष्ठिर ने फिर प्यार से कहा:—

हे भीम ! यदि हमारी बात मानना अपना कर्त्तव्य समझते हो तो इसे छोड़ दो।

इस विषय में धर्मराज को उत्कण्ठित और भीमसेन को भी अटल देख कर द्रौपदी ने कहा:—

जब इस दुराचारी ने तुम्हारा दासत्व स्वीकार कर लिया है और पाँच चोटियाँ छोड़ कर इसका सिर मूँड़ दिया गया है तब और दंड देने की ज़रूरत नहीं।

द्रौपदी के कहने से जयद्रथ के बंद खोल दिये गये। वह उठ बैठा और बेतरह विह्वल होकर सबके पैरों पर गिर पड़ा—सबके पैर उसने छुए।

युधिष्ठिर ने कहा:—तुम दासत्व से छूट गये। ऐसा नीच काम अब कभी न करना। तुम अपने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैन्य लेकर अब अपने घर जाव। ईश्वर करे तुम्हारी धर्म्मबुद्धि बढ़े।

इसके बाद सिन्धुराज ने दुःखी मन से लज्जा के कारण सिर झुका कर वहाँ से प्रस्थान किया। पर घर न जाकर वे गङ्गाद्वार गये और वहाँ तपस्या करने लगे। जब कठोर तपस्या से महादेव जी प्रसन्न हुए तब प्रकट हो कर उनसे बोले:—

पुत्र ! वर माँगो।

जयद्रथ ने कहा:—भगवन् ! हम पाँचों पाण्डवों को युद्ध में हराना चाहते हैं।

शिवजी बोले:—तपस्या करके अर्जुन ने हमसे पहले ही पाशुपत अस्त्र प्राप्त कर लिया है। इससे उन्हें कोई नहीं जीत सकता। उनके सिवा अन्य पाण्डवों को एक दिन लड़ाई में तुम हरा सकोगे।

यह कह कर वे अन्तर्द्धान हो गये। जयद्रथ भी अपने घर चले गये।

सताये हुए पाण्डव लोग काम्यक वन से फिर द्वैत वन चले आये और वहीं रहने लगे।

धीरे धीरे वनवास के बारह वर्ष बीत गये। सत्यप्रतिज्ञ पाण्डव लोग तेरहवें वर्ष के अज्ञात वास की तैयारी करने लगे। जब समय आ गया तब धर्म्मराज ने अपने साथ रहनेवाले ब्राह्मणों से आज्ञा माँगी। वे हाथ जोड़ कर कहने लगे:—

हे मुनिगण ! हमने सत्य की रक्षा के लिए बारह वर्ष बड़े कष्ट से वनवास किया। अब अज्ञात वास का समय आ गया है। उसके लिए बड़े सोच विचार से काम करना होगा। क्योंकि, यदि कौरव लोग हमारा पता पा जायँगे तो, शर्त के अनुसार, हमें फिर वनवास करना पड़ेगा। कौरव लोग हमसे बड़ी शत्रुता रखते हैं। उनकी शत्रुता

ने जड़ पकड़ ली है। हमारा पता लगाने की वे जी जान से कोशिश करेंगे। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। हाय! क्या हम कभी अपना राज्य पाकर आप लोगों का उपयुक्त सत्कार कर सकेंगे?

यह कह कर आँखों में आँसू भरे हुए युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से विदा माँगी। ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार से युधिष्ठिर को समझाया और ढाढ़स दिया। और, फिर, आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दी। पुरोहित धौम्य के साथ पाण्डव लोग वहाँ से एक सुनसान जगह पहुँचे और सलाह करने के लिए बैठ गये।

युधिष्ठिर ने कहा:—भाई! एक ऐसा गूढ़ और रमणीक स्थान ढूँढ़ना चाहिए जहाँ हम लोग स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकें और हमारे शत्रु हमारा पता न पावें।

अर्जुन ने कहा:—महाराज! कुरु-मण्डल के चारों तरफ़ पाञ्चाल, चेदि, मत्स्य आदि कितने ही राज्य ऐसे हैं जहाँ के राजा हमारे मित्र हैं—हमसे बन्धुभाव रखते हैं। उनमें से किसी भी एक राज्य में हम गुप्त-भाव से रह सकेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे अर्जुन! इनमें से मत्स्यराज ही हम पसन्द करते हैं। हमारे पिता राजा विराट के मित्र थे। विराट-नरेश हम लोगों की सदा ही भलाई चाहते हैं। वे वृद्ध, धर्म्मात्मा और दानी हैं। उनके यहाँ यदि हम लोगों में से हर एक, एक एक उपयुक्त काम पर नियुक्त हो जायँ तो निश्चय ही एक वर्ष वहाँ बे-खटके काट सकेंगे।

अर्जुन ने कहा:—हाय! आप सदा सुख में पले हैं और राज्य किया है। अब दूसरे के अधीन आप कैसे काम कर सकेंगे?

युधिष्ठिर ने कहा:—भाई! घबराओ नहीं। हमने जिस काम के करने का निश्चय किया है उसे सुनो। हम अपना नाम कङ्क रक्खेंगे और जुआरी ब्राह्मण के वेश में चौपड़, हाथी-दाँत की गोटें, सुनहले पाँसे हाथ में लेकर विराटराज के सभासद बनने की प्रार्थना करेंगे। यदि वे हमारा विशेष हाल पूछेंगे तो कहेंगे कि हम पहले राजा युधिष्ठिर के प्रिय मित्र थे। इस काम से हम बिना किसी क्लेश के राजा का मन बहला सकेंगे। भीम! अब तुम बताओ, कौन काम करके समय बिताओगे?

भीमसेन ने कहा:—हे धर्म्मराज! हमारा इरादा है कि हम अपना नाम वल्लभ रक्खें और अपने को रसोइया बतावें। रसोई बनाने में हम विशेष चतुर हैं। विराट-राज के यहाँ इस समय जितने नौकर हैं हम निश्चय ही उन सबसे अच्छा भोजन बना कर राजा को प्रसन्न कर सकेंगे। इसके सिवा अखाड़े में जब हम अपने बाहुबल का

परिचय देंगे तब सब लोग हमारा सम्मान करने लगेंगे—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हाल पूछने पर हम भी कहेंगे कि हम राजा युधिष्ठिर के रसोइया और पहलवान थे। हे राजन्! इस तरह हम बिना किसी विघ्न-बाधा के समय बिता सकेंगे।

तब युधिष्ठिर अर्जुन की तरफ़ इशारा करके बोले :—

जो वीर आग की तरह तेजस्वी है, जिसकी बाँहों पर धनुष की डोरी के चिह्न हैं, वह अर्जुन कौन सा गुप्त वेश धारण करेगा?

उत्तर में अर्जुन ने कहा :—

हे धर्म्मराज! आप ठीक कहते हैं कि धनुष की प्रत्यञ्चा के चिह्नवाली अपनी बाँहें और युद्ध के गर्व से भरा हुआ अपना हट्टा कट्टा शरीर छिपाना हमारे लिए सहज नहीं। इससे हमने इरादा किया है कि माथे में वेणी धारण करके, कानों में कुण्डल पहन कर, और बाजूबंदों से अपनी बाँहों के चिह्न छिपा कर हम अपना नाम बृहन्नला रक्खें और यह कहें कि हम नर्तक हैं—कथिक हैं। जब हम इन्द्रलोक में थे तब हमने गाना-बजाना और नाचना अच्छी तरह सीख लिया था। इसलिए यदि हम स्त्रियों को नाचना-गाना आदि सिखायेंगे तो वे निश्चय ही हमारा विशेष आदर करेंगी। पूछने पर हम भी कहेंगे कि युधिष्ठिर के यहाँ हम द्रौपदी की सेवा में नियुक्त थे। हे धर्म्मराज! इस प्रकार राख में छिपी हुई आग की तरह हम विराट के घर में सुख से विहार कर सकेंगे।

तब युधिष्ठिर ने कहा :—

हे नकुल! तुम्हारी उम्र सुख भोगने योग्य है और तुम सुकुमार भी हो। तुम कौन सा काम कर सकोगे?

नकुल ने कहा:—महाराज! हम घोड़ों को सदा से प्यार करते हैं। उनको सिखाने और उनकी दवा-दारू करने का हमें अच्छा अभ्यास है। इसलिए हम ग्रन्थिक नाम रख कर घोड़ों के दरोग़ा बनने की प्रार्थना करेंगे। यह काम हमें पसन्द भी है; और इसके द्वारा हम राजा को सन्तुष्ट भी कर सकेंगे। पूछने पर हम भी कहेंगे कि हम राजा युधिष्ठिर के अस्तवल के इन्स्पेक्टर थे।

पूछने पर सहदेव ने कहा :—

हे राजन्! जब आप हमें गायों की देख भाल करने के लिए भेजते थे तब हमने गायों का दुहना, पालना और उनके शुभाशुभ लक्षण पहचानना सीख लिया था। इससे हमारे लिए चिन्ता न कीजिए। हम अपना नाम तन्त्रिपाल रक्खेंगे और गायों की सेवा करके निश्चय ही राजा को सन्तुष्ट कर सकेंगे।

अन्त में दुःखविह्वल होकर धर्म्मराज कहने लगे:—

भाई ! हम लोग द्रौपदी का जी से पालन, पोषण और सम्मान करते हैं। वह हमें प्राणों से भी अधिक प्यारी है। इसलिए उसे दूसरे की सेवा करते हुए हम कैसे देख सकेंगे ? जन्म भर औरों ने उसकी सेवा की है। सिंगार करने के सिवा कोई काम उसने अपने हाथ से नहीं किया। इसलिए प्रियतमा द्रौपदी कौन काम करेगी ?

द्रौपदी ने कहा:—महाराज ! कंघी-चोटी करने, महावर लगाने, तथा और अनेक प्रकार के सिंगार करने के लिए अमीरों के यहाँ स्त्रियाँ नौकर रहती हैं। इसलिए मैं यह कहूँगी कि मैं द्रौपदी की दासी थी; मेरा नाम सैरिन्ध्री है; कंघी-चोटी करने में मैं बड़ी चतुर हूँ। यह कह कर मैं रानी सुदेष्णा की नौकरी कर लूँगी। यह काम अनाथा और साध्वी स्त्रियाँ ही करती हैं। इसलिए ऐसा करना मेरे लिए अनुचित न होगा। यह निश्चय है कि रानी मेरा आदर करेंगी। मेरे लिए आप दुःख न कीजिए।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे द्रौपदी ! तुमने उत्तम ही काम करने का निश्चय किया है। किन्तु राजभवन विपदों का घर होता है। इसलिए सावधान रहना; कोई तुम्हारा अपमान न कर सके।

फिर वे सबसे कहने लगे:—

यह तो स्थिर हो गया कि हम लोग किस तरह गुप्त रहेंगे और कौन कौन काम करेंगे; अब पुरोहित धौम्य, हमारे नौकर चाकर, और द्रौपदी की दासियाँ द्रुपदराज के यहाँ जाकर हम लोगों के अज्ञात वास समाप्त होने की प्रतीक्षा करें। इन्द्रसेन आदि सारथि लोग ख़ाली रथों को लेकर शीघ्र ही द्वारका चले जायँ और वहाँ उनकी रक्षा करें। यदि कोई पूछे तो सब लोग कह दें कि पाण्डव हमें द्वैतवन में छोड़ कर कहीं चले गये; वे कहाँ हैं; हम नहीं जानते।

विदा होते समय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ पुरोहित धौम्य ने सबको स्नेह-पूर्ण वचनों से इस प्रकार उपदेश दिया:—

हे पाण्डव ! तुम लोग लोक-व्यवहार की सारी बातें तो जानते हो। किन्तु यह नहीं जानते कि राजा के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। चाहे तुम्हारा सम्मान हो चाहे अपमान, एक वर्ष तक तुम्हें राजभवन में रहना ही पड़ेगा। इसलिए जैसे बने राजा को सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करना तुम्हारे लिए बहुत ज़रूरी है। बिना पूछे राजा को कोई उपदेश न देना। राजभवन की कोई गुप्त बात प्रकट करने की चेष्टा न करना। यदि कोई छिपी हुई बात मालूम हो जाय तो भी न कहना। महाराज तुम्हारा चाहे

जितना प्यार करें, उनकी आज्ञा बिना कभी उनकी सवारी, पलँग या चौकी पर न बैठना। अपनी हैसियत के बाहर कोई काम न करना। राज-सभा में उचित स्थान पर चुपचाप बैठना। हाथ, पैर आदि न हिलाना और न ज़ोर से बोलना। यदि राजा तुम पर प्रसन्नता प्रकट करें तो ज़रूर कृतज्ञ होना। यदि वे अप्रसन्न हों तो भी उनसे किसी तरह द्वेष न करना और न कुछ कहना। इस तरह के व्यवहार से वे फिर प्रसन्न हो जायँगे। राजों के अन्तःपुर में बड़े बड़े खोटे काम होते हैं; इसलिए छिपे छिपे द्रौपदी पर सदा निगाह रखना।

युधिष्ठिर ने कहाः—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपके सिवा ऐसा हितकर और समयोपयोगी उपदेश और कोई न दे सकता था। अब ऐसा अनुष्ठान कीजिए जिसमें हमारा मङ्गल हो।

तब जलती हुई अग्नि में होम करके द्रौपदी-समेत पाण्डव सबकी प्रदक्षिणा करके चल दिये। अग्निहोत्र लेकर धौम्य पाञ्चाल-नगर गये और वहाँ उसकी रक्षा करने लगे। इन्द्रसेन आदि नौकरों ने घोड़े, रथ आदि लेकर यादवों का आश्रय लिया।

पाण्डवों ने सिर्फ़ अस्त्र-शस्त्र साथ लेकर पैदल ही मत्स्यराज्य की ओर प्रस्थान किया। कालिन्दी नदी के दक्षिणी किनारे किनारे वे चलने लगे। कभी वे पहाड़ की खोहों में ठहरते और कभी घने जंगलों में। पाञ्चाल देश उनके उत्तर तरफ़ रह गया। इस तरह धीरे धीरे वे मत्स्य देश में जा पहुँचे। रास्ते की दशा और चारों ओर खेत देख कर द्रौपदी कहने लगीः—

हे धर्म्मराज! मालूम होता है कि विराट नगरी अभी बहुत दूर है। मैं भी बहुत थक गई हूँ। इसलिए आज रात को यहीं ठहरिए।

युधिष्ठिर ने कहाः—हे अर्जुन! तुम द्रौपदी को सँभाल कर ले चलो। जब जंगलों को पार कर आये हैं तब एकदम राजधानी पहुँच कर ही ठहरना अच्छा है।

तब हाथी के समान बलवान् अर्जुन ने द्रौपदी को उठा लिया और जल्दी जल्दी चल कर विराट राजधानी के पास उन्हें उतार दिया। इसके बाद सब लोग सलाह करने लगे कि नगर में किस तरह प्रवेश करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहाः—भाई! हम लोगों ने गुप्त वेश धारण करने का इरादा किया है। इससे हथियारों को साथ ले चलना ठीक नहीं। विशेष करके अर्जुन के गाण्डीव को तो सभी पहचानते हैं। इसलिए एक वर्ष के लिए सब हथियारों को किसी ऐसी जगह रख देना चाहिए जहाँ से उठ जाने का डर न हो।

अर्जुन ने कहाः—महाराज! इस पहाड़ की चोटी पर श्मशान है। उसके पास एक

शमी वृक्ष दिखाई देता है। उस पर चढ़ना कठिन काम है। यदि कपड़े में अच्छी तरह लपेट कर हम लोग अपने हथियार उसकी डाल पर रख दें तो हमें कोई न देख पायेगा और भविष्यत् में भी इधर से किसी के आने जाने की संभावना नहीं। अर्जुन की बात सुन कर सब लोग वहाँ हथियार रखने को तैयार हुए। उन्होंने अपने अपने धनुष की डोरी खोल दी और उसके साथ तरकश, तलवार और दूसरे हथियार बाँध कर उन पर कपड़ा लपेट दिया। तब नकुल उस शमी वृक्ष पर चढ़ गये और एक अच्छी मोटी मज़बूत और पत्तों से खूब ढकी हुई डाल चुनी। फिर कपड़े लिपटे हुए हथियार डोरी से उसमें बाँध दिये। यह करके आस पास के किसानों से उन्होंने कह दिया कि इस पेड़ में मुर्दा बँधा है। इससे उसके पास जाने का किसी को भी साहस न हुआ।

इसके बाद द्रौपदी सहित पाँचों भाइयों ने नगर में प्रवेश किया। वहाँ हर एक ने अपने पसन्द किये हुए गुप्त वेश के उपयोगी कपड़े और सामान इकट्ठे किये और नौकरी माँगने के लिए राज-दरबार में अलग अलग गये।

११—अज्ञात वास

सबसे पहले ब्राह्मण के वेश में युधिष्ठिर विराटभवन में पहुँचे। चौपड़ में लिपटी हुई गोटें और सुनहले पाँसे उनके बगल में दबे थे। राख में छिपी हुई आग की तरह तेजस्वी युधिष्ठिर की ओर विराट की निगाह शीघ्र ही गई। वे विस्मित होकर सभासदों से पूछने लगे:—

हे सभासद! राजों की तरह शोभायमान ये ब्राह्मण कौन हैं? इनके साथ नौकर, चाकर और सवारी आदि कुछ भी नहीं है। ये राजों की तरह बेखटके हमारे पास चले आ रहे हैं।

विराटराज ये बातें कर ही रहे थे कि युधिष्ठिर उनके पास पहुँच कर बोले:—

महाराज! हम ब्राह्मण हैं। दुर्भाग्य से हमारा सब कुछ जाता रहा है। हम महा-निर्धन हो गये हैं। इससे नौकरी के लिए आपके पास आये हैं। यदि आज्ञा हो तो यहीं रहें और आपकी जो इच्छा हो उसके अनुसार काम करें।

विराटराज ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा:—

हे तात! तुमको नमस्कार है। तुम किस राज्य से आये हो, तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है, और कौनसा हुनर तुम जानते हो।

युधिष्ठिर ने कहा:—महाराज ! हम व्याघ्रपदी गोत्र के ब्राह्मण हैं। हमारा नाम कङ्क है। हम पहले राजा युधिष्ठिर के प्रिय मित्र थे। जुआ खेलने में हम बड़े निपुण हैं।

विराट ने कहा:—जुआ खेलने में निपुण मनुष्य को हम बहुत चाहते हैं। इसलिए आज से तुम हमारे भी मित्र हुए। तुम नीच काम करने के पात्र नहीं। इसलिए तुम हमारे साथ हमारी ही तरह राज्य करो।

युधिष्ठिर ने कहा:—हमारी आपसे केवल यही एक प्रार्थना है कि हमें किसी नीच और कपटी आदमी के साथ न खेलना पड़े।

विराट ने यह बात मान ली। उन्होंने कहा:—

तुम्हारे साथ जो कोई अन्याय करेगा उसे हम ज़रूर दण्ड देंगे। पुरवासियों को सुना कर हम कहते हैं कि आज से इस राज्य में हमारी ही तरह तुम्हारी भी प्रभुता होगी।

इस तरह आदर के साथ नौकरी पा कर युधिष्ठिर बड़े सुख से समय बिताने लगे।

इसके बाद महाबलवान् भीमसेन काले कपड़े पहन और काली छुरी तथा भोजन बनाने के उपयोगी सामान लेकर आये। उन्हें आते देख कर मत्स्यराज कहने लगे:—

यह ऊँचे कन्धोंवाला और रूपवान् युवा पुरुष कौन है ? इसे तो हमने पहले कभी नहीं देखा। कोई जल्दी से जाकर पूछ आवे कि यह क्या चाहता है।

यह सुन कर सभासद् लोग शीघ्रही भीमसेन के पास गये और राजा की आज्ञा के अनुसार सब बातें उनसे पूछीं। भीमसेन का जैसा वेश था उसके अनुसार दीन भाव से वे राजा के सामने आकर बोले:—

हम उत्तम रसोइया हैं। हमारा नाम वल्लभ है। कृपा करके आप हमें अपना रसोईदार बना लीजिए।

विराट ने कहा:—हे सौम्य ! तुम्हें देखने से मालूम होता है कि तुम कोई मामूली रसोइये नहीं हो। तुम्हारा तेज और बल कह रहा है कि तुम राजा बनने के योग्य हो।

भीम ने कहा:—हे विराटेश्वर ! पहले हम राजा युधिष्ठिर के यहाँ नौकर थे। हमारे बनाये हुए भोजनों से वे बड़े प्रसन्न होते थे। इसके सिवा कुश्ती लड़ने में भी हम बड़े चतुर हैं। इसलिए हमें विश्वास है कि हम आपको प्रसन्न कर सकेंगे।

विराट ने कहा:—वल्लभ ! यद्यपि हम तुम्हें इस काम के योग्य नहीं समझते तो भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करते हैं। तुमको हम अपना प्रधान रसोइया बनाते हैं।

इस तरह राजा के प्यारे बन कर भीम भी मनमाने काम पर नियुक्त हो गये। किसी ने उन पर ज़रा भी सन्देह नहीं किया।

इसके बाद लम्बे और कोमल बालों की चोटी बाँधे और एक मैला कपड़ा पहने हुए काले नेत्रोंवाली द्रौपदी, सैरिन्ध्री की तरह, दीन भाव से राजभवन की ओर चली। उसकी अलौकिक सुन्दरता को देख कर नगर-निवासी स्त्री-पुरुषों को बड़ा कौतूहल हुआ। वे एक एक करके द्रौपदी से पूछने लगे:—

तुम कौन हो, कहाँ जाओगी और क्या चाहती हो ? द्रौपदी ने सबसे कहा:—

मैं सैरिन्ध्री हूँ। सिङ्गार करने की विद्या मैं बहुत अच्छी जानती हूँ। जो कोई मुझे नौकर रक्खेगा उसका काम मैं जी लगा कर अच्छी तरह करूँगी।

महल के ऊपर से विराट की रानी सुदेष्णा इधर उधर देख रही थी। इसी समय दरिद्रों के से कपड़े पहने हुए और अलौकिक स्वरूपवाली द्रौपदी को उन्होंने देखा।

सुदेष्णा ने उसे पास बुला कर कहा:—

भद्रे ! तुम कौन हो और क्या चाहती हो ?

द्रौपदी ने पहले ही की तरह सैरिन्ध्री का काम पाने की प्रार्थना की। तब रानी ने कहा:—

हे सुन्दरी ! तुमको अपनी सखी बनाने में हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। पर तुम्हारी सुन्दरता को देख कर डर लगता है कि कहीं राज-घराने के लोग तुम्हारे लिए चञ्चल होकर कोई अनिष्ट न कर बैठें।

द्रौपदी ने कहा:—हे रानी ! मैं महाप्रतापी गन्धर्वों की स्त्री हूँ। इसलिए मेरा अपमान कोई नहीं कर सकता। ऐसा कौन राज-पुरुष है जो यह बात जान कर भी मेरे लिए मन में बुरे विचार ला सके ? इसलिए आप मुझे बे-खटके नौकर रख सकती हैं। मैं पहले यदुकुल में श्रेष्ठ कृष्ण की रानी सत्यभामा और कुरुवंश में महासुन्दरी द्रौपदी के यहाँ नौकर थी। मैं बाल सँवारने, उबटन लगाने और तरह तरह के हार गूँथने में बड़ी निपुण हूँ। पर मेरी एक प्रार्थना है। वह यह कि मुझे झूँठी चीज़ छूने या पैर धोने का काम न करना पड़े।

रानी ने—अच्छा—कह कर और उपयुक्त कपड़े तथा गहने दे कर द्रौपदी को अपने घर में रख लिया।

इसके बाद सहदेव ग्वालों का ऐसा वेश बना और उन्हीं की ऐसी बोली सीख कर विराट के यहाँ आये और राजमहलों से मिली हुई गोशाला के पास खड़े हो गये। उनका

तेजस्वी रूप और वह ग्वालों का वेश देख कर राजा बहुत विस्मित हुए। उन्होंने उनको बुलाया और पूछा:—

हमने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा। तुम किसके पुत्र हो और कहाँ से आये हो? यह सब हम जानना चाहते हैं।

सहदेव ने कहा:—हम वैश्य हैं; सब लोग हमें तन्त्रिपाल कहते हैं। पहले हम राजा युधिष्ठिर की गायों की देख-भाल करते थे। अब वही काम पाने के लिए आप से प्रार्थना करने आये हैं।

सहदेव के सुन्दर शरीर को देख कर विराट बड़े प्रसन्न हुए और बोले:—

तुम आज से हमारी सारी पशुशाला के अधिकारी हुए।

इसके बाद उन्होंने उनको मुँहमाँगी तनख़्वाह देने की आज्ञा दी। इस तरह आदर से नौकरी पाकर सहदेव सुख से समय बिताने लगे।

इसके बाद ऊँचे, पूरे और गठीली देहवाले अर्जुन नाचनेवालों की तरह स्त्री-वेश बना कर और कान में कुण्डल, मस्तक में लम्बे बाल, हाथ में शङ्ख और कड़े धारण करके विराट के दरबार में पहुँचे। उस तेजस्वी मूर्ति का बेडौल नारी-वेश देख कर राजा ने सभासदों से पूछा:—

ये कौन हैं और कहाँ से आते हैं? हमने तो ऐसी मूर्ति पहले कभी नहीं देखी।

सभासद् लोग बोले:—हमारी समझ में नहीं आता कि ये कौन हैं।

जब अर्जुन निकट पहुँचे तब विराट ने पूछा:—

तुम्हारा पुरुषों का ऐसा बल और स्त्रियों का ऐसा वेश देख कर हम बड़े विस्मित हैं। तुम कौन हो?

अर्जुन ने कहा:—महाराज! हमारा नाम बृहन्नला है। हम राजा युधिष्ठिर के अन्तःपुर में नाच-गाकर स्त्रियों का मन बहलाते और उनको नाचने गाने की शिक्षा भी देते थे। इस विषय में हम बड़े निपुण हैं। हम बे माँ-बाप के हैं—हमारे माता पिता कोई नहीं। इसलिए हमें अपना लड़का या लड़की समझ कर राजकुमारी उत्तरा को नृत्य-गान सिखाने के लिए नौकर रख लीजिए।

विराट ने कहा:—बृहन्नला! तुम हमारी कन्या उत्तरा और नगर की अन्य स्त्रियों को नाचना, गाना आदि सिखाओ। इससे हम बड़े प्रसन्न होंगे। पर तुम्हारी कान्ति और तेज देखने से मालूम होता है कि तुम इस काम के पात्र नहीं।

राजा की आज्ञा के अनुसार अर्जुन अन्तःपुर में गये और रानियों को शिक्षा देने

लगे। राजकुमारी उन्हें पिता की तरह मानने लगी। धीरे धीरे सभी स्त्रियाँ उन्हें प्यार करने लगीं! अर्जुन आदमियों से मिलते ही न थे। इसलिए यह भी शङ्का न रही कि उन्हें कोई पहचान लेगा।

इसके बाद एक दिन नकुल अस्तबल के घोड़ों को देख रहे थे। इसी समय उनकी असाधारण कान्ति देख कर राजा की निगाह उन पर पड़ी।

उन्होंने उनको घोड़ों की विद्या जाननेवाला समझ कर नौकरों को आज्ञा दी:—

इस तेजस्वी आदमी को हमारे सामने लाओ।

राजा की आज्ञा सुनते ही नकुल पास आकर बोले:—

महाराज की जय हो! हम घोड़ों से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या बहुत अच्छी जानते हैं। सब लोग हमें ग्रंथिक के नाम से पुकारते हैं। पहले हम राजा युधिष्ठिर के अस्तबल में नौकर थे। अब आपकी घुड़साल में नौकरी करना चाहते हैं। हम घोड़ों का स्वभाव, उनकी शिक्षा और उनकी दवादारू करना अच्छी तरह जानते हैं।

विराट ने कहा:—तुम हमारे अश्वपाल होने के अच्छी तरह उपयुक्त हो। इसलिए आज से सब सवारियाँ तुम्हारे अधीन हुईं।

इस तरह एक एक करके सब पाण्डव मनमानी नौकरी पा गये और विराट के घर में छिपे छिपे रहने लगे।

महर्षि बृहदश्व की शिक्षा के प्रभाव से युधिष्ठिर जुआ खेलने में बड़े ही निपुण हो गये थे। इससे राजपुरुषों से जुआ में मनमाना धन जीत कर वे भाइयों को बाँट देते थे। राजा की रसोई से पाये हुए तरह तरह के उत्तम भोजनों से भीमसेन सबको तृप्त करते थे। अन्तःपुर में अर्जुन को बहुत इनाम मिला करता था। इससे उनकी भी अच्छी आमदनी थी। सहदेव दूध, दही और घी आदि से तथा नकुल राजमहल से पाये हुए धन के द्वारा सबके सुख की सामग्री इकट्ठी करते थे।

पाण्डवों के अज्ञात वास के चौथे महीने मत्स्य नगर में एक बड़ा भारी उत्सव आरम्भ हुआ। उस समय दानवों के समान बड़े बड़े पहलवान लोग अपना अपना बल दिखाने और परीक्षा देने के लिए चारों तरफ़ से आये। उनमें से एक सबसे मोटा ताज़ा पहलवान सबको हरा कर अखाड़े में कूदने और सबको बार बार ललकारने लगा। पर किसी ने भी उसके मुक़ाबले में उतरने का साहस न किया।

तब मत्स्यराज को भीमसेन की बात याद आ गई। उन्होंने उनको लड़ने की आज्ञा दी। उनके प्रचण्ड बाहुबल को देख कर लोग कहीं पहचान न जायँ, इस डर से वे लड़ना

न चाहते थे। पर उन्होंने राजा की आज्ञा न मानना अनुचित समझा। इसलिए लड़ने को वे तैयार हो गये।

पहले तो उन्होंने विराट को प्रणाम किया; फिर धीरे धीरे अखाड़े में पहुँचे। उनका बलिष्ठ शरीर देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये। इसके बाद उन्होंने जीमूत नाम के उस प्रसिद्ध पहलवान को ललकारा। तब दोनों वीरों में घोर युद्ध होने लगा।

वे आपस में एक दूसरे को दबाने का अवसर ढूँढ़ते हुए कभी भुजाओं का आघात करते कभी घूँसे मारते, कभी पैर की ठोकर मारते, कभी सिर से सिर लड़ा देते थे। उनके इन आघातों और ठोकरों से बड़ा भयङ्कर शब्द उत्पन्न होता था। अंत को महा-बलवान् भीमसेन ने उस गर्जन तर्जन करनेवाले पहलवान को एक-दम पकड़ कर उठा लिया और ज़मीन पर इतनी ज़ोर से पटका कि उसकी हड्डियाँ तक चूर हो गईं।

प्रसिद्ध पहलवान जीमूत को हराने से भीमसेन का बेहद आदर हुआ। तब से राजा विराट भीमसेन को सिंह, बाघ आदि हिंस्र जन्तुओं से अक्सर लड़वाते और तमाशा देखते थे। अन्तःपुर की खिड़कियों से रानियाँ भी भीमसेन का अद्भुत बल-विक्रम देखती थीं। वहाँ द्रौपदी को भी ज़रूर जाना पड़ता था। पर वह डरती थी कि भीमसेन को कहीं कुछ हो न जाय। इससे वह व्याकुल हो जाती थी। उसकी यह बात कभी कभी प्रकट हो जाती थी। इसलिए लोग समझते थे कि वह उस रूपवान् रसोइये पर अनुरक्त है। अतएव उस पर बहुधा व्यंग्य वचनों की वर्षा होती थी। नीच नर्तक-वेश में महावीर अर्जुन को अन्तःपुरवासिनी स्त्रियों की सेवा करते देख कर भी द्रौपदी को बड़ा कष्ट होता था।

शीघ्र ही एक बात और ऐसी हुई कि जिससे अभागिनी द्रौपदी का कष्ट और भी बढ़ गया। रानी का भाई कीचक बड़ा बली था। वह विराट का सेनापति था। वह, और उसके सजातीय, तथा नौकर-चाकर लोग ऐसे पराक्रमी और योद्धा थे कि उनके बिना राज्य की रक्षा होना असम्भव था। ख़ुद राजा उनसे बहुत डरते थे। इससे मत्स्यराज में उन लोगों का प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था। वे जो चाहते थे करते थे। एक दिन द्रौपदी की अलौकिक सुन्दरता देख कर सेनापति कीचक उस पर मोहित हो गया और बहन के पास जाकर बोलाः—

इस रूपवती स्त्री को विराट-भवन में हमने पहले कभी नहीं देखा। इसने हमारे चित्त को चञ्चल करके हमें बिलकुल ही अपने वश में कर लिया है। इसलिए इसके साथ हमारा विवाह करवा दो।

बहन से यह बात कह कर कीचक ख़ुद द्रौपदी के पास गया और बोला:—

हे सुन्दरी! तुम्हारी सी रूपवती स्त्री का दूसरे की सेवा करना उचित नहीं। इससे अच्छा तो यह है कि तुम हमसे विवाह करके हमारी स्वामिनी बनो। हे सुहासिनी! तुम्हारे लिए हम पहले की अपनी सारी प्रियतमाओं को छोड़ देंगे। वे सब तुम्हारी दासी होकर रहेंगी। हम भी तुम्हारे दास बन कर तुम्हारी शुश्रूषा करेंगे।

द्रौपदी ने कहा:—हे सेनापति! मैं नीचवंश में उत्पन्न सैरिन्ध्री हूँ। मैं एक निगाह से आपके द्वारा देखी जाने योग्य भी नहीं। इसके सिवा मैं दूसरे की पत्नी हूँ। इसलिए धर्म का ख़याल करके आप ऐसी बात अब कभी न कहिएगा।

पर कीचक द्रौपदी पर ऐसे लट्टू हो रहे थे कि उसको दूसरे की स्त्री जान कर भी चुप न रह सके। वे फिर कहने लगे:—

हे सुन्दरी! हम तुम पर अत्यन्त मोहित हैं और तुम्हारे वश में हैं। इसलिए तुम्हें उचित नहीं कि हमारी बात न मानो। जो पति तुमसे दासी का काम करवाता है उसे छोड़ दो और हमारे अतुल ऐश्वर्य्य की स्वामिनी बनो।

तब द्रौपदी ने रुष्ट होकर कहा:—

हे सारथि-पुत्र! होश में आओ! मैं महा बलवान् गन्धर्वों की स्त्री हूँ। यदि वे क्रुद्ध होंगे तो तुम कदापि न बच सकोगे। इसलिए मुझे पाने की आशा छोड़ दो। सुमार्ग पर चल कर जीवन की रक्षा करो।

जब दुरात्मा कीचक का मनोरथ सिद्ध न हुआ तब वह सुदेष्णा के पास आकर बोला:—हे बहन! ऐसा यत्न करो जिसमें यह अपूर्व लावण्यवती युवती हमारी हो जाय। यदि ऐसा न होगा तो हम, सच कहते हैं, प्राण दे देंगे।

भाई की ऐसी दुरवस्था देख और उसका विलाप सुन कर रानी को दया आ गई। उन्होंने कहा:—

हे कीचक! मैं एक उपाय बताती हूँ। तुम त्यौहार के दिन मद्य और खाने-पीने की चीज़ें तैयार रखना। मैं उन्हें लाने के बहाने सैरिन्ध्री को तुम्हारे पास भेजूँगी। उस समय एकान्त में तुम इच्छानुसार वचनों के द्वारा उसे राज़ी कर लेना।

बहन के धीरज देने से कीचक कुछ शान्त हुए। उनकी सलाह के अनुसार उन्होंने अनेक प्रकार के व्यञ्जन और राजों के पीने योग्य बढ़िया शराब तैयार करके सुदेष्णा को ख़बर दी। तब द्रौपदी को बुला कर रानी ने कहा:—

सैरिन्ध्री! हमें बड़ी प्यास लगी है। तुम कीचक के घर से अच्छी शराब ले आओ।

द्रौपदी ने कहा:—हे रानी! मैं कीचक के घर कभी नहीं जा सकती। मुझे मालूम हो गया है कि वह कितना निर्लज्ज है। मैं आपसे पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं अपमानित होकर आपके घर में न रहूँगी। इससे इस काम के लिए किसी और दासी को आप भेजें।

सुदेष्णा ने कहा:—हे कल्याणी! तुम्हें तो हम भेजती हैं। कीचक तुम्हारा अपमान क्यों करेंगे?

यह कह उन्होंने द्रौपदी के हाथ में एक सोने का प्याला वस्त्र में छिपा कर रख दिया। बेचारी द्रौपदी जाने को लाचार हुई।

आँखों में आँसू भरे हुए वह डरती डरती चली और चौकन्ना हिरनी की तरह घबराई हुई कीचक के घर के पास पहुँची। पार जाने की इच्छा रखनेवाले जैसे नाव पाकर आनन्दित होते हैं वैसे ही दुरात्मा कीचक भी द्रौपदी को आते देख बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा:—

प्रिये! तुम्हारे आने से हमें जैसी प्रसन्नता हुई है उसे हम कह नहीं सकते। आज का दिन हमारे लिए बड़ा ही शुभदायक है। देखो, तुम्हारे लिए हमने अनेक देशों से सोने के हार, कड़े, बाज़ूबन्द, कुण्डल, रेशमी वस्त्र आदि कितनी ही चीज़ें मँगा रक्खी हैं। यहाँ सुन्दर सेज भी बिछी हुई है। आओ, दोनों जने बैठ कर मद्यपान करें।

द्रौपदी ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। वह काँपती हुई कहने लगी:—

रानी बड़ी प्यासी हैं। इसलिए उन्होंने मुझे शराब लाने के लिए भेजा है। मैं वही लेने आई हूँ।

तब कीचक ने मुसकरा कर कहा:—

रानी के लिए कोई और शराब ले जायगा। तुम हमारे पास बैठो।

यह कह कर उसने द्रौपदी का दाहिना हाथ पकड़ा। तब द्रौपदी ज़ोर से चिल्ला कर बड़े ही आर्त्तस्वर से कहने लगी—अरे दुरात्मा! यदि मैंने मन से भी कभी पति का अनादर न किया हो तो उस पुण्य के प्रभाव से मेरी रक्षा हो।

पर कीचक ने तब भी न माना। उसने द्रौपदी की चादर पकड़ ली। तब द्रौपदी ने बड़े क्रोध से कपड़ा खींच लिया। इससे कीचक ज़मीन पर गिर पड़ा। यह सुयोग पाकर वह राजसभा की ओर जल्दी जल्दी भागने लगी। इस तरह गिरने और अपमानित होने से कीचक को बड़ा क्रोध आया। वह क्रोध और घमण्ड में चूर होकर द्रौपदी के पीछे दौड़ा। ज्योंही द्रौपदी राजसभा में पहुँची त्योंही उसके निकट जाकर

उसने बड़े क्रोध से उसके बाल पकड़ कर खींचे और सब राजों के सामने उसके लात मारी। यह करके वह वहाँ से चल दिया।

उस समय भीमसेन भी सभा में बैठे थे। द्रौपदी का अपमान होते देख उन पर वज्र सा गिरा।

एकदम से आँखें लाल लाल करके वे दाँत कटकटाने लगे और कीचक को मारने के लिए कूद कर दौड़ने को तैयार हुए। यह देख कर युधिष्ठिर डरे कि ऐसा न हो जो हम लोग पहचान लिये जायँ। इसलिए उन्होंने भीमसेन को होशियार करने के लिए इशारे से कहा:—

हे सूद! क्या तुम लकड़ी के लिए पेड़ को देख रहे हो? यदि तुम्हें लकड़ी दरकार हो तो बाहर के पेड़ से ले लेना।

उस समय अपमानिता द्रौपदी ने अपने पतियों और विराटराज की ओर इस तरह देखा, मानों उन्हें जला कर वह भस्म कर देगी। वह कहने लगी:—

हाय! आज मैंने जाना कि मत्स्यराज बड़े अधर्मी हैं। क्योंकि निरपराध स्त्री को मार खाते देख कर भी उन्होंने कुछ न कहा। जब राजा ही ने विचार न किया तब और किससे मैं न्याय के लिए प्रार्थना करूँ?

मत्स्यराज ने कहा:—हम तुम्हारे कलह का पूरा पूरा हाल ही नहीं जानते। फिर बिना जाने कैसे विचार कर सकते हैं?

सभासदों में से कोई तो कीचक की निन्दा और कोई द्रौपदी की प्रशंसा करने लगा।

पत्नी के अपमान को देख कर युधिष्ठिर के माथे से पसीना बहने लगा। किन्तु बड़े कष्ट से उन्होंने अपने क्रोध को रोका और तिरस्कार के बहाने द्रौपदी को हितोपदेश करने लगे। वे बोले:—

हे सैरिन्ध्री! यहाँ पर अधिक देर तक तुम्हारे रहने की ज़रूरत नहीं है। तुम रानी के महल में चली जाव। और स्त्रियों की तरह तुम क्यों राजसभा में रो रही हो? तुम्हारी रक्षा करनेवाले गन्धर्व लोग मौका पाते ही तुम्हारे शत्रुओं का ज़रूर नाश करेंगे।

यह बात सुन कर क्रोध से लाल लाल आँखें किये हुए द्रौपदी सुदेष्णा के घर पहुँची। उसे बे-तरह कुपित देख कर रानी ने पूछा:—

हे सुन्दरी! तुम क्यों रोती हो? किसने तुम्हें कष्ट पहुँचाया है?

द्रौपदी से सब हाल सुन कर सुदेष्णा क्रोध से जल उठी। वह बोली—मेरी आश्रित

स्त्री के साथ ऐसा बुरा व्यवहार ! कीचक का यह उद्धतपन ! बतलाओ उसे क्या दण्ड दिया जाय ?

द्रौपदी ने कहा:—हमारे अपमान से जिन गन्धर्वों का अपमान हुआ है वही यथा-समय इस दुरात्मा को उचित दण्ड देंगे।

इसके बाद मन ही मन कीचक की मृत्युकामना करती हुई द्रौपदी अपने घर गई। वहाँ उसने स्नान किया और कपड़े धोये। फिर रोते रोते यह सोचने लगी कि इस समय क्या करना चाहिए। अन्त में उसने एक बात करने का निश्चय किया। रात को वह बिछौने से उठ कर भीमसेन के घर गई। शाल के बड़े भारी वृक्ष से जैसे लता लिपट जाती है वैसे ही द्रौपदी सोते हुए भीमसेन के शरीर से लिपट गई और वीणा के समान मधुर कण्ठ से बोली:—

हे नाथ ! बड़े आश्चर्य की बात है ! मालूम होता है कि तुम प्राण छोड़ कर हमेशा के लिए सो गये हो। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे जीते जी तुम्हारी स्त्री का अपमान करके दुष्ट कीचक अब तक कैसे जीता रहता।

भीमसेन उठ कर पलँग पर बैठ गये और कहने लगे:—

तुम इस समय हमारे पास क्यों आई ? तुम दुबली और पीली पड़ गई हो। तुम इतनी दुखी क्यों हो ? अपना हाल बहुत जल्द कह कर किसी के जागने के पहले अपने घर चली जाव। हम अवश्य ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।

द्रौपदी ने कहा:—हे भीम ! जिसके पति राजा युधिष्ठिर हों उसे सुख कहाँ ? तुम भी मेरे दुःखों को जान कर क्यों इस तरह पूछते हो ? कौरवों की सभा में और वन-वास के समय जो दुःख मैंने भोगे हैं वे अब तक मेरे हृदय को जला रहे हैं। कोई और राजकुमारी इतने असह्य दुख भोग कर क्या जीवित रह सकती थी ? अब दुष्ट कीचक ने सबके सामने मुझे लात मारी। तब भी तुम मेरे दुखों की परवा नहीं करते। अब मैं जी कर क्या करूँगी ?

भीमसेन ने कहा:—प्रिये ! तुम्हें सचमुच ही बड़ा दुख मिला। हमारे बाहुबल और अर्जुन के गाण्डीव को धिक्कार है। हाय ! जिस समय सभा में दुरात्मा कीचक ने तुम्हारा अपमान किया उसी समय ऐश्वर्य्य के मद से मत्त उस पाखण्डी के सिर को हम अपने पाद-प्रहार से चूर कर डालते अथवा सारे मत्स्यदेश का नाश कर देते। पर युधिष्ठिर ने इशारे से हमें रोक दिया। क्या कहें, धर्मराज समय देख कर ही काम करना

अच्छा समझते हैं। किन्तु जो जो अपमान तुम्हें सहने पड़े हैं वे हमारे हृदय में काँटे की तरह खटक रहे हैं।

द्रौपदी बोली:—जैसा बुरा व्यवहार मेरे साथ किया गया है उससे यदि तुम्हें क्लेश होता हो तो अपने उस जुआरी भाई की बात तुम न मानो। यदि धर्मराज धन से वर्षों तक प्रति दिन सुबह शाम जुआ खेलते तो भी हमारा इतना बड़ा ख़ज़ाना ख़ाली न होता। जुए का ऐसा कौन शौक़ीन होगा जो भाई और स्त्री को दाँव पर रक्खे या एक बार शिक्षा पा कर भी वनवास जाने की प्रतिज्ञा को दाँव में लगा कर खेले? पर जुए के नशे में चूर होकर पागल की तरह युधिष्ठिर ने सब कुछ खो दिया और अब बीती हुई बातों को मन ही मन सोचते हुए मूढ़ों की तरह चुपचाप बैठे हैं। तुम लोग अत्यन्त नीच और अनुचित काम करके अपने जीवन की रक्षा कर रहे हो। यह सब दुर्दशा देख कर मैं कैसे सुखी रह सकती हूँ? इससे बढ़ कर दुख की बात और क्या हो सकती है कि तुम लोगों के जीवित रहते दुख पर दुख भोगने से मेरा शरीर सूखता चला जाय! आर्य्या कुन्ती के सिवा मैंने किसी की सेवा पहले नहीं की थी। अब मैं सुदेष्णा के पीछे पीछे फिरती हूँ और उसके लिए चन्दन घिसती हूँ। मैं कौरवों के घर में किसी से भी नहीं डरती थी। पर यहाँ दासी के रूप में रह कर विराट से बे-तरह डरा करती हूँ। चन्दन आदि पदार्थ अच्छी तरह घिसे गये हैं कि नहीं? कहीं राजा अप्रसन्न तो न होंगे? इस प्रकार की शङ्काओं से मेरा हृदय सदा ही कँपा करता है। क्योंकि मेरे सिवा और किसी का घिसा हुआ चन्दन राजा पसंद नहीं करते।

इस तरह अपने दुखों का वर्णन करके द्रौपदी ने भीम की तरफ़ देखा और रोने लगी। इससे भीम का कलेजा फटने लगा। तब उसने फिर ठंडी साँस भर कर कहा—मालूम होता है कि पूर्व जन्म में मैंने देवताओं का कोई बड़ा भारी अपराध किया था। इसी से इतने क्लेश पाकर भी जीती हूँ।

काम करते रहने के कारण द्रौपदी का कठोर हाथ पकड़ कर और मुँह पर बहते हुए आँसू पोंछ कर भीमसेन कहने लगे:—

प्रिये! अब तुम आगे और कुछ न कहो। तुमने धर्मराज का जो तिरस्कार किया है उसे वे यदि सुन लेंगे तो अवश्य ही प्राण त्याग देंगे। उनके मरने पर अर्जुन, नकुल या सहदेव कोई भी जीते न रह सकेंगे। उनके न रहने से हम भी जीवन धारण न कर सकेंगे।

द्रौपदी ने कहा:—नाथ! मैंने राजा का तिरस्कार नहीं किया। बात केवल इतनी ही

है कि दुःसह दुःख के कारण मेरे आँसुओं का बहना नहीं रुकता था। जो हो, अब बीती हुई बातों की आलोचना करना व्यर्थ है। दुःख सदा एक सा नहीं बना रहता। सभी दुःखों का अन्त होता है। यह समझ कर तुम्हारी ही तरह मैं भी समय की प्रतीक्षा करूँगी। पर इस समय जो कुछ करना उचित हो करो। कामान्ध कीचक मुझसे न कहने योग्य बातें सदा कहता है और उसके लिए मेरा अपमान करता है। बोलो उसे क्या दण्ड दोगे? जब मैं उसे अपने गन्धर्व-पतियों के क्रोध का डर दिखाती हूँ तब वह सिर्फ़ ज़ोर से हँस देता है। विराटराज भी उसे दण्ड नहीं दे सकते। यदि तुम लोग कलङ्कित न होना चाहो तो इस समय अपनी स्त्री की रक्षा करो। इस दुष्ट ने तुम लोगों के सामने ही मेरे लात मारी। और क्या कहूँ, यदि कल सवेरे तक वह पापी जीवित रहा तो मैं विष खा कर मर जाऊँगी। यह कह कर भीमसेन की छाती पर अपना मुँह रख कर द्रौपदी फिर रोने लगी। तब भीमसेन ने द्रौपदी का आलिङ्गन करके उसके आँसू पोंछे और उसे धीरज दिया। फिर कीचक पर बड़ा क्रोध करके अपना होंठ दाँतों से काटते हुए बोले:—

हे द्रौपदी! तुमने जो कुछ कहा, हम ज़रूर वही करेंगे। तुम इस दुष्ट को रात के समय निर्जन नाट्यशाला में किसी बहाने लिवा लाना। हम वहां उसे उचित दण्ड देंगे। पर उसके साथ तुम्हारी जो बातचीत हो उसे कोई न जानने पावे।

भीमसेन की बात सुन कर द्रौपदी को धीरज हुआ। कीचक को फांसने का उपाय सोचते सोचते वह अपने घर लौट गई। भीमसेन बड़ी अधीरता से समय की प्रतीक्षा करने लगे।

दूसरे दिन सवेरे कीचक द्रौपदी के पास फिर आया और पूर्ववत् प्रस्ताव करके कहने लगा। हे डरपोक! देखो जब हमने तुम पर कोप किया तब विराटराज भी तुम्हें न बचा सके। विराट तो मत्स्यदेश के नाम मात्र राजा हैं। असल में राज्य तो हमीं करते हैं— मत्स्यदेश में हमारा ही एकाधिपत्य है। यदि तुम हमें प्यार करने लगोगी तो हम ख़ुद तुम्हारे दास हो जायँगे। इसलिए हमारी बात मान लो।

मानों कुछ कुछ राज़ी होकर द्रौपदी कहने लगी:—

सबके सामने ऐसी बातें करते मुझे बड़ा डर लगता है। इसलिए यदि तुम आज रात को निर्जन नाट्यशाला में मिलो तो मैं तुम्हारी बात मान लूँगी। पर यह हाल किसी को मालूम न होने पावे।

यह बात सुन कर दुष्ट कीचक बहुत प्रसन्न हुआ। उसके दिल की कली कली खिल

उठी। वह ख़ुशी ख़ुशी अपने घर गया। इधर द्रौपदी भी जल्दी से भीमसेन के पास आई और उनसे सब हाल कह सुनाया।

यह समझ कर कि अब तो मनोकामना सिद्ध हो गई, रात को कीचक सुगन्धित माला आदि विहार की सामग्री से अपने को सजाने लगा। उसका मन इतना चञ्चल हो रहा था कि वह थोड़ा सा समय भी उसे कल्प तुल्य जान पड़ता था। ठीक समय पर वह उस अँधेरे स्थान में पहुँचा। भीमसेन वहाँ पहले ही से पहुँच गये थे और एक कोने में बैठे थे। मोहान्ध कीचक उन्हें द्रौपदी समझ कर कहने लगा:—

देखो, असंख्य स्त्रियों से भरा हुआ अपना घर छोड़ कर हम तुम्हारे लिए यहाँ आये हैं। स्त्रियाँ सदा कहा करती हैं कि हमारी तरह सुन्दर आदमी दुनिया में और कहीं नहीं देखा।

तुमने भी ऐसा स्पर्श-सुख कभी न पाया होगा—यह कह कर भीमसेन झपटे और कीचक के बाल पकड़ कर उस पर आक्रमण किया।

कीचक चौंक पड़ा। बड़े ज़ोर से बाल छुड़ा कर भीमसेन के दोनों हाथ उसने पकड़ लिये। तब उस अन्धकार में महा भयङ्कर बाहु-युद्ध होने लगा। पहले कीचक ने भीम पर बड़े वेग से आघात किया। पर भीम उससे ज़रा भी न घबराये। वे उसे घर के बीच में खींच लाये और इधर उधर रगेदने लगे। क्रोध के मारे भीम बड़ी अधीरता से लड़ रहे थे। इससे अवसर पाकर कीचक ने टाँग मारी और एकदम से भीम को ज़मीन पर गिरा दिया। पर भीम ने इसकी कुछ भी परवा न की। उठ कर पहले की अपेक्षा दूने क्रोध और दूनी सावधानी से उन्होंने फिर कीचक पर आक्रमण किया। उन्होंने कीचक के एक ऐसा धक्का मारा कि वह ज़मीन पर गिर पड़ा और उठने के योग्य न रहा। धक्का खाने और गिरने से कीचक को निर्बल देख कर भीम फिर उसके बाल पकड़ कर घसीटने लगे। इससे उसे बड़ा कष्ट हुआ। जब कुछ उपाय न चला तब कीचक ज़ोर से चिल्लाने लगा। तब भीमसेन ने उसका गला दबा कर बोल बन्द कर दिया और कमर में हाथ देकर पशुओं की तरह मार डाला।

कीचक के मर जाने पर भी भीम का क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने उसके शरीर को ज़मीन पर कई बार ज़ोर ज़ोर से रगड़ा। फिर उसके हाथ, पैर और सिर उसके पेट के भीतर घुसेड़ दिये। इससे उसकी देह की ऐसी दुर्दशा हो गई कि यह पहचानना मुश्किल हो गया कि यह मनुष्य की लोथ है। इधर पास ही के घर में बैठी हुई द्रौपदी युद्ध के

समाप्त होने की राह देख रही थी। भीमसेन ने उसे बुला कर आग जलाई और उस मुर्दे को ठोकर मार कर द्रौपदी की निगाह के समाने कर दिया। फिर कहा:—

देखो, इस कामी की कैसी दुर्दशा हुई है। जो तुम्हारा अपमान करेगा उसकी यही दशा होगी।

यह कह कर भीमसेन चल दिये।

तब द्रौपदी ने सभासदों को कहला भेजा:—

हे सभासद! देखो, जिस आदमी ने हमारा अपमान किया था उसकी हमारे गन्धर्व-पतियों ने कैसी दुर्दशा की है।

तब सब लोग मशालें ले लेकर नाचघर में पहुँचे और मृत कीचक का हाथ, पैर और मस्तक-रहित तथा खून से लथ पथ शरीर देख कर बड़े विस्मित हुए। उन्हें निश्चय हो गया कि यह काम मनुष्य का नहीं, किन्तु गन्धर्वों ही का है। कीचक के महाप्रतापी आत्मीय लोग भी धीरे धीरे वहाँ आये और चारों ओर बैठ कर रोने लगे। जब अन्त्येष्टि-क्रिया की तैयारी की बातचीत हो रही थी तब कीचक के भाइयों ने पास ही खड़ी हुई द्रौपदी को देख कर कहा:—

हे भाइयो! जिसके लिए हमारे भाई का नाश हुआ, यह देखो, वही पापिनी खम्भे को पकड़े खड़ी है। इसलिए इसे मारो। अथवा इस समय इसे मारने की ज़रूरत नहीं। कीचक की चिता के साथ इसे भस्म कर देना चाहिए। ऐसा करना इस लोक में न सही तो परलोक में तो अवश्य ही कीचक की प्रसन्नता का कारण होगा।

कीचक के भाई-बन्धुओं के पराक्रम को विराटराज अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उन्हें इस बात का साहस न हुआ कि उन लोगों को ऐसा करने से रोकें। अन्त को कीचक के आत्मीय जनों ने द्रौपदी को बाँध कर मुर्दे के ऊपर रख लिया और श्मशान की ओर चले।

प्राण जाने के भय से अत्यन्त व्याकुल होकर द्रौपदी चिल्लाती हुई चली:—

सूत-पुत्र मुझे श्मशान लिये जाते हैं; अब गन्धर्व लोग मेरी रक्षा करें।

द्रौपदी का यह विलाप सुनते ही भीमसेन पलँग से उठ बैठे और वेश बदल डाला। फिर सदर दरवाज़े को छोड़ एक और जगह से दीवार फाँद कर बाहर निकल आये और जल्दी जल्दी श्मशान की ओर दौड़े। श्मशान के पास पहुँचते ही उन्होंने एक पेड़ उखाड़ लिया और साक्षात् यमराज की तरह सूतपुत्रों पर आक्रमण किया।

भीम की अद्भुत शक्ति को देख कर उन लोगों ने उनको गन्धर्व ही समझा।

इसलिए द्रौपदी को छोड़ कर नगर की तरफ़ भागे। पर क्रुद्ध भीमसेन ने पेड़ की मार से उन सबको मार कर कल की। फिर उन्होंने डबडबाई हुई आँखों से प्रियतमा का बन्धन खोल कर कहाः—

जो लोग बिना अपराध के तुम्हें कष्ट देंगे उनकी यही दशा होगी। अब किसी बात का डर नहीं है। तुम नगर को जाव। हम और रास्ते से राजा के महल में जायँगे।

इधर जो लोग कीचक का अग्निसंस्कार देखने आये थे वे कीचक के भाई-बन्धुओं को मारा गया देख शीघ्र ही राजा के पास पहुँचे और सब हाल कह सुनाया। गन्धर्वों के इस उपद्रव से राजा बहुत डरे और रानी के पास जा कर बोलेः—

प्रिये! तुम्हारी सैरन्ध्री बड़ी रूपवती है और उसके रक्षक गन्धर्व लोग भी बड़े पराक्रमी हैं। इससे उसे घर में रखने से हमें अपने राज्य की रक्षा करना मुश्किल हो जायगा। इसलिए उसे निकाल दो।

भीमसेन के विकट कामों को देख कर लोग सचमुच ही इतने डर गये थे कि जब द्रौपदी श्मशान से नगर की ओर आने लगी तब जिसकी ओर वह देखती वही अपने प्राण ले कर भागता।

इस तरह द्रौपदी राजमहल में पहुँची। जब वह सोने के कमरे के पास से निकली तब विराटराज की कन्या और उसकी सखियाँ अर्जुन से नाच सीख रही थीं। निर-पराध सैरन्ध्री को श्मशान से कुशलतापूर्वक लौट आई देख सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। अर्जुन के साथ वे सब उसके पास आकर कहने लगींः—

सैरन्ध्री! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम संकट से बच कर फिर लौट आई। जिन लोगों ने तुम्हें कष्ट दिया था वे भी मारे गये।

अर्जुन ने कहाः—हे सैरन्ध्री! यह सुनने की हमारी बड़ी इच्छा है कि तुम विपद से किस तरह छूटीं और वे पापी लोग कैसे मारे गये।

द्रौपदी ने कहाः—हे कल्याणी बृहन्नले! तुम्हें कन्याओं के साथ आनन्दपूर्वक रहने से काम। जो क्लेश सैरन्ध्री को भोगने पड़ते हैं वे तुम्हें तो भोगने पड़ते नहीं। इससे तुम उसे अत्यन्त दुखी देख कर भी हँस हँस कर बातें कहती हो।

अर्जुन ने कहाः—सैरन्ध्री! बृहन्नला तुम्हारे दुख से बहुत दुखी है। तुम उसे निरा पशु न समझो। सच तो यह है कि कोई किसी के मन की बात कभी नहीं जान सकता। इसी लिए तुम हमारे मन की बात नहीं समझ सकतीं।

अर्जुन से इस प्रकार बातचीत करके द्रौपदी रानी के पास गई। उसे देखते ही सुदेष्णा ने राजा की आज्ञा सुना कर कहा:—

सैरिन्ध्री! गन्धर्वों के अत्याचार से सब लोग बहुत डर गये हैं। इसलिए तुम जहाँ चाहो जाव। यहाँ तुम्हारा रहना अच्छा नहीं।

द्रौपदी ने कहा:—देवी! राजा थोड़े दिन और क्षमा करें। कुछ दिन बाद मेरे गन्धर्व-पति मुझे ले जायँगे। यदि गन्धर्व लोग राजा से प्रसन्न रहेंगे तो इस राज्य की बहुत कुछ भलाई होगी; इसमें सन्देह नहीं।

१२—पाण्डवों के अज्ञात वास की समाप्ति

जब पाण्डवों के एक वर्ष के अज्ञात वास का समय आ पहुँचा तब राजा दुर्योधन ने उनका पता लगाने के लिए देश विदेश में दूत भेजे। उन लोगों ने कितने ही गाँव, नगर और देश छान डाले। पर पाण्डवों का पता न चला। अन्त में जब साल समाप्त होने में थोड़े ही दिन रह गये तब वे हस्तिनापुर लौट आये। राजा दुर्योधन की सभा में द्रोण, कर्ण, कृप, भीष्म और महाबली त्रिगर्त्तराज बैठे थे। इसी समय दूत लोग लौटे और हाथ जोड़ कर कहने लगे:—

महाराज! हमने बड़ी सावधानी से अगम्य जङ्गल और पहाड़ों के शिखर ढूँढ़ डाले; सारे देश-देशान्तर और शत्रुओं की राजधानियाँ रत्ती रत्ती ढूँढ़ डालीं। पर पाण्डवों का पता न पाया। पाण्डवों के सारथियों को ख़ाली रथ द्वारका की ओर ले जाते देख एक बार हम लोगों ने उनका पीछा किया। पर उनसे भी कुछ पता न चला कि पाण्डव और द्रौपदी कहाँ हैं या किधर गये हैं। मालूम होता है कि वे अब जीवित नहीं। इसलिए आप स्वतन्त्रतापूर्वक सारे साम्राज्य का भोग कीजिए।

महाराज! एक और ख़बर है; वह भी सुन लीजिए। मत्स्यराज की रक्षा करनेवाले उनके प्रबल पराक्रमी सेनापति कीचक को रात के समय गन्धर्वों ने मार डाला। उनके भाई-बन्दों को भी उन्होंने जीता नहीं छोड़ा।

दूत की बातें सुन कर दुर्योधन बड़ी देर तक चुप रहे। उन्हें चुप देख मन्त्री लोग कहने लगे:—

पाण्डवों के अज्ञात वास का समय अब समाप्त होने को है। ज्यों ही वे एक दफ़े प्रतिज्ञा के बन्धन से छूट जायँगे त्योंही मस्त हाथी की तरह क्रोध में आकर वे कौरवों

का मुक़ाबला करेंगे। इसलिए यदि इस समय उनका पता न लगेगा तो बड़ी आफ़त आवेगी।

यह सुन कर कर्ण ने कहा:—

महाराज! कुछ ऐसे वेश बदले हुए धूर्त आदमी, जो पाण्डवों को अच्छी तरह पहचानते हों, हर एक बस्ती में लोगों के बैठने की जगह और तीर्थ आदि में भेजिए। ये नदी, कुञ्ज, नगर, गाँव, आश्रम और पहाड़ों की गुफ़ाओं में फिर पता लगावें।

कर्ण की हाँ में हाँ मिला कर दुःशासन ने भाई से कहा:—

महाराज! पाण्डवों की खोज आप उत्साह के साथ बराबर लगाते रहें। या तो वे कहीं छिपे बैठे होंगे, या दुर्दशा-ग्रस्त होने के कारण मर गये होंगे।

द्रोणाचार्य्य ने कहा:—पाण्डव लोग बड़े वीर, विद्वान्, बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय हैं। इसलिए वे मरे न होंगे। वे ज़रूर कहीं छिपे हुए समय की प्रतीक्षा करते होंगे। अतएव अच्छी तरह खोज करना बहुत ज़रूरी है।

भीष्म ने कहा:—हमारा भी यही विश्वास है कि पाण्डव लोग मरे नहीं। धर्म्मराज बड़े समझदार हैं। इसलिए हम समझते हैं कि वे भाइयों और स्त्री के साथ किसी नीतिमान् सुशील राजा के हरे भरे नगर में रहते होंगे। पाण्डव लोग असाधारण बुद्धिमान और चतुर हैं। उनका पता लगा लेना किसी सामान्य आदमी का काम नहीं।

कृपाचार्य्य ने कहा:—हमारी समझ में महात्मा भीष्म का कहना बहुत ठीक है। पर पाण्डवों के प्रतिज्ञा किये हुए तेरह वर्ष पूरे होने में अब थोड़े ही दिन बाक़ी हैं। इसलिए उनके अभ्युदय के पहले ही हम लोगों को सब बातों की सलाह और तैयारी कर लेना चाहिए। हे राजन्! इस समय आप अपना ख़ज़ाना और बल बढ़ाइए। और सब क़ायदे क़ानून ठीक कर लीजिए। इसके सिवा अपने सहायकों, मित्रों और सेना के सिपाहियों के सामर्थ्य की जाँच भी कीजिए। इसके बाद पाण्डवों का बल देख कर हम बतावेंगे कि उनके साथ मेल कर लेना चाहिए या लड़ाई।

इसके पहले कीचक की मदद से विराट ने त्रिगर्त्तराज को कई बार परास्त किया था। इस समय त्रिगर्त्तराज ने अच्छा अवसर हाथ आया जान कर्ण की तरफ़ देख कर कहा:—

हे दुर्योधन! महापराक्रमी कीचक के मारे जाने से विराटराज का घमण्ड ज़रूर चूर हो गया होगा। वे इस समय ज़रूर निराश्रय हो गये होंगे। क्योंकि उनकी सहायता करनेवाला अब कोई नहीं रहा। इसलिए यदि हम लोग मिल कर मत्स्यराज पर

आक्रमण करें तो अवश्य हमारी जीत होगी और वहाँ की बहुत सी गायें, धन और रत्न हम लोगों को मिलेंगे। उन्हें हम लोग आपस में बाँट लेंगे। इसके सिवा मत्स्यराज हाथ में आ जाने से तुम्हारा बल भी ज़रूर बढ़ जायगा।

त्रिगर्त्तराज, सुशर्मा, की बात का अनुमोदन करके कर्ण ने दुर्योधन से कहा:—

महाराज! त्रिगर्त्तराज ने बड़े मौक़े की बात कही है। इसलिए यदि बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भीष्म, द्रोणाचार्य्य और कृपाचार्य इसे अच्छा समझें तो हम लोग शीघ्र ही मत्स्यराज्य पर आक्रमण करें। दरिद्र और निर्बल पाण्डवों की खोज करने में समय वृथा नष्ट करने से तो अपना बल बढ़ाना अच्छा है।

कर्ण की बात से प्रसन्न होकर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी:—

भाई! तुम वृद्ध लोगों से सलाह करके शीघ्र ही सेना तैयार करो।

इसके बाद त्रिगर्त्तराज अपनी सेना सजा कर कृष्णपक्ष की सप्तमी को मत्स्यराज की ओर चले। कौरव लोग भी विराटराज पर आक्रमण करने के इरादे से दूसरे दिन भिन्न मार्ग से रवाना हुए।

इधर गुप्त वेशधारी पाण्डव लोग विराटराज के सब काम अच्छी तरह करते थे। जिस तरह कीचक उनकी सहायता करते थे उसी तरह वे भी उनकी यथेच्छ सहायता करते थे। इस तरह प्रतिज्ञा किये हुए अज्ञात वास का समय वे लोग बिता रहे थे। इसी समय त्रिगर्त्तराज ने मत्स्यदेश पर चढ़ाई करके विराट नगर के एक प्रान्त से बहुत सी गायें हरण कर लीं।

तब गायों की रक्षा करनेवाले ग्वाले शीघ्र ही रथ पर सवार होकर बहुत जल्दी पुरी में पहुँचे और पाण्डवों से घिरे हुए विराटराज जहाँ बैठे थे वहाँ रथ से उतर पड़े। फिर राजा के पास जाकर वे प्रणामपूर्वक बोले:—

महाराज! त्रिगर्त्त लोगों ने बड़ी भारी सेना लेकर हम लोगों पर आक्रमण किया और आप की हज़ारों गायें छीने लिये जा रहे हैं। आप रक्षा कीजिए।

यह सुनते ही विराटराज ने रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना को लड़ने के लिए तैयार होने की आज्ञा दी। विराट की आज्ञा पाकर राजपुरुष बड़ी व्यग्रता से चित्रविचित्र कवच धारण करके युद्ध के लिए तैयार होने और सब सामानों से लैस रथों में लोहे की झूलें पड़े हुए घोड़े जुतने लगे। श्रीमान् मत्स्यराज के सुन्दर सुनहले रथ पर उनकी पताका फहराते ही महाबली क्षत्रिय लोग अपने अपने रथों पर सवार हो गये।

विराटराज ने कहा:—महावीर कङ्क, वल्लभ, तन्त्रिपाल और ग्रन्थिक भी युद्ध करेंगे। इसलिए उन्हें अच्छे रथ, मज़बूत कवच और तरह तरह के हथियार दिये जायँ।

राजा की आज्ञा पाकर युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव उत्तमोत्तम हथियार लेकर प्रसन्नतापूर्वक रथ पर सवार हुए और मत्स्यराज के पीछे पीछे चले। महाबली मत्स्यसेना ने दोपहर के पहले ही नगर के बाहर निकल कर गायों को हरण करनेवाले त्रिगर्त्तों पर आक्रमण किया। ज्यों ही युद्ध-कुशल योद्धा लोग मैदान में पहुँचे त्यों ही घोर युद्ध होने लगा। दोनों तरफ़ का बल बराबर था। इसलिए बड़ी देर तक कोई किसी को हरा न सका। मरे हुए सिपाहियों का ख़ून बहने से पृथ्वी पर कीचड़ ही कीचड़ हो गया।

इसी दशा में सूर्य्य अस्त हुआ। युद्ध के मैदान में अँधेरा छा जाने से थोड़ी देर के लिए लड़ाई रुक गई। अन्धकार को दूर करके ज्यों ही आकाश में चन्द्रमा उदित हुआ त्यों ही क्षत्रियों ने फिर एक दूसरे पर धावा किया।

इतने में त्रिगर्त्त-नरेश सुशर्मा ने अपने छोटे भाई को रथ में बिठा कर विराटराज पर आक्रमण किया और पास जाकर हाथ में गदा लिये हुए शीघ्र ही रथ से उतर पड़े। विराट के रथ के निकट बड़ी शीघ्रता से पहुँच कर उन्होंने उनके सारथि को मार गिराया। फिर विराट को पकड़ कर अपने रथ पर बिठा लिया और उन्हें लेकर भागे। इससे सैनिक लोग बे-तरह डर गये और इधर उधर भागने लगे। यह दशा देख युधिष्ठिर ने भीम से कहा:—

हे भीम! यह देखो, सुशर्म्मा विराट को लिये जा रहे हैं। अब तक हम लोग इन्हीं के आश्रम में सुख और स्वतन्त्रता से रहे हैं। इसलिए तुम्हें उचित है कि उसके बदले में उनको शत्रु के हाथ से शीघ्र ही छुड़ाओ।

भीम ने कहा:—आपके कहने के अनुसार हम महाराज को अभी छुड़ाये लाते हैं। यह सामनेवाला पेड़ उखाड़ कर उससे वैरियों का हम संहार करने जाते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे भीम! तुम्हें ऐसा अद्भुत युद्ध न करना चाहिए। नहीं तो सब लोग तुम्हें पहचान जायँगे। हमारी समझ में इस समय साधारण रीति से युद्ध करके अपना काम निकालना ही अच्छा है।

तब महाबली भीमसेन धनुष लेकर धड़ाधड़ बाणों की वर्षा करते हुए सुशर्म्मा के रथ के पीछे दौड़े। त्रिगर्त्तराज ने पीछे फिर कर देखा कि भीमसेन साक्षात् यम के समान आ रहे हैं। इसलिए उन्होंने रथ फेर दिया और युद्ध करने लगे। ज़रा ही

देर में बहुत सी सेना मार कर क्रोध से भरे हुए भीमसेन त्रिगर्त्तराज के पास जा पहुँचे। इस बीच में अन्य पाण्डव लोग भी उनकी मदद के लिए वहाँ जल्दी से पहुँच गये। सब लोगों ने एक ही साथ ऐसा भीषण युद्ध किया कि त्रिगर्त्तों की सारी सेना कट गई। इतने में मौक़ा पाकर भीमसेन ने सुशर्म्मा के सारथि को मार डाला और उनके रथ पर चढ़ कर विराट के बन्धन खोल दिये। फिर सुशर्म्मा को रथ से गिरा कर पकड़ लिया। यह देख कर युधिष्ठिर ने हँसते हँसते कहा:—

इस बार तो त्रिगर्त्तराज हार गये। अब उन्हें छोड़ दो।

फिर उन्होंने सुशर्म्मा से कहा:—

इस दफ़े तो तुम्हें छोड़े देते हैं। पर दूसरे के धन के लोभ में आकर ऐसे साहस का काम अब कभी न करना।

युधिष्ठिर की कृपा से छूट कर लज्जा से सिर झुकाये हुए त्रिगर्त्तराज ने विराट को प्रणाम किया और वहाँ से चल दिया।

विराट ने वह रात लड़ाई के मैदान ही में बिताई। दूसरे दिन सवेरे पाण्डवों को बहुत सा धन देने की आज्ञा देकर वे कहने लगे:—

तुम्हारे ही पराक्रम से हम छूटे हैं; तुम्हारी ही कृपा से हमारी मान-रक्षा हुई है। आज से हमारे सारे धन-रत्न के हमारी ही तरह तुम भी मालिक हुए। तुमने हमें शत्रु के हाथ से बचाया है। इसलिए तुम्हीं यहाँ राज्य करो।

पाण्डव लोग हाथ जोड़ कर विराट के सामने खड़े हुए और उनकी कृतज्ञता-भरी बातों का उन्होंने अभिनन्दन किया। तदनन्तर सबकी तरफ़ से युधिष्ठिर ने कहा:—

महाराज! हम इसी से बड़े सन्तुष्ट हैं कि आप शत्रु के हाथ से बच गये। इस समय दूतों को नगर में भेजिए। वे जाकर सब लोगों को खुशख़बरी सुनावें और सारे नगर में आपकी विजय-घोषणा करें।

इधर राजा नगर में लौटने भी न पाये थे कि दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि ने कौरव-सेना लेकर विराट-नगरी घेर ली और ग्वालों को मार पीट कर साठ हज़ार गायें अपने अधिकार में कर लीं। उन लोगों को गायें ले जाते देख ग्वालों का सरदार घबराया हुआ राजभवन में पहुँचा और राजकुमार उत्तर से बोला:—

कौरव लोग आपकी साठ हज़ार गायें ज़बरदस्ती लिये जा रहे हैं। इसलिए आप जो उचित समझिए कीजिए। महाराज सारा राज-काज आपको सौंप गये हैं। इस-लिए आप ही अब शत्रु को दण्ड देने का यत्न कीजिए।

कुमार उत्तर उस समय स्त्रियों के बीच में बैठे थे। इस बात को सुन कर वे शेख़ी के साथ कहने लगे:—

यदि हमें एक अच्छा सारथि मिल जाय तो हम युद्ध में शत्रुओं को सहज ही में मार डालें और कौरवों को आज ही अपना बलवीर्य्य दिखला दें।

राजपुत्र की यह बात सुन कर अर्जुन ने एकान्त में द्रौपदी से कहा:—

प्रिये ! तुम राजकुमार उत्तर से कहो कि पाण्डवों का सारथि बन कर बृहन्नला ने एक बार एक बड़ी भारी लड़ाई जीती थी। इसलिए उसे सारथि बना कर आप सहज ही युद्ध में जा सकते हैं।

अर्जुन के कहने के अनुसार द्रौपदी राजकुमार के पास गई और लजाती हुई धीरे धीरे कहने लगी:—

इस भारी डील-डौलवाले बृहन्नला ने एक बार महाबली अर्जुन के रथ पर सारथि का काम किया था। वह अर्जुन ही का शिष्य है और धनुर्विद्या में उनसे किसी तरह कम नहीं। जब मैं पाण्डवों के घर में थी तब मैंने यह हाल सुना था।

उत्तर ने कहा:—तुम्हें तो भला यह सब हाल मालूम है। पर हम क्या समझ कर इस स्त्री-वेशधारी युवा को सारथि बनने का अनुरोध करें ?

द्रौपदी ने कहा:—यदि आपकी बहन उत्तरा बृहन्नला से कहेंगी तो वह उनकी बात ज़रूर मान लेगा।

तब उत्तर के आज्ञानुसार उनकी बहन कपट-वेशधारी अर्जुन के पास तुरन्त गई। उसे देखते ही अर्जुन ने हँस कर कहा:—

राजकुमारी ! मालूम होता है आज तुम किसी सोच में हो। कहो क्या माजरा है ? हमारे पास इतनी जल्दी जल्दी आने का कारण क्या है ?

उत्तरा ने स्नेह-भरे वचनों से कहा:—

बृहन्नला ! हमारे राज्य की सारी गायों को कौरवों ने छीन लिया है। कुछ दिन हुए राजकुमार का सारथि लड़ाई में मारा गया है। इसलिए बिना सारथि के वे युद्ध में नहीं जा सकते। सैरिन्ध्री कहती है कि तुमने एक बार सारथि का काम किया है। इसलिए भाई के सारथि बन कर इस विपद से हम लोगों का उद्धार करो।

यह कह कर उत्तरा अर्जुन को अपने भाई के पास ले गई।

उन्हें दूर से देखते ही उत्तर कहने लगे:—

हमने सुना है कि तुम पहले अर्जुन के सारथि थे। इसलिए हमारे सारथि बन कर हमें कौरवों के पास ले चलो।

अर्जुन ने हँसी के तौर पर कहा:—

क्या सारथि का काम हमें शोभा देता है? हमारा काम तो गाना-बजाना और नाचना है। कहिए तो हम वह काम सहज ही में कर सकते हैं। रथ हाँकना भला हम क्या जानें।

फिर, उलटा कवच पहन कर उन्होंने ऐसा भाव दिखाया मानों वे कवच पहनना जानते ही नहीं। इससे स्त्रियों को बड़ा कौतुक हुआ। हँसते हँसते उनका पेट फूल उठा। उन्हें चुप करके राजकुमार ने अर्जुन को खुद अपने हाथ से वर्म, कवच आदि पहना कर उन्हें अपना सारथि बनाया।

अर्जुन को उस अद्भुत वेश में देख उत्तरा आदि कन्याओं ने कहा:—

बृहन्नला! भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि को हरा कर, उनके सुन्दर सुन्दर कपड़े छीन कर हमारे लिए ले आना। हम उनकी गुड़िया बनावेंगी।

अर्जुन ने हँस कर कहा:—

यदि राजकुमार कौरवों को हरा देंगे तो उनके चित्र विचित्र कपड़े हम ज़रूर ले आवेंगे।

यह कह कर अर्जुन रथ पर सवार हुए और राजकुमार को कौरवों की सेना की तरफ़ ले चले। उत्तर बड़ी निर्भयता से कहने लगे:—

बृहन्नला! हमारा रथ शीघ्र ही कौरवों के पास ले चलो। उन दुष्टों को हम उचित दण्ड देंगे।

यह सुन कर अर्जुन ने बड़ी तेज़ी से घोड़े दौड़ाये और श्मशान के पासवाले उस शमी वृक्ष के पास पहुँचे। वहाँ से समुद्र के समान कौरव-सेना दिखाई पड़ने लगी। बड़े बड़े योद्धाओं से रक्षा की गई कौरवों की वह इतनी बड़ी सेना देख कर राजकुमार के रोंगटे खड़े हो गये। वे घबरा कर कहने लगे:—

हे सारथि! इन लोगों के साथ अकेले हम कैसे लड़ेंगे? बड़े बड़े वीरों से रक्षित इस सेना को तो ख़ुद देवता भी नहीं जीत सकते। हमें तो ऐसा ही मालूम होता है। इनसे लड़ना तो दूर रहा, इन्हें देख कर ही हमारे होश ठिकाने नहीं रहे; हमारा शरीर सन्न हो गया है; हमारा सारा उत्साह जाता रहा है। पिता सब सेना लेकर चले गये हैं और हमें अकेले घर में छोड़ गये हैं। अब हम अकेले क्या करें?



उत्तरा और बृहन्नला

अर्जुन ने उन्हें उत्तेजित करने के लिए कहा:—

हे कुमार ! इस समय घबरा कर शत्रुओं के आनन्द का कारण मत हो। अभी तक उन्होंने ऐसा कौन काम किया है जिससे तुम इतना डर गये ? चलते समय तो सबके सामने तुमने बड़े घमण्ड की बातें की थीं। अब यदि गायें लेकर न लौटोगे तो सारे स्त्री-पुरुष तुम्हारी दिल्लगी करेंगे। सैरिन्ध्री ने सबके सामने हमारे सारथिपन की प्रशंसा की है। इसलिए हमारी भी हँसी होगी। अतएव हम कौरवों के साथ युद्ध किये बिना कैसे रह सकते हैं ? तुम्हें ज़रूर युद्ध करना पड़ेगा।

उत्तर ने कहा:—चाहे कौरव लोग हमारा सर्वस्व छीन ले जायँ, चाहे लोग हमारी जितनी हँसी उड़ावें, अथवा चाहे पिता हमारा जितना तिरस्कार करें, पर हम किसी तरह युद्ध नहीं कर सकते।

यह कह कर राजकुमार ने धनुष-बाण रख दिया और रथ से कूद कर भागने लगे। तब अर्जुन ने कहा:—

हे राजकुमार ! क्षत्रियों का यह धर्म नहीं कि युद्ध में पीठ दिखावें। डर कर भागने की अपेक्षा युद्ध में मर जाना ही अच्छा है।

यह देख कर कि कुमार पर हमारी बात का कुछ भी असर नहीं हुआ अर्जुन रथ से उतर पड़े और उत्तर के पीछे दौड़े। दौड़ने से उनकी वेणी खुल गई और कपड़े ढीले होकर हवा में इधर उधर उड़ने लगे।

यह अद्भुत दृश्य देख कर पास ही ठहरी हुई कौरव-सेना के वीर हँसने लगे। अर्जुन के शरीर की गठन देख कर कोई कोई कहने लगे कि हमने तो इस मनुष्य को शायद कहीं देखा है। वे लोग इस बात की चर्चा करने लगे कि यह स्त्री-वेशधारी मनुष्य कौन है।

इधर अर्जुन ने सौ ही क़दम पर भागते हुए राजकुमार के बाल पकड़ लिये और उसे रथ पर ज़बरदस्ती बिठा लिया। उत्तर ने आर्तस्वर से कहा:—

बृहन्नला ! तुम शीघ्र ही रथ लौटाओ। हम तुम्हें बहुत सा धन देंगे।

राजकुमार को मारे डर के प्राय: बे-होश देख कर अर्जुन ने हँस कर कहा:—

हे वीर ! यदि तुममें लड़ने का उत्साह न हो तो सारथि बन कर रथ चलाओ। डरने की कोई बात नहीं। हम अपने बाहु-बल से तुम्हारी रक्षा करेंगे।

यह सुन कर उत्तर को धीरज हुआ। वे रथ चलाने को तैयार हुए। वेश बदले हुए अर्जुन को रथ पर सवार होते देख भीष्म, द्रोण आदि योद्धा लोग उन्हें अच्छी तरह

पहचान गये । इधर तरह तरह के अशकुन भी होने लगे। तब भीष्म से द्रोण कहने लगे:—

मालूम होता है कि आज अर्जुन के सामने हम लोगों को हार माननी पड़ेगी। वे इन्द्रलोक से दिव्य अस्त्र चलाना सीख आये हैं । हम लोगों में कोई भी ऐसा नहीं जो उनका मुक़ाबला कर सके । इस पर कर्ण बोले:—

हे आचार्य्य ! अर्जुन की प्रशंसा और हम लोगों की निन्दा आप सदा ही किया करते हैं । पर यदि हम और दुर्योधन दोनों युद्ध करेंगे तो अर्जुन की क्या मजाल कि हमें हरा सकें ।

इस बात से प्रसन्न होकर दुर्योधन बोले:—

हे कर्ण ! यह स्त्री-वेश-धारी पुरुष यदि सचमुच ही अर्जुन हो तो बिना लड़े ही हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा । क्योंकि प्रतिज्ञा किये हुए तेरह वर्ष समाप्त होने के पहले ही हम उन्हें पहचान लेंगे। इससे पाण्डवों को फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़ेगा । और यदि और ही कोई यह अद्भुत वेश बना कर आया है तो हम उसे ज़रूर मार डालेंगे ।

इधर अर्जुन ने उत्तर से उसी शमी वृक्ष के पास चलने को कहा । वे बोले:—

हे राजकुमार ! यह तुम्हारा धनुष-बाण बहुत ही कमज़ोर है । लड़ाई के समय हमारे बाहुबल को यह न सह सकेगा । इस पेड़ पर पाण्डवों ने अपने हथियार रक्खे हैं । इस पर चढ़ कर तुम उन्हें ले आओ । उन्हीं को लेकर हम युद्ध करेंगे ।

उत्तर ने कहा:—हमने सुना है कि इस पेड़ पर एक मुर्दा बँधा है । हम राजकुमार हैं; इसलिए इस अपवित्र चीज़ को कैसे छू सकते हैं ?

अर्जुन ने कहा:—कपड़े में लिपटे हुए हथियार मुर्दे की तरह जान पड़ते हैं। हम जानते हैं कि तुम अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हो । यदि कोई अपवित्र चीज़ होती तो उसे छूने के लिए हम तुमसे कभी न कहते ।

अर्जुन के कहने से उत्तर उस शमी वृक्ष पर चढ़ गये और हथियारों को ज़मीन पर उतार कर उन्हें खोला । पाण्डवों के धनुष-बाण आदि सब अस्त्र-शस्त्र एक एक करके उन्होंने बाहर निकाले । उन बड़े बड़े सुनहले हथियारों को देख कर उत्तर बड़े विस्मित हुए और पूछने लगे:—

पाण्डवों के हथियार तो सब साफ़ रक्खे हैं, पर वे लोग इस समय कहाँ हैं ? प्रसिद्ध स्त्री-रत्न द्रौपदी भी उनके साथ वन में गई थी; उनका भी कुछ पता है ?

तब अर्जुन ने उत्तर से अपना और अन्य पाण्डवों का सब्बा हाल कह सुनाया। उत्तर चौंक पड़े। उन्होंने विनयपूर्वक अर्जुन को प्रणाम करके कहा:—

हे महाबाहु! बड़े सौभाग्य की बात है जो आपके दर्शन हुए। अज्ञानता के कारण यदि कोई अनुचित बात हमारे मुँह से निकल गई हो तो हमें क्षमा कीजिए। आपका परिचय पाने से हमारा सब डर दूर हो गया। हम बड़ी प्रसन्नता से आपके सारथि बनेंगे। बताइए, किस तरफ़ चलना होगा।

अर्जुन ने कहा:—हे राजकुमार! हम तुम पर बहुत प्रसन्न हुए हैं। तुम बे-खटके शत्रुओं के बीच में रथ ले चलो। हमने बहुत दफ़े अनेक लोगों के साथ अकेले युद्ध किया है। अब तो महादेव की कृपा से हमें कितने ही दिव्यास्त्र प्राप्त हो गये हैं। इसलिए जीत में कोई सन्देह नहीं।

यह कह कर अर्जुन ने स्त्रियों का वेश बदल डाला और हथियारों के साथ रक्खा हुआ कवच पहन कर सफ़ेद कपड़े से बालों को ढक लिया। फिर सारे शस्त्रास्त्र और गाण्डीव लेकर अत्यन्त भयङ्कर धनुष्टङ्कार और महा विकट शङ्खध्वनि करते हुए वे कौरवों की ओर चले। यह देख द्रोणाचार्य्य कहने लगे:—

हे कौरवगण! देखो इनके रथ की चाल से पृथ्वी काँपती है। अतएव ये निश्चय ही अर्जुन हैं। इनकी परिचित धनुष्टङ्कार और शङ्खध्वनि सुन कर योद्धा लोग सहम गये हैं और उनके चेहरे पीले पड़ गये हैं। इससे गायों को यहाँ से हटा कर और मोरचाबन्दी करके होशियार हो जाना चाहिए। नहीं तो बचना कठिन है।

दुर्योधन भी कुछ डर कर कहने लगे:—

इस बात का अच्छी तरह निश्चय कर लेना चाहिए कि पाण्डवों के प्रतिज्ञात तेरह वर्ष बीत गये कि नहीं। लोग समझते थे कि अभी कुछ दिन बाक़ी हैं। पर हमें अब इसमें सन्देह होता है। अपने मतलब की बात सोचते समय लोगों का भ्रम में पड़ जाना कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं। पितामह भीष्म हिसाब लगा कर इस बात को ठीक ठीक जान सकते हैं। किन्तु कुछ भी हो, डरने का कोई कारण नहीं; हमने तो प्रतिज्ञा कर ली है कि यह आदमी चाहे कोई मत्स्यवीर हो, चाहे मत्स्यराज हो, अथवा चाहे ख़ुद अर्जुन ही क्यों न हो, हम इससे लड़ेंगे ज़रूर। अपने शिष्य अर्जुन का आचार्य्य बहुत प्यार करते हैं। इससे उनकी शक्ति को वे बढ़ा कर बताते हैं जिसमें हम लोग डर जायँ। किन्तु हम सबको सुना कर कहते हैं कि चाहे पैदल हो, चाहे सवार, जो कोई इस युद्ध से भागेगा वह हमारे बाण का निशाना होगा। यदि स्वयं इन्द्र अथवा यम भी

गायें लौटाने आवें तो भी कोई आदमी बिना लड़े हस्तिनापुर न लौट सकेगा। महारथी लोग क्यों इस समय रथों पर घबराये से बैठे हैं? उन्हें इस बात का शीघ्र ही निश्चय करना चाहिए कि किस तरह युद्ध करना होगा।

कर्ण ने कहा:—बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे सारे धनुर्धारी योद्धा डर से गये हैं। जान पड़ता है वे लड़ना नहीं चाहते। यह मनुष्य चाहे मत्स्यराज हो, चाहे अर्जुन, इसने ऐसा कौन काम किया है जिससे सब लोग डर गये? यह ठीक है कि अर्जुन नामी धनुर्धारी हैं; किन्तु हम उनसे किस बात में कम हैं? आज हम लड़ाई के मैदान में अर्जुन को मार कर दुर्योधन के सामने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे।

दुर्योधन का आचार्य्य पर दोषारोप करना और कर्ण की आत्मश्लाघा कोई भी न सह सका।

कृप ने कहा:—हे कर्ण! क्रूर युद्ध करना और बुरी सलाह देना तो तुम खूब जानते हो; पर यह ज़रा भी नहीं जानते कि राज्य की सच्ची भलाई किस बात में है। देश और काल का विचार करके ही युद्ध करना अच्छा होता है। ऐसा न करने से हानि के सिवा लाभ नहीं होता। हमारी राय तो यह है कि अर्जुन से इस दशा में युद्ध करना हमारे लिए किसी तरह अच्छा नहीं। इस महावीर ने अकेले ही कुरुदेश की रक्षा की है और अग्नि को तृप्त किया है। इसके सिवा पाँच वर्ष कठोर ब्रह्मचर्य्य रख कर साक्षात् भगवान् के दर्शन किये हैं। हे कर्ण! तुमने कब और कौनसा बड़ा काम अकेले किया है जो अर्जुन का मुक़ाबला करने का साहस करते हो? वृथा घमण्ड करने की ज़रूरत नहीं। आओ, हम लोग मोरचा बाँध कर सावधानी से युद्ध करें।

अश्वत्थामा ने कहा:—हे कर्ण! सारी गायें अब तक भी हमारे अधिकार में नहीं आईं। इसलिए अभी से क्यों उछल कूद मचाते हो? जुआ खेल कर कपट से तुमने जिनका धन हरण किया है क्या उनके साथ सन्मुख युद्ध करके कभी जीते भी हो?

इस घरेलू झगड़े को होते देख भीष्म बड़े दुखी हुए। वे सबको समझा कर कहने लगे:—

कृप और अश्वत्थामा का कहना बहुत ठीक है। पर वे कर्ण का मतलब नहीं समझे। इसी से रुष्ट हो गये हैं। सिर्फ़ सबको उत्तेजित करने के लिए कर्ण ने महारथियों को डरपोक कहा है। पर दुर्योधन को यह उचित न था कि वे आचार्य्य पर दोष लगाते। जो हो, अभी हमें बहुत बड़ा काम करना है। सबको उचित है कि एक दूसरे को क्षमा करके यह स्थिर करें कि युद्ध कैसे करना चाहिए। हे दुर्योधन! हमारी राय सुनिए।

हम समझते हैं कि भरतवंश के आचार्य्य द्रोण से बढ़ कर हमारा अगुआ होने योग्य और कोई नहीं है। हे आचार्य्य-पुत्र ! यह आपस के झगड़े का समय नहीं। इसलिए तुम भी क्षमा करके युद्ध में शामिल होओ।

तब अश्वत्थामा ने कहा :—

हमारी भी इच्छा विवाद करने की नहीं। पिता ने तो एक उदार योद्धा की तरह शत्रु के गुणों का केवल वर्णन किया था। पक्षपात की उन्होंने कोई बात नहीं की।

दुर्योधन ने भी द्रोण से कहा:—

महाशय ! क्षमा कीजिए। आपके सन्तुष्ट रहने ही से हमारी भलाई है।

द्रोण ने उत्तर दिया:—

महात्मा भीष्म की बात ही से हम प्रसन्न हो गये हैं।

फिर वे भीष्म से बोले:—

हे भीष्म ! दुर्योधन की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। यह नहीं हो सकता कि तेरह वर्ष पूरे होने के पहले ही अर्जुन ने अपने को प्रकट कर दिया हो। इसलिए हिसाब लगा कर पहले इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए।

कुछ देर सोच कर भीष्म ने कहा:—

ताराओं की चाल में अन्तर होने के कारण हर साल कई दिन बच रहते हैं। फल यह होता है कि प्रति पाँचवें वर्ष दो महीने बढ़ आते हैं। इसलिए यद्यपि साधारण हिसाब से तेरह वर्ष पूरे होने में कई दिन बाक़ी हैं, तथापि उक्त गणना के अनुसार पाण्डवों के निश्चित तेरह वर्ष पूरे हो गये। यही नहीं, किन्तु पाँच महीने छः दिन और अधिक हो गये। इसी लिए आज अर्जुन लड़ाई के मैदान में इस तरह बे-खटके विराजमान हैं। अब इसके सिवा और कोई उपाय नहीं कि बड़ी होशियारी से युद्ध किया जाय। अतएव धर्म के अनुसार युद्ध करना चाहिए। यह तो निश्चित ही है कि एक पक्षवाले जीतेंगे और दूसरे पक्षवाले हारेंगे। इसलिए इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। हमारा उपदेश सुनिए—यह सारी सेना चार भागों में बाँट दी जाय। एक भाग की रक्षा में दुर्योधन शीघ्र ही अपने नगर लौट जायँ। दूसरा भाग गायें लेकर जाय। बाक़ी दो भागों से हम लोग अर्जुन का मुक़ाबला करें।

इस बात को सब लोगों ने पसन्द किया। भीष्म ने पहले तो दुर्योधन को; फिर गायों को, हस्तिनापुर की ओर रवाना किया। इसके बाद वे मोरचाबन्दी करने के लिए तैयार हुए। वे बोले:—

हे आचार्य्य ! आप बीच में रहें। अश्वत्थामा बाईं तरफ़ और कृपाचार्य्य दाहिनी तरफ़ रहें। कर्ण आगे बढ़ें और हम पीछे मदद करने के लिए रहें।

सब लोग सज कर अर्जुन के आने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि इतने में द्रोणाचार्य्य को बहुत दिनों के बाद अपने प्यारे शिष्य के दर्शन हुए। वे सब की तरफ़ देख कर कहने लगे:—

यह सुनो, गाण्डीव की भयङ्कर टङ्कार सुनाई देती है। देखो, दो बाण तो हमारे पैरों तले आ गिरे और अन्य दो कानों को छूकर सनसनाते हुए निकल गये। इनके द्वारा महाबली अर्जुन हमारे पैर छूते हैं और कुशल पूछते हैं।

तब निकट पहुँच कर अर्जुन ने राजकुमार उत्तर से कहा:—

हे सारथि ! तुम घोड़ों की रास खींचो; रथ को खड़ा करो। हम यह देखना चाहते हैं कि कुरुकुलाधम दुर्योधन इस सेना में कहाँ पर है। अन्य कौरवों से लड़ने की कोई ज़रूरत नहीं। दुर्योधन के हारते ही सब हार जायँगे। पर वह तो इन लोगों में कहीं देख नहीं पड़ता। यहाँ से कुछ दूर सेना के चलने से जो ग़ुबार उड़ रहा है उसी के साथ वह दुरात्मा ज़रूर भागा जाता है। इसलिए इन महारथियों को छोड़ कर उधर ही शीघ्र रथ ले चलो।

उत्तर ने बड़े यत्न से रास साध कर जिधर दुर्योधन जाते थे उधर ही घोड़े दौड़ाये। कौरव लोग अर्जुन का मतलब समझ गये। इससे उनको रोकने के लिए दौड़े। अर्जुन ने अपने तेज़ बाणों से सैनिकों को बेहद पीड़ित करके पहले गायों को गर लौटा दिया। फिर दुर्योधन पर आक्रमण करने का अवसर ढूँढ़ने लगे। मौक़ा देखते ही उन्होंने उत्तर से कहा:—

हे राजपुत्र ! इस रास्ते से जल्दी चलो। इससे सेना के बीच में पहुँच जायँगे। यह देखो, मस्त हाथी की तरह कर्ण हमसे लड़ने आते हैं। इसलिए पहले इन्हीं की तरफ़ चलो।

ज्यों ही राजकुमार उत्तर उधर चले त्यों ही बहुत से सहायकों के साथ कर्ण अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। अर्जुन ने रुष्ट होकर पहले तो विकर्ण को रथ से गिरा दिया, फिर अधिरथ के पुत्र अर्थात् कर्ण के भाई को मार डाला। यह देख कर्ण को बड़ा क्रोध आया। वे सामने आकर लड़ने लगे। अन्य कौरव लोग टिठक कर यह भयङ्कर युद्ध देखने लगे।

पहले जब कर्ण ने अर्जुन के फेंके हुए बाणों को रास्ते ही में रोक कर उनके घोड़ों

को घायल किया तब वे लोग बड़े आनन्द से ताली देकर और शङ्ख भेरी आदि बजा-कर कर्ण की प्रशंसा करने लगे। इससे अर्जुन सोकर जागे हुए सिंह की तरह क्रोध से जल उठे। उन्होंने हज़ारों बाण चला कर कर्ण के रथ को ढक दिया और एक तेज़ बाण से उन्हें घायल कर दिया। फिर अनेक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों से कर्ण की बाँह, सिर, जाँघ, मस्तक और गर्दन को घायल किया। इससे कर्ण प्रायः मूर्छित हो गये और लड़ाई का मैदान छोड़ कर भागे।

कर्ण के भागने पर दुर्योधन से न रहा गया। वे अपनी सेना लेकर अर्जुन पर आक्रमण करने के लिए युद्ध के मैदान की ओर लौटे। शत्रु की सेना से अपने को घिरा हुआ देख अर्जुन ने पहले कृपाचार्य्य पर आक्रमण करने की इच्छा की। इसलिए उन्होंने उत्तर को उधर ही चलने की आज्ञा दी।

कृप ने अर्जुन के बाणों के टुकड़े टुकड़े करके पहले उनको घायल किया। इससे अर्जुन ने पहले ही की तरह उत्तेजित होकर कृप के घोड़ों को अपने शरसमूह से छेद दिया। इसलिए घोड़े भड़क कर इस तरह उछलने कूदने लगे कि कृपाचार्य्य रथ से गिर पड़े। यह देख कर अर्जुन ने कृप पर और बाण न चलाये। गिरे हुए शत्रु को मारना उन्होंने अनुचित समझा। पर ज्यों ही वे रथ पर फिर चढ़े त्यों ही फुरतीले अर्जुन ने उनका धनुष काट कर उनके घोड़े और सारथि को मार डाला। तब कृप की विपद को देख कर अन्य योद्धाओं ने उनको वहाँ से हटा दिया और अर्जुन का मुक़ाबला करने दौड़े।

इसके अनन्तर अर्जुन की आज्ञा से विराट के पुत्र उत्तर ने द्रोणाचार्य्य की तरफ़ रथ चलाया। बराबर बलवाले गुरु और शिष्य का मुक़ाबला सब लोग विस्मित हो कर देखने लगे और सेना में बड़े ज़ोर से शङ्खध्वनि होने लगी। गुरु को देख कर अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और विनीत भाव से कहने लगे:—

हे आचार्य्य! वनवास करा कर हमें बड़े बड़े कष्ट दिये गये हैं। इस कारण अब हमारी गिनती कौरवों के शत्रुओं में है। अतएव आप हम पर रुष्ट न हूजिएगा। यदि आप पहले हम पर वार न करेंगे तो हम आपसे युद्ध न कर सकेंगे। इसलिए पहले आप ही बाण चलाइए। अर्जुन के इच्छानुसार द्रोण ने जो बाण चलाया तो अर्जुन ने रास्ते ही में उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। इस तरह द्रोण और अर्जुन की लड़ाई शुरू हुई। दोनों ही महारथी थे; दोनों ही दिव्य अस्त्र चलाने में निपुण थे। सब लोग चकित होकर उनके अद्भुत काम देखने लगे।

कौरवों ने कहा:—आचार्य्य की बराबरी अर्जुन के सिवा और कोई न कर सकता था। क्षत्रिय धर्म्म कैसा भयानक है कि अर्जुन को गुरु के साथ लड़ना पड़ा।

इधर दोनों वीर सामने आकर एक दूसरे पर बाण चलाने और घायल करने लगे। अर्जुन का फुरतीलापन, उनका लक्ष्य-भेद-कौशल, और बहुत दूर से बाण मारने की योग्यता देख कर द्रोण को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। धीरे धीरे क्रोध में आकर अर्जुन दोनों हाथों से इतनी तेज़ी से बाण बरसाने लगे कि वे कब बाण उठाते हैं और कब फेंकते हैं—यह कोई भी न देख सकता था। आचार्य्य को अर्जुन के बाणों से छिप गया देख सैनिक हाहाकार करने लगे। तब अश्वत्थामा एकाएक अर्जुन की तरफ़ दौड़े। इससे उनका ध्यान दूसरी तरफ़ चला गया। फल यह हुआ कि द्रोणाचार्य्य को वहाँ से हट जाने का मौक़ा मिल गया।

इसके बाद अर्जुन और अश्वत्थामा का युद्ध छिड़ गया। सुयोग पाकर महातेजस्वी आचार्य्यपुत्र ने एक धारदार बाण से गाण्डीव की डोरी काट डाली। यह देख कर कौरव लोग अश्वत्थामा को धन्य धन्य कहने लगे। परन्तु अर्जुन ने गाण्डीव पर झटपट दूसरी डोरी चढ़ा दी और अश्वत्थामा को फिर अपने ऊपर वार करने का मौक़ा न दिया। उन्होंने क्रुद्ध हुए सर्प के समान इतने बाण अश्वत्थामा पर बरसाये कि उनको रोकते रोकते अश्वत्थामा के सारे अस्त्र-शस्त्र चुक गये।

इस बीच में थोड़ा सा विश्राम लेकर कर्ण फिर लड़ाई के मैदान में आये। यह देख कर क्रोध से भरे अर्जुन ने अश्वत्थामा को तो छोड़ दिया; कर्ण के सामने उपस्थित होकर वे बोले:—

हे कर्ण! कौरवों की सभा में तुमने बड़े घमण्ड से कहा था कि हमारे बराबर योद्धा दुनिया भर में नहीं है! सो आज हम तुम्हें बता देंगे कि तुम कितने पराक्रमी हो। इससे तुम दूसरे का अपमान फिर कभी न करोगे। तुमने आज तक जितने कठोर वचन कहे और जितने दुष्कर्म्म किये हैं उन सबका पूरा बदला आज तुम्हें मिल जायगा। रे दुरात्मा! जिस क्रोध को हम बारह वर्ष तक वनवास में रोके रहे हैं उसे आज प्रत्यक्ष देख।

कर्ण ने उत्तर दिया:—

हे अर्जुन! जो कुछ तुमने कहा उसे कर दिखाओ। वृथा बकवाद से क्या लाभ? तुम अपने को स्वतन्त्र समझते हो, यह तुम्हारी भूल है। अब तक तुम प्रतिज्ञा के

बन्धन में जैसे बँधे थे वैसे ही अब भी हमारे बल-विक्रम से अपने को बँधा हुआ समझो। लड़ने की यह तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही दूर हो जायगी।

अर्जुन ने कहा:—हे सारथि-पुत्र ! तुम इसी युद्ध के मैदान से अभी भाग गये थे; तिस पर भी तुम्हारा शेखी मारना न गया। तुम सा निर्लज्ज दुनिया में और कहीं न होगा। यह कहते कहते वीर अर्जुन ने कवच को तोड़ कर भीतर घुस जानेवाले बाण बरसाना आरम्भ किया। उन्होंने बाण से कर्ण के तरकश की डोरी काट डाली। तब कर्ण ने दूसरी तरकश से बाण लेकर अर्जुन के हाथ पर मारा। इससे थोड़ी देर के लिए उनकी मुट्ठी ढीली पड़ गई। पर तुरन्त ही क्रोध में आकर उन्होंने कर्ण का धनुष काट डाला और उनके फेंके हुए अन्यान्य अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया। उन्होंने कर्ण के सारे शस्त्र खर्च करा दिये। इसके बाद, कौरवों की सेना आने के पहले ही अर्जुन ने कर्ण के घोड़ों का नाश करके उनकी छाती में एक तेज़ बाण मारा। इससे कर्ण व्याकुल होकर ज़मीन पर गिर पड़े और बेहोश हो गये। जब थोड़ी देर बाद होश में आये तब पीड़ा से अधीर होकर युद्ध-क्षेत्र छोड़ भागे।

इस बीच में दुर्योधन आ गये। यह देख कर कि अर्जुन को जीतना बहुत कठिन है उन्होंने भाइयों के साथ दल बाँध कर अर्जुन पर आक्रमण किया। पर महावीर अर्जुन ने सेना-सहित दुर्योधन आदि को सहज ही में मार भगाया। अन्त में उन्होंने पितामह भीष्म का सामना किया।

पहले दोनों योद्धा तरह तरह के दिव्य अस्त्र चलाने लगे। पर बड़ी देर तक युद्ध करने पर भी कोई किसी को पीड़ित न कर सका। कुछ देर में बाणों से लड़ाई होने लगी। उस समय अर्जुन की निपुणता और फुरतीलापन देख कर सब लोग चकित हो गये। भीष्म का धनुष तोड़ कर उन्होंने उन्हें अवसर दिये बिना ही उनकी छाती में बाण मारा। इससे महात्मा भीष्म रथ की पटिया पकड़ कर बड़ी देर तक अचेत रहे। उनकी यह दशा देख उनका सारथि रथ को युद्ध के मैदान से बाहर भगा ले गया।

इसके बाद पहले हारे हुए योद्धा लोग बार बार युद्ध के मैदान में लौट कर कभी अलग अलग, और कभी धर्म-युद्ध के ख़िलाफ़ दल बाँध कर, अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। तब अर्जुन ने गाण्डीव पर चढ़ा कर प्रचण्ड गरज के साथ एक ऐसा सम्मोहन बाण छोड़ा कि सारे कौरव बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े।

इस समय राजकुमारी उत्तरा की बात अर्जुन को याद आई। उन्होंने उत्तर से कहा:—

हे उत्तर ! कौरव लोग इस समय बेहोश पड़े हैं। अतएव रथ से उत्तर कर तुम

उनके कपड़े राजकुमारी के लिए ले आवो। देखो सावधान रहना। भीष्म इस सम्मोहन-अस्त्र का तोड़ जानते हैं। इसलिए उनके घोड़ों के बीच होशियारी से जाना। तब उत्तर अचेत पड़े हुए वीरों के बीच में जाकर द्रोण और कृप के सफ़ेद कपड़े, कर्ण के पीले कपड़े और अश्वत्थामा तथा दुर्योधन के नीले कपड़े लेकर फिर अपने रथ पर जा चढ़े और घोड़ों की रास थाम गायों के पीछे नगर की ओर चले। इतने में कौरवों को कुछ कुछ होश आने लगा। दुर्योधन ने देखा कि अर्जुन चुपचाप गायें लिये जाते हैं। इससे उन्होंने बड़ी व्याकुलता से कहा:—

हे योद्धागण ! तुमने अर्जुन को क्यों छोड़ दिया ? उसे ऐसा घायल करो कि अपने घर न लौट सके।

तब भीष्म ने हँस कर कहा:—

हे दुर्योधन ! तुम्हारी बल-बुद्धि इस समय कहाँ गई है ? जब तुम लोग बेहोश पड़े थे तब महावीर अर्जुन ने कोई निर्दयता का काम नहीं किया। तीनों लोक पाने के लिए भी वे धर्म नहीं छोड़ते। इसी लिए इस युद्ध में तुम लोग मारे जाने से बच गये हो। अब शेखी मारना तुम्हें शोभा नहीं देता। अर्जुन गायें लेकर जायँ। तुम जीते जी हस्तिनापुर लौट चलो, यही बड़े सौभाग्य की बात है।

पितामह की यह यथार्थ बात सुन कर दुर्योधन ने ठंडी साँस ली और फिर कुछ न बोले।

विराट के नगर को लौटते समय अर्जुन ने उत्तर से कहा:—

हे कुमार ! यह बात सिर्फ़ तुम्हीं जानते हो कि पाण्डव लोग तुम्हारे पिता के आश्रय में रहते हैं। परन्तु उचित समय आने के पहले इसे प्रकट करना मुनासिब नहीं। इसलिए तुम सबसे यही कहना कि युद्ध में तुम्हीं जीत कर गायें लौटा लाये हो।

उत्तर ने कहा:—हे वीर ! किसी को भी विश्वास न होगा कि जो काम आपने किया है वह हमसे हो सकता है। जो हो, आपकी आज्ञा पाये बिना यह बात हम पिता से भी न कहेंगे।

अर्जुन ने कहा:—अब ग्वाले नगर में जाकर आपकी जीत का समाचार सुनावें। हम तीसरे पहर चलेंगे। क्योंकि हमें बृहन्नला का वेश फिर धारण करना पड़ेगा।

इधर पाण्डवों के साथ विराटराज त्रिगर्तों को हरा कर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर लौट आये और शीघ्र ही अन्तःपुर में पहुँचे। वहाँ यह खबर पाकर कि उत्तर अकेले

हो कौरवों से लड़ने गये हैं वे बड़े व्याकुल हुए। उन्होंने योद्धाओं को आज्ञा दी कि वे सारी सेना लेकर उत्तर की सहायता के लिए तुरन्त जायँ। उन्होंने कहा:—

हे सैनिक! हमें यह समाचार बहुत जल्द देना कि कुमार जीवित हैं या नहीं। उस स्त्री-वेशधारी नर्तक को अपना सारथि और सहायक बना कर क्या वे अब तक जीते बचे होंगे!

यह सुन कर युधिष्ठिर ने मुसकरा कर कहा:—

महाराज! जब बृहन्नला राजकुमार का सारथि है तब आप चिन्ता न कीजिए। कौरव लोग गायें न ले जा सकेंगे।

ये बातें हो ही रही थीं कि दूतों ने आकर उत्तर के जीतने की ख़बर दी। विराट ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें इनाम दे कर मन्त्री से कहा:—

सड़कों पर ध्वजा-पताकायें तुरन्त उड़ाई जायँ और यथाविधि देवताओं की पूजा की जाय। योद्धा लोग और बाजेवाले आगे जाकर उत्तर से मिलें और बजाते गाते उन्हें नगर में ले आवें। सब लोग मतवाले हाथियों पर सवार हो कर चारों तरफ़ जीत की ख़बर फैलावें। कुमारियों के साथ उत्तरा अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर भाई की अगवानी के लिए तैयार रहे।

उत्सव की ये सब तैयारियाँ जब होने लगीं तब बड़े प्रसन्न होकर विराट ने द्रौपदी से कहा:—

हे सैरिन्ध्री! अब पासे लाओ, कङ्क के साथ हम जुआ खेलेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा:—मारे आनन्द के अथवा और किसी कारण से जो मनुष्य मत्त हो रहा हो उसके साथ जुआ खेलना उचित नहीं। इसलिए कोई और काम करने की आप हमें आज्ञा दें।

विराट ने कहा:—हे कङ्क! जुआ खेलने की हमारी बड़ी इच्छा है। और कोई खेल हम नहीं खेलना चाहते। जुए में सब कुछ हार जाने पर भी हम दुःखित नहीं होते। इसलिए तुम सङ्कोच न करो।

कङ्क ने कहा:—महाराज! आपने सुना होगा कि महाराज युधिष्ठिर जुए ही में अपना राज्य हार गये थे। तब से जुए को हम बिलकुल ही पसन्द नहीं करते। जो हो यदि आपकी बड़ी ही इच्छा हो तो आइए खेलें।

जुआ आरम्भ होने पर विराट कहने लगे:—

आज कैसे सौभाग्य की बात है कि हमारे पुत्र ने युद्ध में सारे कौरवों को हरा दिया।

युधिष्ठिर ने कहा:—महाराज ! बृहन्नला जिसका सारथि होगा वह ज़रूर ही युद्ध में जीतेगा।

इस बात से कुछ रुष्ट हो कर राजा ने कहा:—

कङ्क ! कौरवों को क्या हमारा पुत्र नहीं हरा सकता ? तुम बार बार उसकी उपेक्षा करके एक सामान्य नाचनेवाले की क्यों प्रशंसा करते हो ?

युधिष्ठिर ने कहा:—महाराज ! जिस युद्ध में भीष्म, द्रोण, कृप और कर्ण इकट्ठे हुए हैं वहाँ बृहन्नला के सिवा और कोई नहीं जीत सकता। तब क्रोध से अधीर होकर मत्स्यराज बोले:—

कङ्क ! हमारे बार बार मना करने पर भी तुम चुप नहीं होते। तुम्हें वृद्ध समझ कर अभी तक हमने क्षमा किया था। पर यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो फिर कभी ऐसी बात न कहना।

युधिष्ठिर को इस तरह डाँट कर विराट ने उनके मुँह पर बड़े ज़ोर से पाँसे फेंक कर मारे। इससे धर्मराज की नाक से ख़ून बहने लगा। यह देख कर सैरिन्ध्री सोने के एक लोटे में जल ले आई और उनकी सेवा करने लगी।

इसी समय राजकुमार उत्तर महल के दरवाज़े पर आ पहुँचे। द्वारपाल ने उनके आने की ख़बर राजा को दी। मत्स्यराज ने बहुत प्रसन्न होकर कहा:—

हे द्वारपाल ! उत्तर और बृहन्नला को शीघ्र भीतर ले आओ। उन्हें देखने के लिए हम बड़े व्याकुल हैं।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने द्वारपाल को अलग ले जाकर उसके कान में कहा:—

ऐसा करना जिसमें बृहन्नला कुछ देर बाद आवे। नहीं तो, यदि वह देख लेगा कि अकारण ही हमारी नाक से ख़ून गिरा है तो महाराज न बचेंगे।

कुमार उत्तर ने सभा में आकर पिता के पैर छुए और कङ्क को प्रणाम किया। उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर का मुँह ख़ून से लथपथ है। इससे व्याकुल हो कर पिता से पूछा:—

हे पिता ! इन्हें किसने मारा ! किस साहसी को यह पाप करने की हिम्मत हुई ?

विराट ने कहा:—पुत्र ! तुम्हारी जीत सुन कर हम बड़े प्रसन्न हुए। इससे हम

तुम्हारी प्रशंसा करने लगे। पर यह ब्राह्मण हमारी बात न मान कर बार बार बृहन्नला की प्रशंसा करने लगा। इसलिए हमीं ने इसे मारा है।

उत्तर ने कहा:—महाराज! आपने बड़ा अन्याय किया। इनको शीघ्र ही प्रसन्न कीजिए। नहीं तो ब्रह्मशाप से आप अवश्य ही नष्ट हो जाइएगा।

जब विराट ने धर्मराज से क्षमा माँगी तब उन्होंने कहा:—

महाराज! घबराइए नहीं। हमने आपको पहले ही क्षमा कर दिया है। बलवान् मनुष्य अपने अधीनों पर कभी कभी बिना कारण ही के क्रोध कर बैठते हैं।

कुछ देर में युधिष्ठिर की नाक से ख़ून निकलना बन्द हो गया। तब बृहन्नला ने आकर सबको प्रणाम किया। राजा ने उनका अभिनन्दन करके उनके सामने ही पुत्र की प्रशंसा आरम्भ की:—

वत्स! तुम्हारे होने ही से हम सच्चे पुत्रवान् हुए। जो महावली कर्ण दिन रात लड़ कर भी नहीं थकते उन्हें तुमने कैसे हराया! जिन कुरुकुल-श्रेष्ठ भीष्म के बराबर योद्धा तमाम दुनिया में नहीं उनसे तुमने कैसे युद्ध किया? सब शास्त्रों में निपुण और यादवों तथा कौरवों के गुरु आचार्य्य द्रोण की विकट मार को तुम कैसे सह सके? तुमने हरी हुई गायें लौटा कर बड़ा भारी काम किया है।

उत्तर ने बड़ी नरमी से कहा:—

हे पिता! हमारी क्या मजाल कि ये सब भयङ्कर काम हम ख़ुद कर सकते। हम तो डर कर भगे आते थे। पर एक देवपुत्र हमारे पास आया। उसी ने हमारे डर को दूर करके कौरवों को हराया और गायों का उद्धार किया।

पुत्र की बात सुन कर विराट को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंनेकहा:—

बेटा! जिस महात्मा ने हमारा इतना उपकार किया वे इस समय कहाँ हैं?

उत्तर ने कहा:—हे पिता! वे उसी समय अन्तर्धान हो गये थे। कल या परसों फिर प्रकट होंगे।

तब महाराज की आज्ञा से अर्जुन अन्तःपुर में गये और राजकुमारी को वे सब लूटे हुए वस्त्र दिये। गुड़ियों के लिए बड़े बड़े मूल्यवान् वस्त्र पाकर उत्तरा बड़ी प्रसन्न हुई।

इसके बाद पाण्डव लोग कुमार उत्तर के साथ एकान्त में सलाह करने लगे कि किस समय और किस तरह हम अपने को प्रकट करें।

———

१३—पाण्डवों का प्रकट होना और सलाह करना

प्रतिज्ञा से छूटे हुए पाण्डवों ने अपने को विराटराज पर प्रकट करने के लिए उपयुक्त समय स्थिर कर लिया। निश्चित दिन आने पर स्नान के बाद सफ़ेद कपड़े और तरह तरह के गहने पहन कर वे लोग राजसभा में पहुँचे और विराट के सिंहासन पर धर्म्मराज को बिठा कर उनके चारों तरफ़ बैठ गये। सैरिन्ध्री का वेश त्याग कर द्रौपदी भी वहाँ आ गई।

जब राज्य का काम करने का समय आया तब विराटराज सभा में आये। पाण्डवों का यह अद्भुत व्यवहार देख कर पहले तो वे विस्मित और कुपित हुए। पर यह समझ कर कि शायद इसमें कोई गूढ़ रहस्य हो कुछ देर सोच कर बोले:—

हे कङ्क! हमने तुम्हें जुआ खेलने में निपुण समझ कर अपना सभासद बनाया था। इस समय राजों का सा वेश बना कर हमारे सिंहासन पर क्यों बैठे हो?

अर्जुन ने हँस कर उत्तर दिया:—

हे राजन्! ये महातेजस्वी पुरुष हैं। ये तो देवताओं के भी बराबर बैठने योग्य हैं। इनका यश सूर्य्य के प्रकाश की तरह चारों दिशाओं में फैला हुआ है। ये कुरुवंश में श्रेष्ठ धर्म्मराज युधिष्ठिर हैं। इसलिए आपके सिंहासन पर बैठने के ये सर्वथा योग्य हैं।

बड़े आश्चर्य में आकर विराटराज ने कहा:—

यदि यही राजा युधिष्ठिर हैं तो इनके भाई और इनकी स्त्री द्रौपदी कहाँ है?

अर्जुन ने कहा:—हे राजन्! जो आपकी रसोई बनाते थे और जिन्होंने अपना नाम वल्लभ बताया था वही महाबली भीमसेन हैं। जिन्होंने दुरात्मा कीचक और उसके वंश का संहार करके सैरिन्ध्री की रक्षा की थी वे गन्धर्व भी यही हैं। आपके घोड़ों और गायों के अधिकारी ही माद्री के दोनों कान्तिमान् पुत्र नकुल और सहदेव हैं। यह अलौकिक रूपवती और पतिव्रता सैरिन्ध्री ही द्रौपदी है। इन्हीं के लिए कीचक मारा गया था। और हम भीमसेन के छोटे भाई अर्जुन हैं। हमारा विशेष वृत्तान्त आपने सुना ही होगा। हे राजन्! हम लोगों ने आपके राज्य में, गर्भ में रहने के समान, साल भर बड़े सुख से अज्ञात वास किया है।

इस समय कुमार उत्तर इतने दिनों की रुकी हुई कृतज्ञता प्रकट करके बोले:—

हे पिता! जिस तरह सिंह हिरनों के झुण्ड को मारता है उसी तरह इन लम्बी भुजाओंवाले, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने शत्रुओं को मार गिराया था। जिस समय

सारे रथों को तोड़ कर लड़ाई के मैदान में ये बे-खटके फिरते थे उस समय इन्होंने बड़े बड़े हाथियों को मार गिराया था। इनके बाण लगते ही वे बड़े बड़े दाँतों को ज़मीन में गाड़ कर मर जाते थे। इनके शङ्ख की भयावनी ध्वनि सुनते ही हम भय से व्याकुल हो गये थे।

यह सुन कर विराटराज प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिर के पास बैठे और उनका यथोचित सम्मान किया। फिर अपनी सेना, ख़ज़ाना और नगर-समेत समस्त राज्य देकर उनकी पूजा की। तदनन्तर अपने भाग्य की बड़ाई करते हुए उन्होंने अन्य पाण्डवों के माथे सूँघे और उनका आलिङ्गन किया। इसके बाद उन्होंने युधिष्ठिर से कहा:—

हे धर्म्मराज! बड़े सौभाग्य की बात है जो आप लोग वनवास और अज्ञात वास समाप्त करके प्रतिज्ञा से छूट गये। दुरात्मा कौरवों को अज्ञात वास के समय आपकी कोई ख़बर न मिली, यह बहुत ही अच्छा हुआ। इस समय हमारे राज्य में जितनी सम्पत्ति है वह सब आप ही की है। महाबली अर्जुन हमारी कन्या के उपयुक्त पात्र हैं। इसलिए वे उत्तरा का पाणिग्रहण करें।

अर्जुन की इच्छा जानने के लिए युधिष्ठिर ने उनकी तरफ़ देखा। उनका अभिप्राय जान कर अर्जुन ने विराटराज से कहा:—

हे राजन्! इसमें सन्देह नहीं कि पाण्डव और मत्स्य लोगों में परस्पर सम्बन्ध होना बहुत अच्छा है। किन्तु आपके अन्तःपुर में हम राजकुमारी के गुरु की तरह रहते रहे हैं। वह भी हमें पिता की तरह मानती रही है। इसलिए यदि आप उचित समझिए तो सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए हमारे पुत्र अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह कर दीजिए।

अर्जुन की बात से प्रसन्न होकर विराट ने कहा:—

हे अर्जुन! तुम बड़े धर्म्मात्मा हो। उत्तरा के साथ विवाह करने से इनकार करके तुमने बहुत ही उचित काम किया। अब बहुत जल्द अभिमन्यु के साथ उत्तरा के विवाह की तैयारी करना चाहिए।

तदनन्तर विवाह में आने का न्योता देने के लिए पहले तो कृष्ण के पास फिर अन्य मित्रों के राज्य में दूत भेजे गये। यह ख़बर फैलते ही कि पाण्डव लोग प्रतिज्ञा-पालन करके छूट गये हैं उनके मित्र राजा लोग उनकी सहायता के लिए सेना ले लेकर झुण्ड के झुण्ड आने लगे।

पहले युधिष्ठिर के मित्र काशिराज और शिविराज एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर

विराट-नगर में आये। फिर महाबली द्रुपद और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के साथ, एक अक्षौहिणी सेना लेकर उपस्थित हुए।

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का सा-वर पाने से विराटराज बड़े प्रसन्न थे। इसलिए देश विदेश से आये हुए राजों की अगवानी वे बड़े आदर से करने लगे।

इसके बाद द्वारका से कृष्ण, बलदेव, सात्यकि आदि यादव-वीर अभिमन्यु को लेकर आये। पाण्डवों के नौकर इन्द्रसेन आदि भी रथ आदि लेकर आये। पाण्डवों के लिए राजोचित धन और वस्त्रों की ज़रूरत समझ कर कृष्ण सब चीज़ें अपने साथ लाये और पाण्डवों को दीं।

इसके बाद विधि के अनुसार विवाह का कार्य आरम्भ हुआ। शङ्ख, भेरी, ढोल आदि बाजे बजने लगे। बहुत सा मांस, मछली और अनेक प्रकार की मदिरा आने लगी। गानेवाले, कहानी कहनेवाले, नट, वन्दीगण, स्तुति-पाठ करनेवाले और भाट मेहमानों का मन बहलाने लगे। सुदेष्णा आदि परम रूपवती स्त्रियाँ सजी हुई उत्तरा को लेकर विवाह-मण्डप में आईं। पर अत्यन्त सुन्दरी द्रौपदी के सामने सबका रङ्ग फीका जान पड़ता था। कृष्ण की सहायता से विराट और युधिष्ठिर ने विवाह-सम्बन्धी सब काम धीरे धीरे पूर्ण किये और विवाह के बाद आये हुए ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट किया।

विवाह समाप्त होने पर पाण्डवों ने अपने भाई-बन्धुओं से सलाह करने का विचार किया। यह निश्चय करने के लिए कि अब क्या करना चाहिए सब लोग विराट के सभा-भवन में इकट्ठे हुए।

विराट और द्रुपदराज के बैठ जाने पर सब लोग अपने अपने आसनों पर बैठ गये। सुन्दर वेशों से विभूषित राजा लोग पहले तो थोड़ी देर तक तरह तरह की बात-चीत करते रहे। फिर काम प्रारम्भ करने के उद्देश से बुद्धिमान् कृष्ण की ओर देख कर चुप हो गये। इस तरह अनुमति पाकर कृष्ण पाण्डवों की भलाई-बुराई की आलोचना करने लगे।

वे बोले:—हे नृपतिगण! आप लोगों को मालूम ही है कि शकुनि ने दुष्टता कर के धर्म्मराज को जुए में हराया और उनका सब कुछ छीन कर उनसे वनवास की प्रतिज्ञा कराई। यद्यपि पाण्डव लोग बलपूर्वक सारी पृथ्वी जीत सकते थे, तथापि उन्होंने केवल सचाई के ख़याल से यह कठिन व्रत पालन किया। अब आप लोग ऐसी तरकीब सोचिए, जिससे कौरवों और पाण्डवों, दोनों, की भलाई हो और उनका धर्म भी बना रहे। यद्यपि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने इन लोगों को क्षत्रिय-धर्म के अनुसार बलपूर्वक नहीं

हराया, किन्तु छल से इनका पैतृक राज्य छीन लिया है, तथापि ये लोग कौरवों की बुराई करना नहीं चाहते। ये लोग सिर्फ़ अपने बाहुबल से जीते हुए साम्राज्य ही को माँगते हैं। पर सब लोग जानते हैं कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने लड़कपन ही से किस तरह नाना उपायों से इनका राज्य छीनने की चेष्टा की है। इसलिए कौरवों का लोभ, युधिष्ठिर की धार्मिकता और इनका आपस का सम्बन्ध ध्यान में रख कर आप लोग यह स्थिर कीजिए कि अब क्या करना चाहिए। कृष्ण की ये पक्षपात-रहित बातें सुन कर बलदेव बड़े प्रसन्न हुए और आदर के साथ उनका अनुमोदन करके कहने लगे:—

आप लोगों ने कृष्ण की बातें सुनीं? वे धर्म्म के भी अनुकूल हैं और दुनियादारी से भी ख़ाली नहीं। जैसी वे धर्म्मराज युधिष्ठिर के लिए लाभदायक हैं वैसी ही दुर्योधन के लिए भी। पाण्डव लोग सिर्फ़ आधा ही राज्य लेकर सन्तोष करना चाहते हैं। अतएव कौरवों को चाहिए कि वे उसे दे दें और सबके साथ मिल जुल कर सुख से रहें। हमारी राय यह है कि इस समय एक चतुर दूत दुर्योधन के पास भेजा जाय। वह महात्मा धृतराष्ट्र, कुरु-वंश में शिरोमणि भीष्म, महाबुद्धिमान् द्रोणाचार्य्य आदि के सामने दुर्योधन से बड़ी नरमी के साथ युधिष्ठिर का सँदेसा कहे। कुल राज्य धृतराष्ट्र के पुत्रों ही के अधिकार में है। इसलिए उन लोगों से कोई रूखी बात कह कर उन्हें क्रुद्ध करने की ज़रूरत नहीं। युधिष्ठिर भी सम्पत्तिशाली थे। परन्तु उन्होंने व्यसन में पड़ कर अपनी सम्पत्ति अपने ही दोष से खो दी। जुआ खेलने में वे निपुण नहीं हैं। तथापि, मित्रों के मना करने पर भी महाधूर्त शकुनि के साथ वे खेलने को राज़ी हो गये। धीरे धीरे खेल में वे इतने डूब गये कि उन्हें भले बुरे का ज्ञान न रहा। एक नादान आदमी की तरह वे एक के बाद एक दाँव बदते गये और अन्त में सब कुछ हार गये। इसके लिए दुर्योधन दोषी नहीं। इसलिए कोई बातूनी आदमी नम्रतापूर्वक दुर्योधन से मेल करने के लिए प्रस्ताव करे।

बलदेव की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि महावीर सात्यकि अत्यन्त क्रुद्ध होकर उठ खड़े हुए और कहने लगे:—

जिसका जैसा स्वभाव होता है वह वैसी ही बात कहता है। हे बलदेव! इसी लिए हम तुमको तुम्हारे दुर्वाक्यों के लिए दोषी नहीं ठहराते। किन्तु जिन लोगों ने तुम्हारी ये बातें चुपचाप बैठे बैठे सुनी हैं उन्हीं पर हमें क्रोध आता है। ऐसा कौन आदमी है जो निर्दोष धर्म्मराज पर एक बार बे-खटके दोषारोप करके फिर उसी सभा में दुबारा बोल सके? कपट जुआरी खेलने में बेईमानी करके इन नीतिज्ञ महात्मा को हरा दें,

यह कोई धर्म की बात है ? यदि धर्म्मराज शकुनि को खेलने के लिए अपने घर बुलाते तो निस्सन्देह उनकी हार धर्म के अनुसार होती। किन्तु बात ऐसी नहीं है। दुर्योधन ने यह जान कर कि यदि कोई आदमी जुआ खेलने के लिए बुलाया जाता है तो वह इनकार नहीं कर सकता, शठतापूर्वक युधिष्ठिर को हराया है। फिर उसका मङ्गल कैसे हो सकता है ? इस समय पाण्डव लोग तेरह वर्ष के बाद प्रतिज्ञा से छूट कर अपने पैतृक राज्य के पूरे तौर से अधिकारी हुए हैं। फिर वे कौरवों के सामने क्यों सिर झुकावें ? यदि कोई दूसरे का राज्य भी लेना चाहे तो भी माँगने की अपेक्षा उसे बलपूर्वक ले लेना ही अच्छा है। तब वे क्यों अपना पैतृक राज्य लेने के लिए दुर्योधन के हाथ जोड़ें ? कौरव लोग यदि धर्म्मराज का धर्म-सङ्गत प्रस्ताव न मानेंगे तो हम उनको अपने वश में करके धर्म्मराज के पैरों पर उनका सिर रखावेंगे। इसमें सन्देह नहीं। हम लोगों के एकत्र होने पर हमारे प्रबल प्रताप को कौन सह सकेगा ?

द्रुपद ने सात्यकि से कहा:—

हे वीर ! तुम्हारा कहना ठीक है। पाण्डवों को अपना पैतृक राज्य पाने का न्याय के अनुसार पूरा अधिकार है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु पाण्डवों के राज्यांश पर इस समय दुर्योधन का अधिकार है। उसे वे अपने मन से कभी न लौटावेंगे। बूढ़े राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्र के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकते। दीनता के कारण भीष्म और द्रोण, और मूर्खता के कारण कर्ण और शकुनि, उन्हीं की हाँ में हाँ मिलावेंगे। इसलिए बलदेव का उपदेश हमारी राय में भी ठीक नहीं है। यदि हम लोग इस समय दुर्योधन से मीठी मीठी बातें कहेंगे तो वह पापी हम लोगों को निर्बल समझेगा। इसलिए हमारी समझ में सबसे पहले राजों के पास दूत भेज कर अपना बल बढ़ाना और सेना इकट्ठी करना चाहिए। जासूसों के द्वारा दुर्योधन हमारी कारवाई ज़रूर ही जान लेगा। इसलिए वह भी दूत भेजेगा। इस दशा में जिसका दूत पहले पहुँचेगा उसी का काम सिद्ध होने की अधिक सम्भावना है। अतएव इस काम में देर लगाना उचित नहीं।

कृष्ण ने कहा:—द्रुपदराज ने बहुत युक्तिपूर्ण उपदेश दिया है। इसलिए हम लोगों को निश्चिन्त होकर उन्हीं को सब काम सौंप देना चाहिए। जब तक सन्धि की बातचीत जारी रहे तब तक दोनों पक्षों के आत्मीय जनों को उसी में लगे रहना उचित नहीं। हम लोग विवाह के उपलक्ष्य में यहाँ आये थे। वह काम तो अच्छी तरह हो गया। अब हम लोग अपने अपने घर लौट चलें। यदि दुर्योधन न्याय के अनुसार

मेल कर लें तो वंश-नाश होने का कोई कारण न रहेगा। और यदि वे लालच में आकर युधिष्ठिर की बात न मानें तो पाण्डव लोग पहले अन्य मित्रों से सहायता लेकर फिर हम लोगों को ख़बर दें।

तब विराट ने सबका यथोचित सत्कार करके कृष्ण आदि यादवों को बिदा किया। इसके बाद वे युधिष्ठिर और अन्यान्य राजों की सलाह से कौरवों के साथ युद्ध की तैयारी करने लगे। राजा द्रुपद ने पहले एक दूत को कौरवों के पास भेजना निश्चित किया। इस काम के लिए अपने बुद्धिमान् पुरोहित को बुला कर उन्होंने कहा:—

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपको युधिष्ठिर और दुर्योधन का परिचय देने और उनके विवाद का हाल बताने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि, आप सब जानते हैं। दुर्योधन आदि ने सीधे सादे पाण्डवों को बहुत ठगा है। धृतराष्ट्र भी इस बात को जानते हैं। धर्मात्मा विदुर ने उस समय बार बार विनती की। पर उनकी बात पर किसी ने ध्यान न दिया। इसलिए इस बात की आशा नहीं कि वे अपनी इच्छा से धर्मराज को आधा राज्य लौटा देंगे। तब भी आप धृतराष्ट्र और अन्य बड़े बड़े कौरवों को प्रसन्न करने की चेष्टा कीजिएगा। यह निश्चय है कि इस विषय में बातों द्वारा विदुर आपकी ज़रूर सहायता करेंगे। यदि भीष्म और द्रोण आदि पाण्डवों का विरोध न करें तो दुर्योधन अकेले कभी लड़ने की इच्छा न करेंगे। ऐसा होने से अपने पक्ष के बड़े बड़े योद्धाओं को फिर अपने वश में करने में दुर्योधन का जितना समय लगेगा उतने में हम लोग यथेष्ट बलसंग्रह कर लेंगे।

द्रुपद का यह उपदेश सुन कर नीतिशास्त्र-विशारद पुरोहित ने राह का ख़र्च लेकर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया।

पुरोहित के चले जाने पर राजा लोगों से सहायता माँगने के लिए चारों ओर दूत भेजे गये। कृष्ण को लेने के लिए ख़ुद अर्जुन द्वारका गये। जासूसों के द्वारा यह सब हाल दुर्योधन को मालूम हो गया। इससे उन्होंने भी सब जगह दूत भेजे। यह ख़बर पाते ही कि अर्जुन द्वारका जाते हैं वे भी एक तेज़ घोड़े पर सवार होकर, और थोड़े से नौकर साथ लेकर, जल्दी जल्दी उनके पीछे दौड़े।

अर्जुन और दुर्योधन दोनों एक ही साथ द्वारका पहुँचे और एक ही समय राज-भवन में गये। कृष्ण उस समय सोते थे। सोने के कमरे में पहले दुर्योधन गये और कृष्ण के सिरहाने बैठ गये। फिर अर्जुन गये और पैंताने बैठ कर कृष्ण के जगने की प्रतीक्षा करने लगे।

जगने पर कृष्ण ने पहले अर्जुन को, फिर दुर्योधन को देखा। कुशल-प्रश्न के बाद कृष्ण ने उनके आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने हँस कर कहा:—

हे यादव-श्रेष्ठ! जो युद्ध होनेवाला है उसमें तुम्हें हमारा पक्ष लेना पड़ेगा। यद्यपि कौरव और पाण्डवों दोनों, का सम्बन्ध और मित्रभाव तुम्हारे साथ एक सा है; तथापि हम पहले आये हैं। लोक-रीति तो यही है कि जो पहले आवे उसी की प्रार्थना सफल की जाय।

कृष्ण ने कहा:—हे कुरुवीर! इसमें सन्देह नहीं कि तुम पहले आये हो। पर हमने अर्जुन ही को पहले देखा है। इसलिए हम दोनों पक्षों की सहायता करेंगे। हमारे पास एक अर्बुद प्रसिद्ध नारायणी सेना है। यह एक तरफ़ रहेगी। दूसरी तरफ़ हम अकेले रहेंगे; पर न तो हथियार ही लेंगे और न लड़ेंहींगे। अर्जुन छोटे हैं। इसलिए पह वेले इन दोनों में से जो चाहें ले लें।

यह जान कर भी कि कृष्ण युद्ध में शामिल न होंगे अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हीं को लेना मंज़ूर किया। तब दुर्योधन एक अर्बुद नारायणी सेना पाकर और यह जान कर कि कृष्ण युद्ध न करेंगे बेहद प्रसन्न हुए।

इसके बाद दुर्योधन बलदेव के पास सहायता माँगने के लिए गये। उनके आने का कारण जान कर बलदेव बोले:—

हे राजन्! हमने कई बार कृष्ण को धिक्कारा है कि दोनों ही पक्षवालों से हमारा एक सा सम्बन्ध है; इसलिए इस युद्ध में हम लोगों का शामिल होना उचित नहीं। पर उन्होंने हमारी बात न मानी। फिर भी हम कृष्ण के विरोधी दल की सहायता नहीं कर सकते। इसलिए हमने निश्चय किया है कि हम किसी तरफ़ न रहेंगे। अतएव आप पधारिए। आपने प्रतिष्ठित भरतवंश में जन्म लिया है, इसलिए क्षत्रिय-धर्म्म के अनुसार ही युद्ध कीजिएगा। सावधान! इसमें कोई त्रुटि न होने पावे।

बलदेव की बात समाप्त होने पर दुर्योधन उन्हें गले से लगा कर बिदा हुए। इसके बाद वे कृतवर्म्मा के पास गये और एक अक्षौहिणी सेना-समेत उनको अपने साथ लिया। इस तरह वे महा-बलवान् सेना-समूह को साथ लेकर लौटे। इससे कौरव लोग बड़े प्रसन्न हुए।

दुर्योधन के जाते ही कृष्ण ने अर्जुन से पूछा:—

हे अर्जुन! यह जान कर भी कि हम युद्ध में शामिल न होंगे क्यों तुमने हमें अपने पक्ष में रखना उचित समझा?



रण-निमन्त्रण

अर्जुन ने कहा:—हे मित्र ! सेना लेने के लिए हम तुम्हारे पास नहीं आये। धृतराष्ट्र के पुत्रों का तो हम अकेले ही संहार कर सकते हैं। तुम अद्वितीय नीतिज्ञ और हमारे पुराने मित्र हो; इसलिए तुम्हारी सलाह और मङ्गल कामना ही से हमारे सब काम सिद्ध हो जायँगे। हे वासुदेव ! हमारा एक बहुत पुराना मनोरथ भी तुम्हें पूरा करना पड़ेगा। हमारी इच्छा है कि इस युद्ध में तुम हमारे सारथि बनो।

कृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी बात मान ली। उन्होंने कहा:—

हे अर्जुन ! तुम हमसे सब कुछ माँग सकते हो। हमारे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे हम तुम्हें न दे सकते हों।

इसके बाद बहुत से भोज, वृष्णि और दाशार्ह वीरों को साथ लेकर दोनों मित्र युधिष्ठिर के पास आये।

इसी समय मद्र देश के राजा महाबली शल्य ने दूत के द्वारा सुना कि कौरवों और पाण्डवों में युद्ध होनेवाला है। इसलिए वे अपने पुत्रों और बड़ी भारी सेना को साथ लेकर पाण्डवों की सहायता के लिए विराट-नगरी को रवाना हुए। दुर्योधन को ज्यों ही अपने मामा के चलने का हाल मालूम हुआ त्यों ही उन्होंने, उनको प्रसन्न करके अपना काम निकालने के लिए, रास्ते में जगह जगह ठहरने के लिए घर बनवा दिये और उनमें तरह तरह की खाने, पीने, आराम करने और मन बहलाने की चीज़ें रखवा दीं। शल्यराज सुखपूर्वक विश्राम करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। उन्होंने समझा कि यह आदर-सत्कार राजा युधिष्ठिर ही की ओर से हो रहा है। एक बार बहुत ही अच्छे बने हुए एक घर की कारीगरी पर प्रसन्न होकर उन्होंने नौकरों से कहा:—

राजा युधिष्ठिर के जिस कारीगर ने यह मण्डप बनाया है उसे हमारे पास ले आओ। हम धर्म्मराज की आज्ञा लेकर उसे इनाम देंगे।

युधिष्ठिर का नाम सुन कर नौकरों को आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने शल्य की आज्ञा दुर्योधन से कह सुनाई। इस समय दुर्योधन गुप्त रूप में वहीं विद्यमान थे। अतएव मद्रराज के सामने आकर उन्होंने सब सचा सच्चा हाल उनसे कह सुनाया। यह जान कर कि दुर्योधन ही ने ये विश्राम घर बनवाये हैं शल्यराज बड़े प्रसन्न हुए और उनसे कहा कि जो वर चाहो माँग लो। दुर्योधन बोले:—

हे मामा ! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस युद्ध में हमारे सेनापति बनिए।

शल्य ने—तथास्तु ! कहा। वे बोले:—

इस समय तो तुम अपने घर जाव। युधिष्ठिर से मिल कर हम तुम्हारे पास आवेंगे।

तब मद्रराज मत्स्यदेश को गये और छावनी के भीतर जाकर पाण्डवों से मिले। पाण्डवों ने रीति के अनुसार पाद्य, अर्घ्य और गोदान देकर उनका सत्कार किया। शल्य ने पाण्डवों की पूजा ग्रहण करके उनको आलिङ्गन किया। जब सब लोग बैठ गये तब शल्यराज ने अपने आने का हाल, दुर्योधन की शुश्रूषा और उनको वर देने की सब बातें आदि से अन्त तक युधिष्ठिर से कह सुनाईं। अन्त में उन्होंने कहा:—

हे धर्म्मराज! भाइयों और द्रौपदी के साथ असह्य क्लेश सह कर और बड़े बड़े काम करके तुम सब सङ्कटों से धर्म्म के अनुसार पार हो गये। अब आशा है कि शत्रुओं को हरा कर फिर सुख-भोग कर सकोगे।

युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर कहा:—

हे मामा! दुर्योधन ने आपकी जो ख़ातिरदारी की उसके बदले में उनकी सहायता करना आपने जो स्वीकार किया है सो उचित ही किया है। किन्तु दुर्योधन ने छल करके हम लोगों को आपकी सहायता से वंचित किया है। इसलिए आपको हमारे कहने से, अनुचित होने पर भी, एक काम करना पड़ेगा। यदि युद्ध में किसी समय कर्ण सेनापति बनाये जायँ तो निश्चय ही अर्जुन के साथ उनका युद्ध होगा। उस समय कर्ण के सारथि बन कर और उनके युद्ध में विघ्न डाल कर आपको अर्जुन की रक्षा करनी होगी।

शल्य ने कहा:— हे युधिष्ठिर! तुम्हारी यह प्रार्थना हम अवश्य पूर्ण करेंगे। सभा-मण्डप में कर्ण ने निरपराध द्रौपदी का अपमान किया है। इसलिए कर्ण और अर्जुन के युद्ध-समय में हम कर्ण के ज़रूर सारथि बनेंगे और उनका तेज नष्ट करने का हम अच्छी तरह यत्न करेंगे।

यह कह कर शल्य ने विदा माँगी और सेना-सहित दुर्योधन के पास चल दिया।

इधर अनेक देशों से राजा लोग बड़ी बड़ी सेनायें लेकर युधिष्ठिर की सहायता के लिए आने लगे। बहुतेरे तो विवाह ही के उपलक्ष्य में आये हुए थे। इनके सिवा चेदिराज धृष्टकेतु, वृष्णिवीर सात्यकि और विराटराज के मित्र राजा लोग बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना ले लेकर आ पहुँचे। इस तरह पाण्डवों के पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गईं। विराटराज के उपप्लव्य नगर में डेरे डाल दिये गये। इतनी बड़ी सेना लेकर राजों के साथ पाण्डव लोग सुख से समय की प्रतीक्षा करने लगे।

दुर्योधन के पक्ष में भगदत्त, भूरिश्रवा, शल्य, भोजराज, कृतवर्म्मा, सिन्धुनरेश,

जयद्रथ और अन्य कई राजा लोग आये। इस तरह कौरवों की तरफ़ ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई।

इस प्रकार दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं कि द्रुपदराज का पुरोहित राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँचा। धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि ने उसका यथोचित सत्कार किया। तब वह ब्राह्मण सभा में बैठे हुए बड़े बड़े कौरवों और राजपुरुषों से कहने लगा:—

हे सभासद्गण! आप लोग सनातन राज-धर्म्म अच्छी तरह जानते हैं। तथापि इस समय उसका स्मरण दिलाने की बड़ी ज़रूरत है। इसी से उसके सम्बन्ध में दो एक बातें हम कहना चाहते हैं। धृतराष्ट्र और पाण्डु एक ही पिता के पुत्र हैं; इसलिए पैतृक धन में दोनों का बराबर हक़ है। फिर इसका क्या मतलब कि पाण्डवों को निकाल करके धृतराष्ट्र के पुत्र अकेले ही राज्य करें? आप लोगों को यह भी मालूम होगा कि एक बार धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डवों को मार तक डालने की तैयारी की थी; पर कृतकार्य न हुए। फिर शकुनि की सहायता से छल करके उनका अपने बल से बढ़ाया हुआ राज्य छीन लिया। द्रौपदी-समेत पाण्डवों को बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करना पड़ा। उसमें उन्हें कैसे कैसे कष्ट भोगने पड़े, यह आप लोग अच्छी तरह जानते हैं। तथापि धृतराष्ट्र के पुत्रों के इन सब अन्यायों को भूल कर सबकी भलाई के लिए वे उनसे सन्धि करना चाहते हैं। अतएव दोनों तरफ़ की बातों का विचार करके आप लोग दुर्योधन को शान्त कीजिए। ऐसा कीजिए जिसमें व्यर्थ लोक-हिंसा और वंश-नाश न हो। युधिष्ठिर का पक्ष लेकर लड़ने के लिए अनन्त सेना तैयार है। अर्जुन से बढ़ कर रण-चतुर और कृष्ण से बढ़ कर बुद्धिमान् कोई नहीं है। फिर क्या समझ कर दुर्योधन पाण्डवों से लड़ने को तैयार है? इसलिए आप लोग धर्म्मानुसार पाण्डवों को उनका हिस्सा लौटा दीजिए। अभी सन्धि के लिए समय है।

ब्राह्मण की बात सुन कर बुद्धिमान् भीष्म ने उसके प्रस्ताव की बहुत प्रशंसा की और कहने लगे:—

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! सौभाग्य की बात है कि पाण्डव लोग कुशल से हैं। और यह भी सौभाग्य की बात है कि बहुत सी सेना इकट्ठी करके भी वे धर्म्म पर जमे हुए हैं और बन्धु-बान्धवों से लड़ने की इच्छा न करके मेल करना चाहते हैं। आपने जो कुछ कहा वह कठोर होने पर भी सत्य है। इसमें सन्देह नहीं कि निश्चित वनवास के बाद वे अपने पहले राज्य के अधिकारी हुए हैं। अर्जुन के बराबर योद्धा भी तीनों लोकों में कोई नहीं है।

दूसरे पक्षवालों की, विशेष कर अर्जुन की, प्रशंसा कर्ण से न सही गई। भीष्म की बातें समाप्त भी न होने पाई थीं कि उनका अनादर करके और दुर्योधन की तरफ़ देख कर वे पुरोहित से क्रोध-पूर्ण बातें कहने लगे:—

हे ब्राह्मण! यह बात तमाम दुनिया जानती है कि जुए में हार कर पाण्डव लोग वनवास करने को लाचार हुए थे। इसलिए इसे बार बार कहने की ज़रूरत नहीं। इस समय अवधि पूरी होने के पहले ही प्रतिज्ञा भङ्ग करके उन्होंने अपने को प्रकट किया है। मत्स्य तथा पाञ्चाल लोगों की सहायता पाकर वे फूले नहीं समाते। पर याद रक्खें, हम लोगों को डराने की चेष्टा करना वृथा है। डर कर हम एक पद भी भूमि न देंगे। युधिष्ठिर यदि धर्म्म से राज्य लेना चाहते हैं तो निश्चित नियम के अनुसार उन्हें बारह वर्ष फिर वनवास करना चाहिए। क्योंकि समय के पहले ही वे प्रकट हो गये हैं। समय पूरा होने पर महाराज दुर्योधन उन्हें ज़रूर ही आश्रय देंगे। पर यदि धर्म्म की परवा न करके मूर्खता के कारण वे लड़ना चाहते हैं तो हमारी बात याद करके ज़रूर पछतायँगे।

भीष्म ने कहा:—हे कर्ण! तुम बातों में सदा ही बड़ी वीरता दिखलाते हो। पर क्या तुम्हें याद नहीं कि अर्जुन ने अभी हाल ही में हमारे छः महारथियों को लड़ाई में हराया था? इस ब्राह्मण की बात मान कर समय रहते ही यदि हम लोग मेल न कर लेंगे तो लड़ाई के मैदान में हमें निश्चय ही धूल फाँकनी पड़ेगी।

भीष्म को विरक्त देख कर उनको प्रसन्न करने के लिए धृतराष्ट्र ने उनकी बात का अनुमोदन किया और कर्ण को डाँट कर कहने लगे:—

हे कर्ण! भीष्म ने जो कुछ कहा उसी से हम लोगों की, पाण्डवों की और सब क्षत्रियों की भलाई है। इसलिए हम उनके कहने के अनुसार सञ्जय को पाण्डवों के पास सन्धिस्थापन करने के लिए भेजेंगे।

यह कह कर धृतराष्ट्र ने द्रुपद-पुरोहित को यथोचित सत्कार के बाद बिदा किया। फिर सभा में सञ्जय को बुला कर उन्होंने कहा:—

हे सञ्जय! तुम इस समय उपप्लव्य नगर में पाण्डवों के पास जाव। वहाँ जा कर पहले उनकी कुशल पूछना। पाण्डव लोग बहुत भले आदमी हैं। छल-कपट करना वे नहीं जानते। इतने दुःख सह कर भी उन्होंने हम पर क्रोध नहीं किया। अपने सुख की अपेक्षा धर्म को ही वे बड़ा समझते हैं। मन्द-बुद्धि दुर्योधन और क्षुद्र-हृदय कर्ण के सिवा हम सब लोग उनसे बड़े प्रसन्न हैं। इसलिए इन सब बातों को अच्छी तरह समझ कर उपयुक्त वाक्यों में युधिष्ठिर से कहना कि हम सन्धि करना चाहते हैं।

हे सञ्जय ! दोनों ओर इतनी सेना इकट्ठी हुई है कि उसका स्मरण करके हमें बड़ा डर लगता है। इसलिए समझ बूझ कर ऐसा प्रस्ताव करना जिसमें हम लोग इस घोर विपद से बच जायें।

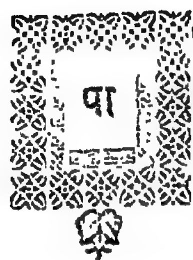
महाराज धृतराष्ट्र का अभिप्राय जान कर और उनकी आज्ञा पाकर सञ्जय ने मत्स्यदेश की ओर प्रस्थान किया।

प्रथम खण्ड समाप्त।

दूसरा खण्ड



१—शान्ति की चेष्टा



पाण्डवों से यह कहने के लिए कि अब आपस में शान्ति हो जानी चाहिए, धृतराष्ट्र की आज्ञा से सञ्जय ने हस्तिनापुर से प्रस्थान किया। यथा-समय वे उपप्लव्य नगर में पहुँचे। वहाँ युधिष्ठिर को देख कर सञ्जय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रणाम करके युधिष्ठिर से कहाः—

हे धर्म्मराज! ईश्वर की कृपा से हम फिर आपको अच्छी दशा में देखते हैं। किसी बात की अब आपको तकलीफ़ नहीं। सब तरह की सहायता आपको प्राप्त है। वृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने आपका कुशल-समाचार पूछा है। कहिए आप, आपके भाई और आपकी पत्नी, द्रुपदनन्दिनी द्रौपदी, सब लोग अच्छे तो हैं?

युधिष्ठिर ने कहाः—हे सञ्जय! आप तो अच्छी तरह हैं? राह में कोई विघ्न तो नहीं हुआ। इतने दिनों बाद राजा धृतराष्ट्र के कुशल-समाचार पाकर और तुम्हारे दर्शन करके हमें बड़ी खुशी हुई है। इस समय हमें ऐसा मालूम होता है, मानों हमने सभी कौरव-जनों के दर्शन किये। परम बुद्धिमान् पितामह भीष्म तो कुशल-पूर्वक हैं? हमारे ऊपर उनका जो स्नेह था वह जाता तो नहीं रहा? हम पर वे बड़ी कृपा करते थे। उस कृपा में कमी तो नहीं हुई? द्रोण और कृप आदि हमारा बुरा तो नहीं चाहते? क्या वे राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों को सलाह देते हैं कि सन्धि कर लो? अर्जुन के बड़े बड़े वीरोचित काम और मेघ-गर्जना के सदृश उनके गाण्डीव धन्वा की टङ्कार, कौरव लोग भूल तो नहीं गये?

सञ्जय ने उत्तर दियाः—

आपने जिन लोगों की बात पूछी वे सब कुशल से हैं। आपके चचा धृतराष्ट्र ने जो सँदेशा कहने के लिए हमें आपके पास भेजा है उसे सुनने की अब आप कृपा कीजिए। वृद्ध राजा धृतराष्ट्र जी से चाहते हैं कि आपस में सन्धि हो जाय। इसलिए

कृपा करके आप भी इस बात को मान लीजिए। आपने हमेशा ही धृतराष्ट्र के पुत्रों के अपराध क्षमा किये हैं और क्रोध के वशीभूत न होकर सुख की अपेक्षा धर्म्म ही को प्रधान माना है—उसी की तरफ़ हमेशा दृष्टि रक्खी है। इससे इस समय लाखों मनुष्यों की हिंसा निवारण करने का एक-मात्र उपाय आप ही के अधीन है। आप चाहेंगे तो युद्ध रुक जायगा और महाभयङ्कर मनुष्य-संहार होने से बच जायगा। इस युद्ध में एक तरफ़ तो महाबली भीम, अर्जुन और कृष्ण हैं; दूसरी तरफ़ भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि महारथी हैं। इस दशा में चाहे जिसकी जीत हो चाहे जिसकी हार, परिणाम दोनों अवस्थाओं में महा दुःख-दायक होगा। इससे आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिए जिसमें परस्पर सन्धि हो जाय।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे सञ्जय! क्या हमने कोई ऐसी बात कही है जिससे यह सूचित होता हो कि हम युद्ध करना चाहते हैं? फिर क्यों तुम युद्ध के डर से इतने भयभीत हो रहे हो? यदि बिना काम किये ही—बिना हाथ पैर हिलाये ही—मन-चीती बात होती हो तो कौन ऐसा मूर्ख है जो उसके लिए युद्ध की तैयारी करे? हम तो यह समझते हैं कि नाना प्रकार की विषय-वासनायें उन उन विषयों का भोग करने से और भी बढ़ती हैं। भोग भोगने से तृप्ति नहीं होती। आग में आहुति डालने से आग बुझती नहीं; वह और भी प्रज्वलित होती है। यही हाल वासनाओं का है। यही कारण है जो इतना ऐश्वर्य्य पाकर भी—इतने भोग-विलास की सामग्री प्राप्त करके भी—दुर्योधन का लोभ बढ़ता ही जाता है। लोभ के कारण दुर्योधन की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। इससे उन्होंने मन ही मन यह समझ रक्खा है कि सूत पुत्र कर्ण से अर्जुन हार जायँगे। उन्होंने प्रत्यक्ष लड़ाई के मैदान में उतर कर देखा है कि एक नहीं छः रथियों ने अर्जुन से हार खाई है। तिस पर भी वे समझते हैं कि कर्ण को अर्जुन न जीत सकेंगे। यदि दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने होती तो वे कभी ऐसा न समझते। कुछ भी हो, हम पर आज तक जो कुछ बीती है उसे हम भूले जाते हैं। हमें आज तक दुर्योधन ने जो क्लेश, दुःख और सन्ताप पहुँचाया है उस पर हम धूल डालते हैं। इन्द्रप्रस्थ पहले हमारे ही अधिकार में था। उसी को लेकर हम सन्धि करने के लिए तैयार हैं। यह बात तो हम पहले भी कह चुके हैं।

सञ्जय ने कहा:—हे धर्म्मराज! आपका कहना बहुत ठीक है कि मोह के वशीभूत होने से दुर्योधन इस समय बिना युद्ध किये राज्य न छोड़ेंगे। किन्तु आप तो धर्म्म की गति जानते हैं और यह भी जानते हैं कि राज-पाट का मोह बुरा होता है। फिर आप

क्या समझ कर धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश करने पर उतारू हुए हैं ? यदि युद्ध करके राज्य छीन लेने का विचार था तो वनवास में इतना क्लेश आपने क्यों व्यर्थ उठाया ! तब भी आप की सहायता करनेवाले कम न थे। सब तरह की सहायता आपको मिल सकती थी। जो बन्धु-बान्धव इस समय आपका साथ देने को तैयार हैं वे चिरकाल से आप ही की तरफ़ हैं। दुर्योधन भी इस समय जितने बली हैं, उतने पहले न थे। उस समय तो धर्म्म-बुद्धि से प्रेरित होकर आप युद्ध से दूर रहे; अब भला क्या समझ कर आप उसे छोड़ने और जाति-द्रोह के पापपङ्क में गिरने जाते हैं ?

युधिष्ठिर बोले:—हे सञ्जय ! धर्म्म ही श्रेष्ठ है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु अपने राज्य का पालन करना और उसे शत्रु के हाथ से बचाना ही क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। इससे इस मामले में हम धर्म्म छोड़ते हैं या नहीं छोड़ते, इस बात का ख़ूब बारीक़ विचार करके तब आप हमें दोषी ठहराइएगा। एक तरफ़ तो धर्म्म की रक्षा करना है; दूसरी तरफ़ युद्ध-निवारण। इन दोनों बातों में से इस समय हमें कौन बात करना उचित है, इस विषय में परम चतुर श्रीकृष्णजी हमें उपदेश देने की कृपा करें। अधर्म्म से राज्य पाने की हमारी कदापि इच्छा नहीं। इससे जो श्रीकृष्ण कहेंगे हम वही करेंगे।

तब कृष्ण ने कहा:—

हे सञ्जय ! तुम्हारे मुँह से धर्म्मराज को धर्म्म का उपदेश शोभा नहीं देता। महासभा में द्रौपदी का अपमान होने पर, जिस समय उसने सहायता के लिए बार बार सभासदों से प्रार्थना की थी उस समय विदुर को छोड़ कर किसी और ने एक बात भी अपने मुँह से नहीं निकाली। दुःशासन को उस समय तुमने धर्म्म का उपदेश क्यों नहीं दिया ? तब तुम्हारा धर्मोपदेश कहाँ था ? कुछ भी हो, जैसे हम पाण्डवों की मङ्गल-कामना करते हैं वैसे ही कौरवों की भी करते हैं। हम ख़ुद ही चाहते हैं कि युद्ध का विचार छोड़ कर सन्धि-स्थापन करना चाहिए। यही बात दोनों पक्षों के लिए हितकर है। इससे अधिक और कुछ हम कहना चाहते ही नहीं। किन्तु, हे सञ्जय ! सर्वस्व छोड़ कर धर्म्म-पालन करने का उपदेश हम युधिष्ठिर को नहीं दे सकते। संसार-यात्रा चलाने के लिए—संसार में रह कर अच्छी तरह जीवन-निर्वाह करने के लिए—कौरवों को मारे बिना पाण्डवों का काम चलता नहीं देख पड़ता। यदि कौरवों का वध किये बिना ही संसार-यात्रा निर्वाह करने का कोई उपाय निकल आवे तो इससे उत्तम और क्या हो सकता है। परन्तु यह बात धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों ही के किये हो सकती है। पाण्डव लोग नरमी का बर्ताव करने के लिए भी तैयार हैं, और ज़रूरत होने पर

कठोरता का बर्ताव करने के लिए भी तैयार हैं। यह बात तुम कौरवों से जाकर यथावत् कह देना।

सञ्जय ने उत्तर दियाः—हे धर्म्मराज ! आपका कल्याण हो ! हम अब जाते हैं। अपना पक्ष समर्थन करने में यदि हमसे कोई बात अनुचित निकल गई हो तो उसके लिए हम आपसे क्षमा माँगते हैं।

युधिष्ठिर ने कहाः—हे सञ्जय ! आप विश्वासपात्र दूत हैं और हमारे हितचिन्तक भी हैं। आपकी कोई बात हमें अप्रिय नहीं हो सकती। जो कुछ हमने आपसे कहा है उसे आप कौरवों और अन्यान्य क्षत्रियों से अच्छी तरह कह दीजिएगा और दुर्योधन से आप हमारी तरफ़ से यह कहिएगा किः—

हे दुर्योधन ! तुम्हारे हृदय में जो लोभ घुसा हुआ है वही तुमको सन्ताप दे रहा है और वही कुरुवंशियों का सबसे बड़ा शत्रु है। किन्तु हे वीर ! तुम यह न समझना कि तुम्हारे मन का अभिलाष पूर्ण होगा। या तो तुम उस बुरे अभिलाष को छोड़ कर इन्द्रप्रस्थ हमारे हवाले करो या युद्ध के लिए तैयार रहो।

पितामह भीष्म को प्रणाम करके यह कहना किः—

हे पितामह ! आपने पहले एक बार प्रायः पूरे तौर पर डूबे हुए कुरुवंश का उद्धार किया है। इस समय भी आप अपनी सम्मति प्रकट करके युद्ध की आग से पौत्रों की रक्षा कीजिए।

महाराज धृतराष्ट्र के सामने सिर झुका कर कहना किः—

हे राजन् ! आप ही की कृपा से आपके भतीजों को राज्य प्राप्त हुआ था। अब उसी राज्य से उन्हें निकाल देने का क्यों आप यत्न कर रहे हैं ?

और, विदुर से कहना किः—

हे सौम्य ! आपने हमेशा हमारी ही तरफ़दारी की है। अब भी वही करके दोनों पक्षों की अनिष्ट से रक्षा कीजिए।

इसके बाद कुछ देर तक सोच विचार कर धर्म्मराज ने फिर कहाः—

हे सञ्जय ! तुमने यह सच कहा कि धन-सम्पत्ति का मोह नहीं छोड़ा जाता, यह हम जानते हैं। इस कारण इस विषय में सबसे अधिक ज़िम्मेदारी हमारे ही ऊपर है। इसलिए तुम हमारी आख़िरी शर्त सुन लो। वह शर्त यह है कि हम पाँचों भाइयों को सिर्फ़ पाँच गाँव मिलने से राज्य का दावा छोड़ कर हम सन्धि करने को तैयार हैं।

इसके अनन्तर युधिष्ठिर की आज्ञा से सञ्जय ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया।

सन्ध्या-समय वे राजमहलों के द्वार पर पहुँचे और द्वारपाल के द्वारा अपने आने का समाचार राजा धृतराष्ट्र के पास भेजा। द्वारपाल ने जाकर धृतराष्ट्र से निवेदन किया:—

महाराज! पाण्डवों के पास से सञ्जय लौट आये हैं। इस समय वे द्वार पर खड़े हैं और भीतर आने के लिए आपकी आज्ञा चाहते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—उनको शीघ्र ही भीतर ले आओ। समय हो या असमय, हम सञ्जय से मिलने के लिए सदा ही समय निकाल सकते हैं।

तब सञ्जय ने भीतर आकर कहा:—

महाराज! हम सञ्जय हैं। आपको प्रणाम करते हैं।

इसके बाद धृतराष्ट्र ने बड़े आग्रह के साथ सञ्जय से प्रश्न करना आरम्भ किया। सञ्जय ने पाण्डवों का कुशल-समाचार कह कर इस प्रकार उत्तर दिया:—

दूसरी दफ़े जुआ खेलने के पहले आपने पाण्डवों को जो कुछ दिया था वही लेकर पाण्डव लोग सन्धि करने को तैयार हैं। बात यद्यपि कड़ी है, तथापि कर्त्तव्यवश हम कहने के लिए लाचार हैं कि अपने मन्द-बुद्धि पुत्रों के प्रीति-जाल में फँस कर आपने बहुत बुरा काम किया। इस समय सावधान हूजिए, जिसमें आपके अपराध से कुरु-कुल का जड़ से नाश न हो जाय। महाराज! हम बेतरह रथ दौड़ाते हुए आये हैं। इससे बहुत थके हुए हैं। आज्ञा हो तो इस समय हम अपने घर जायँ। कल प्रातःकाल सभा में सब लोगों के सामने युधिष्ठिर आदि ने जो कुछ कहा है वह सब हम विस्तार-पूर्वक कहेंगे।

सञ्जय के चले जाने पर धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा:—

हम विदुर से मिलने के लिए बहुत व्याकुल हो रहे हैं। इससे उन्हें तुरन्त बुला लाओ।

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही विदुर राजभवन में धृतराष्ट्र के पास जाकर उपस्थित हुए और बोले:—

महाराज! हम विदुर हैं। आपके आज्ञानुसार आपके पास उपस्थित हुए हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा— हे धर्म-प्रिय! सञ्जय लौट आया है; परन्तु युधिष्ठिर ने क्या उत्तर दिया है सो अभी तक हम नहीं जान सके। इससे हमें बड़ी चिन्ता हो रही है। तुम्हारे साथ बात-चीत करके मन को शान्त करना चाहते हैं।

विदुर बोले—महाराज! जो कोई अन्याय या बहुत बड़े साहस का काम करने का

विचार करता है उसी को नींद नहीं आती। आप कोई उस तरह का विचार तो मन ही मन नहीं कर रहे ?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! इस समय क्या करना उचित है, यही तुमसे सुनने की हम इच्छा रखते हैं। जो कुछ कर्तव्य हो कहो।

विदुर बोले—महाराज! आप आँखों से हीन हैं। इसलिए खुद राज-काज नहीं देख सकते। परन्तु दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन के ऊपर राज्य का भार रख कर किस प्रकार आप कल्याण की आशा रखते हैं? वन में जन्म लेकर पाण्डु के पुत्र आप ही की कृपा से इतने बड़े हुए; आप ही की कृपा से उन्हें राज्य प्राप्त हुआ; और आप ही की कृपा से सब प्रकार के अच्छे अच्छे गुणों से वे अलंकृत हुए। इससे उनको राज्य का उचित भाग देकर आप आनन्द से अपना समय व्यतीत करें। ऐसा होने से आपको किसी से कुछ भी डरने का कारण न रहेगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! तुम जो कुछ कहते हो वह परिणाम में ज़रूर हित-कर है। अन्त में उसका फल ज़रूर अच्छा होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु वैसा करने से दुर्योधन हमसे छूट जायगा। यह ऐसी बात है जिसे हम किसी तरह नहीं कर सकते।

विदुर ने कहा—आप यदि अपने पुत्रों को किसी तरह भी क़ाबू में नहीं रख सकते, तो आप निश्चय जानिए कि थोड़े ही दिनों में, पाण्डवों की नहीं, किन्तु अपने ही पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुन कर आपको व्याकुल होना पड़ेगा। इसकी अपेक्षा यदि आप पाण्डवों को दो चार गाँव ही दे डालने पर राज़ी हों, तो भी आपके पुत्रों की रक्षा हो सकती है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे चतुर-चूड़ा-मणि! आपका उपदेश बहुत ही अच्छा है। उसे हम जी से मानते हैं। पाण्डवों को राज्य देने से हमें कोई इनकार नहीं। किन्तु दुर्यो-धन की बातें स्मरण होते ही हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। इसी से मनुष्य की चेष्टा को हमने व्यर्थ समझ कर भाग्य ही को मुख्य माना है।

इसी तरह बात करते करते वह रात बीत गई। विदुर ने धृतराष्ट्र से अनेक धर्म्म-कथायें कहीं और अनेक अच्छे अच्छे उपदेश दिये। जहाँ तक उनसे हो सका उन्होंने बार बार यही दिखाया कि पाण्डवों के साथ न्याय करना ही उचित है।

प्रातःकाल होने पर भीष्म को, द्रोण को और अपने मित्र राजों को आगे करके महाराज धृतराष्ट्र सभा-भवन में जाने के लिए घर से निकले। कर्ण, शकुनि और भाइयों

के साथ दुर्योधन भी उनके पीछे पीछे चले। सबने सभाभवन में प्रवेश किया। सभाभवन ख़ूब सजा हुआ था। सारे भवन में चन्दन का रस छिड़का गया था। उसके बीचों बीच सोने का एक चबूतरा था। वहाँ सोने, चाँदी, हाथीदाँत, लकड़ी और पत्थर के उत्तमोत्तम आसनों पर जो जिस योग्य था अपनी अपनी जगह पर बैठ गया। कुछ देर बाद द्वारपाल ने आकर निवेदन किया:—

महाराज! हमारे दूत सूत-पुत्र सञ्जय तेज़ चलनेवाले रथ पर सवार आ रहे हैं।

इसके बाद ही सञ्जय सभाभवन के द्वार पर आ गये। रथ से उतर कर शीघ्र ही उन्होंने राजसभा में प्रवेश किया। सबको यथाविधि प्रणाम-नमस्कार करके वे बोले:—

हे कौरव-गण और हे राजवृन्द! हम पाण्डवों के पास से लौट आये। आप अब वहाँ का सब हाल हमसे सुनिए। धर्म्मराज के पास जाकर महाराज धृतराष्ट्र का सब सँदेशा हमने कहा। उसे सुन कर पाण्डवों ने पहले तो सबका कुशल-समाचार पूछा। फिर जैसा जिसके लिए उचित था प्रणाम, आशीर्वाद आदि कहा।

यह कह कर सञ्जय ने क्रम क्रम से युधिष्ठिर और कृष्ण ने जो जो बातें कही थीं सब एक एक करके कह सुनाईं। युद्ध के लिए जो जो तैयारियाँ हुई थीं उन सबका वर्णन भी उन्होंने विस्तारपूर्वक किया। यह सुन कर धृतराष्ट्र अपने मन का वेग न सँभाल सके। और किसी को बोलने का अवसर न देकर वे ख़ुद ही पाण्डवों की बात का समर्थन करने के लिए उद्यत हुए। वे बोले:—

पाण्डवों ने जैसी युद्ध-सामग्री और सहायता प्राप्त की है, अर्जुन ने दिव्य अस्त्र चलाने की जैसी शिक्षा पाई है, और भीमसेन जितने बलवान् हैं, उसे देखते दुर्योधन ने उनके साथ झगड़ा करके बुद्धिमानी का काम नहीं किया। युद्ध होने से कौरवकुल का बचाव होना बहुत कठिन है। यह बात हमें प्रत्यक्ष देख पड़ती है; इसमें कोई सन्देह नहीं। इससे भीष्म, द्रोण, विदुर आदि जो उपदेश देते हैं उसे मानना हम बहुत ज़रूरी समझते हैं। पाण्डवों ने जो प्रस्ताव किया है वह धर्म्म-संगत है; उनकी बात मान लेना चाहिए और उनकी शर्त पूरी करके उनके साथ सन्धि-स्थापन करना चाहिए। इसी में हमारा कल्याण है।

यह सुन कर भीष्म, द्रोण आदि सभी ने धृतराष्ट्र की सम्मति की प्रशंसा की। सबने यही कहा कि महाराज धृतराष्ट्र की बात मान लेने ही में भला है। परन्तु दुर्योधन को यह बात बहुत ही बुरी लगी। उससे यह उपदेश सहा न गया। वह बोला:—

हे पिता ! आप क्यों व्यर्थ डर कर हमारे लिए शोक करते हैं। हम अपने शत्रु की अपेक्षा किस बात में कमज़ोर हैं जो आप हार जाने के भय से इतना व्याकुल हो रहे हैं। पितामह भीष्म ने एक बार पहले कैसा अद्भुत युद्ध करके सारे राजों को जो अकेले ही हरा दिया था सो क्या आप भूल गये ? द्रोण, कृप और अश्वत्थामा हमारी तरफ़ हैं। फिर अर्जुन हमारा क्या कर सकेगा ? उससे हमारा एक बाल भी बाँका होने का नहीं। भीम को हम खुद गदा-युद्ध में हरा सकते हैं। इसके सिवा इस समय सारा राज्य हमारे हाथ में है और ये सब रथी, महारथी राजे हमारे अधीन हैं। फिर आप ही कहिए कि पाण्डवों का निस्तार कैसे हो सकता है ? देखिए, हमारा बल, पराक्रम और प्रभाव देख कर युधिष्ठिर इतना डर गये हैं कि अन्त में पाँच नगर पाने की लालसा छोड़ कर पाँच गाँव ही लेकर सन्धि करने पर राज़ी हैं। आपने हमारे प्रभाव और बल को अच्छी तरह नहीं जाना। इसी से आप शत्रुओं को हमसे अधिक बली और प्रभावशाली समझ रहे हैं।

धृतराष्ट्र ने देखा कि पुत्र हमारा बड़े ही विकट मोहजाल में फँसा है। इससे उनको बहुत दुःख हुआ। वे बोले:—

हे कौरव-वर्ग ! हम बार बार विलाप करते हैं, तथापि हमारे मूर्ख पुत्र युद्ध करने की इच्छा नहीं छोड़ते। बेटा ! दुर्योधन क्या समझ कर तुम सारी पृथ्वी पर अधिकार करने की बुरी अभिलाषा रखते हो ? उसकी अपेक्षा उचित यह है कि पाण्डवों को राज्य का जो अंश मिलना चाहिए उसे देकर सुखपूर्वक अपना राज्य करो। पाण्डव लोग बड़े धर्म्मात्मा हैं। उन्होंने जो प्रस्ताव किया है वह बहुत ही उचित है। उनकी बात में, उन की शर्त में, अन्याय का लेश भी नहीं है। हम लोगों ने जो पीड़ा उन्हें पहुँचाई है और जो अत्याचार उन पर किये हैं उन्हें भूल कर वे सिर्फ़ इसलिए नरमी का बर्ताव कर रहे हैं जिसमें जाति-क्षय होने से बच जाय। उनके इस धर्म्मबल को देख कर स्वयं देवता भी उनकी सहायता करेंगे। यदि हम पाप-युद्ध में लिप्त होंगे तो कुरु-कुल का जड़ से नाश हुए बिना न रहेगा। हे पुत्र ! दिन रात इसी चिन्तारूपी अग्नि में जलते रहने के कारण हमें नींद नहीं आती और हमारी विह्वलता बढ़ती जाती है। यही कारण है जो हम सन्धि करने के लिए इतने उत्सुक हैं।

दुर्योधन तो स्वभाव ही से क्रोधी था। पिता की बात सुन कर क्रोध के मारे वह और भी जल उठा और कहने लगा:—

हे तात ! काम, क्रोध, मोह आदि विकारों को जीत कर ही देवताओं ने देवत्व

पाया है। इससे हम मनुष्यों के लड़ाई-झगड़ों में वे क्यों किसी का पक्षपात करने लगे। हम भी तो नियमपूर्वक प्रति दिन देवताओं की पूजा-अर्चा करते हैं। उसमें किसी तरह की कमी नहीं होने देते। फिर, देवता लोग केवल पाण्डवों की सहायता करेंगे, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? पाण्डव भी मनुष्य हैं, हम भी मनुष्य हैं। पर हम पाण्डवों से अधिक बलवान् हैं। फिर क्या समझ कर आप हमेशा पाण्डवों ही की जीत की शङ्का करते हैं ? हमें तो उनके जीत जाने का कोई कारण नहीं देख पड़ता। अन्य सहायता और सामग्री की बात जाने दीजिए। हम केवल कर्ण को लेकर पाण्डवों को पूरे तौर से हरा सकते हैं। हे राजन् ! युद्ध आरम्भ होने पर पाण्डवों की तरफ़वाले वीरों की मृत्यु-वार्ता जब आप सुनेंगे तब आप समझेंगे कि जो कुछ मैं कहता था सच कहता था।

धृतराष्ट्र को उत्तर देने का अवसर न देकर महावीर कर्ण बीच ही में बोल उठे। उनके उत्तर से दुर्योधन आदि बड़े प्रसन्न हुए। कर्ण ने दुर्योधन की एक एक बात का समर्थन किया। अन्त में उन्होंने कहा:—

हे महाराज ! दिव्य-अस्त्र-विद्या के सबसे बड़े ज्ञाता महात्मा परशुराम हैं। उन्हीं से हमने अस्त्र-शिक्षा पाई है। इस युद्ध में प्रधान प्रधान पाण्डवों को मारने का बीड़ा हमीं उठाते हैं।

कर्ण ने जो अपने मुँह अपनी बड़ाई की वह महात्मा भीष्म से न सही गई। उन्होंने इस व्यर्थ डींग हाँकने ही को दुर्योधन के अनुचित साहस का कारण समझा। यही नहीं, किन्तु सारे अनर्थ की जड़ उन्होंने इसी को ठहराया। इस कारण उन्हें बेहद क्रोध हो आया। क्रोध से उनका मुँह लाल हो गया। उन्होंने कर्ण को बहुत फटकारा; इसकी बड़ी निन्दा की। वे बोले:—

हे कर्ण ! काल ने तुम्हारी बुद्धि हर ली है। इसी से तुम इस तरह का प्रलाप करते हो। तुम्हें जो इस बात का अहंकार है कि हम पाण्डवों का संहार करेंगे सो व्यर्थ है। इस प्रकार की अहंकारपूर्ण बातें करते क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? पाण्डव लोग जितने बली हैं तुम उसका एक सोलहवाँ हिस्सा भी नहीं। उन्होंने जैसे बड़े बड़े दुष्कर काम किये हैं वैसे कौन से काम तुमने किये हैं ? विराट नगर में जब अर्जुन ने तुम्हारे प्यारे भाई को मारा तब तुम क्या करते थे ? जब अर्जुन ने सारे कौरवों को अचेत करके उनके कपड़े-लत्ते छीन लिये तब क्या तुम वहाँ पर न थे ? इस समय तुम उन्मत्त बैल की तरह डकार रहे हो और व्यर्थ अपनी बहादुरी बघार रहे हो। किन्तु, घोष-यात्रा के समय जब गन्धर्व-गण कौरवों की दुर्दशा करने लगे तब तुम्हारे वहाँ उप-

स्थित रहते भी क्यों पाण्डवों को उनकी रक्षा के लिए आना पड़ा ? तुम जो बार बार गर्व से भरी हुई मिथ्या बातें कहते हो और बार बार लड़ने की उत्तेजना देते हो उसी से कौरव लोग मोहान्ध हो गये हैं, और उसी से ये सब दुष्कर्म करने के लिए उन्हें साहस हुआ है। तुम्हारे ही दोष से यह महा अनीति हो रही है। तुम जब ब्राह्मण बन कर परशुराम के पास अस्त्र-विद्या सीखने गये थे तभी उनके शाप से तुम्हारी शिक्षा का फल नष्ट हो गया था। तुम्हारे सदृश धर्म्मभ्रष्ट मनुष्य की सहायता का भरोसा करने से इस घोर युद्ध में कौरव लोग ज़रूर ही काल का ग्रास हो जायँगे।

भीष्म के इन वाक्यरूपी बाणों ने कर्ण को बहुत ही सन्तप्त किया। उन्होंने अपने सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और बोले:—

हे पितामह ! आपने पाण्डवों के गुणों का जैसा वर्णन किया वे वैसे ही या उससे भी अधिक हो सकते हैं। परन्तु आपने इस सभा में जो ये कठोर वाक्य हमें कहे हैं उनका फल सुन लीजिए। देखिए, हमने अपने सारे अस्त्र त्याग दिये। जब तक आप जीते रहेंगे हम इनको छुएँगे भी नहीं। धृतराष्ट्र के पुत्र जानते हैं, हम कभी धर्म्मभ्रष्ट नहीं हुए और लेशमात्र भी पाप हमने नहीं किया। हमने हमेशा ही राजा धृतराष्ट्र के मन का काम करने की चेष्टा की है—जो कुछ उन्हें पसन्द था वही हमने हमेशा किया है। युद्ध में आपके मारे जाने पर हम अपना प्रभाव और पराक्रम दिखला कर कौरवों की रक्षा करेंगे।

यह कह कर महाधनुर्धारी कर्ण तुरन्त सभा से निकल कर अपने घर चल दिये। उनके चले जाने पर फिर सब लोग तरह तरह की बातें कह कर दुर्योधन को समझाने लगे। परन्तु, दुर्योधन ने किसी की न सुनी। वह मन-मलीन हुए चुपचाप बैठे रहे। अन्त में बहुत उदास होकर धृतराष्ट्र ने उस दिन की सभा भङ्ग कर दी।

इस सभा का सब वृत्तान्त सुनने पर युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा:—

हे कृष्ण ! इस अवसर पर आपकी सलाह के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। आपत्ति-काल आने पर जैसे आप यादवों की रक्षा करते आये हैं वैसे ही आप इस समय हमारी भी रक्षा कीजिए।

कृष्ण ने कहा:—महाराज ! हम तो, देखिए, आपके सामने ही उपस्थित हैं। जो आज्ञा आप करेंगे वही करने को तैयार हैं।

युधिष्ठिर ने कहा:—सञ्जय से जो कुछ हम लोगों ने सुना उससे धृतराष्ट्र के मन की सच्ची सच्ची बात साफ़ साफ़ मालूम होती है। वे लोग हमें राज्य दिये बिना ही

शान्ति रखना चाहते हैं। हमें अब तक यही विश्वास था कि निश्चित समय बीत जाने पर धृतराष्ट्र हम लोगों को अपना राज्य ज़रूर लौटा देंगे। इसी से हमने प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं की और अनेक प्रकार के कष्ट सहने पर भी धीरज नहीं छोड़ा। इस समय अपने कुचाली पुत्र के वशीभूत होकर हमारे साथ वे अन्याय करने पर उतारू हुए हैं। किन्तु हे जनार्दन! हम अपनी माता और अपने भाइयों को और अधिक कष्ट देने का कोई कारण नहीं देखते। जिसमें कुल-क्षय न हो, इसलिए अन्त में पाँच गाँव ही लेकर इस विवाद को शान्त करने की हमने इच्छा प्रकट की। किन्तु, सारे राज्य को अपने ही अधिकार में रखने के लोभी कौरवों ने इस शर्त को भी न माना। इससे अधिक दुःख की बात और क्या हो सकती है? हे केशव! तुमने अपनी आँख से देखा है कि लड़ाई झगड़ा बचाने के भय और धर्म्म के अनुरोध से आज तक हम लोगों ने कितना क्लेश उठाया है। अब हम न्याय से अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। फिर भला, कहिए, अपनी क्षति को और अधिक कष्ट उठाते हम किस प्रकार देख सकेंगे? इससे यद्यपि लड़ाई में हार जीत होना, दोनों बातें, हमारे लिए प्रायः एक सी हैं, क्योंकि चाहे हम हारें चाहे कौरव लोग, दोनों तरह से हमारे प्यारे बन्धुबान्धवों का नाश अवश्य ही होगा, तथापि हमने तो अब यह निश्चय किया है कि यदि कठोरता दिखलाने की ज़रूरत होगी तो वही करेंगे और यदि राज्य पाने के लिए प्राण तक देने होंगे तो उन्हें भी दे देंगे। हे चतुर-शिरोमणि! यह मामला बड़ा ही गम्भीर है। इससे तुम्हें छोड़ कर और किससे उचित सलाह की हम आशा करें। आप दोनों पक्षों के शुभचिन्तक और प्यारे हैं। इस विषय में सब बातों का मर्म जाननेवाला आपके सिवा और कौन है?

युधिष्ठिर के मुँह से यह सुन कर कृष्ण ने कुछ देर तक विचार किया। फिर वे बोले:—हे धर्म्मराज! युद्ध शुरू होने के पहले हम चाहते हैं कि हम स्वयं एक बार हस्तिनापुर जायँ और दोनों पक्षों के हित के लिए आख़िरी चेष्टा कर देखें। हम वहाँ आपके स्वार्थ का पूरा पूरा ख़याल रक्खेंगे। यदि आप को किसी तरह की हानि पहुँचाये बिना हम शान्ति स्थापन कर सकें तो कुरु-कुल को मृत्यु के मुँह से बचा कर हम अपने को महा पुण्यवान् समझेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण! हमारा मत तो यह है कि आपको कौरवों के पास न जाना चाहिए। राज्य के मोह से उनकी बुद्धि मारी गई है। इससे वे कभी आपका उचित आदर-सत्कार न करेंगे। आप जो कुछ उपदेश देंगे वह ज़रूर ही युक्तिपूर्ण और उचित होगा। परन्तु, हमें विश्वास है, दुर्योधन कभी आपकी बात न मानेंगे। रहे दूसरे राज-

पुरुष, सो वे भी दुर्योधन की हाँ में हाँ मिलावेंगे; क्योंकि वे सब उसी के वश में हैं। हे माधव ! उन अधर्म्मियों के घर जाने से आप पर यदि कोई आपत्ति आवे तो, इस लोक का राज-पाट तो दूर रहे, देवताओं के समान ऐश्वर्य मिलने पर भी हमारे मन का दुःख दूर न होगा।

कृष्ण बोले—हे धर्म्मराज ! हम दुर्योधन की पाप-बुद्धि का बहुत अच्छा ज्ञान रखते हैं। हमसे कोई बात छिपी नहीं। तथापि हमारा हस्तिनापुर जाना किसी तरह व्यर्थ न जायगा। या तो हम अपने काम में सफल होकर सबका उद्धार करेंगे; या, यदि, ऐसा न होगा, तो अन्त तक शान्ति की चेष्टा करने के कारण लोक में कोई हमें निन्दनीय तो न समझेगा। हमारे लिए आप कुछ भी न डरें। यदि मूर्खता के कारण कौरव लोग हम पर अत्याचार करने की चेष्टा करेंगे तो हम अपनी रक्षा करने की काफ़ी शक्ति रखते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! तुम यदि यही अच्छा समझते हो तो हम मना नहीं करते। आशा है, तुम सफल-मनोरथ होकर बिना विघ्न-बाधा के लौट आओगे। पर, यदि, ऐसा न होगा तो हम युद्ध के लिए ज़रूर ही तैयारी करेंगे।

युधिष्ठिर की बात समाप्त होने पर भीमसेन कहने लगे:—

हे मधुसूदन ! आप तो दुर्योधन के स्वभाव को अच्छी तरह जानते हैं। वह महा-क्रोधी है; पहले दरजे का शठ है; दीर्घदर्शीपन तो उसमें छू तक नहीं गया; आगे पीछे की सब बातें सोच कर काम करना वह जानता ही नहीं। इस समय वह अपने ऐश्वर्य्य के मद में मत्त हो रहा है। उसके साथी उसे हमारे साथ शत्रुता करने के लिए उकसा रहे हैं। वह अपने प्राणों से चाहे भले ही हाथ धो बैठे, पर नम्र होने का नहीं। इस समय दोनों तरफ़ युद्ध का जैसा सामान इकट्ठा हुआ है उससे तो यही मालूम होता है कि युद्ध होने से यह जगत् प्रसिद्ध भरतकुल जड़ से नाश हुए बिना न रहेगा। एक एक काल पुरुष जन्म लेकर जैसे एक एक राजवंश के नाश का कारण होता है, उसी तरह, जान पड़ता है, कुलाङ्गार दुर्योधन ने भरत-वंश के संहार ही के लिए जन्म लिया है। लक्षणों से तो साफ़ साफ़ यही मालूम हो रहा है। इसके कारण यदि भरत-वंश समूल ध्वंस हो जाय तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। इससे हे केशव ! यदि किसी तरह दुर्योधन को शान्त करके यह कुलनाश निवारण किया जा सके तो बड़ी अच्छी बात है। यदि हम लोगों को नम्र होने की ज़रूरत हो तो इस इतने बड़े भरतकुल की रक्षा के लिए हम वह भी करने को तैयार हैं। धर्म्मराज तो नम्रता से काम लेने का वचन दे ही चुके हैं; अर्जुन भी इस वंशनाशकारी युद्ध को कभी अच्छा न समझेंगे।

पहाड़, जो बे-हद वज़नी होता है, यदि हलका हो जाय; और आग, जिसमें हमेशा जलाने की शक्ति रहती है, यदि शीतल हो जाय; तो जैसे बहुत बड़े आश्चर्य की बात हो, वैसे ही महा उग्र स्वभाववाले भीमसेन के मुँह से नम्रता भरा हुआ ऐसा मृदु वाक्य सुन कर महातेजस्वी कृष्ण को विस्मय हुआ। भीमसेन की बात का ठीक मतलब जान लेने की इच्छा से वे उनसे हँसी करने लगे। वे बोले:—

हे भीमसेन! प्रतिज्ञा-पालन का वचन जब पूरा भी न हुआ था, तभी से तुम युद्ध की प्रशंसा करते थे। वनवास के समय नीचे मुँह किये हुए तुम पड़े रहते थे—रात रात भर तुम्हें नींद नहीं आती थी। हमेशा ही तुम क्रोध से जला करते थे। अकेले में हमेशा ही भौंहें टेढ़ी किया करते थे। हमेशा ही बार बार लम्बी साँसें लिया करते थे। दिन रात युद्ध की चिन्ता के सिवा और किसी बात में तुम्हारा मन ही न लगता था। आज वनवास का वह क्लेश कहाँ गया? कौरवों की सभा में द्रौपदी का जो अपमान हुआ था वह, इस समय, क्या तुम्हें बिलकुल ही भूल गया? क्या समझ कर तुम नम्रता दिखाने की सलाह दे रहे हो? दुर्योधन के पास अधिक फ़ौज देख कर तुम्हें मोह तो नहीं हो आया? तुम डर तो नहीं गये?

कृष्ण के इन वचनों का मतलब भीमसेन समझ गये। उन्होंने जान लिया कि हमारे से कृष्ण हमें कायर बता रहे हैं। इससे उन्हें बड़ा सन्ताप हुआ। वे इस प्रकार क्रोध-पूर्ण वचन बोले:—

हे वासुदेव! आप इतने दिन से हमारे साथ रहते हैं, तिस पर भी, जान पड़ता है, आपने हमें अच्छी तरह नहीं पहचाना। इसी से आपने ऐसी अनुचित बात अपने मुँह से निकाली। आपको छोड़ कर और किसी में शक्ति नहीं जो हम पर ऐसा अन्यायपूर्ण दोष लगावे। हम अपनी बड़ाई अपने मुँह से नहीं करना चाहते; परन्तु हमारा वंश संसार में इतना प्रसिद्ध है कि उस पर हमारी बहुत अधिक ममता है। इसी से हमें जो क्लेश उठाने पड़े हैं उनको भूल कर, और उनके कारण उत्पन्न हुए क्रोध को रोक कर, हम शान्ति-स्थापन करने की इच्छा रखते हैं।

तब कृष्ण भीम को शान्त करके कहने लगे:—

हे वृकोदर! हम भूले नहीं—हमने तुम्हें अच्छी तरह पहचाना है। तुम्हारी बात का ठीक मतलब जानने के लिए हमने तुमसे वैसा कहा। उसे तुम हँसी समझो। तुमने अपने लिए जो कुछ कहा उसकी भी अपेक्षा हम तुम्हारे प्रभाव को अधिक जानते हैं। हे भीम! यद्यपि हम सन्धि स्थापन करने जाते हैं, और उसके लिए जहाँ तक हमसे हो

सकेगा, कोई बात उठा न रक्खेंगे। तथापि मनुष्य की चेष्टा की अपेक्षा दैव ही को प्रधान समझना चाहिए। इससे हमारे सफल-मनोरथ होने में बहुत सन्देह है। कौरव लोग यदि हमारी बात न मानेंगे तो भयङ्कर युद्ध हुए बिना न रहेगा। फिर कोई बात ऐसी नहीं जिससे युद्ध का निवारण हो सके। इस युद्ध में हम लोगों को तुम्हारे ही बल और तुम्हारे ही पराक्रम पर पूरा पूरा भरोसा रखना होगा। इसी से तुम्हारी नम्रता को देख कर हमने तुम्हारे तेज को प्रज्वलित करना उचित समझा।

अर्जुन ने कहा—हमें जो कुछ कहना था सो धर्म्मराज ही ने कह दिया है। आपके कहने से तो यही बोध होता है कि सन्धि होना आप एक प्रकार असम्भव समझते हैं। परन्तु, हे जनार्दन! पहले ही से मन में इस तरह का सिद्धान्त करके सन्धि-स्थापन करने के लिए जाना उचित नहीं। आप दोनों पक्षों के प्रधान मित्र हैं। आपको हमारी भी मङ्गलकामना करनी चाहिए और कौरवों की भी। आपके मन में दोनों पक्षों के सम्बन्ध में कुछ भी भेद-भाव रहना मुनासिब नहीं। सन्धि असम्भव होने का हमें कोई कारण नहीं देख पड़ता। हम कोई बात ऐसी नहीं देखते जिससे सन्धि न हो सके। शकुनि, कर्ण आदि जो इस समय दुर्योधन के मुख्य सलाहकार हैं, हमें अपना राज्य लौटा देने से उनकी रत्ती भर भी हानि न होगी। इससे यदि आप अच्छी तरह चेष्टा करेंगे तो, आश्चर्य नहीं, जो आपका यत्न सफल हो जाय।

कृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! तुमने यथार्थ बात कही। हम दोनों पक्षों के सम्बन्ध का अच्छी तरह स्मरण रख कर, जहाँ तक हो सकेगा, दोनों पक्षों की एक सी हित-चिन्तना करेंगे।

तब नकुल कहने लगे:—

हे कृष्ण! धर्म्मराज आदि सभी ने शान्ति रखने की बात कही; परन्तु हमारे विचार में तो यह आता है कि यदि पहले शान्ति-स्थापन करने में सफलता न हो, तो डर दिखा कर भी अपना मतलब निकाल लेना बुरा न होगा। हम लोगों को युद्ध-सम्बन्धी जो सहायता और जो सामग्री मिली है उसे देख कर दुनिया में कौन ऐसा मूर्ख है जो हमारे साथ युद्ध के लिए तैयार होने का साहस करे। युक्ति से भरी हुई आपकी बात और कोई चाहे न सुने; परन्तु भीष्म, द्रोण और विदुर ज़रूर ही उन्हें आदरपूर्वक सुनेंगे और आपके अनुकूल अपनी राय भी देंगे। जहाँ आप वक्ता और वे लोग सहायक, वहाँ कौन काम ऐसा है जो सिद्ध न हो सके?

सहदेव ने कहा—हे शत्रुनाश करनेवाले केशव! महाराज युधिष्ठिर और दूसरे

भाई तो धर्म्म-मार्ग ही को अच्छा समझ कर शान्ति-स्थापन की चेष्टा में ही अपना भला समझते हैं। परन्तु हमारी राय वैसी नहीं। हम तो ऐसी चेष्टा को किसी तरह अच्छा नहीं समझते। भरी सभा में द्रौपदी का जो इतना भारी अपमान किया गया है उसका प्रायश्चित्त दुर्योधन की मृत्यु के सिवा और किस बात से हो सकता है? बिना दुर्योधन को मारे हमारे हृदय का वह सन्ताप और किसी तरह दूर होने का नहीं।

सहदेव के उत्तर की प्रशंसा करके सात्यकि ने कहा:—

हे पुरुषोत्तम! श्रीमान् सहदेव ने बहुत सच कहा। पाँचों पाण्डव और तपस्विनी द्रौपदी को इतने दिन के वनवास और अज्ञात वास में उन्हें जो सैकड़ों तरह के महा दुःखदायी क्लेश सहने पड़े हैं उनसे हम सबके मन में महा उत्कट क्रोध उत्पन्न हुआ है। दुर्योधन को मारे बिना वह क्रोध किस तरह शान्त हो सकता है? कौन ऐसा योद्धा है जो इस बात का समर्थन न करे—जो यह न कहे कि ऐसे भारी अपराध के लिए दुर्योधन को ज़रूर मारना चाहिए?

महावीर सात्यकि के मुँह से ऐसा वचन सुन कर वहाँ पर बैठे हुए योद्धाओं में कोलाहल होने लगा। वे लोग सात्यकि के वाक्य की बार बार प्रशंसा करने लगे। कोई ऐसा न था जिसने सात्यकि को शाबाश न कहा हो।

उस समय द्रौपदी अपने पतियों के नम्र भाव को देख कर जीती ही मुर्दा सी बनी बैठी थी। परन्तु, सहदेव और सात्यकि के मुँह से जब उसने अपने मन की बात सुनी तब उससे चुप न रहा गया। तब उसने जाना कि मेरे दुःख से दुःखी होनेवाले भी कोई यहाँ हैं। रोती हुई वह कृष्ण से कहने लगी:—

हे मधुसूदन! धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हम लोगों पर कहाँ तक अत्याचार किये हैं, इन की तुम्हें बार बार याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। धर्मराज ने केवल पाँच गाँव लेकर सन्धि कर लेने की इच्छा आपही के सामने प्रकट की। पर वह भी कौरवों ने नामंज़ूर की। खैर, तुम कौरवों की सभा में जाते हो तो जाव। परन्तु, सारा राज्य लिये बिना और किसी शर्त पर सन्धि न करना। कौरवों की सभा में जब हमारा इतना अपमान किया गया तब भी हमारे पति कोमलता धारण किये बैठे रहे। सारा अपमान—सारा अनादर—उन्होंने चुपचाप सह लिया। अब वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर चुके हैं। इस समय उन्हें किसी तरह का बन्धन नहीं रहा। अब काम करने का समय आया है। तिस पर भी भीम और अर्जुन फिर मृदुता दिखा रहे हैं! उनकी बातें सुन सुन कर मेरा कलेजा फटा जाता है। इस समय तुम्हारे सिवा और कोई मेरी रक्षा



द्रौपदी और कृष्ण

करनेवाला नहीं। मैं तुम्हारी ही शरण हूँ। तुम्हीं धृतराष्ट्र के इन पापी पुत्रों को उचित दंड दो। यदि मेरे पति युद्ध न करना चाहें तो न करें; कोई हानि नहीं। मेरे वृद्ध पिता और महा बलवान् भाई युद्ध करेंगे। अभिमन्यु को आगे करके मेरे तेजस्वी पाँच पुत्र युद्ध करने में किसी तरह का आगा पीछा करनेवाले नहीं!

इतना कह कर द्रौपदी विह्वल हो उठी; वह ज़ोर ज़ोर रोने लगी। दुःख का वेग कुछ कम होने पर उसने अपनी छुटी हुई काली काली अलकों को हाथ में लिया और कहने लगी:—

हे केशव! जब कौरवों की सभा में शान्ति की बात उठे तब पाखण्डी दुःशासन के हाथ से अपवित्र हुए मेरे इन बालों की बात न भूल जाना!

कृष्ण द्रौपदी को धीरज देकर बोले:—

हे कल्याणी! तुम इस समय जिस तरह रो रही हो उसी तरह कौरवों की स्त्रियों को तुम थोड़े ही दिनों में रोती देखोगी। हे द्रौपदी! और अधिक मत रोओ; आँसू पोंछो; तुम्हारे पति बहुत जल्द शत्रुओं का संहार करके अपना राज्य प्राप्त करेंगे।

इसी तरह की बात होते होते वह रात बीत गई। दूसरे दिन सबेरे ज्यों ही सूर्य्य भगवान् ने अपनी किरणों का जाल फैला कर दसों दिशाओं को प्रकाशित किया त्यों ही यदुवंश-शिरोमणि कृष्ण हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगे। ब्राह्मणों के मुँह से मंगल-पाठ सुन कर उन्होंने स्नान किया। फिर कपड़े-लत्ते पहन कर सूर्य्य और अग्नि की पूजा की। इसके बाद सात्यकि को बुला कर कहा:—

हे सात्यकि! हमारे रथ में शङ्ख, चक्र, गदा और दूसरे प्रकार के सब हथियार सजा कर रक्खो। दुर्योधन, शकुनि और कर्ण बड़े दुरात्मा हैं। इसलिए उनके पाप-कर्म्मों से अपनी रक्षा के लिए तैयार होकर जाना चाहिए।

कृष्ण की आज्ञा पाकर सात्यकि ने रथ में सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र अपने अपने स्थान पर सजा कर रख दिये। रथ को तैयार देख कृष्ण सबसे विदा हुए और सात्यकि के साथ जाकर रथ में बैठ गये। उनके साथ हथियारों से सजे हुए दस महारथी, एक हज़ार सवार, और एक हज़ार पैदल फ़ौज रवाना हुई। इसके सिवा, खाने पीने का सामान लेकर बहुत से नौकर-चाकर भी उनके पीछे पीछे चले। श्रीकृष्ण का सारथि दारुक रथ हाँकने में बहुत ही प्रवीण था। घोड़ों की रास थामते ही वे हवा हो गये। इस प्रकार कृष्ण ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया।

इधर दूत के मुँह से कृष्ण के आने की ख़बर सुन कर धृतराष्ट्र के शरीर में रोमाञ्च हो आया। भीष्म, द्रोण और विदुर आदि के सामने वे दुर्योधन से कहने लगे:—

हे कुरुनन्दन! बड़े आश्चर्य की बात हमने सुनी है। सुनते हैं कि महात्मा वासुदेव खुद ही पाण्डवों के दूत बन कर यहाँ आ रहे हैं। इस समय घर घर यही चर्चा हो रही है। कृष्ण हमारे मान्य ही नहीं, आत्मीय भी हैं; उन्हें हम अपना कुटुम्बी समझते हैं। इसलिए उन्हें आगे बढ़ कर लेने और उनका उचित आदर-सत्कार करने का प्रबन्ध होना चाहिए। हे पुत्र! रास्ते में उनके ठहरने के लिए खूब सजे हुए विश्राम-स्थान तैयार कराओ। सब काम इस तरह होना चाहिए जिसमें उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो—जिसमें वे हम पर प्रसन्न हों।

भीष्म ने इस बात को बहुत उचित समझा। उन्होंने कहा:—हाँ ज़रूर ऐसा ही करना चाहिए। यह सुन कर दुर्योधन ने कृष्ण के रास्ते में जगह जगह पर अत्यन्त रमणीय विश्राम-शालायें बनवाईं और उनमें अनेक प्रकार के आसन, अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ और अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन और पान आदि की सामग्री रखवा दी। इसके बाद धृतराष्ट्र ने फिर सबको बुला कर विदुर से कहा:—

सुनते हैं, कृष्ण इस समय उपप्लव्य नगर से चल कर वृकस्थल में पहुँच गये हैं। वहाँ से रवाने होकर कल प्रातःकाल वे यहाँ आ जायँगे। जितने यादव हैं, कृष्ण उन सबके शिरोमणि हैं। इससे उनका अच्छी तरह आदर होना चाहिए। इसमें ज़रा भी त्रुटि न होनी चाहिए। हमने जो कुछ करना निश्चय किया है, सुनिए—अच्छे अच्छे चार घोड़े जुते हुए सोलह रथ, आठ हाथी, एक सौ दास-दासी; इसके सिवा पहाड़ी देशवाले कोमल कोमल कम्बल और चीन देश के मृग-चर्म—यह सब उपहार के रूप में उन्हें भेंट किया जायगा। अपने भाण्डार की विमल कान्तिवाली वे मणियाँ भी हम कृष्ण को देना चाहते हैं जिनका प्रकाश दिन रात एक सा बना रहता है। दुर्योधन को छोड़ कर हमारे और पुत्र उत्तमोत्तम कपड़े और गहने पहन कर रथों पर सवार होकर कृष्ण की पेशवाई करेंगे। जिस रास्ते कृष्ण आवेंगे उस रास्ते में खूब पानी छिड़का जाय, जिसमें धूल का नाम न रहे। फिर, वह, दोनों तरफ़, ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित किया जाय। दुर्योधन के घर की अपेक्षा दुःशासन का घर अधिक अच्छा है। इससे वही खूब साफ़ करके सजाया जाय। उसी में श्रीकृष्ण ठहराये जायँ। हमारे और दुर्योधन के पास रत्न आदि जितने बहुमूल्य पदार्थ हैं उनमें से जो जो चीज़ें कृष्ण के योग्य हों वे सब उनको देने के लिए उसी घर में रक्खी जायँ।

विदुर ने कहा:—आपने जो सब तैयारी करने की आज्ञा दी, कृष्ण उसी के नहीं, उससे भी अधिक आदर-सत्कार के योग्य हैं। परन्तु, हमें तो यह मालूम होता है कि ये सब धन-रत्न आप प्रीतिपूर्वक सच्चे हृदय से कृष्ण को नहीं देने जाते। हमें तो साफ़ साफ़ देख पड़ता है कि महात्मा कृष्ण को अपने पक्ष में कर लेने के इरादे से रिश्वत के तौर पर आप ये सब चीज़ें उन्हें देना चाहते हैं। किन्तु, आपकी यह कोशिश बेफ़ायदा जायगी—आपका यह सारा यत्न व्यर्थ होगा। आदर-सत्कार करके और धन-सम्पत्ति देकर आप कृष्ण को पाण्डवों से कभी अलग न कर सकेंगे। कौन नहीं जानता कि कृष्ण को अर्जुन प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं ? हे महाराज ! कृष्ण हम लोगों से केवल इतना ही चाहेंगे कि उनके साथ साधारण शिष्टता का बर्ताव किया जाय। जैसा बर्ताव एक भला आदमी दूसरे भले आदमी के साथ करता है वैसा ही बर्ताव उनके साथ किया जाना बस होगा। इससे अधिक आदर-सत्कार करने की वे कभी हमसे आशा न रक्खेंगे। वे दोनों पक्षवालों की मङ्गल-कामना से यहाँ आ रहे हैं—वे जी से यही चाहते हैं कि दोनों पक्षों का भला हो। वे जो कुछ धर्मोपदेश करें उसे मान लेने ही से वे समझेंगे कि हमारा बहुत बड़ा आदर हुआ। इसके सिवा वे और कुछ चाहते भी नहीं; और देने से वे लेंगे भी नहीं।

दुर्योधन बोले:—विदुर ने जो कुछ कहा, सच है। पाण्डवों से कृष्ण को फोड़ने की कोशिश करना व्यर्थ है। इससे आप जो धन-रत्न कृष्ण को देने की तजवीज़ कर रहे हैं सो ठीक नहीं। कृष्ण अवश्य ही उन सब वस्तुओं के पाने के पात्र हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु, इस समय वे समझेंगे कि हम लोग, मारे डर के, ये सब चीज़ें देकर उन्हें प्रसन्न करना चाहते हैं। हम जब उनकी सन्धि-सम्बन्धी बात मानने को तैयार नहीं तब उन्हें रुपये-पैसे और धन-रत्न आदि की भेंट देना मुनासिब नहीं।

दुर्योधन की बात सुन कर पितामह भीष्म बोले:—

हे धृतराष्ट्र ! तुम चाहे कृष्ण का सत्कार करो, चाहे न करो, वे कभी क्रोध न करेंगे। तुम्हारे अधिक आदर करने और बहुत सी बहुमूल्य चीज़ों की भेंट देने से वे कभी धर्म्म-मार्ग को न छोड़ेंगे—वे कभी सत्य के पथ से एक पग भी इधर उधर न जायँगे। तथापि उनका निरादर न होना चाहिए; वे निरादर के पात्र नहीं। जो कुछ वे कहेंगे धर्म्म की बात कहेंगे। उनका कहना करने ही में तुम्हारा हित है। उनकी बात न मानने से कभी तुम्हारा मङ्गल न होगा।

दुर्योधन ने कहा:—हे पितामह ! यह कभी नहीं हो सकता कि इस सारी राज्य-

सम्पदा में हम पाण्डवों को भी साझी बनावें और जो कुछ हमें मिले उसी से हम सन्तुष्ट रहें। हम राज्य का बाँट करने के लिए तैयार नहीं। पाण्डवों को अपने वश में कर लेने का एक बहुत ही सहज उपाय इस समय हमारे मन में आया है, सुनिए। बिना कृष्ण की मदद के पाण्डव लोग एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ा सकते। इससे यदि इस मौक़े पर हम लोग कृष्ण को ज़बरदस्ती क़ैद कर लें तो फिर कभी अर्जुन युद्ध करने का साहस न कर सकेंगे। अधिक तो क्या, ऐसा होने से सारा राज्य अनायास ही हमारे वश में हो जायगा। फिर कोई चूँ तक न कर सकेगा। इससे आपको ऐसी चाल चलना चाहिए जिसमें यह भेद किसी पर ज़ाहिर न हो और बिना किसी विघ्न-बाधा के कृष्ण पकड़ कर बन्दी बना लिये जायँ।

दुर्योधन की यह महा दारुण दुःख देनेवाली बात सुन कर धृतराष्ट्र के हृदय में गहरी चोट लगी। मारे दुःख के वे व्याकुल हो उठे और बोले:—

बेटा! तुम कभी भूल कर भी अब ऐसी बात अपने मुँह से न निकालना। कृष्ण हमारे आत्मीय हैं—हमारे घर के हैं। वे यों ही हमारे प्यारे हैं, फिर इस समय तो वे दूत होकर आते हैं। उन्होंने कभी कुरु-कुल की बुराई नहीं की; कभी कोई काम ऐसा नहीं किया जिससे हम लोगों का अनहित हुआ हो। इससे उनके साथ इस तरह का बुरा व्यवहार करना बहुत बड़े अधर्म्म की बात होगी।

दुर्योधन की बात सुन कर भीष्म को सबसे अधिक क्रोध आया। वे बोले:—हे धृतराष्ट्र! तुम्हारा यह पापी पुत्र हमेशा ही अनर्थ करने की फ़िक्र में रहता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि तुम इसे दण्ड न देकर उलटा इसी के कहने में चलते हो। तुमसे और अधिक क्या कहें, यदि यह दुष्ट दुर्योधन कृष्ण के साथ कोई अनुचित काम करने की चेष्टा करेगा तो इसे निश्चय ही मारा गया समझना। इस दुरात्मा की पाप-पूर्ण बातें हम और अधिक नहीं सुना चाहते।

इतना कह कर महात्मा भीष्म मारे क्रोध के काँपते हुए वहाँ से उठ कर चल दिये।

इधर वृकस्थल में रात बिताकर सवेरे कृष्ण ने पूजा-पाठ समाप्त किया और हस्तिनापुर चलने की तैयारी करने लगे। वृकस्थल के निवासियों ने उन्हें चारों तरफ़ से घेर लिया और उनके साथ साथ हस्तिनापुर चले। भीष्म, द्रोण आदि महात्मा, और दुर्योधन को छोड़ कर धृतराष्ट्र के सारे पुत्र, कृष्ण को लेने के लिए आगे आये। कृष्ण के दर्शनों के लिए पुरवासी भी हस्तिनापुर से चले। कोई कोई अनेक प्रकार के वाहनों पर सवार होकर निकले; कोई कोई पैदल ही चल दिये।

इसके अनन्तर कौरवों से घिरे हुए महात्मा कृष्ण ने नगर में प्रवेश किया। उनके सम्मान के लिए नगर खूब सजाया गया और राज-मार्ग अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित किया गया। घरों की खिड़कियाँ कृष्ण का दर्शन करनेवाली पुर-नारियों से भर गईं। जिस मार्ग से कृष्ण आ रहे थे उसमें इतनी भीड़ हुई कि हवा के समान तेज़ चलनेवाले कृष्ण के घोड़ों को चींटी की चाल चलनी पड़ी।

धीरे धीरे कृष्ण का रथ राज-महलों के सामने आ पहुँचा। वहाँ वे रथ से उतर पड़े और धृतराष्ट्र के महल में पधारे। एक एक करके तीन पौठ पार करके वे धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। उस समय धृतराष्ट्र के पास जितने राजा लोग बैठे थे सबके साथ धृतराष्ट्र अपने आसन से उठ खड़े हुए और कृष्ण का उचित आदर किया। कृष्ण ने बड़ी नम्रता से सबकी पूजा की और उम्र में छोटे बड़े का ध्यान रख कर सबसे यथोचित रीति से मिले। इसके अनन्तर, जो आसन उनके लिए पहले ही से लगा हुआ था उस पर जब वे बैठ गये तब जल आदि उन्हें दिया गया और उनकी पूजा की गई। इस प्रकार सत्कार हो चुकने पर, जिससे जैसा सम्बन्ध था उससे उसी अनुसार हँसी-दिल्लगी और प्रेम-पूर्ण बातचीत करते हुए कुछ देर वहाँ कृष्ण बैठे रहे।

वहाँ से कृष्णजी विदुर के घर गये। विदुर महा धर्मात्मा थे। उन्होंने ऐसा अच्छा अतिथि घर आया देख कृष्ण का बहुत ही सत्कार किया और बोले:—

हे माधव! आपके दर्शनों से हमें जितना आनन्द हुआ है उसका वर्णन नहीं हो सकता। आदि से अन्त तक पाण्डवों का सारा हाल आपसे सुनने की बड़ी इच्छा है। कृपापूर्वक सब वृत्तान्त कह जाइए।

तब कृष्ण ने विदुर को प्रसन्न करके पाण्डवों के कुशल-समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनायें। विदुर के घर में अच्छी तरह आराम करके तीसरे पहर वे अपनी बुआ कुन्ती के घर गये। अपने पुत्रों को प्राण से भी अधिक प्यार करनेवाली कुन्ती बहुत दिनों के बाद पुत्रों के परम सहायक कृष्ण को पाकर बड़े प्रेम से उनसे मिली। कृष्ण के गले में हाथ डाल कर एक एक पुत्र का अलग अलग नाम ले लेकर वह रोने लगी। वह कहने लगी:—हाय! मैं विधवा हो गई; मेरी धन-सम्पत्ति भी नष्ट हो गई; बन्धु-बान्धव भी शत्रुता करने लगे; परन्तु इन बातों से मुझे इतना कष्ट नहीं हुआ जितना अपने पुत्रों के वियोग से हो रहा है। मैं दिन रात उनके सोच में मरी जाती हूँ। आज १४ वर्ष हो गये धर्म्म-परायण युधिष्ठिर को, सब प्रकार की अस्त्र-शस्त्र-विद्या जाननेवाले अर्जुन को, महाबली भीमसेन को, और माद्री के परम-कान्तिमान् दोनों पुत्रों को मैंने

नहीं देखा। हाय! इतने दिन तक उन्होंने और उनकी अपेक्षा भी अधिक प्यारी मेरी द्रौपदी ने, नहीं मालूम, कितना क्लेश उठाया है। कुछ भी हो, उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी उसका पालन कर चुके। अब उनके लिए कोई बन्धन नहीं। इसलिए इस समय उन्हें क्षत्रिय-धर्म के पालन में ज़रा भी संकोच न करना चाहिए। उन्हें इस तरह अपना धर्म पालन करना चाहिए, जिसमें सनाथ होकर भी महापतिव्रता मेरी प्यारी द्रौपदी अनाथ की तरह दुख न पावे।

कृष्ण अपनी बुआ कुन्ती को धीरज देते हुए बोले:—

हे आर्य्ये! आप तो वीर-माता और वीर-पत्नी हैं—आपके पति भी वीर थे; आपके पुत्र भी वीर हैं। इससे आपको सुख-दुख सभी कुछ सहन करना पड़ेगा। आपके वीर पुत्रों ने वनवास-काल में जैसा बल-विक्रम दिखलाया है, युद्ध होने पर भी वे वैसा ही बल-पराक्रम दिखलावेंगे। इसमें सन्देह ही क्या है? थोड़े ही दिनों में आप अपने पुत्रों को पहले ही की तरह सम्पत्तिमान् और ऐश्वर्य्यवान् देखेंगी।

यह सुन कर कुन्ती को बहुत कुछ भरोसा हुआ। उसने कहा:—

हे कृष्ण! हम इस बात को अच्छी तरह जानती हैं कि तुम नीति के बहुत बड़े ज्ञाता हो और सब बातों को खूब सोच समझ कर करते हो। जो कुछ तुम करते हो उसमें कभी भूल नहीं होती। अतएव, जैसा तुम कहते हो, मुझे पूरा विश्वास है, सब बात वैसी ही होगी।

इसके बाद कुन्ती से बिदा होकर कृष्ण दुर्योधन के घर की तरफ़ चले। वहाँ पहुँचने पर, कई फाटक पार करके उन्होंने पर्वत-शिखर की तरह ऊँचे महल की सीढ़ियों पर चढ़ना शुरू किया। महल के भीतर जा कर उन्होंने देखा कि बहुत से राजों के बीच में एक बहुमूल्य आसन पर दुर्योधन विराज रहे हैं; और, दुःशासन, शकुनि और कर्ण उनके पास ऊँचे ऊँचे आसनों पर बैठे हैं। कृष्ण के पहुँचते ही सब लोग उठ खड़े हुए और उनका अभिवादन करके विधि-पूर्वक उनका सत्कार किया। यदुकुल-श्रेष्ठ कृष्ण अत्यन्त कोमल बिस्तर बिछे हुए सुवर्णमण्डित आसन पर बैठ कर सबके साथ यथोचित बातचीत करने लगे।

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने कृष्ण को भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया। परन्तु, कृष्ण ने निमन्त्रण को स्वीकार न किया। तब सबके सामने दुर्योधन इस प्रकार शठतापूर्ण मृदु वचन बोले:—

हे जनार्दन! ये सब तैयारियाँ आपही के लिए हुई हैं। फिर आप क्यों हमारे निम-

न्त्रण को स्वीकार नहीं करते ? आप हमारे परम आत्मीय और परम प्यारे हैं। इससे हम यह जानना चाहते हैं कि क्या कारण है जो आप हमारे यहाँ भोजन नहीं करते। महात्मा कृष्ण ने दुर्योधन की विशाल भुजाओं पर हाथ रख कर कहा:—

हे दुर्योधन ! हम दूत होकर आये हैं। काम सफल हो जाने पर दूत लोग पूजा और भोजन ग्रहण करते हैं। इस कारण जिस काम से हम आये हैं उसके सिद्ध होने पर तुम्हारा निमन्त्रण हम स्वीकार करेंगे।

दुर्योधन ने कहा:—हे कृष्ण ! यह बात आपने उचित नहीं कही। आप अपने काम में सफल हों या न हों, हम लोग, जहाँ तक हो सकेगा, आपकी सेवा-शुश्रूषा करने में त्रुटि न करेंगे। नम्रतापूर्वक हमारे बहुत कुछ आग्रह करने पर भी, क्यों आप हमारी बात को टाल रहे हैं, इसका कुछ भी कारण हमारी समझ में नहीं आया।

यह सुन कर कृष्ण कुछ मुसकराये और दुर्योधन की तरफ़ देख कर कहने लगे:—

हे दुर्योधन ! यदि तुम सच्चा कारण जानने की बहुत ही इच्छा रखते हो तो सुनो। संसार में या तो लोग प्रीति के वश होकर दूसरे का अन्न ग्रहण करते हैं, या दुःख दारिद्र से पीड़ित होने के कारण दूसरे का दिया खाते हैं। परन्तु, यहाँ पर न तुम्हारी प्रीति ही हम पर है और न हमें ही अन्न-वस्त्र की कमी है। फिर भला क्यों हम तुम्हारा अन्न खायँ ? हमारे परम मित्र विदुर ने आज हमारा निमन्त्रण किया है। उन्हीं के यहाँ भोजन करना हमने उचित समझा है।

यह कह कर कृष्ण वहाँ से चल दिये, और विदुर के घर जाकर बड़ी प्रीति से उन्होंने भोजन किया। रात को विदुर ने कहा:—

हे मधुसूदन ! आपने अच्छा नहीं किया जो आप इस समय यहाँ आये। दुर्योधन महा मूढ़ और महा अभिमानी है। उसे उचित अनुचित का ज्ञान नहीं। जो कुछ उसके जी में आता है, कर बैठता है। आप तो उसके हित के लिए उपदेश करने आये हैं, पर वह कभी आपका हितोपदेश न सुनेगा। कर्ण की गर्वपूर्ण बातों पर विश्वास करके उसने बहुत सी फ़ौज इकट्ठी की है। इस समय वह अपने को अजेय समझता है—उसका ख़याल है कि मुझे दुनिया में कोई नहीं जीत सकता। इससे वह किसी प्रकार आपकी बात न मानेगा। इस दशा में कौरवों की सभा में जाकर सन्धि के विषय में बातचीत करना, हमारी समझ में, आपके लिए किसी प्रकार मुनासिब नहीं।

कृष्ण ने कहा:—हे विदुर ! आपकी हम पर बहुत प्रीति है। प्रीति ही के वश होकर आप ऐसा कह रहे हैं। आपका उपदेश बुरा नहीं। पर आप किसी तरह की चिन्ता न

करेंगे। यदि कौरव लोग हमारी बात मान लेंगे तो मृत्यु के मुँह से उन्हें बचा लेने के कारण हमें बड़ा पुण्य होगा; और यदि वे लोग हमारी युक्ति-पूर्ण बातों का आदर न करेंगे तो भी कोई हानि नहीं। हमें यह समझ कर फिर भी परम सन्तोष होगा कि हमने उन्हें उचित सलाह तो दे दी। और, यदि, वे धर्म्म छोड़ कर हमारा कोई अनिष्ट करने की चेष्टा करेंगे तो हम उसके लिए भी तैयार हैं। इसमें कुछ भी डरने की बात नहीं। इस प्रकार बातें करते करते कृष्ण कोमल शय्या पर सो गये।

प्रातःकाल बन्दी-जन और वैतालिकों के मधुर मधुर गीतों से महात्मा कृष्ण जगे। उठ कर उन्होंने स्नान किया। जप और होम आदि करके बाल-सूर्य्य की उन्होंने उपासना की। फिर कपड़े पहन कर बैठे ही थे कि दुर्योधन और शकुनि उनके पास आकर बोले:—

हे केशव! महाराज धृतराष्ट्र और भीष्म आदि कौरव, और अन्यान्य राजा लोग सभा में बैठे हुए आपके आने की राह देख रहे हैं।

कृष्ण ने उन लोगों का अभिनन्दन किया। फिर ब्राह्मणों का सत्कार करके, दारुक सारथि के लाये हुए रथ पर सवार होकर, अपने सेवकों के साथ वे राजसभा को चले। दुर्योधन और शकुनि दूसरे रथ पर सवार होकर उनके पीछे पीछे हो लिये। सभा-भवन के द्वार पर रथ से उतर कर, विदुर और सात्यकि का हाथ अपने हाथ में पकड़े हुए, कृष्ण ने सभा-मण्डप में प्रवेश किया। कर्ण और दुर्योधन उनके आगे, और यादवों के साथ कृतवर्म्मा उनके पीछे, हो लिये।

यदुवंश-श्रेष्ठ कृष्ण के पहुँचते ही छोटे से लेकर बड़े तक सब कौरव अपना अपना आसन छोड़ कर खड़े हो गये। धृतराष्ट्र के उठते ही वहाँ पर जो सैकड़ों राजा बैठे हुए थे सब एकदम से उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक सबका अभिवादन किया। परन्तु वे बैठे नहीं। द्वार पर कई ऋषियों को खड़े देख कर उन्होंने भीष्म से कहा:—

हे कुरुश्रेष्ठ! देखिए ये ऋषि द्वार पर खड़े हैं। इनको आदरपूर्वक सभा में ले आइए। इनका उचित सत्कार किये बिना किस प्रकार हम बैठ सकते हैं?

यह सुन कर महात्मा भीष्म सभा देखने की इच्छा से आये हुए नारद, कण्व आदि ऋषियों की यथोचित पूजा करके उन्हें सभा में ले आये। यह देख कर कौरवों के नौकरों ने मणि-मण्डित सोने के आसन लाकर वहाँ रख दिये। ऋषि लोग उन्हीं आसनों पर बिठाये गये। तब सभा के सभासद अपने अपने आसनों पर बैठे। कर्ण और दुर्योधन पास पास एक ही आसन पर बैठे। विदुर कृष्ण के पास उनकी बग़ल

में बैठ गये। इसके अनन्तर सब लोग अपनी अपनी जगह पर चुपचाप बैठे हुए कृष्ण का प्रस्ताव सुनने की उत्सुकता दिखाने लगे। चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया। चतुर-चूड़ामणि कृष्ण तुरन्त समझ गये कि सब लोग हमारे बोलने की राह देख रहे हैं। अतएव गम्भीर वाणी से सभा-भवन को गुञ्जायमान करके उन्होंने धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—

हे भरत-वंश-शिरोमणि! हमारी समझ में कौरवों और पाण्डवों के बीच सन्धि-स्थापन करके वीरों का वृथा नाश निवारण करना चाहिए। यही प्रार्थना करने के लिए हम आप लोगों के पास आये हैं। इसके सिवा आपको और कोई उपदेश देने की हम ज़रूरत नहीं समझते। जो कुछ जानने योग्य है, सब आप जानते हैं। विद्या, दया और सरलता आदि गुणों में आपका कुल और सारे राजकुलों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। आप इस कुल में प्रधान हैं; राजकाज की डोरी भी आप ही के हाथ में है। अतएव, बड़े दुःख की बात है जो आपके रहते कौरव लोग अनुचित व्यवहार करें। उन्हीं के कारण कुरु-कुल पर यह घोर आपदा आनेवाली है। हे महाराज! आप यदि इस मामले को ठंडा न करेंगे—आप यदि इस विषय में बे-परवाही दिखलावेंगे—तो इस इतने बड़े राज्य के जड़ से नष्ट हो जाने का डर है। आपके मन में लाते ही यह विपदा दूर हो सकती है। शान्ति-स्थापन करना आपके और हमारे अधीन है। आप कौरवों को शान्त करें, हम पाण्डवों को शान्त करने का भार अपने ऊपर लेते हैं। इस समय कौरव लोग आपके सहायक हैं; शान्ति स्थापित हो जाने से आप पाण्डवों को भी अपना सहायक बनाकर निश्चिन्त मन से आनन्दपूर्वक धर्मार्थ-चिन्ता में निमग्न रह सकेंगे। हे कुरुवंशावतंस! पाण्डवों को आधा राज्य देकर उनके साथ सन्धि-स्थापन करने की हम हृदय से आपको सलाह देते हैं। इसके सिवा हमें और कुछ नहीं कहना। सभासदों में से यदि किसी को और कुछ कहना हो तो कहे।

कृष्ण के चुप हो जाने पर सबने मन ही मन उनके प्रस्ताव की प्रशंसा की; परन्तु, किसी ने मुँह से कुछ भी कहने का साहस नहीं किया। इसके अनन्तर जो ऋषि लोग सभा में बैठे थे उन्होंने नाना प्रकार की कथायें और उपदेश-वाक्य कह कर सबको, विशेष कर के दुर्योधन को, शान्ति स्थापित करने की ज़रूरत दिखलाई। अन्त में महर्षि कण्व ने कहा:—

हे गान्धारीनन्दन! पाण्डव लोग देवताओं के वर-पुत्र हैं; देवताओं ही की कृपा से पाँचों पाण्डवों की उत्पत्ति हुई है। उन्हें युद्ध में कोई नहीं जीत सकता। इससे

तुम युद्ध करने की इच्छा छोड़ कर कृष्ण के द्वारा सन्धि-स्थापन कराकर कुरुकुल की रक्षा करो।

दुर्योधन को भला ऐसा कड़ुवा उपदेश कैसे सहन हो सकता था? वे इस तरह की बातें और अधिक देर तक न सुन सके। भौंहें टेढ़ी करके कर्ण की तरफ़ उन्होंने हँस कर देखा। इस प्रकार ऋषियों की बात का अनादर करते हुए उन्होंने अपनी जाँघ पर ज़ोर से एक थपेड़ा मारा और कहाः—

हे ऋषिगण! परमेश्वर ने हमें पैदा करके जैसी बुद्धि हमें दी है वैसा ही काम हम करते हैं। हमारे भाग्य में जो कुछ है, वही होगा। इसलिए आप लोग अब और वृथा बकवाद न करें।

पुत्र के मुँह से ऐसा उद्दण्ड और अशिष्टता से भरा हुआ उत्तर सुन कर धृतराष्ट्र व्याकुल हो उठे। उन्होंने कहाः—

हे महर्षिगण! आपने जो उपदेश दिया वह सचमुच ही बहुत अच्छा है। किन्तु, उसके अनुसार काम करना हमारी शक्ति के बाहर है।

इसके बाद कृष्ण से कहाः—

हे कृष्ण! आपकी बात उचित है, सुखदायक है, और धर्म्म-सङ्गत भी है; इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु, हम स्वाधीन नहीं; जो बात हम करना चाहते हैं वह नहीं होती। इससे तुम दुर्योधन को समझाने का यत्न करो। वह हमारी किसी की बात नहीं सुनता। तुम यदि उसे शान्त कर सको तो बड़ा काम हो जाय।

राजा धृतराष्ट्र के कहने के अनुसार कृष्ण ने दुर्योधन की तरफ़ देखा और उनके सामने मुँह करके इस प्रकार वे मधुर वचन कहने लगेः—

भाई! तुम जैसा व्यवहार करते हो वह तुम्हारे वंश के योग्य नहीं। तुम्हारे इस बुरे व्यवहार से जो अनर्थ होनेवाला है उसे निवारण करके अपने भाइयों और मित्रों का कल्याण करो। हे दुर्योधन! पाण्डवों के साथ सन्धि-स्थापन करने की तुम्हारे सभी गुरुजनों की सलाह है। इससे तुम्हें ज़रूर उनका कहना मानना चाहिए। देखो, बालकपन से पाण्डवों ने तुम्हारे द्वारा अनेक प्रकार के दुःख पाये हैं; तिस पर भी उन्होंने तुम्हारे ऊपर क्रोध नहीं किया। इससे तुम्हें भी उन पर प्रसन्न होना चाहिए। युद्ध में जीतने की आशा तुम वृथा ही करते हो। जिन लोगों के ऊपर भरोसा करके पाण्डवों को तुम जीतना चाहते हो वे किसी तरह पाण्डवों की बराबरी नहीं कर सकते। तुम यदि सच-मुच यह समझते हो कि युद्ध में तुम अर्जुन को हरा दोगे तो व्यर्थ और लोगों का नाश

करने से क्या लाभ है? तुम अपने पक्ष में से किसी एक वीर को अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए चुन लो। उन दोनों के युद्ध का जैसा परिणाम हो उसी के अनुसार दोनों पक्षों की हार-जीत का निश्चय हो। यदि इस बात के मान लेने का साहस न हो तो, व्यर्थ आशा छोड़ कर, राज्य का जो अंश पाण्डवों को मिलना चाहिए उसे उनको दे दो। इससे तुम्हारे मित्रों को भी आनन्द होगा और तुम खुद भी सुख से रहोगे।

कृष्ण की बात समाप्त होने पर भीष्म उनके प्रस्ताव का समर्थन करके दुर्योधन को समझाने लगे:—

हे दुर्योधन! महात्मा कृष्ण ने जो उपदेश तुम्हें दिया वह बहुत ही उचित और धर्म्म-सङ्गत है। तुम्हें उनका कहना मानना चाहिए। देखो; व्यर्थ अपनी प्रजा का नाश न करना। सावधान, माता-पिता को शोक-सागर में न डुबो देना।

किन्तु दुर्योधन ने भीष्म की बातों का आदर न किया। मारे क्रोध के वे लाल हो गये। बड़े ज़ोर से उनकी साँस चलने लगी। तब विदुर ने कहा:—

हम तुम्हारे लिए शोक नहीं करते। किन्तु, तुम्हारे बूढ़े माता-पिता के लिए व्याकुल हो रहे हैं। क्योंकि तुम्हें पैदा करके सारे पुत्रों और सारे मित्रों के मारे जाने पर पंख कटे हुए पक्षी की तरह वे अनाथ हो जायँगे। इसी से हम इतना शोकाकुल हो रहे हैं।

तब धृतराष्ट्र फिर दुर्योधन को मनाने लगे। वे बोले:—

बेटा! श्रीमान् कृष्ण का उपदेश सब तरह कल्याण का करनेवाला है। उसे मान लेने से तुम्हारे ऐश्वर्य्य में कुछ भी कमी न होगी। राज्य का आधा अंश जो तुम दे दोगे तो महात्मा कृष्ण की सहायता से तुम अपना राज्य उसकी भी अपेक्षा अधिक बड़ा कर सकोगे। इनका कहना न मानने से तुम्हारी हार हुए बिना न रहेगी; इसमें कुछ भी सन्देह न समझो।

अन्त में द्रोण ने कहा:—

हे दुर्योधन! अब तक भी अर्जुन ने वर्म-धारण नहीं किया; अब तक भी उन्होंने इस्पात की जाली का कोट नहीं पहना; अब तक भी गाण्डीव धन्वा पर उन्होंने प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ाई; अब तक भी पुरोहित धौम्य ने युद्ध में विजय पाने के लिए यज्ञ-सम्बन्धी अग्नि में आहुतियाँ नहीं डालीं। इससे अब भी भूल सुधार लेने का समय है; अब भी कुमार्ग को छोड़ कर सुमार्ग में आने के लिए अवकाश है; अब भी होनेवाला महाभय-ङ्कर मनुष्य-नाश निवारण किया जा सकता है। तुम प्रसन्न-चित्त होकर पाण्डवों को उनका अंश दे डालो; वे भी प्रेमपूर्वक तुम्हें गले से लगावें; जो राजा लोग इस समय

यहाँ एकत्र हैं वे भी पाण्डवों के साथ तुम्हारा फिर मिलाप होते देख आनन्द के आँसू बहावें।

राजा दुर्योधन ने और किसी की बात पर कुछ भी ध्यान न दिया। केवल कृष्ण के कथन का वे कठोरतापूर्वक उत्तर देने लगे:—

हे वासुदेव ! तुम्हें समझ बूझ कर हमारे साथ बातचीत करना चाहिए। सो वैसा न करके तुम क्यों हमारी वृथा निन्दा करते हो ? तुमने पाण्डवों का कौन सा इतना बल-पराक्रम देखा, जो तुम उनके इतने भक्त हो गये ? केवल तुम्हीं नहीं—भीष्म, द्रोण, विदुर आदि सभी ने क्रम क्रम से हमारी ही निन्दा की। परन्तु, बहुत विचार करने पर भी हम यह न जान सके कि हमने क्या अपराध किया है। जुआ खेलने का चसका लग जाने से युधिष्ठिर ने शकुनि के साथ जुआ खेला। परन्तु, खेल में कुशल न होने के कारण वे अपना सारा राज्य हार गये। उस राज्य को दया करके हमने लौटा दिया। परन्तु, खेलने के व्यसन में वे अपने आपको कुछ ऐसा भूल गये कि बनवास की प्रतिज्ञा को दाँव पर लगा कर फिर भी उन्होंने हार खाई। इसमें हमारा क्या दोष ? सेना-सामग्री आदि एकत्र करते ही क्यों उन्होंने हमें अपना शत्रु समझना आरम्भ किया ? क्या वे यह आशा रखते हैं कि इस तरह हम डर जायँगे ? हम तो ऐसा एक भी क्षत्रिय नहीं देखते जो हमारे साथ युद्ध करके जीत जाय। पाण्डवों की तो बात ही नहीं—भीष्म, द्रोण और कर्ण को इन्द्र आदि देवता भी जीतने में समर्थ नहीं हो सकते। कुछ भी हो, हम क्षत्रिय हैं; इससे शत्रु के सामने सिर नीचा करने की अपेक्षा लड़ाई के मैदान में वीरों के योग्य शय्या पर सोना ही हम अधिक अच्छा समझते हैं। हमारे लड़कपन ही में पिता ने हमारी इच्छा के विरुद्ध पाण्डवों को हमारे राज्य का आधा अंश दे दिया था। परन्तु हमारे जीते रहते अब वे उसे फिर नहीं पा सकते। अधिक तो क्या, सुई की नोक से जितनी ज़मीन छिद सकती है उतनी भी हम पाण्डवों को देने के नहीं।

दुर्योधन के मुँह से ऐसी कठोर बात सुन कर कृष्ण को क्रोध हो आया। उन्होंने दुर्योधन का उपहास करते हुए इस प्रकार उत्तर दिया:—

हे दुर्योधन ! तुम जो वीरों के योग्य शय्या पर सोने की इच्छा रखते हो, सो वह इच्छा, समय आने पर, ज़रूर ही पूर्ण होगी। हे भरत-कुल के कलङ्क ! लड़कपन में तुमने भीमसेन को विष दिया; पाण्डवों को वारणावत नगर में भेज कर माता-सहित उन्हें जला देने की चेष्टा की; द्रौपदी को सभा में लाकर उसका जैसा अपमान तुमने किया वैसा अपने आत्मीय का तो क्या कोई अपने शत्रु का भी नहीं करता ! तुमने जुआ

खेलने में कपट करके पाण्डवों का मौरूसी राज्य छीन लिया और इस समय, जब पाण्डव अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूरी करके उसे धर्म्म से लौटा पाने के अधिकारी हुए तब, तुम उसे लौटाते नहीं। तुम माता-पिता और सारे गुरुजनों की बात नहीं सुनते, और उलटा कहते हो कि बहुत विचार करने पर भी हमें अपना दोष नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु, हमें विश्वास है, जो राजा लोग यहाँ बैठे हैं वे इस मामले को ऐसा नहीं समझेंगे।

कृष्ण इस तरह कह ही रहे थे कि इतने में दुःशासन उठ कर दुर्योधन के पास आये और कहने लगे:—

हे राजन्! सभा में जो लोग बैठे हैं उन सबका मत क्रम क्रम से तुम्हारे विरुद्ध होता जा रहा है। इसलिए तुम्हें यहाँ अब और अधिक देर तक न बैठना चाहिए।

यह सुन कर दुर्योधन को कुछ शङ्का सी हुई। उन्होंने बड़ी ही अशिष्टता से कर्ण, शकुनि और दुःशासन को अपने साथ लिया और सभा से उठ कर चल दिया। तब कृष्ण कहने लगे:—

हे महात्मा जन! बड़े बूढ़े कौरवों ने दुर्योधन को पहले ही से अपने क़ाबू में न रख कर बहुत बुरा किया। इस समय कुल को क्षय होने से बचाने का एक-मात्र उपाय जो हम देखते हैं वह सुन लीजिए। देखिए, हमारे मामा दुरात्मा कंस ने पिता के जीवित रहते ही सारा भोज-राज्य अपने अधिकार में कर लिया। यह देख कर सारे बन्धुबान्धवों ने उसका साथ छोड़ दिया। सब उससे अलग हो गये। अन्त में उसे युद्ध में मारने के लिए हम लाचार हुए। उस एक कंस को छोड़ देने से, देखिए, हम सब यादव लोग आनन्दपूर्वक रहते हैं। आप भी उसी तरह यदि दुर्योधन को छोड़ दें तो कौरवों का नाश होने से बच जाय। नहीं तो कौरवों की रक्षा का और कोई उपाय नहीं। यदि आप दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन को पकड़ कर पाण्डवों के हवाले कर देंगे तभी सन्धि स्थापित होकर क्षत्रियों के कुल की रक्षा हो सकेगी, अन्यथा नहीं।

कृष्ण के इस प्रस्ताव से धृतराष्ट्र बहुत डर गये। वे व्याकुल हो उठे। उन्होंने विदुर से कहा,—

बेटा! गान्धारी बहुत दूरन्देश हैं। उनके पास जाकर तुरन्त उन्हें सभा में ले आओ। यदि माँ के समझाने से दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने आ जाय तो एक बार वे भी कोशिश कर देखें। हाय! दुर्योधन की इस घोर मूर्खता का, न मालूम, क्या फल होगा।

राजा की आज्ञा पाकर विदुर तुरन्त यशस्विनी गान्धारी के पास गये और उन्हें सभा में ले आये। उनके आ जाने पर धृतराष्ट्र बोले:—

हे गान्धारी! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन बड़ा दुःशील है। ऐश्वर्य के लोभ से वह पागल हो रहा है। उसका भले बुरे का ज्ञान जाता रहा है। गुरुजनों की बात पर वह ज़रा भी ध्यान नहीं देता। उसकी इस मूर्खता से हम लोगों पर बहुत भयङ्कर विपद आनेवाली है। अभी कुछ ही देर हुई, वह अपने हितचिन्तकों के उपदेश को न मान कर सभा से चला गया है। भला इस अशिष्टता का कहीं ठिकाना है।

गान्धारी ने कहा:—महाराज! इस आपदा का कारण आपही की दुर्बलता—आप ही की कमज़ोरी—मालूम होती है। आप इस बात को अच्छी तरह जानते रहे हैं कि दुर्योधन महा पाप-परायण है। फिर क्यों आप अब तक बराबर उसका कहना करते आये हैं? अब इस समय उसे ज़बरदस्ती रोकना आपकी शक्ति के बाहर है।

इसके बाद माता की आज्ञा से दुर्योधन फिर सभा में आकर उपस्थित हुए। उनके आने पर गान्धारी ने उनकी बड़ी निन्दा की। वे बोलीं:—

बेटा दुर्योधन! काम और क्रोध के वश होने से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। इसी से तुम गुरुजनों का कल्याणकारी उपदेश नहीं सुनते। किन्तु, हे पुत्र! जब तुम अपनी अधर्म्म-बुद्धि ही को नहीं जीत सकते तब राज्य जीतने या राज्य की रक्षा करने की तुम किस तरह आशा करते हो? बेटा! तुमने आज तक पाण्डवों के साथ जो बुरा व्यवहार किया है— उनको जो तुमने नाना प्रकार की पीड़ा पहुँचाई है—उसका प्रायश्चित्त उन्हें उनका राज्य देकर कर डालो। तुम समझते हो कि युद्ध होने पर भीष्म, द्रोण आदि महात्मा सब तरह तुम्हारी ही तरफ़ रहेंगे। परन्तु, यह बात कभी नहीं हो सकती। पाण्डवों का भी राज्य में हक़ है और अत्यन्त धर्म्मात्मा होने के कारण सब लोग उन्हीं को अधिक चाहते हैं। जो लोग तुम्हारे अन्न से पले हैं वे युद्ध में तुम्हारे लिए प्राण दे सकते हैं। परन्तु, पाण्डवों के ख़िलाफ़ कभी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते। इसलिए, हे पुत्र! सन्धि-स्थापन करके सबकी रक्षा करो और पाण्डवों के साथ मेल करके सुखपूर्वक रहो।

माता की बात समाप्त होने पर दुष्ट दुर्योधन ने कुछ भी उत्तर न दिया। फिर भी वह सभा छोड़ कर चला गया; और कर्ण, शकुनि, तथा दुःशासन के साथ चुपचाप सलाह करने लगा। उसने कहा:—

कृष्ण ने जब हम लोगों को क़ैद करने का प्रस्ताव किया है तब हम लोग भी

धर्म्म से उन्हें क़ैद कर सकते हैं। ऐसा करने से पाण्डवों का सारा उद्योग धूल में मिल जायगा।

दुर्योधन की यह सलाह सात्यकि को मालूम हो गई। कृतवर्म्मा के साथ वे सभा से तुरन्त ही उठ गये। बाहर सभा के दरवाज़े पर आकर उन्होंने यादवों की फ़ौज को, ज़रूरत पड़ने पर, लड़ने को तैयार रहने के लिए सावधानतापूर्वक सूचना कर दी। इसके बाद वे फिर सभा में लौट गये और सब बातें कृष्ण के कान में कह दीं।

तब कृष्ण ने, सबके सामने, धृतराष्ट्र से कहा:—

महाराज! सुनते हैं, दुर्योधन हमें ज़बरदस्ती क़ैद कर लेने का विचार कर रहे हैं। परन्तु, आप लोग हमारी सबलता-निर्बलता को अच्छी तरह जानते हैं। अतएव, आप यह सहज ही जान सकेंगे कि कौन किस को क़ैद कर सकता है। ख़ैर, कुछ भी क्यों न हो, आप लोग डरिएगा नहीं। हम दूत होकर आये हैं। इसलिए दूत-धर्म्म छोड़ कर हम किसी को दण्ड नहीं देना चाहते। हमें अब सारी व्यवस्था मालूम हो गई है। हमने अच्छी तरह जान लिया है कि आप स्वाधीन नहीं और दुर्योधन को सन्धि करना मंज़ूर नहीं। यह सब हाल युधिष्ठिर से कह कर ही हम अपने कर्तव्य से मुक्त हो जायँगे—हम अपना फ़र्ज़ अदा कर चुकेंगे। इसके आगे हमें और कुछ भी करना न होगा। अब हम आप लोगों का अभिवादन करते हैं। लीजिए, हम चले।

यह कह कर महात्मा कृष्ण बाहर निकल आये और रथ पर सवार हो कर अपनी बुआ कुन्ती से विदा होने चले। उन्होंने कुन्ती से सारा हाल कहा। वे बोले:—

देवी! दुर्योधन का बड़ा बुरा हाल है। इस संसार में उसके दिन अब गिने हुए हैं। तुम्हें अपने पुत्रों को यदि कुछ कहना हो तो कहो। हम सुनना चाहते हैं।

कुन्ती ने कहा:—बेटा! युधिष्ठिर से कहना:—

हे पुत्र! प्रजापालन से जो तुमने बहुत सा धर्म्म कमाया है वह अब नष्ट हो रहा है। इसलिए तुम्हें क्षत्रिय-धर्म्म को अब स्वीकार करना चाहिए। तुम्हारी बुद्धि, दिन रात धर्म्म-चिन्ता में लगी रहने से कर्म्म-चिन्ता को भूल सी गई है। इससे तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए।

हे केशव! भीमसेन और अर्जुन से कहना:—

बेटा! क्षत्रिय की कन्या जिस लिए गर्भ-धारण करती है उसका स्मरण रखना। इस समय उसके सफल करने का समय आ गया है।

और, कल्याणी द्रुपद-नन्दिनी से कहना:—

हे द्रौपदी! हे यशस्विनी! हे पतिव्रते! तुमने हमारे पुत्रों के कारण इतना क्लेश सह कर भी जो कोई बात अनुचित नहीं की सो तुम्हारे योग्य ही हुआ है। तुमसे ऐसी ही आशा थी।

हे माधव! सबसे हमारा आशीर्वाद और कुशल-समाचार कहना। अब तुम जाव। ईश्वर तुम्हें कुशलपूर्वक ले जाय।

इसके बाद कुन्ती को प्रणाम करके कृष्ण बाहर निकल आये। बाहर आकर कर्ण से उन्होंने कहा कि आपसे एक ज़रूरी काम है। यह कह कर उन्होंने कर्ण को अपने साथ रथ पर बिठा लिया और सात्यकि तथा नौकर-चाकरों के साथ शहर से प्रस्थान कर दिया। शहर के बाहर एक एकान्त स्थान में पहुँचने पर कृष्ण कर्ण से कहने लगे:—

हे कर्ण! तुम्हारा मेल-जोल हमेशा ही वेद जाननेवालों के साथ रहा है। उन लोगों की कृपा से तुमने बहुत सी अच्छी अच्छी बातें जानी हैं। कोई भी तत्त्व बात ऐसी नहीं जिसका विचार तुमने न किया हो। इससे तुम इस बात को अच्छी तरह जानते हो कि जो मनुष्य जिस स्त्री के साथ विवाह करता है उसकी कन्या-अवस्था में उत्पन्न हुए पुत्र का भी वह शास्त्र-रीति से पिता होता है। तुम अपना जन्म-वृत्तान्त जानते ही हो। कुन्ती का विवाह होने के पहले ही सूर्य्य देवता के वर से तुम उनकी कोख से पैदा हुए थे। इसलिए तुम महात्मा पाण्डु के पुत्र हुए। इस समय तुम्हीं पाण्डवों में सबसे जेठे हो। अतएव, आओ, आज तुम हमारे साथ चलो; हम पाण्डवों को यह सब कथा हाल सुनावें। उन्हें यह बात मालूम होते ही, कि तुम उनके जेठे भाई हो, वे सारा अधिकार तत्काल तुम्हीं को दे देंगे। भीम तुम्हारे मस्तक के ऊपर सफ़ेद छत्र धारण करेंगे और अर्जुन तुम्हारे रथ के घोड़ों की रास हाथ में लेकर सारथि का काम करेंगे। जितने पाण्डव हैं, जितने यादव हैं, और जितने पाञ्चाल देश के रहनेवाले हैं, सभी तुम्हारी वन्दना करेंगे। पुरोहित धौम्य अग्निहोत्र करके विधिपूर्वक तुम्हारा ही राज्याभिषेक करेंगे, और पाण्डवों की तरह द्रौपदी तुम्हारी भी पत्नी होगी। इससे हे महाबाहु! आज ही हमारे साथ चलो और अपने भाइयों के बीच बैठ कर राज्य-शासन का सूत्र अपने हाथ में लेकर कुन्ती के आनन्द को बढ़ाओ।

कर्ण ने उत्तर दिया:—

हे यादव-श्रेष्ठ कृष्ण! हम जानते हैं कि कुन्ती को कन्या-अवस्था में जन्म लेने के कारण शास्त्र के अनुसार हम महात्मा पाण्डु ही के पुत्र हुए। परन्तु हे जनार्दन! हमारे सुख-दुःख की कुछ भी परवा न करके हमारे पैदा होते ही कुन्ती ने हमें फेंक दिया।

उस समय सूत-जाति के अधिरथ नामक सारथि ने हमें देखा। उनको हम पर दया आई। इससे हमें उठा कर उन्होंने अपनी स्त्री राधा को दिया और कहा कि इसको अच्छी तरह पालन-पोषण करो। हे कृष्ण! हमारी माता-रूपिणी राधा के स्तनों में स्नेह के मारे उसी वक्त दूध निकल आया। उस दिन से राधा और अधिरथ ने हमारा लालन-पालन किया। युवा होने पर हमने सूत-जाति की कन्या से विवाह किया। उससे हमारे पुत्र, पौत्रादि हुए हैं। हमारा सारा प्रेम उन्हीं के ऊपर है। अनन्त धन-रत्न की तो बात ही नहीं, सारे भूमण्डल का राज्य पाने पर भी हम उन्हें छोड़ देने की इच्छा नहीं कर सकते। इसके सिवा, हे वासुदेव! इतने दिनों से हम दुर्योधन का दिया हुआ राज्य बिना किसी विघ्न-बाधा के अकण्टक भोग रहे हैं। दुर्योधन ने हमारे साथ सदा ही प्रीति-पूर्ण व्यवहार किया है। हमारे ही भरोसे वे पाण्डवों के साथ विरोध करने पर उतारू हुए हैं। इससे इस समय लोभ या भय के कारण हम उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करके उन्हें निराश नहीं करना चाहते। एक बात और भी है। वह यह कि यदि इस युद्ध में हम अर्जुन का सामना न करेंगे, तो हम दोनों की कीर्ति में बट्टा लगेगा। हे यादवनन्दन! इसमें सन्देह नहीं कि ये सब बातें आपने हमारे ही हित के लिए कही हैं; किन्तु, हमारी आपसे प्रार्थना है कि हमारे जन्म का हाल आप पाण्डवों से न कहें। हे कृष्ण! यदि धर्म्मात्मा युधिष्ठिर को यह मालूम हो जायगा कि हम कुन्ती के जेठे पुत्र हैं तो तत्काल ही वे राज्य छोड़ देंगे। उनका राज्य पाने पर हम उसे दुर्योधन को दिये बिना न रह सकेंगे। हमें उसे दुर्योधन को देना ही पड़ेगा। किन्तु, दुर्योधन को इस तरह राज्य मिलना उचित नहीं। इससे हम चाहते हैं कि युधिष्ठिर ही चिरकाल तक राज्य करें।

कर्ण की बात समाप्त होने पर कृष्ण ने मुसकरा कर कहा:—

हे कर्ण! हमने तुम्हें इतना बड़ा राज्य दे डालना चाहा, पर तुम उसे नहीं लेते। इससे युद्ध हुए बिना अब नहीं रह सकता। तुम लौट कर भीष्म, द्रोण आदि से कह देना कि यह महीना युद्ध के लिए बड़े सुभीते का है। खाने-पीने की चीज़ें और लकड़ी; चारा आदि सामान आसानी से मिल सकता है; जल भी बहुत है; रास्ते भी साफ़ हैं, कहीं कीचड़ नहीं। आज के सातवें दिन अमावास्या होगी। उसी दिन युद्ध का आरम्भ हो तो अच्छा है। तुम सब लोग जब युद्ध के मैदान में आख़िरी शय्या पर सोने की प्रार्थना करते हो तब वही होगा, इसमें सन्देह नहीं। जितने राजा दुर्योधन के पक्षपाती हैं वे भी सब युद्ध में प्राण छोड़ कर सद्गति पावेंगे।

कर्ण ने कहा:—हे कृष्ण! हम आपसे विदा होते हैं। युद्ध के मैदान में फिर आप

का दर्शन होगा। उसके अनन्तर क्षत्रियों का संहार करनेवाले इस महायुद्ध से या तो बच कर ही आपसे मिलेंगे, या स्वर्ग में यथा-समय फिर आपसे भेंट होगी।

यह कह कर कर्ण ने कृष्ण को गले से लगाया और उदास होकर अपने रथ पर सवार हो हस्तिनापुर लौट गये।

शान्ति के लिए आख़िरी चेष्टा करके भी कृष्ण को सफलता न हुई। इस कारण उन्हें विफल-मनोरथ होकर उपप्लव्य नगर को लौट जाना पड़ा। उन्होंने सारथि को आज्ञा दी कि बहुत जल्द रथ हांको। आज्ञा पाते ही सारथि ने घोड़ों की रास हाथ में ली और वे हवा हो गये।

इधर कौरवों की सभा भङ्ग होने पर शान्ति की आशा नष्ट हो जाने से विदुर को बड़ी चिन्ता हुई। उदास-मन इधर उधर घूमते घामते वे कुन्ती के घर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी दुःख-कहानी कुन्ती से इस तरह कहनी आरम्भ की:—

हे कुन्ती! तुम तो जानती ही हो कि हम युद्ध के कहां तक विरोधी हैं। शान्ति के लिए जहाँ तक हो सका मन, वच, कर्म से हमने चेष्टा की; परन्तु सफलता न हुई। धर्मात्मा पाण्डवों ने सब कहीं से सब तरह की सहायता पाकर भी एक महादीन की तरह सन्धि कर लेने के लिए प्रार्थना की; परन्तु, दुर्योधन ने उनकी बात न मानी। अब घोर युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। इस युद्ध का फल कहां तक शोचनीय होगा, इस युद्ध के कारण क्षत्रिय-जाति को कितनी घोर विपदाओं का सामना करना पड़ेगा, दिन रात इसी चिन्ता में रहने के कारण हमारी नींद-भूख जाती रही है।

विदुर की बात सुन कर कुन्ती को महादुःख हुआ। एक लम्बी सांस लेकर वे मन ही मन चिन्ता में डूब गईं। अन्त में उन्होंने कर्ण को ही दुर्योधन का सबसे बड़ा सहायक समझ उन्हें पाण्डवों के पक्ष में कर लेने का विचार किया। उन्होंने मन में कहा कि कर्ण से यदि उसके जन्म का सच्चा हाल कह दें तो वह ज़रूर ही युधिष्ठिर की तरफ़ हो जायगा। कर्ण मेरा पुत्र है; इससे वह मेरी हितकर बात कभी न टालेगा। यह सोच कर उनके जी को बहुत कुछ धीरज आया और कर्ण से मिलने की इच्छा से वे गंगातट को चल दीं।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उनके पुत्र महा-तेजस्वी कर्ण पूर्व की ओर मुँह किये हुए बैठे वेद-पाठ कर रहे हैं। कुन्ती उनके पीछे खड़ी होकर वेदपाठ समाप्त होने की राह देखने लगीं। दो पहर तक कर्ण पूर्व की तरफ़ मुँह किये हुए वेद-पाठ करते रहे। उसके बाद जब सूर्य्य पश्चिम की तरफ़ जाने लगा तब उन्होंने भी अपना मुँह पश्चिम



कर्ण और कुन्ती-संवाद

की तरफ़ फेरा। इस तरफ़ होते ही कर्ण को कुन्ती देख पड़ीं। उन्हें देख कर कर्ण बहुत विस्मित हुए। उन्होंने कुन्ती को नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर बोले:—

देवि! अधिरथ और राधा का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है। आप किस लिए इस समय यहाँ आई हैं? कहिए आपकी क्या आज्ञा है?

कुन्ती बोलीं:—बेटा! तुम अधिरथ और राधा के पुत्र नहीं; सूत के कुल में तुम्हारा जन्म नहीं हुआ। तुम हमारे ही पुत्र हो; सूर्य्य देवता के वर से तुम हमें प्राप्त हुए थे। जिस समय हम कन्या-अवस्था में थीं उसी समय तुम्हें हमने पाया था। शास्त्रानुसार तुम महात्मा पाण्डु ही के पुत्र हो; परन्तु मोह के वश होकर अपने भाइयों के साथ मित्रभाव न रख कर तुम दुर्योधन की सेवा करते हो। यह क्या अच्छी बात है? माता-पिता को प्रसन्न रखना पुत्र का सबसे बड़ा धर्म्म है। इससे छल-कपट द्वारा हरे गये पाण्डवों के राज्य का उद्धार करके तुम्हीं उसका भोग करो। कर्ण और अर्जुन को एक हो जाते देख कौरव लोग पाण्डवों के सामने ज़रूर ही सिर झुकावेंगे। तुम और अर्जुन यदि एक हो जावगे तो कौन ऐसा काम है जो तुमसे न हो सके? तुम सब गुणों से सम्पन्न हो और हमारे पुत्रों में सबसे बड़े हो। इससे तुम जो सूत-पुत्र कहलाते हो सो हमें अच्छा नहीं लगता। जिसमें तुम्हें कोई सूत-पुत्र न कहे वही करना चाहिए।

कुन्ती की बात समाप्त होने पर कर्ण ने कहा:—

हम आपकी बात नहीं मान सकते। आपका कहना करने से हमारी धर्म्म-हानि होगी। आप ही के कर्म-दोष से हमारी सूत-जाति में गिनती हुई है। हमारे पैदा होते ही हमको त्याग करके क्षत्रिय-वंश में हमारा जन्म आपने वृथा कर दिया। इससे अधिक हानि तो हमारा शत्रु भी नहीं कर सकता। पहले तो आपने हमारे साथ माता का ऐसा व्यवहार नहीं किया; अब इस समय अपना काम निकालने के लिए आप हमें अपना पुत्र बनाने चली हैं। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने आज तक हमारा बहुत कुछ सत्कार किया है। अब आपके कहने से किस तरह हम उनके साथ कृतघ्नता का व्यवहार कर सकते हैं? हमारे ही भरोसे वे युद्ध में विजय पाने की आशा करते हैं। फिर भला किस तरह हम उन्हें इस समय निराश कर सकते हैं? उन्हें इस समय छोड़ देना मानों उनके साथ विश्वासघात करना है। जिन लोगों के साथ दुर्योधन आदि कौरवों ने उपकार किया है, यह समय उनके कृतज्ञता दिखाने का है। हम पर जो उनका ऋण है उसे हम युद्ध में इस समय उनकी सहायता करके चुकाना चाहते हैं। इससे दुर्योधन के हित के लिए आपके पुत्रों के साथ हम अवश्य ही युद्ध करेंगे; इसमें कभी फ़र्क़ न पड़ेगा। परन्तु,

हे पुत्रवत्सले ! आपको प्रसन्न करने के लिए हम यह प्रण करते हैं कि युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव इन आपके चारों पुत्रों से हमारा कुछ भी वैर नहीं। अतएव युद्ध में हम इनके कभी प्राण न लेंगे; इसे सच समझिए और निश्चय जानिए। आपके पाँच पुत्र फिर भी बने ही रहेंगे; क्योंकि, यदि अर्जुन न जीते रहेंगे तो हम ज़रूर ही जीते रहेंगे।

कर्ण के मुँह से इस तरह की यथार्थ बातें सुन कर दुःख से कुन्ती काँप उठीं; परन्तु कोई उत्तर उनके मुँह से न निकला। अन्त में उन्होंने कर्ण को गले से लगा कर कहा:—

तुमने जो युधिष्ठिर आदि को न मारने का वचन दिया है उसे युद्ध के समय भूल न जाना।

इसके अनन्तर कर्ण भी अपने घर गये और कुन्ती भी अपने घर लौट आईं।

२—युद्ध की तैयारी

शान्ति-स्थापन की चेष्टा में बिलकुल ही सफल न होकर कृष्ण उपप्लव्य नगर को लौट गये। वहाँ पर पाण्डवों से उन्होंने हस्तिनापुर में जो कुछ हुआ था उसका वर्णन संक्षेप से कह सुनाया। अन्त में उन्होंने कहा:—

हे धर्म्मराज ! कौरवों की सभा में जो कुछ हुआ सब हमने कह सुनाया। बिना युद्ध के कौरव लोग तुम्हें राज्य लौटाने पर राज़ी नहीं। इससे अब युद्ध करना ही होगा। युद्ध किये बिना काम नहीं चल सकता।

यह कह कर विश्राम करने के लिए कृष्ण अपने डेरे पर चले गये ! रात को पाण्डवों ने फिर उन्हें बुलाया और एकान्त में सब लोग मिल कर सलाह करने लगे। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा:—

हे भाइयो ! कौरवों की सभा में जो कुछ हुआ, और उसके विषय में कृष्ण ने जो कुछ निश्चय किया, उसे तुम सुन चुके हो। इस समय सेना को अलग अलग भागों में बाँटना चाहिए। हमारी राय है कि अपनी सात अक्षौहिणी सेना के सेनापति के पद पर द्रुपद, विराट, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन ये सात वीर नियत किये जायँ। इन सेनापतियों में से कौन सबका अध्यक्ष, अर्थात् प्रधान सेनापति, होने योग्य है—इस बात के विचार करने की अब ज़रूरत है। हम जानना चाहते हैं कि इस विषय में तुम्हारी क्या राय है।

सहदेव ने कहा:—जिस धर्म्मज्ञ राजा के आसरे रह कर हम लोगों ने अज्ञात वास समाप्त किया और जिनकी कृपा से अपना राज्य पाने की आशा करने में फिर समर्थ हुए, उन्हीं राजा विराट को प्रधान सेनापति बनाना चाहिए।

नकुल ने कहा:—जो पराक्रमी और पुण्यवान् राजा हमारे ससुर हैं, अतएव जो हमारे पिता के सदृश हैं, उन्हीं द्रुपदराज को प्रधान सेनापति बनाना चाहिए।

भीमसेन ने कहा:—हमारे शत्रुओं में सबसे बड़े योद्धा भीष्म हैं। सुनते हैं महा-पुरुष शिखण्डी ने उन्हीं के मारने के लिए जन्म लिया है। इसलिए उन्हीं को सारी सेना का प्रधान सेनाध्यक्ष करना उचित होगा।

अन्त में अर्जुन ने कहा:—बल, वीर्य्य, तेज, और पराक्रम आदि गुणों ही का युद्ध में सबसे अधिक काम पड़ता है। उनके अनुसार विचार करने से महापराक्रमी धृष्टद्युम्न के बराबर हम और किसी को नहीं देखते। इससे हमारी राय है कि सेना के सब अध्यक्षों के ऊपर वही नियत किये जायँ।

इस प्रकार मत-भेद उपस्थित होने पर युधिष्ठिर ने कहा:—

परम बुद्धिमान् कृष्ण इन सब महारथी वीरों में से किसी एक को चुन देने की कृपा करें। कृष्ण ही की बुद्धिमानी और चतुरता के बल पर हम लोग इस युद्ध में जीतने की आशा करते हैं।

तब अर्जुन की बात का समर्थन करते हुए कृष्ण ने कहा:—

हे धर्म्मराज! तुमने जिन महाबली और महापराक्रमी वीरों को सेना का अध्यक्ष बनाया है वे सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जिस समय वे युद्ध के मैदान में उतर पड़ेंगे उस समय दुर्योधन और उनके सहायक राजों की तो कुछ बात ही नहीं, देवताओं के राजा ख़ुद इन्द्र भी उन्हें देख कर डर जायँगे। तथापि, सब सेनाध्यक्षों के ऊपर एक प्रधान सेनापति का होना बहुत ज़रूरी है। हमारा भी यही मत है कि धृष्टद्युम्न ही सब तरह प्रधान सेनापति होने के योग्य हैं।

कृष्ण की सलाह के अनुसार धृष्टद्युम्न ही सात अक्षौहिणी सेना के अध्यक्षों के ऊपर प्रधान सेनापति नियत हुए। तब यह बात सबसे कह दी गई। इसे सुन कर योद्धाओं को बड़ा आनन्द हुआ। सबने धृष्टद्युम्न का प्रधान सेनापति नियत किया जाना पसन्द किया। एक काम—और सबसे बड़ा काम—अर्जुन को भी दिया गया। अर्थात् पाण्डवों की जितनी सेना थी और जितने सेनाध्यक्ष थे उन सबके काम की देख भाल का भार उनके ऊपर रक्खा गया। अर्जुन सबसे बड़े अफ़सर नियत हुए।

इसके अनन्तर अपना अपना काम करने के लिए सब लोगों को उतावले देख युधिष्ठिर ने युद्ध-यात्रा की आज्ञा दे दी। उनकी आज्ञा पाते ही सब लोग लोहे के कवच शरीर पर धारण करके अपने अपने काम में लग गये। थोड़े ही समय में घोड़ों का हिनहिनाना, हाथियों की चिग्घार, रथों की घरघराहट और इधर उधर दौड़नेवाले योद्धाओं की—"जल्दी करो; देर न होने पावे; देखो, कुछ रह न जाय"—इत्यादि चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगी। इस प्रकार तूफ़ान आये हुए महासागर की तरह उस प्रचण्ड सेना में सब तरफ़ कोलाहल होने लगा। शङ्ख और दुन्दुभि आदि की प्रचण्ड ध्वनि यह बतलाने लगी कि योद्धाओं के आनन्द का पार नहीं है।

जिस समय चारों ओर से यह महा कोलाहल हो रहा था उस समय अपने डेरे के भीतर उदास बैठे हुए युधिष्ठिर ने एक लम्बी साँस ले कर भीम और अर्जुन से कहा:—

हे भाइयो! कुरु-कुल के जिस क्षय को बचाने के लिए हमने इतने दिनों तक वन में वास किया और सैकड़ों प्रकार के बड़े बड़े कष्ट सहे वही अनर्थ आज होना चाहता है। अब वह किसी तरह नहीं निवारण किया जा सकता। इसी कुल-नाश का निवारण करने के लिए हमने तुम सबको दुःसह कष्ट दिये; पर वे सब कष्ट इस समय व्यर्थ हो रहे हैं। इतना यत्न करने पर भी—इतनी चेष्टा करने पर भी—इस घोर युद्ध के रोकने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता। अपने कुल के पूज्य पुरुषों के साथ किस तरह हम युद्ध करेंगे? उनके ऊपर हाथ उठाना हमें कदापि इष्ट नहीं। अपने ही घर के बड़े बूढ़े गुरुजनों का संहार करके शत्रुओं को जीतना क्या हम कभी भी अपना कर्त्तव्य समझ सकते हैं?

धर्म्मराज को अत्यन्त दुखी देख अर्जुन ने कौरवों की सभा में होनेवाली वे सब बातें फिर कह सुनाईं जिनका वर्णन कृष्ण ने हस्तिनापुर से लौट कर किया था। माता कुन्ती के सँदेसे का भी उन्होंने स्मरण दिलाया। कृष्ण ने मुसकरा कर अर्जुन की बात का समर्थन किया। उन्होंने कहा:—यह समय सोच करने और उदास होने का नहीं है। क्षत्रियों का जो कर्तव्य है उसी का तुम्हें इस समय पालन करना चाहिए। इससे युधिष्ठिर की उदासीनता जाती रही और जी कड़ा करके वे समयोचित काम में लग गये।

पहले रनिवास की रक्षा के लिए एक योग्य स्थान निश्चित करके दास-दासियों के साथ द्रौपदी वहाँ भेज दी गईं। उनके रहने के लिए एक ऐसा मकान दिया गया जिसमें किसी तरह का डर न था। वहाँ हर घड़ी चौकी पहरा देने और देख-भाल रखने के लिए कुछ योद्धाओं की एक टोली भी नियत कर दी गई।

इस प्रकार तैयारियाँ करते वह रात बीत गई। प्रातःकाल सब लोगों ने ठाट-बाट

से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। सेना के अध्यक्ष लोग अपनी अपनी सेना के आगे चले। रथ, घोड़े, हाथी, हथियार, ख़ज़ाना, सफ़रमैना और शस्त्र-वैद्यों आदि के साथ राजा युधिष्ठिर सेना के बीच में रहे। और और वीर युधिष्ठिर को बीच में डाल कर सेना के पिछले भाग में हो लिये।

कुरुक्षेत्र में पहुँचने पर कृष्ण और अर्जुन ने अपने अपने शङ्ख बड़े ज़ोर से बजाये। उन शंखों की भीषण ध्वनि सुन कर योद्धाओं के उत्साह का ठिकाना न रहा। वे लोग आनन्द से उछल पड़े और वे भी अपना अपना शङ्ख ज़ोर ज़ोर से बजाने लगे। इसके बाद युधिष्ठिर ने कुरुक्षेत्र में घूम कर सब जगह अच्छी तरह देखी; और, श्मशान, मन्दिर और बस्ती आदि से दूर हिरण्वती नामक पवित्र नदी के किनारे एक ऐसी चौरस ज़मीन पर सेना को उतरने की आज्ञा दी जहाँ अनाज, पानी, घास-चारा और ईंधन-लकड़ी आदि का सब तरह सुभीता था।

वहाँ कुछ काल आराम करके, अपने सहायक राजों को साथ लिये हुए, फिर उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान की देख-भाल की। चारों तरफ़ देख सुन कर उन्होंने ऐसी जगह, जहाँ शत्रुओं के धावे का बहुत कम डर था, अपनी सेना की छावनी डालने का प्रबन्ध किया। धृष्टद्युम्न और सात्यकि ने सारी सेना को जुदा जुदा कई भागों में बाँट दिया। इसके बाद कृष्ण ने सेना के चारों ओर खाई खुदवा कर उसमें बहुत सी सेना गुप्त भाव से रख दी। पहले पाण्डवों के रहने के लिए शिविर तैयार किया गया। फिर और और राजों ने भी अपना अपना शिविर, जिसके लिए जो स्थान दिया गया उसमें, तैयार कराया।

हर शिविर में हथियारों के बनाने, मरम्मत करने और उन्हें अच्छी हालत में रखनेवाले कारीगर और अच्छे अच्छे वैद्य नियत किये गये। धर्म्मराज की आज्ञा से उनमें असंख्य धनुष, बाण, प्रत्यंचा, कवच और सैकड़ों प्रकार के दूसरे अस्त्र-शस्त्र भी रक्खे गये। इसके सिवा तिल, भूसी, आग, घी, शहद, जल और घायलों के इलाज के लिए हर एक प्रकार की दवायें भी वहाँ इकट्ठी की गईं। इस तरह सब प्रकार की तैयारी करके पाण्डव लोग युद्धारम्भ होने के दिन की राह देखने लगे।

उधर हस्तिनापुर से कृष्ण के चले आने पर कर्ण, शकुनि और दुःशासन से दुर्योधन ने कहा:—

देखो, कृष्ण को अपने काम में सफलता नहीं हुई। उन्हें उदास-मन पाण्डवों के पास लौट जाना पड़ा। इससे वे पाण्डवों को युद्ध के लिए ज़रूर ही उकसावेंगे।

अतएव तुम्हें आलस्य छोड़ कर युद्ध की तैयारियाँ करना चाहिए। कुरुक्षेत्र में कोई ऐसी जगह जाकर ढूँढ़ो जहाँ शत्रु लोग सहज में हमला न कर सकें। फिर वहाँ पानी, लकड़ी और सब तरह के अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण कम से कम एक लाख शिविर स्थापित करो। वहाँ पर तुम एक ऐसा रास्ता भी बनाओ जिससे लड़ाई का सारा सामान लाया जा सके, और शत्रु लोग उसके लाने में किसी तरह विघ्न-बाधा न पहुँचा सकें। हे वीरगण! तुरन्त ही तुम यह बात सब लोगों पर ज़ाहिर कर दो कि कल ही हम युद्ध के लिए यहाँ से चल देंगे।

कर्ण, शकुनि और दुःशासन उसी क्षण इन सब तैयारियों के करने में लग गये; और राजाज्ञा सुनाई जाते ही दुर्योधन के सहायक राजा भी अपने अपने स्थान से निकल कर अपनी अपनी सेना सजाने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही राजा दुर्योधन खुद अपनी सेना की छावनी में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना युद्ध-यात्रा के लिए तैयार है। अच्छी तरह उन्होंने उसकी देख-भाल की और उसे ग्यारह भागों में बाँट दिया। हाथी, घोड़े और रथ आदि की अच्छी तरह जाँच करके जो उत्तम थे उन्हें आगे रक्खा, जो मध्यम थे उन्हें बीच में रक्खा, और जो निकृष्ट थे उन्हें सबसे पीछे रक्खा; युद्ध में काम आनेवाले जितने यन्त्र और जितने अस्त्र-शस्त्र थे, सबको सेना के साथ भेजने का प्रबन्ध किया। इसके सिवा दवायें आदि और भी अनेक प्रकार की ज़रूरी सामग्री इकट्ठा करा के उसके भी भेजे जाने का प्रबन्ध किया।

कृप, द्रोण, शल्य, जयद्रथ, काम्बोजनरेश सुदक्षिण, भोजराज कृतवर्म्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाह्लिक—इन ग्यारह महारथियों को दुर्योधन ने सेनाध्यक्ष के पद पर नियत किया। इन सब वीरों की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की; उनके उत्साह को खूब बढ़ाया; और हर तरह से उनका आदर-सत्कार करके उन्हें प्रसन्न किया। इससे वे लोग दुर्योधन की तरफ़ होकर जी-जान से युद्ध करने के लिए तैयार हुए।

इस प्रकार युद्ध-सम्बन्धी उद्योग समाप्त होने पर सब सेनाध्यक्षों को साथ लेकर दुर्योधन, महात्मा भीष्म के पास गये और हाथ जोड़ कर कहने लगे:—

हे महावीर! हमारी सेना युद्ध के लिए तैयार तो है; परन्तु एक योग्य सेनापति के बिना वह तितर बितर हो रही है। आप सब तरह से हमारे शुभचिन्तक हैं; हमारे शत्रु भी आपको वध नहीं कर सकते। आप उनके हाथ से भी वध किये जाने के पात्र

नहीं। इससे कृपा करके आप ही हमारी सेना के सेनापति हूजिए। आप यदि हमारी रक्षा में तत्पर होंगे तो देवता भी हमें नहीं जीत सकते।

भीष्म ने कहा:—हे महाबाहु! हम तुम्हारा कहना मानने को तैयार हैं। किन्तु जिस तरह हम तुम्हें प्यार करते हैं उसी तरह पाण्डवों को भी प्यार करते हैं। हम तुम्हारे आश्रय में हैं—हम तुम्हारे यहाँ रहते हैं। इससे हम तुम्हारी तरफ़दारी करने के लिए लाचार हैं। तथापि हम एक नियम करना चाहते हैं। वह नियम यह है कि मौक़ा आने पर भी हम पाण्डवों को अपने हाथ से न मारेंगे। पर हाँ, तुम्हें प्रसन्न करने के लिए हम अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रति दिन हज़ारों सैनिकों का नाश करने में आगा पीछा न करेंगे। एक बात और है। हमारे सेनापति होने से, हम समझते हैं, कर्ण युद्ध में न शामिल होंगे। इससे यह बात उनसे पूछ देखो।

तब कर्ण ने कहा:—

हे दुर्योधन! हमने पहले ही प्रतिज्ञा की है कि पितामह के जीवित रहने हम कभी हथियार हाथ से न उठावेंगे। इससे वही सेनापति होकर पहले युद्ध करें। उनके मारे जाने पर हम अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे।

इसके अनन्तर भीष्म पितामह विधिपूर्वक सेनापति के पद पर नियत किये गये। तब राजा दुर्योधन की वह इतनी बड़ी सेना महात्मा भीष्म को आगे करके कुरुक्षेत्र की तरफ़ चली। वहाँ जाकर सेनाध्यक्षों ने देखा कि कर्ण आदि के स्थापित किये हुए हज़ारों शिविर दूसरे हस्तिनापुर की तरह शोभा पा रहे हैं। दुर्योधन भी कुरुक्षेत्र में पहुँचे और सबके लिए यथायोग्य जगह का प्रबन्ध करके, और जितने शिविर थे उनमें सब तरह का उचित सामान रखवा कर, युद्ध के लिए तैयार हुए।

फिर दोनों पक्षों ने आपस में सलाह करके इस तरह धर्म्म-युद्ध करने का निश्चय किया कि रथी का रथी के साथ, घोड़े के सवार का घोड़े के सवार के साथ, हाथी के सवार का हाथी के सवार के साथ, और पैदल का पैदल के साथ युद्ध हो। जो किसी और के साथ युद्ध कर रहा हो, जो अपनी शरण आया हो, जो युद्ध से भग रहा हो, अथवा जो डर से घबरा गया हो, उस पर हथियार न चलाये जाने का निश्चय हुआ। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि इस युद्ध में किसी तरह का छल-कपट न किया जाय।

कौरवों और पाण्डवों की सेना युद्ध के मैदान में आमने सामने सज कर जब खड़ी हुई तब दुर्योधन ने अपने सलाहकारों से पूछा कि इस समय क्या करना चाहिए। कुछ देर तक विचार होने के बाद शकुनि की राय हुई कि इस समय एक दूत पाण्डवों

के पास भेजा जाय। यह राय दुर्योधन को पसन्द आई और शकुनि के पुत्र उलूक का दूत बनाया जाना निश्चित हुआ। उसकी मारफ़त बे-तरह कटु और अपमानकारी बातों से भरा हुआ सँदेशा भेजा गया।

दुर्योधन बहुत दिनों से युधिष्ठिर के ऊपर कुपित तो थे ही; उन्होंने पाण्डवों की व्यर्थ निन्दा करने का यह अच्छा मौक़ा पाया। उन्होंने उलूक से कहा कि तुम युधिष्ठिर को कपटी धार्मिक, भीमसेन को बैल की तरह बे-हिसाब खानेवाला, अर्जुन को अपने मुँह अपनी वृथा बड़ाई करनेवाला, और कृष्ण को कोई बड़ा काम किये बिना ही झूठी प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाला कहना। यही नहीं, किन्तु, और भी कितनी ही अनादर-सूचक बातें कहने के लिए उन्होंने उलूक को आज्ञा दी।

इस असह्य और अपमानकारी सँदेशे को लेकर उलूक डरते डरते पाण्डवों की सेना में पहुँचा। जाते ही वह धर्म्मराज के पास गया और बड़ी नम्रता दिखा कर बोला:—

महाराज! आप तो इस बात को अच्छी तरह जानते ही हैं कि दूत का क्या कर्तव्य है। इससे राजा दुर्योधन ने जो सँदेशा कहने के लिए मुझे भेजा है उसके लिए मुझ पर आप क्रोध न कीजिएगा।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे उलूक! तुम्हें कुछ भी डर नहीं। उस मूर्ख, लोभी और अदूरदर्शी ने जो कुछ कहा हो उसे तुम निर्भय कह सुनाओ।

तब उलूक ने, उस समय जितने राजा वहाँ बैठे थे सबके सामने, युधिष्ठिर से कहा:—

महाराज! राजा दुर्योधन ने आपसे कहा है:—

हे जेठे पाण्डव! तुम्हें तो लोग बड़ा धार्मिक कहते हैं; फिर क्यों तुम इस समय अधर्म्म कर रहे हो? ऊपर से तो तुम यह दिखाते हो, मानों तुम प्राणिमात्र के अभयदाता हो—एक चिउँटी तक के भी प्राण लेना तुम पाप समझते हो—फिर क्या समझ कर आज तुम सारे क्षत्रियों का नाश करने की तैयारी में हो? हे चतुर-चूड़ामणि! जिस धर्मात्मा का धर्म्म-चिह्न ऊँची ध्वजा के समान सदा प्रकाशित देख पड़ता है, किन्तु जिसके भीतर पाप-कर्म छिपा रहता है, उसके धर्म्मव्रत को बिड़ाल-व्रत कहते हैं अर्थात् बिल्ली जैसे देखने में बहुत सीधी सादी मालूम होती है पर चूहे को घात में पाते ही उस पर टूट पड़ती है, वैसे ही इस तरह के धर्म्मधारी भी छिपे छिपे बड़े बड़े पाप-कर्म करते हैं। हे धर्म्मराज! तुम्हारी बातों और तुम्हारे काम-काज में बड़ा भेद है। उनमें परस्पर कुछ भी मेल नहीं! तुम कहते कुछ हो, पर करते कुछ हो। इससे हमारी समझ में तुम सच्चे धार्म्मिक नहीं; किन्तु बिड़ाल-व्रतवालों की तरह के धार्म्मिक हो। कुछ भी हो, यदि

तुम्हें युद्ध ही करना है तो अपने पुराने दुःखों को अच्छी तरह याद करके वीरों का ऐसा बरताव करो। हमने तुम्हें जो जो दुःख दिये हैं, हमने तुम्हारी माँ को जो जो क्लेश पहुँचाये हैं, हमने तुम्हारी पत्नी द्रौपदी का जिस जिस तरह से अपमान किया है, उस सबको अच्छी तरह याद करके अपने आपको खूब उत्तेजित करो। फिर यदि तुममें कुछ भी पुरुषत्व हो तो अपना पौरुष दिखलाओ। कृष्ण ने सञ्जय से कहा था कि पाण्डव लोग युद्ध और शान्ति दोनों के लिए तैयार हैं। अब यह युद्ध का समय आ गया है। इससे अब अपनी बात को पूरा करो।

धर्म्मराज के विषय में उलूक के ये वचन ऐसे कठोर थे जैसे आज तक कभी न सुने गये थे। उन्हें सुन कर सब लोग चकित हो गये और परस्पर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। तब उलूक ने कृष्ण की तरफ़ देख कर कहा:—

राजा दुर्योधन ने आपसे यह कहने के लिए कहा है:—

हे यादव! दूत बन कर हमारी सभा में आने के समय तुम जानते थे कि दूत मारा नहीं जाता और न उसे किसी तरह का कष्ट ही पहुँचाया जाता। इसी से तुमने वहाँ बड़ी बहादुरी बूँकी थी; बड़ी बड़ी बातें कही थीं; और बहुत कुछ गर्जन-तर्जन किया था। अब युद्ध के मैदान में उन सब बातों को सत्य करके दिखाओ। हे कंस के सेवक! तुम जो अचानक ही इतने प्रसिद्ध हो गये हो उसका सिर्फ़ यही कारण है कि तुम्हें हमारे समान राजा के साथ कभी युद्ध नहीं करना पड़ा। अब हम देखेंगे कि तुम कितने वीर और कितने बलवान् हो।

परम मान्य और परम प्यारे कृष्ण का इस तरह अपमान होते देख सब लोग क्रोध से अधीर हो उठे। वे अपना अपना आसन छोड़ कर उठ खड़े हुए और परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर दाँत पीसने लगे। परन्तु दूत पर क्रोध करना व्यर्थ समझ कर अन्त को वे चुप हो रहे; कोई बोला नहीं।

इसके बाद अर्जुन की तरफ़ फिर कर उलूक ने कहा:—

राजा दुर्योधन ने आप से कहा है:—हे पार्थ! इस समय तुम अपने मुँह अपनी बड़ाई करना छोड़ कर हाथ से कुछ काम कर दिखाओ। अब यह समय बातें बनाने का नहीं; किन्तु कुछ काम कर दिखाने का है। सिर्फ़ बड़ाई बघारने से यदि काम सिद्ध हो जाता तो संसार में किसी को किसी बात की कमी न रहती। बहुत दफ़े हमारे कान में यह बात पड़ी है कि तुम्हारी बराबर योद्धा दूसरा नहीं है। तथापि, तुम्हारा राज्य भी हमने छीन लिया है, उसका भोग भी हम कर रहे हैं, और इस युद्ध में तुम्हें मार

कर उसकी रक्षा भी करेंगे। जब जुए में हरा कर हमने तुम्हें अपना दास बना लिया तब ताड़ के समान बड़ा तुम्हारा गाण्डीव धन्वा कहाँ था। तुम ऐसे बहादुर हो कि तुम्हारी स्त्री द्रौपदी को तुम्हें दासपन से छुड़ाना पड़ा! तुममें जो सचमुच ही इतनी मूर्खता समाई हो तो तुम भी भीष्म के साथ युद्ध करो, अथवा अपने सिर की ठोकर से किसी पर्वत को तोड़ो; अथवा अपनी भुजाओं के बल से इस अगाध सेना-रूपी समुद्र को पार कर जाव! किन्तु, महा अपवित्र और पापी आदमी की स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा के समान, युद्ध में हमें हरा कर राज्य पाने की वृथा आशा न करो।

यह वाक्य-रूपी बाण अर्जुन के हृदय में बेतरह लगा। उनके माथे पर पसीना निकल आया। उसे वे अपने हाथ से पोंछने लगे। किन्तु यह सोच कर कि दूत मारा नहीं जाता, उलूक को उन्होंने दण्ड नहीं दिया। वे यह सब सुन कर भी चुप बैठे रहे।

अन्त में भीमसेन को पुकार कर उलूक ने कहा:—

हे भीमसेन! आपके लिए राजा दुर्योधन ने हमसे कहा है कि उस अक्खड़, मूर्ख, बे-सींग के बैल से कहना:—

पृथा के पुत्र! हमारे ही प्रभाव से विराट नगर में वहाँ के राजा की रोटियाँ बना कर तुमने रसोइये की पदवी प्राप्त की थी। इससे तुम्हारी अच्छी प्रसिद्धि हुई। वाह खूब नाम पैदा किया! सभा में उस दिन जो प्रतिज्ञायें तुमने की थीं उन्हें अब याद कर लो और उन्हें सफल करने की चेष्टा में लगो। यदि तुममें कुछ भी सामर्थ्य हो तो हम सब भाइयों को मारो और दुःशासन का खून पिओ। हे भीम! मनों लड्डू उड़ा जाने में तुम ज़रूर श्रेष्ठ हो; किन्तु युद्ध के मैदान में आगे बढ़ने पर अपनी गदा से लिपटे हुए तुम्हें ज़रूर ही ज़मीन पर लोट पोट होना पड़ेगा। युद्ध और भोजन में बड़ा भेद है।

भीमसेन अब तक सिर नीचा किये बहुत बड़े काले नाग की तरह ज़ोर ज़ोर साँस लेते हुए चुप बैठे थे। परन्तु इसके आगे उनसे न रहा गया। वे अपने आसन के ऊपर से सहसा कूद पड़े। यह देख कर कृष्ण समझ गये कि उलूक की आफ़त आई। इससे वे मुसकराये और भीम को उलूक पर चोट करने से रोक दिया। भीम को मना करके उन्होंने उलूक से कहा:—

हे उलूक! तुम बहुत जल्द अब यहाँ से चल दो। जाकर दुर्योधन से कह देना कि पाण्डवों ने तुम्हारी सारी बातें सुन लीं और उनका अर्थ भी अच्छी तरह समझ लिया। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही सब काम होगा। कल प्रातःकाल ही युद्ध आरम्भ हो जायगा।

यह सुनने पर भीमसेन का क्रोध कुछ कम हुआ और उन्होंने कहा:—

हे उलूक ! दुर्योधन से कहना कि तुम्हारी उत्तेजना-पूर्ण बातें हमने सुन लीं। हम लोगों में से जो प्रतिज्ञा जिसने की है उसे वह अच्छी तरह याद है। युद्ध में वे सभी प्रतिज्ञायें पूर्ण की जायेंगी। उनके सिवा इस समय एक प्रतिज्ञा हम और भी करते हैं। उसे भी सब लोगों के सामने दुर्योधन को सुना देना। वह प्रतिज्ञा यह है कि जब हम अपनी गदा की चोट से तुझ कुलाङ्गार को ज़मीन पर गिरा देंगे तब धर्मराज के सामने हम तेरे सिर पर लात मारेंगे।

तब महावीर अर्जुन ने कहा:—

हे उलूक ! तुम दुर्योधन से हमारा उत्तर इस प्रकार कहना:—

हे महात्मा ! तुम यदि अपने बल और वीर्य के भरोसे हम लोगों को युद्ध के लिए ललकारते तो हम तुम्हें क्षत्रिय समझ कर तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक युद्ध करते—तो हम बड़ी ही खुशी से तुम्हारे निमन्त्रण को स्वीकार करते। किन्तु हे नीच ! तुम अपने मन में यह न समझना कि जो बड़े बूढ़े गुरुजन वध किये जाने के पात्र नहीं हैं उन्हें युद्ध में आगे करने से हमारे मन में दया उत्पन्न हो आवेगी। इसलिए, हम उन्हें न मारेंगे। ऐसा कभी न होगा। जिन भीष्म के भरोसे तुम इतना उछल-कूद रहे हो, हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम स्वयं इस युद्ध में उन्हें मारेंगे। तुमने कहला भेजा है कि तुम कल ही से युद्ध के लिए तैयार हो, सो बहुत अच्छी बात है। यह हमें मंज़ूर है। कल ही गाण्डीव के मुँह से इस बात का उचित उत्तर तुम्हें मिलेगा।

अन्त में धर्मराज ने उलूक से कहा:—

हे तात ! सुयोधन से तुम कहना:—

भाई तुम्हारा निज का जैसा चरित्र है वैसा ही तुम औरों का न समझो। तुमने अपनी मूर्खता और दुर्बुद्धि से जो अन्याय किया है उसका फल चखने के लिए अपने सामर्थ्य के अनुसार तैयार रहो।

इसके अनन्तर जितने राजा लोग पाण्डवों की सभा में बैठे थे सबने दुर्योधन के सँदेशे का तरह तरह से यथोचित उत्तर देकर उलूक से चले जाने को कहा।

उलूक ने लौट कर आदि से अन्त तक सारा हाल दुर्योधन से कह सुनाया। दुर्योधन की आज्ञा से रथों, घोड़ों और ऊँटों आदि पर सैकड़ों दूत दौड़ पड़े। कौरवों की इस इतनी बड़ी सेना में सब कहीं जाकर उन्होंने राजों और सेनाध्यक्षों से कहा कि

कल सूर्य उदय होने के पहले ही युद्ध छिड़ जायगा। राजा की आज्ञा है कि सब लोग तैयार रहें।

इसके अनन्तर दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार कौरवों की तरफ़ जितने राजा थे सबने प्रातःकाल होने के पहले ही स्नान किया; मालायें धारण कीं; सफ़ेद कपड़े पहने; अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजायें हाथ में लीं; और स्वस्ति-वाचन तथा अग्निहोत्र किया। इस प्रकार तैयार होकर एकाग्र-मन से सब युद्ध के मैदान को चले।

मैदान गोल मण्डलाकार था। उसका विस्तार पाँच योजन से कम न होगा। इस मैदान का आधा भाग कौरवों के अधिकार में था और आधा पाण्डवों के। कौरवों के सेनापति इसी मैदान के पश्चिमी भाग में अपनी सेना युद्ध के लिए सजाने लगे।

उधर युधिष्ठिर ने भी अपने सेनाध्यक्षों को युद्ध के मैदान में चलने के लिए आज्ञा दी। राजाज्ञा पाकर वे लोग भी लोहे के चित्र-विचित्र कवच धारण करके, कारीगरों और मिस्त्रियों आदि को सेना के डेरों में छोड़ कर—सेना, हाथी, घोड़े, रथ आदि लेकर युद्ध के मैदान के पूर्वी भाग में जा डटे। वहाँ उन्होंने अपनी सेना का विभाग ऐसी चालाकी से किया कि शत्रुओं को भ्रम हो गया। उन लोगों ने समझा कि पाण्डवों की सेना का यह विभाग ऐसा ही रहेगा और इसी दशा में वे युद्ध शुरू करेंगे। परन्तु बात बिलकुल ही उलटी निकली। पाण्डवों ने शत्रुओं को भ्रम में डालने ही के लिए यह चालाकी की थी। सेना-विभाग का जो ढँग कौरवों को दिखाई दिया था, युद्ध शुरू होने पर वह एकाएक बदल गया। इससे कौरवों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनकी सारी बेशबन्दी ख़ाक में मिल गई। इस तरह कौरवों को चकमा देकर युधिष्ठिर ने युद्ध के समय प्रत्येक विभाग की सेना के पहचानने में किसी तरह का गड़बड़ न हो, इसलिए हर एक विभाग के लिए जुदा जुदा चिह्न, जुदी जुदी भाषा और जुदी जुदी संज्ञा निश्चित कर दी।

पाण्डवों की पताका देख पड़ते ही कौरवों ने लड़ाई की चाल शुरू कर दी। भीष्म पितामह ने सब सेनाध्यक्षों को इकट्ठा करके कहा:—

हे क्षत्रिय वीर! रोग से पीड़ित होकर घर में पड़े पड़े जान दे देने की अपेक्षा युद्ध के मैदान में अस्त्रों के आघात से मर जाना ही क्षत्रियों के लिए अधिक अच्छा है। युद्ध ही को स्वर्ग में प्रवेश करने का खुला हुआ द्वार समझना चाहिए। इससे, इस समय, जिसे स्वर्ग जाने की इच्छा हो वह इसी द्वार का आसरा लेकर जाने के लिए तैयार हो जाय।

इसके बाद कर्ण को छोड़ कर प्रत्येक सेनाध्यक्ष ने काली मृगछाला धारण कर, दुर्योधन के लिए प्राण तक देने की प्रतिज्ञा करके, प्रसन्न-मन एक एक अक्षौहिणी सेना अपने साथ ली। सेनापति भीष्म सफ़ेद पगड़ी, सफ़ेद कवच, और सफ़ेद छत्र धारण करके, बची हुई एक अक्षौहिणी सेना लेकर, सबके आगे चले। इसके पहले इतनी बड़ी सेना एक जगह इकट्ठी हुई कभी नहीं देखी गई थी।

जब युधिष्ठिर ने देखा कि दुर्योधन की इतनी विशाल सेना युद्ध के लिए तैयार है, और भीष्म ने बड़े कौशल से ऐसी मोरचाबन्दी की है कि किसी तरह धावा नहीं किया जा सकता तब उनका मुँह उतर गया। वे बहुत उदास होकर अर्जुन से कहने लगे:—

हे धनञ्जय! पितामह भीष्म जब कौरवों के सेनापति हुए हैं तब कहो किस तरह हम उनके साथ युद्ध करके सफलता प्राप्त कर सकेंगे? महा तेजस्वी भीष्म ने युद्ध-शास्त्र के अनुसार जो यह व्यूह-रचना की है—जो यह विकट मोरचा-बन्दी बनाई है—उसे देख कर हमारे मन में बेतरह सन्देह हो रहा है। इस व्यूह के तोड़ने अथवा इससे अपनी रक्षा करने का कोई उपाय हम नहीं देखते।

अर्जुन अपने जेठे भाई को इस तरह उदासीन और निराश देख कर बोले:—

महाराज! बुद्धि, बल और पराक्रम होने से थोड़ी भी सेना बहुत अधिक सेना को हरा सकती है। उद्योगपूर्वक युद्ध करने से हमें ज़रूर ही सफलता होगी। आप डरिए नहीं; डरने का कोई कारण हम नहीं देखते। भीष्म के इस व्यूह को देख कर आप चिन्ता न कीजिए। हम इससे भी थोड़ी सेना लेकर इस व्यूह के जवाब में एक दूसरा व्यूह बनाना जानते हैं। इस समय हमें एक ऐसा व्यूह बनाना होगा जिसके भीतर प्रवेश करने का द्वार सुई के छेद के आकार का हो। उसके द्वार पर भीमसेन के समान कोई योद्धा रहने से शत्रु उसे देख इस तरह डर कर भागेंगे जैसे सिंह को सामने देख हिरणों का झुण्ड भागता है।

महा-बलवान् अर्जुन ने धर्मराज को इस तरह धीरज देकर, जैसा उन्होंने कहा था वैसा ही, वज्र नामवाला एक व्यूह बनाया। इसके बाद वे कौरवों की सेना की तरफ़ हाथी की तरह धीरे धीरे चले।

इस तरह दोनों तरफ़ मोरचाबन्दी हो जाने पर कौरवों और पाण्डवों की सेना के वीरों के सिंहनाद और घोड़े, हाथी और रथों आदि के कोलाहल से दसों दिशायें व्याकुल हो उठीं। दोनों सेनाओं की चाल से उड़ी हुई धूल ने आकाशमण्डल को बिलकुल ही छा लिया—यहाँ तक कि दिन दोपहर घोर अन्धकार हो गया।

दोनों दल एक दूसरे के सामने आ जाने पर अपनी अपनी जगह पर ठहर गये। तब कहीं धूल का उड़ना कुछ कम हुआ और आकाश थोड़ा बहुत साफ़ हो गया। नये निकले हुए सूर्य्य के प्रकाश में सोने की भूलों और हौदों से शोभित हाथी, और सोने ही के परदे पड़े हुए रथ, इस तरह मालूम होने लगे जैसे मेघमण्डल में बिजली चमक रही हो। योद्धा लोग चमकते हुए चित्र विचित्र कवचों से सजे हुए अग्नि और सूर्य्य की तरह प्रकाशमान देख पड़ने लगे।

धनुष, बाण, तलवार, गदा, शक्ति और दूसरे प्रकार के सैकड़ों अस्त्र-शस्त्रों से सजे हुए दोनों सेना-दल ऐसे मालूम होने लगे जैसे प्रलय होने के समय सैकड़ों तरह के उन्मत्त मगर आदि जल-जीवों से पूर्ण, उछलते हुए, दो समुद्र मालूम होते हैं। सोने के कामवाले, जलती हुई आग के समान उज्ज्वल, नाना प्रकार के पताके इन्द्रधनुष की बराबरी करने लगे। और और पताका-चिह्नों के बीच में भीष्म का पाँच ताराओं से शोभित तालकेतु, अर्जुन का महा-भीषण कपिध्वज, युधिष्ठिर का सुवर्णमय चन्द्र, दुर्योधन का मणिमय नाग-चिह्न, भीमसेन का सुवर्ण-सिंह ध्वज, आचार्य्य द्रोण का कमण्डलु-चिह्नवाला केतु और अभिमन्यु का मणि-काञ्चन-मय मयूर सबसे अधिक प्रकाशित हो कर चमकने लगा।

इसके बाद राजा दुर्योधन ने पाण्डवों की सेना की मोरचा-बन्दी अपनी मोरचा-बन्दी से भी विकट और दृढ़ देख कर द्रोणाचार्य्य से कहा:—

हे आचार्य्य! देखिए, शत्रुओं ने कैसे अच्छे व्यूह की रचना की है—कैसी अच्छी क़िलाबन्दी की है। उसकी रक्षा के लिए द्वार पर भीमसेन को रक्खा है। अब वे हमारी फ़ौज पर चाल करने की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु, पाण्डवों की सेना कम है; हमारी सेना उससे बहुत अधिक है। अनगिनत योद्धा हमारे लिए प्राण देने को तैयार हैं। इससे चिन्ता की कोई बात नहीं! हमारे सेनाध्यक्ष व्यूह के हर द्वार पर रहें और आप ख़ुद भीष्म की रक्षा करें।

तब महात्मा भीष्म ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए सिंह-नाद करके अपने शंख को बड़े ज़ोर से बजाया। उसे सुन कर हर एक सेनाध्यक्ष ने अपने अपने विभाग से शंख बजा कर युद्ध शुरू करने के लिए उतावली सूचित की।

कौरवों की शंख-ध्वनि सुन कर दूसरी तरफ़ से अर्जुन ने अपना देवदत्त नामक और कृष्ण ने अपना पांचजन्य नामक शंख इतने ज़ोर से बजाया कि सुननेवालों को बहरे हो जाने की शङ्का होने लगी। इनकी इस शंख-ध्वनि से कौरवों की सेना को तो

त्रास हुआ; अपनी निज की सेना का उत्साह बढ़ा। पाण्डवों के सेनाध्यक्षों ने भी अपना अपना शंख बजा कर यह सूचित किया कि मोरचा-बन्दी और क़िलेबन्दी हो चुकी; अब हम युद्ध के लिए पूरे तौर से तैयार हैं।

इसके बाद सफ़ेद घोड़े जुते हुए और मणियों से जड़े हुए रथ पर सवार होकर पाण्डवों के सेनापति अर्जुन ने कृष्ण से कहा:—

हे वासुदेव! दोनों सेनाओं के बीच में रथ खड़ा करो, जिसमें हम यह निश्चय कर सकें कि किस पक्ष का कौन योधा किसके साथ युद्ध करने के योग्य है। इससे युद्ध आरम्भ करने में सुभीता होगा।

तब कृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में लेजाकर खड़ा किया और कहा:—

हे पार्थ! देखो ये भीष्म, द्रोण आदि योद्धा और कौरव-सेना के सब वीर इकट्ठे हैं।

अर्जुन ने दोनों दलों में अपने पितामह, अपने आचार्य्य, अपने मामा, अपने भाई, अपने पुत्र, अपने ससुर, और अपने मित्र आदि आत्मीय जनों को देखा। अपने प्यारे से भी प्यारे और निकट से भी निकट सम्बन्धियों और आत्मीय जनों को देख कर अर्जुन का हृदय करुणरस से उमड़ आया। वे उदास और दुखी होकर बोले:—

हे मधुसूदन! अपने इन आत्मीय जनों को युद्ध करने के इरादे से आया देख हमारा शरीर सन्न और चित्त भ्रान्त हो रहा है। हमारा जी ठिकाने नहीं रहा। गाण्डीव हमारे हाथ से गिरना चाहता है। जिनके कारण मनुष्य संसार में राज्य पाने की कामना करता है उन्हीं कुटुम्बियों और प्रेम-पात्र जनों का नाश करके हम राज्य पाने का उद्योग कर रहे हैं। परन्तु, पृथ्वी की बात जाने दीजिए, यदि हमें त्रैलोक्य का भी राज्य मिलता हो तो भी हम इन लोगों को मारने की इच्छा नहीं कर सकते। ये लोग लोभ से अन्धे हो कर युद्ध करने आये हैं; किन्तु हाय! हम सब बात अच्छी तरह समझ करके भी यह महा पाप करने चले हैं। हम चुपचाप खड़े रहें और ये हमारा सिर उतार लें, तो भी हम अच्छा ही समझेंगे; परन्तु इनके साथ युद्ध करना हम अच्छा नहीं समझते।

यह कह कर अर्जुन ने अपना धनुष-बाण फेंक दिया और महा शोकाकुल होकर रथ पर चुपचाप बैठ रहे। तब अर्जुन को इस प्रकार चिन्तित और दया-परवश देख कर कृष्ण ने कहा:—

हे अर्जुन! ऐसे विषम समय में क्यों तुम मूर्ख आदमियों की तरह मोह कर रहे हो? इस तरह मोह में पड़ना तुम्हें उचित नहीं। अपने हृदय से इस तुच्छ दुर्बलता को दूर करके उठो और क्षत्रियों के धर्म्म का पालन करो।

अर्जुन ने कहा:—हे कृष्ण ! अपने परम पूज्य गुरुजनों को वध करने की अपेक्षा इस लोक में भीख माँग कर पेट भरना हम सौगुना अधिक अच्छा समझते हैं। इन लोगों के मारे जाने पर हम जीकर ही कौन सा सुख भोगेंगे ? जब यही न रहेंगे तब हम राज्य लेकर करेंगे क्या ? हे मित्र ! कातरता और दया ने हमें अपने वश में कर लिया है। इससे हम धर्म्मान्ध हो रहे हैं; हमें कुछ सूझता नहीं। आप हमें उपदेश दीजिए। हम आपकी शरण हैं।

तब कृष्ण हँस कर अर्जुन से बोले:—

भाई ! जिन बातों का विचार करके तुम अपनी आत्मा को पीड़ित कर रहे हो—अपने जी को इतना दुःख दे रहे हो—वे ऊपर से देखने में तो ठीक मालूम होती हैं; परन्तु, खूब सोच समझ कर उनका विचार करने से तुम्हें यह अवश्य मालूम हो जायगा कि तुम्हारे विचार और तुम्हारी युक्तियाँ भ्रमपूर्ण हैं। मनुष्य का सुख-दुख एक बहुत ही छोटी बात है। इस क्षुद्र सुख-दुख के ख़याल से मनुष्य को अपना कर्तव्य और अकर्तव्य न भूलना चाहिए। उसका जो कर्तव्य हो उसे, सुख-दुःख का कुछ भी विचार न करके, निःसङ्कोच, करना चाहिए। और जो उसका कर्तव्य न हो, अर्थात् जो बात उसे करना उचित न हो, उसे कदापि न करना चाहिए, चाहे उसके करने से कितने ही सुख की प्राप्ति उसे क्यों न होती हो। मनुष्य की बुद्धि ही कितनी ? बुद्धि के अनुसार हर एक बात के फलाफल का विचार करना व्यर्थ है। जिसका फल तुम अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छा समझते हो, बहुत सम्भव है, उसका फल बुरा हो; और जिसका तुम बुरा समझते हो उसका अच्छा हो। हम तो कोई काम ऐसा नहीं देखते जिसके विषय में यह निःसन्देह कहा जा सके कि इसका फल यह होगा। इससे मनुष्य को चाहिए कि भले बुरे फल और सुख-दुःख की कुछ भी परवा न करके अपने धर्म्म के अनुसार अपना कर्तव्य-पालन करे। हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ ! दिल को कड़ा करके क्षत्रियों के धर्म्म के अनुसार तुम युद्ध करो। ऐसा करने से तुम्हें लेश मात्र भी पाप न होगा। हे अर्जुन ! चिरकाल से जो हज़ारों घटनायें एक के बाद एक होती आई हैं वही इस इतने बड़े क्षत्रियों के कुल के क्षय का कारण होंगी। इस युद्ध को उन्हीं घटनाओं का फल समझना चाहिए। इसके उत्तरदाता न तो तुम्हीं हो और न और ही कोई है। इससे हे कुटुम्ब-वत्सल ! तुम अपने मन में यह समझ लो कि तुम किसी की मृत्यु का कारण नहीं हो सकते। न मालूम कब से कार्य्य और कारण का प्रवाह चला आता है। उसीसे जो कुछ होने को होता है हो जाता है। मनुष्य का किया कुछ भी नहीं होता। तुम्हारा जो काम

है—तुम्हारा जो निज का कर्तव्य है—उसे यदि तुम दया मया छोड़ कर करोगे तो तुम्हारे धर्म्म की रक्षा भी होगी और अन्त में सब प्रकार मंगल भी होगा।

कृष्ण के इस अनमोल उपदेश को सुन कर अर्जुन का मोह जाता रहा। उनके ध्यान में यह बात तत्काल आ गई कि हमारे कुल का—हमारी जाति का—क्या धर्म्म है। तब उन्होंने मन को धीरज देकर कृष्ण से कहा:—

हे वासुदेव! आपकी कृपा से हमारा मोहान्धकार दूर हो गया। आपने हमें युद्ध करने के लिए जो उपदेश दिया उस उपदेश का पालन जहाँ तक हमसे हो सकेगा अपनी शक्ति के अनुसार हम अवश्य करेंगे।

इसके बाद अर्जुन ने फिर अपने गाण्डीव धनुष को हाथ में लिया और युद्ध के काम में दत्तचित्त हुए।

वेद जाननेवालों में सबसे श्रेष्ठ व्यासजी ने जब सुना कि दोनों पक्षों की प्रचण्ड सेना युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिए तैयार खड़ी है तब वे धृतराष्ट्र के पास आये। धृतराष्ट्र ही की अनीति और अन्याय से युद्ध की नौबत आई थी। इससे इस युद्ध को अपनी ही अनुदार नीति का परिणाम समझ कर धृतराष्ट्र इस समय बहुत शोकाकुल हो रहे थे। व्यासजी उन्हें इस दशा में देख कर एकान्त में ले गये और बोले:—

हे राजन्! काल बड़ा बली है। वही सब कुछ करता है। उसी के कारण आज इस युद्ध का उपक्रम हुआ है। तुम्हारे पुत्र और भतीजे आदि परस्पर एक दूसरे को मरने मारने पर जो उतारू हैं उनके लिए तुम शोक न करो। हे पुत्र! यदि युद्ध के मैदान में उन्हें देखने की तुम्हारी इच्छा हो तो हम तुम्हें दिव्य चक्षु दे सकते हैं—तुम्हारे हृदय की आँखें हम खोल सकते हैं। युद्ध में जो कुछ होगा वह सब तुम उनसे देख सकोगे।

धृतराष्ट्र ने कहा:—हे ब्रह्मर्षि! अपनी जातिवालों का वध देखने की हमारी इच्छा नहीं। परन्तु आपकी कृपा से युद्ध का सारा हाल हम सुनना चाहते हैं।

व्यासजी ने धृतराष्ट्र की बात सुन कर सञ्जय को वर दिया और कहा:—

सञ्जय तुमसे युद्ध का सब हाल कहेगा। युद्ध की कोई बात इससे छिपी न रहेगी—गुप्त हो या प्रकट, दिन में हो या रात में, जो कुछ होगा सञ्जय को सब मालूम हो जाया करेगा। न इसे अस्त्र-शस्त्र से कोई बाधा पहुँच सकेगी, न परिश्रम से इसे थकावट ही मालूम होगी। हे भरतश्रेष्ठ! तुम शोक न करो। हम कौरवों और पाण्डवों की इस कीर्ति को चिरकाल के लिए विख्यात कर देंगे।

महात्मा व्यास धृतराष्ट्र को इस तरह धीरज देकर चले गये।

व्यास के दिये हुए वर के प्रभाव से सञ्जय प्रति दिन युद्ध के मैदान में, बिना किसी विघ्न-बाधा के, घूमा किये, और, सायङ्काल, युद्ध समाप्त होने पर, सारा हाल धृतराष्ट्र से कहते रहे।

३—युद्ध का आरम्भ

दोनों तरफ़ से युद्ध की तैयारी हो चुकी। युद्ध आरम्भ करने का समय आ गया। सेनापति लोग अपनी अपनी सेना को आगे बढ़ कर भिड़ जाने की आज्ञा देने ही को थे कि इतने में एक आश्चर्य्यजनक बात हुई। धर्म्मराज युधिष्ठिर ने अपने अस्त्र-शस्त्र रख दिये और रथ से उतर कर वे कौरवों की सेना की तरफ़ पैदल ही चले। अपने जेठे भाई का यह अद्भुत आचरण देख कर पाण्डवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे भी अपने अपने रथ से उतर पड़े और युधिष्ठिर के पीछे पीछे दौड़े। अर्जुन के साथ कृष्ण भी चले। और भी कितने ही राजा लोग उसी तरफ़ को रवाना हुए। उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ कि बात क्या है जो युधिष्ठिर इस तरह अचानक कौरवों की सेना की तरफ़ जा रहे हैं। और तो कोई न बोला, पर अर्जुन से न रहा गया। उन्होंने पूछा:—

हे धर्म्मराज! आप क्यों इस तरह पैदल ही शत्रुओं की सेना में जा रहे हैं?

अर्जुन को इस तरह पुकारते देख भीमसेन ने भी कहा:—

सारी सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी है। ऐसे समय में हथियार डाल कर आप कहाँ जा रहे हैं?

नकुल और सहदेव से भी न रहा गया। उन्होंने भी कहा:—

आप हमारे बड़े भाई होकर हमें छोड़े जाते हैं; यह हमारे लिए बड़े दुःख की बात है। बतलाइए तो, मामला क्या है? आप क्यों ऐसा करते हैं?

परन्तु युधिष्ठिर ने किसी की भी बात का उत्तर न दिया। वे निश्चलभाव से भीष्म के रथ की तरफ़ मुँह किये हुए बराबर चले ही गये। तब कृष्ण ज़रा मुसकरा कर कहने लगे:—

हे पाण्डव! तुम किसी बात की चिन्ता न करो। घबराने का कोई कारण नहीं। हमने युधिष्ठिर के मन की बात जान ली। गुरुजनों की आज्ञा के बिना वे युद्ध नहीं करना चाहते। इसी से वे उनकी आज्ञा लेने जा रहे हैं।

यह अद्भुत तमाशा देख कर कौरवों के दल में तरह तरह की बातें होने लगीं। कोई कोई कहने लगा:—

यह युधिष्ठिर क्षत्रियों के कुल में कलङ्क के समान पैदा हुआ है। मालूम होता है कि यह युद्ध से डर गया है। इसी से भीष्म की शरण लेने दौड़ा आ रहा है। हाय! हाय! यह बड़ा ही कायर और कुपूत निकला। अपने भाइयों का मुँह काला करके, देखो तो, यह कैसा अनुचित काम कर रहा है। अब इसके महाबली भाई भीम और अर्जुन लज्जा के मारे मुँह दिखलाने लायक़ भी न रह जायँगे।

ऐसी ही ऐसी बे-सिर पैर की बातें कौरवों की सेना में सब कहीं होने लगीं। इस तरह शत्रुओं की सेना पाण्डवों को धिक्कार और दुर्योधन आदि कौरवों की प्रशंसा करके बड़े आनन्द से झंडे हिलाने लगी।

जब युधिष्ठिर भीष्म के पास पहुँचे, तब, सब लोग, यह सुनने के लिए कि देखें ये क्या कहते हैं और भीष्म क्या उत्तर देते हैं, चुपचाप मूर्ति के समान खड़े रहे। उधर युधिष्ठिर, भाइयों को साथ लिये हुए, अस्त्र-शस्त्रों से सजी हुई शत्रु की सेना के बीच घुसते हुए वहाँ जा पहुँचे जहाँ पितामह भीष्म युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। उनके पास जाकर युधिष्ठिर ने उनके दोनों पैर छुए और कहा:—

हे वीर-शिरोमणि! हम आपसे आज्ञा माँगने आये हैं। युद्ध के लिए आप हमें अनुमति और आशीर्वाद दीजिए।

युधिष्ठिर के इस शिष्टाचार को देख कर भीष्म बहुत ही प्रसन्न हुए। वे बोले:—

हे राजन्! तुम यदि हमसे बिना मिले ही युद्ध आरम्भ कर देते तो हमें ज़रूर दुःख होता। तुम्हारे इस शिष्टाचार से हम बड़े प्रसन्न हुए। हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं:— युद्ध में तुम्हारी ही जीत हो। तुम तो ख़ुद ही जानते हो कि हम कर्तव्य के वश होकर तुम्हारे शत्रुओं की तरफ़दारी करने के लिए लाचार हुए हैं। इससे हमें अपनी तरफ़ कर लेने की बात को छोड़ कर और जो वर हमसे चाहो माँग सकते हो।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे पितामह! आप कौरवों का पक्ष लेकर युद्ध कीजिए; परन्तु हमें कोई ऐसा उपदेश दीजिए जिसमें हमारा हित हो। हम आपसे यही वर माँगते हैं।

भीष्म ने कहा:—बेटा! यह किसी में शक्ति नहीं जो हमें अपनी इच्छा न रहते मार सके। हम जब मरेंगे अपनी ही इच्छा से मरेंगे। इससे इस समय तुम्हें जिताने के लिए हम कौन सा उपदेश दें, कुछ समझ में नहीं आता। ख़ैर, तुम किसी और दिन, अच्छा मौक़ा देख कर, हमारे पास आना। हम तुम्हें अवश्य कुछ उपदेश करेंगे।

तब युधिष्ठिर ने पितामह को प्रणाम किया और उनकी बात को हृदय में धारण करके वे आचार्य्य द्रोण के पास गये। द्रोण से भी उन्होंने युद्ध के लिए अनुमति माँगी।

द्रोणाचार्य्य ने कहा:—हे युधिष्ठिर ! तुम यदि गुरु से पूछे बिना युद्ध आरम्भ कर देते तो हमें ज़रूर ही तुम पर क्रोध आता और जी से हम यही चाहते कि तुम्हारी हार हो। परन्तु ऐसा न करके जो तुम हमारे पास आये हो तो हम प्रसन्न होकर तुम्हें आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारी ही जीत हो। कौरवों का अन्न खाने के कारण हमें उनकी तरफ़दारी करनी पड़ी है। हम बड़े ही दीन भाव से कहते हैं कि तुम हमें अपनी तरफ़ हो जाने की बात के सिवा और जो कुछ चाहो माँग सकते हो।

तब युधिष्ठिर ने जैसी भीष्म से प्रार्थना की थी वैसी ही द्रोण से भी की। उन्होंने कहा:—

हे गुरु ! आप कौरवों की तरफ़ होकर युद्ध कीजिए; हमारे लिए आप सिर्फ़ इतना ही कीजिए कि कोई ऐसा उपदेश दीजिए जिसमें हमारा भला हो।

इसके उत्तर में द्रोण ने कहा:—

हे राजन् ! महात्मा कृष्ण ही जब तुम्हारे मंत्री हैं तब हम और क्या उपदेश दे सकते हैं ? हे धर्म्मराज ! धर्म्म तुम्हारे ही पक्ष में है; इससे तुम्हारी ही जीत होगी। इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु जब तक हम युद्ध के मैदान में उपस्थित रहेंगे तब तक तुम्हारी जीत होने की कोई आशा नहीं। इससे सब भाई मिल कर तुम शीघ्र ही हमें मार डालने की कोशिश करना।

इसके अनन्तर कृपाचार्य्य की अनुमति लेने के लिए युधिष्ठिर उनके पास गये और बोले:—

हे आर्य्य ! आज्ञा हो तो हम शत्रुओं को परास्त करें।

कृपाचार्य्य ने आशीर्वाद दिया और कहा:—

महाराज ! मनुष्य अर्थ का दास है; इससे उसे धन-सम्पत्ति मिलती है उसी का वह दास बन कर रहता है। हमारा भी ठीक यही हाल है। कौरवों ने हमें दासपन में बाँध सा लिया है। इससे इस युद्ध में हमारी सहायता को छोड़ कर और जो कुछ कहो हम करने को तैयार हैं।

तब युधिष्ठिर, पहले की तरह, युद्ध में जीत होने के विषय में उपदेश माँगने को तैयार हुए। परन्तु उनको यह संदेह हुआ कि द्रोण की तरह कृपाचार्य्य यह न कह

दें कि लड़कपन के बूढ़े गुरु को मारे बिना जीत की आशा करना व्यर्थ है। यह सोच कर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। उनका कण्ठ भर आया; मुँह से बात न निकली।

युधिष्ठिर की इस कातरता का कारण मालूम होने पर कृपाचार्य्य बार बार आशीर्वाद देकर कहने लगे:—

महाराज! हम तुम्हारे हाथ से अवध्य ज़रूर हैं—हम तुम्हारे द्वारा वध किये जाने के पात्र नहीं। तथापि कोई चिन्ता की बात नहीं। हमें मारे बिना भी तुम्हारी जीत होने में कोई बाधा न आवेगी।

यह सुन कर युधिष्ठिर की चिन्ता दूर हो गई। उन्हें बहुत कुछ ढाढ़स हुआ। अन्त में अपने मामा शल्यराज के पास जाकर युधिष्ठिर ने उनको प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक बातचीत करके युद्ध करने के लिए अनुमति माँगी।

शल्य ने कहा:—बेटा! तुम्हारे शत्रुओं की तरफ़ हो कर लड़ने के लिए हम किस तरह प्रतिज्ञा में बँधे हैं, सो तो तुम जानते ही हो। इस समय, कहो, हम तुम्हारा क्या हित-साधन कर सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा:—महाराज! आपने पहले जो प्रतिज्ञा की है कि युद्ध के समय सूतपुत्र के तेज को हम कम कर देंगे उसे न भूल जाइएगा।

इसके अनन्तर मामा की मानमर्यादा के अनुसार बहुत कुछ नम्रता दिखा कर भाइयों को साथ लिये हुए युधिष्ठिर अपने शत्रु कौरवों की सेना से बाहर निकल आये।

इस बीच में कर्ण को कौरवों के पक्ष से अलग कर लेने की फिर एक बार चेष्टा करने के इरादे से कृष्ण कर्ण के पास गये थे। कर्ण से मिल कर कृष्ण ने कहा:—

हे वीर! सुनते हैं, भीष्म के जीते रहते तुम युद्ध न कर सकोगे। अतएव तुम्हारा अपमान करनेवाले भीष्म जब तक मारे न जायँ तब तक तुम्हारे लिए यही बेहतर होगा कि तुम हमारी तरफ़ होकर युद्ध करो। उनके मारे जाने पर तुम फिर दुर्योधन की सहायता करने चले जाना और उनकी तरफ़ होकर लड़ना।

कर्ण ने कहा:—हे केशव! दुर्योधन की इच्छा के विरुद्ध हम कोई काम न कर सकेंगे। आप इस बात को निश्चय समझिए कि हम उनके भले के लिए अपने प्राण तक दे देने में संकोच न करेंगे।

कृष्ण का मनोरथ इस दफ़े भी सफल न हुआ। लाचार होकर वे कर्ण के पास से लौट आये और पाण्डवों से आ मिले। जिस समय युधिष्ठिर कौरवों की सेना से बाहर होने लगे उस समय उन्होंने ज़ोर से पुकार कर कहा:—

यदि कौरवों के पक्षवालों में से हमारा कोई हितचिन्तक हो—हमारा कोई भला चाहनेवाला हो—तो वह हमारे पास निःशङ्क चला आवे। हम उसे प्रेमपूर्वक अपने पक्ष में लेने को तैयार हैं।

धृतराष्ट्र के एक वेश्या थी। उसके गर्भ से उनके एक पुत्र था। उसका नाम युयुत्सु था। उसने सबकी तरफ़ देख कर युधिष्ठिर की बात का इस प्रकार उत्तर दिया:—

हे धर्मराज! हम तुम्हारी तरफ़ होकर कौरवों के साथ युद्ध करेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा:—भाई! आओ, सब इकट्ठे होकर तुम्हारे इन मूर्ख भाइयों के साथ युद्ध करें। हम प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें अपने पक्ष में लेते हैं। यह बात अब साफ़ मालूम हो रही है कि धृतराष्ट्र के बुढ़ापे की लकड़ी अकेले तुम्हीं होगे। तुम्हीं उनके वंश की रक्षा करोगे; तुम्हारे और सब भाई ज़रूर ही इस युद्ध में मारे जायँगे।

युधिष्ठिर को अपने गुरुजनों और माननीय पुरुषों की मान-मर्य्यादा की रक्षा करते देख, जितने राजा लोग वहाँ उस युद्ध के मैदान में थे सबने उनकी बार बार प्रशंसा की। चारों तरफ़ से दुन्दुभि और भेरी के शब्द सुनाई पड़ने लगे। पाण्डवों के पक्ष के वीर आनन्द से फूल उठे और सिंह की तरह गर्जने लगे।

युधिष्ठिर फिर रथ पर सवार हुए और फिर उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र धारण किये। उनके भाई और दूसरे राजा लोग भी रथों पर सवार होकर अपनी अपनी जगह पर जा डटे। उनके चले जाने से व्यूह में जो जगहें ख़ाली हो गई थीं वे फिर भर गईं। व्यूह फिर जैसे का तैसा बन गया।

इसके बाद दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन ने भीष्म को आगे किया और बहुत सी सेना लेकर युद्ध आरम्भ करने के इरादे से पाण्डवों की तरफ़ पैर बढ़ाया। यह देख कर पाण्डवों के व्यूह के दरवाज़े की रक्षा करनेवाले भीमसेन ने मतवाले बैल की तरह बड़ी ज़ोर से गर्जना की और जो सेना उनके अधीन थी उसे लेकर शत्रुओं पर टूट पड़े। उस समय महासागर की तरह दोनों सेनायें प्रचण्ड वेग से परस्पर भिड़ गईं। उनके सिंहनाद से आकाश-मण्डल गूँज उठा।

जितने बड़े बड़े वीर और बड़े बड़े महारथी थे वे सब जब अपने अपने जोड़ के वीरों और महारथियों के सामने हुए तब थोड़ी देर तक वह कौरवों और पाण्डवों का दल चित्र में लिखा हुआ सा मालूम होने लगा। सेना की चाल से इतनी धूल उड़ी कि सूर्यबिम्ब छिप गया। धीरे धीरे इतना अन्धकार बढ़ा कि हाथ मारा न सूझने लगा। अर्जुन का भीष्म के साथ, भीमसेन का दुर्योधन के साथ, युधिष्ठिर का मद्रराज के

साथ, विराट का भगदत्त के साथ, सात्यकि का कृतवर्म्मा के साथ, इसी तरह एक पक्ष के प्रत्येक वीर का दूसरे पक्ष के उपयुक्त वीर के साथ कुछ देर तक बड़ा ही घोर युद्ध हुआ। परन्तु कोई किसी को न हरा सका। दोनों पक्षों की व्यूह-रचना—दोनों सेनाओं की क़िलेबन्दी—जैसी की तैसी रही; वह ज़रा भी न टूट सकी। सेनाओं का किलकिला-शब्द, शङ्ख और भेरी की ध्वनि, वीरों का सिंहनाद, धनुष की प्रत्यञ्चाओं की टङ्कार, हथियारों की झनकार, दौड़ते हुए हाथियों का घण्टा-नाद और रथों की वज्र-तुल्य घरघराहट से सब दिशायें भर गईं।

दो पहर तक इसी तरह युद्ध होता रहा। बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। दोनों पक्षों की बहुत सी सेना कट गई। पर दोनों में से कोई भी आगे न बढ़ सका। जो जहाँ था वहीं रहा। किसी का भी व्यूह न टूटा। भीष्म ने इस तरह के युद्ध को अच्छा न समझा। उन्होंने कहा, जिस युद्ध में जीत किसी की न हो और दोनों तरफ़ की सेना व्यर्थ कट जाय उस युद्ध को रण-चतुर सेनापति बुरा समझते हैं। इससे उन्होंने दो पहर के बाद एक कौशल रचा। उन्होंने पाण्डवों के व्यूह के एक ऐसे स्थान का पता लगाया जो ज़रा कमज़ोर था और जिसकी रक्षा का भी ठीक ठीक प्रबन्ध न था। फिर कृप, शल्य और कृतवर्म्मा आदि वीरों से रक्षित होकर उन्होंने उसी स्थान पर धावा किया और असंख्य सेना मार कर व्यूह तोड़ देने का यत्न करने लगे।

अकेले बालक अभिमन्यु को छोड़ कर व्यूह के उस भाग की रक्षा करनेवाला और कोई वहाँ न था। अर्जुन ही के समान तेजस्वी उनके पुत्र अभिमन्यु को मालूम हो गया कि अब हमारी सेना पर विपद आ गई और अब व्यूह बिना टूटे नहीं बचता। परन्तु वह डरा नहीं। निडर होकर सिंह की तरह वह उस स्थान पर आ पहुँचा जहाँ बड़े बड़े कौरव वीर व्यूह तोड़ने की कोशिश में थे। आते ही उसने उन वीरों के काम में विघ्न डाला। पहले तो उसने कृतवर्म्मा और शल्य को अपने शरों से छेद दिया; फिर भीष्म के ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया। कृपाचार्य्य ने अभिमन्यु के ऊपर बहुत से अस्त्र-शस्त्र चलाये, परन्तु अभिमन्यु ने उन सबको रास्ते ही से लौटा दिया और अपने अत्यन्त पैने बाणों से कृपाचार्य्य के सुवर्ण-खचित धनुष को काट गिराया।

यह देख कर भीष्म को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने अभिमन्यु के रथ की ध्वजा काट डाली, उनके सारथि को घायल किया और ख़ुद अभिमन्यु को तीन बाणों से छेद दिया। परन्तु अर्जुन के बेटे महावीर अभिमन्यु ने 'आह' तक न की; ज़रा भी वे नहीं घबराये; ज़रा भी वे नहीं डरे। यद्यपि दुर्योधन के पक्षवाले वीरों ने उन्हें इस

समय चारों तरफ़ से घेर लिया था, तथापि अकेले ही वे उन सबका सामना करने लगे। बाणों की विकट वर्षा से उन्होंने कौरवों की सेना को कँपा दिया। जहाँ देखो वहाँ अभिमन्यु के छोड़े हुए बाण ही बाण देख पड़ने लगे। कौरव-सेनापति भीष्म को भी अभिमन्यु ने नहीं छोड़ा। अपने अत्यन्त पैने शरों से उन्होंने भीष्म को बे-तरह पीड़ा पहुँचाई। उस समय यह मालूम होता था मानों पिता की तरह पुत्र अभिमन्यु भी गाण्डीव धन्वा से शरों का समूह छोड़ रहे हैं।

धनुर्विद्या में अभिमन्यु का हाथ ऐसा बढ़ा चढ़ा था कि मौक़ा पाते ही उन्होंने भीष्म के रथ की ध्वजा काट गिराई। कौरवों के सेनापति भीष्म के रथ की ध्वजा बहुत ऊँची थी। वह सोने की बनी हुई थी; बीच बीच में मणियाँ जड़ी थीं। उस पर ताल का चिह्न था। इसी से उसका नाम ताल-ध्वज था। भीष्म की ध्वजा के कट कर ज़मीन पर गिरते ही कौरवों की सेना में हाहाकार और पाण्डवों की सेना में प्रसन्नता-सूचक शब्दों का कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। इसी समय पाण्डवों के पक्ष के भीमसेन आदि दस महारथियों की कुमक आ गई। उन लोगों ने अभिमन्यु की मदद पहुँचाई और भीष्म के धावे को व्यर्थ कर दिया। हज़ार प्रयत्न करने पर भी भीष्म की दाल न गलाई गली।

पाण्डवों की इस कुमक में राजा विराट का पुत्र उत्तर भी था। वह हाथी पर सवार था। उसने मद्रदेश के राजा शल्य पर आक्रमण किया। बाण लगने से उसका हाथी बे-तरह बिगड़ उठा। वह शल्य के रथ पर जा टूटा और उसके अगले भाग को तोड़ कर घोड़ों को पैरों से कुचल डाला। शल्य बड़े योद्धा थे। उन्हें यह देख कर बड़ा क्रोध आया। वे उसी टूटे हुए बे-घोड़े के रथ पर बैठे रहे और शक्ति नाम का एक लोहे का हथियार उठा कर बड़े ज़ोर से उत्तर के ऊपर फेंका। वह उत्तर के शरीर पर लगा और लोहे का कवच फाड़ कर भीतर घुस गया। उसकी चोट से विराटतनय उत्तर हाथी से नीचे गिर पड़ा। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और देखते देखते उसके प्राण निकल गये। तब मद्रराज शल्य ने तलवार उठाकर उत्तर के हाथी को मार डाला। फिर अपने टूटे हुए रथ को छोड़ कर कृतवर्म्मा के रथ पर वे सवार हो गये।

इसी कुमार उत्तर की बहन उत्तरा अभिमन्यु को ब्याही थीं। इससे अपने प्यारे सम्बन्धी के सुत की मृत्यु से पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ। उनके चेहरे उतर गये; सब पर उदासीनता छा गई। कौरवों को यह अच्छा मौक़ा मिला। उन्होंने पाण्डवों की असंख्य सेना मार गिराई। इससे पाण्डवों के दल में चारों तरफ़ हाहाकार मच गया।

इस समय प्रायः सन्ध्या हो गई थी। सूर्य्य डूबने चाहता था। कौरव लोग बड़ी ही भीषण मार मार रहे थे। इससे पाण्डवों के सेनापति अर्जुन ने लड़ाई बन्द करने के लिए आज्ञा दी। इस भयङ्कर युद्ध का पहला दिन इस तरह बीता।

रात भर विश्राम करने के लिए दोनों तरफ़ की सेना अपने अपने डेरों में गई। उस दिन की जीत से दुर्योधन बड़े प्रसन्न हुए। पर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। भीष्म का प्रबल प्रताप देख कर वे डर गये कि कहीं हमारे पक्ष की हार ही न होती जाय। इससे अपने भाइयों को, कृष्ण को और अपने पक्ष के राजाओं को बुला कर वे कहने लगे:—

हे वासुदेव! देखिए, आग जैसे तिनकों के ढेर को जलाती है, महापराक्रमी भीष्म उसी तरह हमारी सेना को जला रहे हैं। हमारी सेना में जितने अच्छे अच्छे वीर और अच्छे अच्छे धनुर्धर थे सबको घायल हो हो कर इधर उधर भागना पड़ा है। इसका क्या इलाज करना चाहिए? हे यादव-श्रेष्ठ! हमारे ही अपराध से हमारे भाइयों को शत्रुओं के शरों से घायल होना और मित्रों को मरना पड़ा है। इसकी अपेक्षा तपस्या करके अपना जीवन बिताना हमारे लिए अधिक अच्छा था।

महात्मा युधिष्ठिर को इस तरह शोकाकुल देख कृष्ण ने उनसे इस प्रकार उत्साह पैदा करनेवाले वाक्य कहे:—

हे भरत-कुल के दीपक! तुमको इस तरह शोक करना उचित नहीं। तुम्हारे सभी भाई महाबली और ऊँचे दरजे के धनुर्धारी हैं। हम सब लोग तुम्हारे हितचिन्तक और सहायक हैं। महारथी धृष्टद्युम्न तुम्हारे प्रधान सेनानायक हैं। फिर भला चिन्ता का क्या काम?

तब धृष्टद्युम्न ने भी वीरों के योग्य वचन कह कर युधिष्ठिर को धीरज दिलाया। इससे सबका उत्साह दूना हो गया और दूसरे दिन के युद्ध के लिए जी जान से तैयारियाँ होने लगीं।

दूसरे दिन सवेरा होते ही फिर युद्ध की ठहरी। पाण्डवों ने अपनी सेना का फिर व्यूह बनाया—फिर उसकी क़िलेबन्दी करके मोरचे लगाये। उसके आगे सेनापति अर्जुन के रथ का कपि-चिह्नवाला पताका फहराने लगा। व्यूह के दाहने-बायें सेना-ध्यक्ष लोग हुए। उनकी सहायता के लिए बीच में और पीछे असंख्य महारथी वीर, शस्त्रों से सज कर, खड़े हुए। पहाड़ों की तरह हाथी चारों तरफ़ व्यूह के दरवाज़ों की रखवाली करने लगे। बीच में धर्म्मराज का सफ़ेद छत्र शोभायमान हुआ। युद्ध

आरम्भ करने की आज्ञा देने के लिए वहीं से वे सूर्य्य उदय होने की राह चुपचाप देखने लगे।

इधर दुर्योधन पाण्डवों का वह विकट व्यूह देख कर द्रोणाचार्य्य आदि मुख्य मुख्य सेनाध्यक्षों से कहने लगे:—

हे वीर-वर! आप सभी लोग शास्त्रों के जाननेवाले और नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या में निपुण हैं। आप लोगों में से प्रत्येक जन अकेले ही पाण्डवों को हरा सकता है, सब मिल कर उन्हें हराने की तो बात ही नहीं। हमारे पास सेना भी मतलब से अधिक है। इसलिए बहुत सी सेना और बहुत से महारथी योद्धा केवल भीष्म की रखवाली के लिए नियत कर देना चाहिए।

यह बात सबको पसन्द आई। तब भीष्म ने उसी के अनुसार अपनी सेना की व्यूह-रचना की।

इसके बाद बड़े ज़ोर से शंख बजा कर दोनों पक्षों के सेनाध्यक्षों ने अपनी अपनी सेना के उत्साह को बढ़ाया। कोलाहल का पार न रहा। घोर युद्ध आरम्भ हो गया।

धीरे धीरे भीष्म ने पाण्डवों की सेना को फिर पहले की तरह पीड़ित करना और काटना आरम्भ किया। फिर भगदड़ पड़ने लगी। तब अर्जुन ने कृष्ण से कहा:—

हे कृष्ण! बहुत जल्द भीष्म पितामह के सामने हमारा रथ ले चलो। महावीर भीष्म दुर्योधन का जी जान से भला करने पर उतारू हैं। उनको न रोकने से हमारी सारी सेना कट जायगी। इससे प्राणों की परवा न करके आज उनके साथ युद्ध करना होगा।

कृष्ण ने, अर्जुन के कहने के अनुसार, भीष्म के सामने रथ ले जाना आरम्भ किया। अर्जुन कौरवों की सेना का नाश करते करते भीष्म के रथ के सामने जा पहुँचे। दो प्रचण्ड तेजों के परस्पर भिड़ जाने से जैसे महा अद्भुत व्यापार होता है वैसे ही इन दो प्रबल पराक्रमी वीरों की मुठभेड़ से हुआ। अर्जुन की सहायता के लिए पाण्डवों के सेनाध्यक्ष और भीष्म की सहायता के लिए कौरवों के सेनाध्यक्ष वहाँ आ पहुँचे। भीषण युद्ध होने लगा। चारों तरफ़ सेना में वाह वाह और बड़ाई के तार बँध गये। लोग कहने लगे:—

ओहो! कैसा अद्भुत युद्ध हो रहा है! ऐसा युद्ध न तो कभी पहले ही हुआ है और न कभी आगे ही होने की आशा है। इधर महावीर अर्जुन भीष्म को नहीं जीत

सकते, उधर वीर-शिरोमणि भीष्म के द्वारा अर्जुन के जीते जाने के भी कोई लक्षण नहीं देख पड़ते।

जितने अच्छे अच्छे धनुर्धारी थे सब भीष्म-अर्जुन का यह आश्चर्य-कारक युद्ध देखने के लिए एक जगह इकट्ठे हो गये। भीमसेन को यह अच्छा मौक़ा मिला। उन्होंने कौरवों की सेना पर बड़े वेग से धावा किया और चारों ओर हाहाकार मचा दिया। उनकी तेज़ तलवार की चोट खा खा कर हाथियों के झुण्ड के झुण्ड घोर चीत्कार करते हुए ज़मीन पर लोटने लगे। घोड़े और घुड़-सवार भी महाबली भीमसेन के पैने बाणों से छिदे जाकर सौ सौ पचास पचास एक ही साथ गिरने लगे। भीम ने बड़ी ही विचित्र रण-चातुरी दिखाई। उछल उछल कर उन्होंने रथ पर सवार वीरों को ज़मीन पर गिरा दिया; किसी को अपने पैरों से कुचल डाला; किसी के केश पकड़ कर ज़मीन पर पटक दिया। भीमसेन की उस समय की वह भयङ्कर मूर्ति देख कर कौरवों के पक्षवाले वीर थे-तरह डर कर भगे। भाग कर उन्होंने भीष्म की शरण ली।

यह दशा देख कर कलिङ्ग देश के क्षत्रियों ने भीमसेन को रोकने की चेष्टा की—वे उनका मुक़ाबला करने दौड़े। उनको दौड़ते देख भीमसेन क्रोध से जल उठे। तत्काल ही उन्होंने अपना धनुर्बाण उठाया और पहले कलिङ्ग-देश के राजा और उनकी रखवाली करनेवाले वीरों को, और फिर उनकी बहुत सी सेना को, यमराज के घर पहुँचा दिया। अधिक और क्या कहा जाय, वहाँ रुधिर की नदी बह निकली। साक्षात् काल-स्वरूप भीमसेन के अद्भुत युद्ध को देख कर सैनिक लोग हाहाकार मचाने लगे।

इस हाहाकार और कोलाहल को सुन कर भीष्म ने अपने पास की सेना का व्यूह बना दिया और आप ख़ुद भीमसेन का मुक़ाबला करने चले। उन्होंने आते ही भीम की रक्षा करनेवाले पाण्डव वीरों को अपने तीखे शरों से तोप कर उनके घोड़े मार गिराये।

तब महाबली सात्यकि अकस्मात् न मालूम कहाँ से आ पहुँचे। आते ही वे झट आगे हो गये और भीष्म के सारथि को मार कर ज़मीन पर गिरा दिया। यह देख भीमसेन सात्यकि के रथ पर सवार हो गये और शक्ति, गदा तथा और अनेक अस्त्र-शस्त्र चलाते चलाते वहाँ से निकल आये। उधर रथ पर सारथि न होने से भीष्म के घोड़े भड़क उठे और भीष्म को लेकर लड़ाई के मैदान से बेतहाशा भागे।

महावीर अर्जुन और उन्हीं के समान तेजस्वी उनके पुत्र अभिमन्यु ने जब देखा कि भीष्म युद्ध के मैदान में नहीं हैं तब उन्हें शत्रुओं पर मार करने का और भी अच्छा मौक़ा मिला। बड़े ही प्रचण्ड विक्रम से वे कौरव-सेना पर टूट पड़े। अभिमन्यु ने दुर्योधन

के बेटे लक्ष्मण के नाकों दम कर दिया—उसे बेहद पीड़ित किया। यह देख कर बहुत से कौरव-वीरों के साथ स्वयं दुर्योधन को मदद के लिए वहाँ आना पड़ा। उस समय अर्जुन के विकराल बाण कौरवों के पक्ष के सैकड़ों छोटे मोटे राजाओं को यमालय भेजने लगे। कठोर मार खा खा कर कौरवों की सेना बे-तरह पीड़ित हो उठी और जहाँ जिसे रास्ता मिला भागने लगी। भीष्म का रचा हुआ व्यूह एक-दम ही ढीला हो गया—सैनिक लोग अपनी जगह पर न ठहर सके; उनके पैर उखड़ गये।

इतने में महात्मा भीष्म युद्ध के मैदान में लौट आये और वहाँ का अद्भुत हाल देख कर द्रोणाचार्य से कहने लगे:—

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! यह देखो कौरवों की सेना का अर्जुन किस तरह नाश कर रहे हैं। सचमुच ही इस समय वे बड़ा भीषण काम कर रहे हैं। आज अब फिर नये सेना को एकत्र करके व्यूह बनाना सम्भव नहीं। जो जिधर पाता है भागा जा रहा है। फिर, कहिए, कैसे व्यूह बन सकता है? सूर्यदेव भी अस्ताचल पर पहुँचने चाहते हैं; सन्ध्या होने में कुछ ही देरी है। इससे इस समय सेना को डेरों में जाने की आज्ञा देने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

जब कौरव-सेना ने युद्ध के मैदान की तरफ़ पीठ कर दी तब कृष्ण और अर्जुन ने आनन्दपूर्वक ज़ोर से शङ्ख बजाया। इस प्रकार उन्होंने उस दिन का युद्ध समाप्त किया।

इसके अगले दिन जो युद्ध हुआ उसमें भी अर्जुन ने बड़ी वीरता दिखाई। उनके बल, विक्रम और प्रबल प्रताप को कौरव लोग नहीं सह सके। जिस तरह सावन-भादों के मेघों से वृष्टि की झड़ी लगती है उसी तरह अर्जुन ने अपने गाण्डीव धन्वा से बाणों की झड़ी लगा दी। कौरव-सेना उनकी मार न सह कर फिर भागने लगी। यह देख दुर्योधन का मुँह पीला पड़ गया; उस पर उदासीनता छा गई। बहुत दुखी होकर वे भीष्म के पास आये और बोले:—

हे पितामह! शस्त्रास्त्र-विद्या के आचार्य महात्मा द्रोण और आपके रहते कौरव-सेना में भगदड़ मच रही है. यह कैसी बात है। आप देख रहे हैं कि इस समय हमारी सेना की कैसी दुर्दशा हो रही है—उस पर कैसी विपद आई है—फिर भी आप इसका इलाज नहीं करते; फिर भी आप चुप हैं। इससे तो साफ़ यही मालूम होता है कि आप पाण्डवों से मिले हुए हैं और जान बूझ कर उन्हें जिताना चाहते हैं। यदि हमें यह बात पहले से मालूम हो जाती तो हम यह युद्ध कभी ठानते ही नहीं।

दुर्योधन की इस बात से भीष्म की आँखें क्रोध से लाल हो गईं । उन्होंने भौंहें टेढ़ी करके कहा:—

हे राजन् ! हम पहले से बार बार आपसे कहते आये हैं कि पाण्डव महा पराक्रमी वीर हैं । उन्हें जीत लेना कोई सहज काम नहीं। ख़ैर जो कुछ हो; यह कभी मत समझना कि हम जान बूझ कर अपने कर्त्तव्य में त्रुटि करते हैं । नहीं, जो कुछ हमसे हो सकेगा उसमें कुछ भी कसर न होने पावेगी। इस बात को अभी तुम अपनी आँखों देख लेना ।

यह कह कर ऊँची ऊँची लहरोंवाले समर-रूपी उस महा-सागर में भीष्म फिर कूद पड़े और बड़े ही अद्भुत अद्भुत कृत्य कर दिखाने लगे। उन्होंने अपने धनुप को खींच कर गोल मण्डलाकार कर दिया, और उससे काले साँप की तरह भयङ्कर और चमकते हुए असंख्य बाण बरसाना आरम्भ किया। वे बाण बड़े वेग से चारों ओर गिरने और पाण्डवों के महारथी वीरों को छेद छेद कर उन्हें ज़मीन पर गिराने लगे। युद्ध के मैदान में भीष्म को अभी पूर्व में, अभी पश्चिम में, आँख की पलक मारते उत्तर में, फिर पल भर में दक्षिण में देख कर पाण्डव-पक्ष के वीर भय और विस्मय से विह्वल हो उठे। इस तरह पाण्डव-सेना जब निर्दयता से काटी जाने लगी तब उसके पैर उखड़ गये । अर्जुन के देखते ही वह भागने लगी ।

महा-तेजस्वी कृष्ण से पाण्डवों की सेना का भागना न देखा गया । उन्होंने अर्जुन को बहुत धिक्कारा । वे बोले:—

हे अर्जुन ! यदि तुम होश में हो, यदि तुम्हारी बुद्धि ठिकाने हो, तो तुरन्त ही भीष्म पर आक्रमण करो । देखो ये राजा लोग भीष्म के डर से इस तरह भाग रहे हैं जैसे सिंह के डर से छोटे छोटे मृगों के झुण्ड भागते हैं। युद्ध के मैदान में तुम्हारे रहते पाण्डव-सेना की यह दशा होना बड़े अफ़सोस की बात है ।

यह कह कर अर्जुन के रथ को कृष्ण भीष्म के सामने ले गये । फिर दोनों सेनापतियों में घोर युद्ध आरम्भ हुआ । बाण छोड़ने में अर्जुन बे-तरह सिद्ध-हस्त थे । उनमें हाथ की चालाकी बड़ी ही अद्भुत थी । उन्होंने भीष्म के धनुप को कई बार काट कर उनका बाण बरसाना बन्द कर दिया । इस पर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और अर्जुन की बार बार प्रशंसा करने लगे । अर्जुन भी बूढ़े भीष्म की युद्ध-चातुरी और आश्चर्यजनक उत्साह देख कर मन ही मन बड़े विस्मय को प्राप्त हुए । पितामह के युद्ध-सम्बन्धी चमत्कार ने अर्जुन के हृदय पर ऐसा असर किया कि उन्होंने पितामह को

और अधिक पीड़ित करने का इरादा छोड़ दिया। उन्होंने मन में कहा, इस बुड्ढे वीर को अधिक सताना उचित नहीं। परन्तु अर्जुन के पक्षवाले पाण्डव-वीरों ने कौरवों की सेना पर बड़े वेग से आक्रमण किया। भीष्म जो बे-तरह भीषण मार मार रहे थे उन्हें तो अर्जुन ने रोक रक्खा। इससे कौरवों की तरफ़ से कोई विशेष डर न रहा। इसी कारण से पाण्डवों को अपना विक्रम दिखाने का और भी अच्छा मौक़ा मिला। उन्होंने अपने शत्रुओं को बहुत ही हानि पहुँचाई। कुछ ही देर में कौरवों के दस हज़ार रथ, सात सौ हाथी, तथा सौ पूर्वी वीर और क्षुद्रक देश के सारे योद्धा बिलकुल ही नष्ट हो गये। दुर्योधन की सेना का धीरज छूट गया। बड़े बड़े वीरों की वीरता ख़ाक में मिल गई; उनका सारा उत्साह जाता रहा। अन्त में कौरवों के सेनाध्यक्षों ने दुर्योधन की आज्ञा से उस दिन का युद्ध समाप्त किया।

इसी तरह भीष्म प्रति दिन पाण्डवों की सेना का नाश और अर्जुन उनका निवारण करने लगे। जहाँ भीष्म पाण्डवों का संहार आरम्भ करते तहाँ अर्जुन उनके सामने जा डटते और उन्हें वहीं रोक देते। फिर भीष्म की एक न चलती। सायङ्काल युद्ध बन्द होते समय पाण्डवों ही की जीत रहती। प्रति दिन कौरवों को निरास होना पड़ता; प्रति दिन उनकी आशाओं पर पानी पड़ जाता; प्रति दिन उनके हृदय का सन्ताप बढ़ता। इस हार से दुर्योधन के हृदय पर भारी धक्का लगता। बे-तरह क्रुद्ध होकर वे भीष्म पर यह इलज़ाम लगाते कि तुम जान बूझ कर पाण्डवों को नहीं मारते—तुम उनकी तरफ़दारी करते हो। किन्तु महात्मा भीष्म दुर्योधन की अन्याय-पूर्ण बातों पर ध्यान न देते, वे गम्भीर वैराग्य में डूबे हुए चुपचाप अपना कर्त्तव्य पालन करते।

युद्ध के छः दिन इसी तरह बीत गये। सातवें दिन भीष्म और द्रोण आदि को साथ लेकर दुर्योधन ने एक महा विकट व्यूह बनाया। उसके द्वार की रक्षा ख़ुद प्रधान सेनापति भीष्म करने लगे। उसे देख कर पाण्डवों ने युधिष्ठिर को बीच में डाल कर शृङ्गाटक नाम का एक उससे भी अच्छा व्यूह, कौरवों के व्यूह के जवाब में, बनाया।

पहले तो सेनाध्यक्षों ने मन ही मन युद्ध का ढङ्ग सोचा। फिर परस्पर एक दूसरे को ललकार कर भिड़ गये। उस समय बिजली के समान चमकनेवाले असंख्य अस्त्र-शस्त्रों से आकाश परिपूर्ण हो गया। उस समय की वह शोभा देखने ही योग्य थी।

परम वीर भीष्म ने अपने रथ की कान फोड़नेवाली घरघराहट से युद्ध के मैदान को व्याप्त कर दिया। उसे सुन कर पाण्डवों की सेना के होश उड़ गये। भीष्म रथ पर

चारों ओर हवा की तरह दौड़ने लगे। वे क्षण में यहाँ देख पड़ने लगे, क्षण में वहाँ। रोज़ की तरह अर्जुन ने भी पितामह का सामना किया; पर उनके बुढ़ापे का ख़याल करके उन्होंने कठोर युद्ध करना उचित न समझा। फल यह हुआ कि भीष्म की मार से पाण्डवों की अनगिनत सेना कटने लगी। यह देख कर भीमसेन को बड़ा क्रोध हुआ। भीष्म को रोकने के लिए वे खुद दौड़ पड़े। भीम को भीष्म का मुक़ाबला करने के लिए दौड़ते देख पाण्डवों की सेना बहुत प्रसन्न हुई। उसने बड़े ज़ोर से सिंह-नाद किया। उधर भीम को आते देख दुर्योधन को बड़ा रोष हो आया। अपने भाइयों को साथ लेकर वे खुद भीष्म पितामह की रक्षा करने चले।

उस समय भीम ने बड़ा ही अद्भुत काम किया। धृतराष्ट्र के अनेक पुत्रों के मिल कर किये हुए आक्रमण को बार बार सहन करके भी, मौक़ा मिलते ही, उन्होंने भीष्म के सारथि को मार गिराया। सारथि के गिर जाने से रथ के घोड़े भड़क उठे। वे रथ को लेकर भागे। फल यह हुआ कि भीष्म को वे उस स्थान से दूर लेगये।

भीमसेन तो धृतराष्ट्र के पुत्रों पर पहले ही से जल रहे थे। उन्हें युद्ध के मैदान में पाकर उनके क्रोध की आग और भी दहक उठी। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चला चला कर वे दुर्योधन के भाइयों के सिर उतारने लगे। उनमें से कितने ही बात की बात में प्राणहीन होकर ज़मीन पर लोट गये। भीमसेन के किये हुए इस संहार को देख कर बचे हुए धृतराष्ट्र-पुत्र बे-तरह डर गये। उन्होंने समझा कि भीमसेन आज ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके छोड़ेंगे। इससे डरे हुए हिरनों के झुंड की तरह वे वहाँ से भाग गये।

बूढ़े राजा धृतराष्ट्र प्रति दिन सायङ्काल सञ्जय से युद्ध का हाल बड़े दुःख से चुपचाप सुनते, किन्तु यह समझ कर किसी तरह धीरज धरते कि हमारे पास एक तो सेना अधिक है, दूसरे भीष्म की बराबरी करनेवाला एक भी योद्धा पाण्डवों की तरफ़ नहीं है; एक न एक दिन हमारी जीत ज़रूर ही होगी। परन्तु उस दिन भीमसेन के हाथ से अपने पुत्रों के मारे जाने का हाल सुन कर उनका धीरज छूट गया। वे घबरा कर सञ्जय से बोले:—

हे सञ्जय! आज हम कई दिन से पाण्डवों के साथ अपने पक्ष के वीरों के बहुत तरह के युद्ध का हाल तुम्हारे मुँह से सुन रहे हैं। परन्तु प्रति दिन तुम पाण्डवों ही की जीत हुई बतलाते हो—प्रति दिन तुम यही कहते हो कि पाण्डव खूब आनन्द मना

रहे हैं। इससे आज हमें यह निःसन्देह मालूम होता है कि भाग्य हमारे पुत्रों के प्रतिकूल है।

सञ्जय ने कहाः—महाराज ! आपके पक्षवाले कुछ कम वीर नहीं हैं। वे भी अद्भुत वीरता और पराक्रम दिखलाते हैं और बड़े ही बल-विक्रम से युद्ध करते हैं। परन्तु पाण्डवों के सामने उनकी कुछ भी नहीं चलती। उनकी सारी वीरता व्यर्थ जाती है। इसके लिए आप भाग्य को दोष न दीजिए। आपके पुत्रों ही के दोष से यह जनसंहार-कारी घोर युद्ध हो रहा है। सब बातों का फलाफल जान कर भी इसके रोकने की आपने चेष्टा नहीं की। अब शोक करने से क्या लाभ है? अब आप जी कड़ा करके प्रति दिन का हाल चुपचाप सुन लिया कीजिए।

इसके अनन्तर, आठवें दिन का युद्ध हो रहा था कि उलूपी नाम की अर्जुन की दूसरी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ उनका पुत्र इरावान् वहाँ अकस्मात् आ पहुँचा। उलूपी नाग-कन्या थी। उसका पुत्र यह इरावान् बहुत ही सुन्दर था और बली भी बहुत था। उसका लालन-पालन और शिक्षण ननिहाल में हुआ था। जब युद्ध का समाचार उसे मिला तब उसने भी पिता की मदद के लिए बहुत सी नाग-सेना साथ लेकर कुरुक्षेत्र को प्रस्थान किया। वहाँ आकर उसने कौरवों की अनन्त सेना काट-कूट डाली। कुछ देर तक युद्ध करने के बाद सुबल-देश की सेना पर, जो शकुनि के अधिकार में थी, इरावान् ने धावा किया। इस पर गान्धार लोगों ने चारों तरफ़ से इरावान् को घेर लिया और अत्यन्त पैने अस्त्र-शस्त्रों से उसके शरीर पर घाव ही घाव कर दिये। परन्तु इरावान् ने इसकी कुछ भी परवा न की। पहले से भी अधिक निर्दयता से वह गान्धार लोगों को मार गिराने लगा। यह देख कर दुर्योधन ने शकुनि की मदद के लिए बहुत सी कुमक भेजी। उसे आई देख इरावान् का क्रोध दूना हो गया। शकुनि के सिवा उस सेना का एक भी वीर उससे जीता न बचा। सब युद्ध के मैदान में सो रहे। यदि शकुनि की रक्षा और लोग न करते तो वे भी न जीते बचते।

यह दशा देख कर दुर्योधन के क्रोध का ठिकाना न रहा। भीम ने बक नाम के एक राक्षस को मारा था। उस राक्षस के आर्ष्यशृङ्ग नामक एक नौकर था। इरावान् को मारने के लिए दुर्योधन ने इसी आर्ष्यशृङ्ग को भेजा। वह ज्यों ही इरावान् के सामने आया त्यों ही इरावान् ने अपनी तलवार से उसके धनुष को काट डाला और उसे खुद भी बहुत घायल किया। तब वह राक्षस मायायुद्ध करने लगा। वह आकाश में उड़ गया। पर इरावान् ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। आकाश में भी उसने अपने तेज़ बाणों

से आर्य्यशृङ्ग के शरीर की चलनी बना दी । तब वह राक्षस बहुत ही कुपित हुआ । उसने अत्यन्त विकराल रूप धारण करके बालक इरावान् को मोहित कर लिया । इरावान संज्ञा-शून्य हो गया । यह मौक़ा अच्छा हाथ आया देख आर्य्यशृङ्ग ने अपनी तीक्ष्ण तलवार से इरावान् के किरीट-शोभित शीश को ज़मीन पर काट गिराया ।

इस पर कौरवों को बड़ा आनन्द हुआ । उस समय अर्जुन युद्ध के मैदान में एक और जगह शत्रुओं का नाश करने में लगे हुए थे । इससे उन्हें इस घटना की कुछ भी ख़बर नहीं हुई । परन्तु भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को यह सब हाल मालूम हो गया । अपने भाई इरावान् की मृत्यु से उसे बड़ी व्यथा हुई । क्रोध से वह पागल हो उठा । अनेक राक्षसों को लेकर बड़े ही भीम-विक्रम से वह दुर्योधन पर जा टूटा । घटोत्कच के हाथ से दुर्योधन को बचाने के लिए महावीर वङ्ग-नरेश ने हाथियों की अनन्त सेना लेकर उसे घेर लिया । तब बड़ा ही घोर युद्ध होने लगा । राजा दुर्योधन ने जीने की आशा छोड़ कर राक्षसों के उस वृन्द पर सैंकड़ों, हज़ारों पैने पैने बाण बरसाने आरम्भ किये । इससे बहुत से प्रधान प्रधान राक्षस मारे गये । यह देख कर घटोत्कच के क्रोध का ठिकाना न रहा । उसने एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति दुर्योधन पर छोड़ी जो किसी प्रकार व्यर्थ नहीं जा सकती थी । वङ्ग-नरेश ने देखा, अब दुर्योधन का बचना कठिन है । इससे अपने रथ के द्वारा दुर्योधन को छिपा कर अपने ही ऊपर उन्होंने उस शक्ति को लिया । उसके लगते ही वङ्ग-राज के प्राणों ने शरीर से प्रस्थान कर दिया ।

उस समय दुर्योधन को राक्षसों से घिरा हुआ देख कर भीष्म द्रोणाचार्य्य के पास गये और बोले:—

हे आचार्य्य ! यह देखिए दुर्योधनवाले सेना-विभाग में राक्षसों की महा घोर कोलाहल-ध्वनि सुनाई दे रही है । इससे इन निशाचरों के हाथ से उनकी रक्षा किये बिना निस्तार नहीं ।

यह कह कर बहुत से महारथी लेकर भीष्म और द्रोण ने दुर्योधन की सहायता के लिए गमन किया । जाकर उन्होंने देखा कि राक्षसों के माया-युद्ध के प्रभाव से कौरव लोग रुधिर में लद-फद हो रहे हैं । उनके चेहरे उतर गये हैं । जान पड़ता है कि वे बे-तरह डर गये हैं । किसी का कुछ भी किया नहीं होता । सब एक दूसरे का मुँह देखते हुए चुपचाप खड़े हैं । प्रधान प्रधान कौरवों की यह दशा देख कर कितने ही सैनिक युद्ध का मैदान छोड़ छोड़ कर भाग रहे हैं । इस पर उन भगोड़ों का बार बार धिक्कार करके, भीष्म ज़ोर से कहने लगे:—

हे योद्धाओ ! राजा दुर्योधन को राक्षसों के हाथ में सौंप कर तुम्हें इस तरह भागना उचित नहीं । तुरन्त लौटो । ख़बरदार, जो कोई भागा ।

परन्तु उन लोगों के होश-हवास बिलकुल ही ठिकाने न थे । इससे किसी ने भीष्म की बात न सुनी; और जिसने सुनी भी उसने उसकी परवा न की। तब भीष्म उदास होकर दुर्योधन से कहने लगे:—

हे राजन् ! तुम्हें अपने आपको इस तरह विपद के मुँह में डालना उचित नहीं । राजा को चाहिए कि वह हमेशा ही अपनी रक्षा का अच्छा प्रबन्ध करके युद्ध करे । हम सब लोग यहाँ पर आपही का उद्देश पूरा करने के लिए हैं । यदि किसी पर आपको अधिक क्रोध आवे तो हम लोगों में से किसी एक को उसे दण्ड देने के लिए आपको आज्ञा देनी चाहिए ।

यह कह कर महावीर भगदत्त से भीष्म बोले:—

हे महाराज ! आपने पहले बड़े बड़े अद्भुत पराक्रम के काम किये हैं । इससे आप ही घटोत्कच का सामना करने योग्य योद्धा हैं । अब आप ही इस महाबली निशाचर का घमण्ड चूर करें ।

भगदत्त को इस तरह आज्ञा देकर भीष्म ने दुर्योधन को एक ऐसी जगह पहुँचा दिया जहाँ किसी तरह का डर न था । यह करके फिर आप युद्ध के काम में लग गये ।

इस बीच में भीमसेन के मुँह से अपने पुत्र इरावान् का आना, उसका भीषण युद्ध, उसकी वीरता और उसकी मृत्यु का समाचार सुन कर अर्जुन ने बहुत शोक किया । वे कृष्ण से बोले:—

हे मधुसूदन ! यह जो हमारे बन्धु-बान्धवों का नाश हो रहा है उससे क्या लाभ होगा ? क्यों धर्म्मराज केवल पाँच गाँव लेकर इस विवाद को मेटने की चेष्टा करते थे, सो बात इस समय अच्छी तरह हमारी समझ में आ रही है । क्षत्रियों के धर्म्म को धिक् ! हाय हाय, राज्य-सम्पदा पाने के लिए क्षत्रियों को अपने प्यारे से भी प्यारे जनों को मृत्यु के मुँह में झोंकना पड़ता है । कुछ भी हो , अब इस मामले में हम इतनी दूर निकल आये हैं कि लौट नहीं सकते । जो कुछ होना होगा सो होगा। अब व्यर्थ देर करना उचित नहीं । इससे जहाँ सबसे भीषण युद्ध होता हो वहाँ हमें शीघ्र ले चलो ।

द्रोण आदि महारथियों से रक्षित होकर जहाँ भीष्म बड़ी ही निर्दयता से पाण्डवों की सेना को काट रहे थे, अर्जुन के इच्छानुसार, कृष्ण वहीं उनको ले गये । पुत्र के मारे जाने से अर्जुन क्रोध से जले भुने थे ही; कौरवों की सेना को मार कर वे उसकी

सारी कसर निकालने लगे। बड़े बड़े कौरव लोगों को लेने के देने पड़ गये। कहाँ वे पाण्डवों पर आक्रमण कर रहे थे। कहाँ खुद ही उन्हें अपनी जान बचाना मुश्किल हो गया। अब पाण्डवों के सेनाध्यक्षों को मौक़ा मिला। वे फिर सँभले और कौरवों को बे-तरह पीड़ित करने लगे।

यह सुयोग हाथ आते ही भीमसेन ने कौरवों के व्यूह को तोड़ डाला और उसके भीतर जहाँ धृतराष्ट्र के पुत्र और कुटुम्बीय थे जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सारी मोह-ममता छोड़ कर एक एक को यमपुर भेजना आरम्भ कर दिया। उस समय वहाँ कोई भी उन्हें भीमसेन के हाथ से न बचा सका।

क्रम क्रम से भीम और अर्जुन के इस महाभयङ्कर युद्ध से युद्ध के मैदान ने बड़ी ही डरावनी मूर्त्ति धारण की। कहीं पर रुधिर लगे हुए सोने के कवच पड़े हैं; कहीं पर चित्र-विचित्र पुछल्ले लगे हुए बाण पड़े हैं; कहीं पर टूटे हुए बहुमूल्य घंटीदार रथ पड़े हैं; कहीं पर धूल में लिपटे हुए सफ़ेद पताके पड़े हैं। हाथियों और घोड़ों की लोथों और नर-वीरों के रुण्ड-मुण्डों की तो कुछ गिनती ही नहीं।

इसके बाद कुछ ही देर बाद सूर्यास्त हो गया। धीरे धीरे घोर अन्धकार छा गया। मारी जाने से बची हुई कौरवों की सेना निराश और उत्साहहीन होकर चुपचाप डेरों की तरफ़ चली। जीत से आनन्दित होकर पाण्डव लोग भी विश्राम करने गये।

शिविर में जाकर दुर्योधन विलाप करते करते कहने लगे:—

हे वीरो! युद्ध के मैदान में भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य के रहते भी क्या कारण है कि पाण्डव अब तक परास्त नहीं किये जा सके? पाण्डव लोग जीते रह कर हमारी सेना का नाश कर रहे हैं और हम निर्बल, शस्त्रशून्य और परास्त हो रहे हैं। तो क्या देवता भी पाण्डवों को सचमुच ही नहीं जीत सकते?

यह बात महावीर कर्ण के कलेजे में बाण सी लगी। उन्होंने उत्तर दिया:—

हे भरतवंशावतंस! आप शोक न कीजिए। हम आपका मनोरथ ज़रूर सफल करेंगे। भीष्म एक तो पाण्डवों पर दया करते हैं—जैसा चाहिए वैसा उनके साथ जी खोल कर लड़ते नहीं—दूसरे युद्ध के विषय में उन्हें अभिमान तो बड़ा है पर योग्यता उनमें उतनी नहीं है। इससे उन्हें चाहिए कि हथियार हाथ से डाल कर वे प्रधान सेनापति का पद हमें दे दें। यदि ऐसा हो जाय तो आप हमारे हाथ से पाण्डवों को शीघ्र ही मरा हुआ देखेंगे।

यह सुनते ही दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी:—

भाई ! तुम जाकर हमारे साथ रहनेवालों से कह दो कि वे शीघ्र ही तैयार हो जायँ; हम भीष्म से अभी मिलने जायँगे।

इसके अनन्तर मुकुट, बाज़ूबन्द, पहुँची, माला आदि आभूषण पहन कर, सोने के जलते हुए लालटैन हाथ में लिये हथियारबन्द नौकरों के साथ, राजा दुर्योधन महात्मा भीष्म के डेरे की ओर चले। वहाँ पहुँच कर वे घोड़े से उतर पड़े और भीष्म के डेरे के भीतर जाकर हाथ जोड़ कर भीष्म के सामने खड़े हो गये। फिर वे आँखों में आँसू भर कर इस तरह भीष्म से कहने लगे:—

हे शत्रुओं के नाश करनेवाले ! आपके बल पर पाण्डवों की बात तो दूर रही, इन्द्र आदि देवताओं तक को भी हम लोग जीतने की आशा रखते थे। परन्तु हम देखते हैं कि उलटा पाण्डव ही प्रति दिन हमारी सेना का नाश कर रहे हैं। हे महानुभाव ! पाण्डवों पर स्नेह के कारण, अथवा हमारे ऊपर अप्रसन्नता या द्वेष के कारण, अथवा हमारे दुर्भाग्य के कारण, यदि आप पाण्डवों को परास्त करने से मुँह मोड़ रहे हैं तो हमारे परम हितचिन्तक महाबली कर्ण को आज्ञा दीजिए, वे अवश्य ही बन्धु-बान्धवों-सहित पाण्डवों का संहार करेंगे।

इतनी बात कह कर कुरु-राज दुर्योधन चुप हो रहे। दुर्योधन का यह वाक्यरूपी बाण भीष्म के हृदय में बेढब लगा। मारे क्रोध के कुछ देर तक वे आँखें बन्द किये चुपचाप बैठे रहे। अनन्तर आँखें खोल कर शान्ततापूर्वक कहने लगे:—

हे राजन् ! अपने प्राणों की भी परवा न करके, जहाँ तक हो सकता है, हम सदा ही तुम्हारा मनोरथ पूरा करने की कोशिश करते हैं। उपाय भर हम इसमें ज़रा भी कसर नहीं करते। फिर क्या समझ कर तुम हमारा अपमान करने से बाज़ नहीं आते ? क्यों तुम बार बार हम पर झूठा इलज़ाम लगाते हो ? मोह के कारण तुम्हें भले बुरे का ज्ञान नहीं रहा। तुम इस समय ज्ञान-शून्य हो रहे हो। यदि ऐसा न होता तो हम कभी तुम्हें इस अपराध के लिए क्षमा न करते। खाण्डव-दाह के समय अर्जुन ने किस प्रकार अग्नि को तृप्त किया था, सो याद है ? गन्धर्वों के हाथ से पाण्डवों ने जो तुम्हें बचाया था, वह स्मरण है ? कर्ण आदि जिन पाँच रथियों का तुम्हें इतना भरोसा है उन्हीं का, विराट-नगर में, अर्जुन के द्वारा जो पराभव हुआ था वह अब तक भूला तो नहीं ? पाण्डवों के बल-पौरुष का नमूना, इस तरह, कई दफ़े तुम्हें देखने को मिल गया है। फिर क्यों उनके न हारने पर इस समय तुम्हें आश्चर्य हो रहा है ? कुछ भी

हो, जो प्रतिज्ञा हमने की है अन्त तक हम उस पर दृढ़ रहेंगे। जाव, अब तुम सुख से सोओ। कल हमारा महा-युद्ध होगा।

दूसरे दिन सवेरा होते ही शान्तनु-सुत भीष्म बहुत बड़ी सेना लेकर सेना-निवेश से बाहर निकले। युद्ध के मैदान में आकर उन्होंने सर्वतोभद्र नाम का व्यूह बनाया; अच्छे अच्छे योद्धाओं को अपनी रक्षा का काम सौंपा; और उस व्यूह के द्वार पर रह कर लड़ने और सेना की देख-भाल करने का भार खुद अपने ही ऊपर लिया। उधर युधिष्ठिर ने भी इस व्यूह के जवाब में एक व्यूह बनाया। तब भीष्म ने जीने की आशा छोड़ दी और जलती हुई आग की प्रचण्ड ज्वाला के सदृश पाण्डवों की सेना को जलाना आरम्भ कर दिया। महा पैने अस्त्र-शस्त्रों ने पाण्डवों की सेना को चारों ओर से छा लिया और अनन्त रथ, हाथी, तथा घोड़े बिना सवारों के हो होकर भागने लगे।

खींच कर बाण छोड़ने से भीष्म के धन्वा की डोरी का शब्द क्रम क्रम से तेज़ होने लगा। यहाँ तक कि पाण्डव-पक्ष के योद्धाओं को कुछ देर में वह वज्र के समान कठोर सुनाई देने लगा। उससे पाण्डवों के वीर बहुत डर गये। देखते ही देखते भीष्म ने पाण्डवों की सोमक-सेना प्रायः बिलकुल ही काट डाली। तब भीष्म के तीखे बाणों से बिध कर बड़े बड़े महारथी तक भागने लगे। कोई भी उन्हें लौटाने में समर्थ न हुआ। वे लोग मारे डर के इतने विह्वल और व्याकुल हो गये कि दस पाँच की तो बात ही नहीं, दो आदमी भी एकत्र एक जगह न दिखाई देने लगे। चारों तरफ़ कोलाहल और हाय हाय मात्र सुनाई पड़ने लगा। उस समय सेना की यह दशा और पितामह भीष्म पर हथियार चलाने में अर्जुन की उदासीनतता देख कर कृष्ण को बहुत रंज हुआ। उन्होंने रथ खड़ा कर दिया और बोले:—

हे अर्जुन! सभा में तुमने भीष्म के मारने की प्रतिज्ञा की थी; इस समय, क्षत्रिय होकर भी, कैसे तुम उसे झूठ कर रहे हो? क्षत्रियों के धर्म्म का स्मरण करके सन्ताप छोड़ो और युद्ध करो।

अर्जुन ने कृष्ण की तरफ़ तिरछी दृष्टि करके मुँह नीचा किये हुए कहा:—

हे कृष्ण! जिनको मारना पाप है उन्हीं को मार कर यदि नरक की यन्त्रणा भोगना था तो साधारण वन-वास के दुःख से हम लोग क्यों इतना घबराये? अपने बन्धु-बान्धवों को मार कर नरक जाने की अपेक्षा जंगल में पड़े रहना और फल-फूल खाकर जीवन-निर्वाह करना क्या अधिक अच्छा नहीं? ख़ैर आप ही के उपदेश के अनुसार

हमने युद्ध का आरम्भ किया है; आप ही के कहने के अनुसार अब भी युद्ध करेंगे। इससे जहाँ आपकी इच्छा हो हमारा रथ ले चलिए।

तब कृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म के पास ले जाकर खड़ा कर दिया। अर्जुन ने बड़ी ही बे-परवाही से भीष्म पर आक्रमण किया। उनसे अर्जुन बे-मन युद्ध करने लगे। फल यह हुआ कि अर्जुन की हलकी वारों का निवारण करते हुए भीष्म ने पाण्डवों की सेना का नाश पहले ही की तरह जारी रक्खा। कृष्ण ने देखा कि युधिष्ठिर की सेना कटती जा रही है, तिस पर भी अर्जुन युद्ध में मन नहीं लगाते—भीष्म के साथ लड़कों का सा खेल कर रहे हैं। इस पर उन्हें महा क्रोध हुआ। क्रोध से वे अन्धे हो गये और खुद युद्ध न करने की अपनी प्रतिज्ञा भूल गये। वे रथ से कूद पड़े और भीष्म पर वार करने के लिए सुदर्शन चक्र को घुमाते हुए पैदल ही दौड़े।

यह देख कर अर्जुन को बड़ी लज्जा लगी। अपने प्यारे बन्धु कृष्ण के इस तरह अकेले ही शत्रु-सेना की तरफ़ जाने से उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। इससे वे भी तुरन्त ही रथ से उतर पड़े और कृष्ण के पीछे दौड़े। कृष्ण कोई सौ क़दम भी न गये होंगे कि अर्जुन ने जाकर उनकी दोनों भुजायें पकड़ लीं। परन्तु कृष्ण उस समय मारे क्रोध के जल रहे थे। उन्होंने अर्जुन से इस तरह पकड़े जाने की कुछ भी परवा न की; उनको घसीटते हुए वैसे ही वे आगे बढ़ते गये। तब अर्जुन ने लाचार होकर उनके दोनों पैर पकड़ लिये और नम्रतापूर्वक लाल लाल आँखें किये हुए कृष्ण से बोले:—

हे महाबाहो! लौटिए, युद्ध में शामिल होने से आपकी प्रतिज्ञा टूट जायगी। इससे आपकी अपकीर्त्ति होगी और हमारी लज्जा का ठिकाना न रहेगा। जब हमारे ही ऊपर सारी जवाबदारी है तब हमीं पितामह को मारेंगे। आप अब और आगे न बढ़िए।

अर्जुन की बात का कुछ भी उत्तर दिये बिना ही, विषधर सर्प की तरह ज़ोर से साँस लेते हुए, कृष्ण फिर रथ पर सवार हो गये। परन्तु इस बीच में भीष्म ने पाण्डवों की सेना की इतनी दुर्दशा कर डाली थी कि उसमें से एक भी जवान अपनी जगह पर खड़ा नहीं रह सका। युधिष्ठिर ने जब देखा कि अर्जुन का मन युद्ध में नहीं लगता तब उन्हें बड़ा खेद हुआ। उधर सायङ्काल भी हो चुका था। इससे और कोई उपाय न देख कर लाचार उन्हें उस दिन का युद्ध समाप्त करने के लिए आज्ञा देनी पड़ी।

उस रात को युधिष्ठिर ने सब लोगों को सलाह करने के लिए बुला कर कृष्ण से कहा:—

हे वासुदेव! पितामह बड़े ही पराक्रमी हैं। उनके बल-विक्रम का कहीं ठिकाना है!



श्रीकृष्ण का प्रतिज्ञा-भङ्ग ।

देखिए वे हमारी सेना का इस तरह नाश करते हैं जैसे मतवाला हाथी सरपतों के वन का तहस-नहस कर डालता है। हममें से किसी में भी इतना सामर्थ्य नहीं जो उन्हें रोक सकें—उनका निवारण कर सके—उनके आक्रमण से सेना को बचा सके। भीष्म के प्रबल प्रताप ने आज हमें अपनी मूर्खता के कारण शोक-सागर में डुबो दिया है। उससे उबारनेवाला इस समय हमें कोई नहीं देख पड़ता। अतएव हम अब और युद्ध नहीं करना चाहते। यदि आप हमें अपनी कृपा का पात्र समझते हों तो इस विषय में आप कोई ऐसा उपदेश हमें दें जिसमें हमारा भला हो।

युधिष्ठिर की इस विह्वलता के कारण कृष्ण को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर को अनेक प्रकार से धीरज दिया। वे बोले:—

हे धर्म्मराज! आपके भाई भीम और अर्जुन सहज में जीते जाने योग्य नहीं। वे दुर्जेय हैं। नकुल और सहदेव भी बड़े तेजस्वी हैं। ऐसे भाइयों के होते आपको रंज न करना चाहिए। यदि अर्जुन युद्ध करने से बिलकुल ही इनकार कर दें तो आप हमें आज्ञा दीजिए; हम शस्त्र धारण करके भीष्म के साथ युद्ध करेंगे। आपके शत्रु हमारे शत्रु हैं और आपकी विपद हमारी विपद है। अर्जुन हमारे प्रियतम मित्र हैं; उनके लिए हम प्रसन्नतापूर्वक प्राण तक देने को तैयार हैं। अर्जुन ने सबके सामने भीष्म के मारने की प्रतिज्ञा की है। इस समय यदि वे उस प्रतिज्ञा को पूरा न करना चाहेंगे तो हम ख़ुद उसके पूरा करने का भार अपने ऊपर लेंगे।

यह सुन कर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा:—

हे मधुसूदन! जब तुम हमारी तरफ़ हो तब हमारे सभी अभिलाष पूर्ण होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु तुम्हें युद्ध में शामिल होने के लिए कहना मानों तुम्हें मिथ्या-वादी बनाना है। अपने और तुम्हारे, दोनों के, गौरव के ख़याल से हम यह बात नहीं करना चाहते। महात्मा भीष्म दुर्योधन की तरफ़ होकर युद्ध करते हैं, यह सच है; किन्तु युद्ध आरम्भ होने के पहले उन्होंने कहा था कि, मौक़ा आने पर, हमारे भले के लिए वे कोई अच्छा उपदेश देंगे। इसलिए, आइए, सब मिल कर इस समय उन्हीं की शरण चलें।

कृष्ण ने कहा:—महाराज! आपकी सलाह हमें पसन्द है। ख़ुद भीष्म ही से उनके मरने का उपाय पूछने से ज़रूर ही हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा।

यह निश्चय हो जाने पर कृष्ण ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र और कवच रख दिये, और पांडवों ने भी। इस प्रकार शस्त्रहीन होकर इन लोगों ने भीष्म के डेरों में प्रवेश

किया। वहाँ जाकर उन्होंने भीष्म की पूजा की और कहा—इस समय हम आपकी शरण आये हैं; हमारी लज्जा अब आप ही के हाथ है।

भीष्म को उनसे मिल कर बड़ा आनन्द हुआ। वे प्रीतिपूर्वक कहने लगे:—

हे धर्म्मराज! हे कृष्ण! हे भीमसेन! हे अर्जुन! हे नकुल! हे सहदेव! तुम्हारा स्वागत है। तुम भले आये। हम तुम्हें देख कर बहुत प्रसन्न हुए। कहो, तुम्हारे लिए हम क्या करें। कौन ऐसा काम है जिसे करने से तुम प्रसन्न होगे? हम वही करने को तैयार हैं।

यह सुन कर राजा युधिष्ठिर ने दीनतापूर्वक कहा:—

हे पितामह! आप हमेशा ही शरों की वर्षा करके हमारी सेना का नाश करते हैं। और हम आपका अनिष्ट कर नहीं सकते। अतएव अब आप ही बतलाइए कि अपने लाभ के लिए हमें क्या करना चाहिए।

भीष्म पितामह का एक तो यों ही पाण्डवों पर स्नेह था; फिर वे धर्म्म-परायण थे। पाण्डवों के हाथ से कभी कोई अधर्म नहीं हुआ। भीष्म को ऐसे धर्मिष्ठ और स्नेह-भाजन पाण्डवों को युद्ध में अत्यन्त पीड़ित करना पड़ता था। इस बात को सोच कर, और अपने विषय में दुर्योधन के मर्म्मभेदी कड़वे और सन्देह से भरे हुए वचन याद करके, भीष्म को जो वैराग्य पहले ही से हो रहा था, वह इस समय और भी बढ़ गया। उन्होंने अपने जीने की इच्छा बिलकुल ही छोड़ दी और प्रसन्न-मन पाण्डवों से बोले:—

हे पाण्डव! जब तक हम जीते हैं तब तक तुम्हारी जीत होने की कोई आशा नहीं। इससे हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि तुम लोग हम पर बे-खटके वार करो। तुमने जो हमारी मान-मर्यादा की रक्षा की है उसी से हम बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं। अब इस समय हमें मार डाले बिना इस युद्ध की समाप्ति न होगी। हे युधिष्ठिर! तुम्हारी सेना में राजा द्रुपद का जो शिखण्डी नामक पुत्र है वह असल में स्त्री है। पुरुषत्व उसे पीछे से प्राप्त हुआ है! इस कारण उसके ऊपर हम हथियार नहीं चला सकते। यह भेद हमने तुमसे बतला दिया। अब हमारे मारने का उचित उपाय जाकर करो। यही हमारा उपदेश है।

पितामह को परास्त करने का उपाय मालूम हो जाने पर युधिष्ठिर ने महात्मा भीष्म को बड़े भक्ति-भाव से प्रणाम किया, और कृष्ण तथा भाइयों-सहित अपने डेरों को लौट आये। परन्तु प्राण छोड़ने के लिए तैयार होनेवाले पितामह के वचन सुन कर अर्जुन को बड़ा दुख हुआ। उन्हें बड़ी लज्जा लगी। वे कृष्ण से कहने लगे:—

हे मित्र! लड़कपन में धूलि से भरे हुए हम लोग जिसे पिता कह कर पुकारते थे और जो हमसे यह कहते थे कि—हम तुम्हारे पिता नहीं, पिता के पिता हैं—उन्हीं

वृद्ध पितामह पर हम किस प्रकार कठोर आघात करेंगे और किस प्रकार हम उन्हें मारेंगे? वे चाहे हमारी सारी सेना का नाश क्यों न कर डालें, अथवा चाहे हमारी हार नहीं मृत्यु ही क्यों न हो जाय, हम किसी प्रकार ऐसा अन्याय और अधर्म न कर सकेंगे।

कृष्ण ने कहा:—हे धनञ्जय! तुमने प्रतिज्ञा की है कि तुम भीष्म को मारोगे। क्षत्रिय हो कर तुम उस प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकते। ख़ैर उसे जाने दो। तुम ख़ुद ही समझ देखो, भीष्म की इस समय सचमुच ही मृत्यु आ गई है। यदि यह बात न होती तो वे तुम्हें कभी ऐसा उपदेश न देते। पर सिवा तुम्हारे और कोई उन्हें मारने की शक्ति नहीं रखता। इससे युद्ध के मैदान में तुम अपने को मृत्यु का निमित्त-मात्र समझो। यह न सोचो कि तुम पितामह को मार रहे हो; नहीं, मारनेवाली है मृत्यु; तुम केवल उस मृत्यु के निमित्त हो। अतएव तुम्हें युद्ध में यह बात भूल जाना चाहिए कि ये हमारे कुटुम्बी हैं, ये हमारे मित्र हैं, ये हमारे गुरु-जन हैं। सम्मुख आ कर जो कोई तुम पर वार करना चाहे उसे मारने में तुम ज़रा भी सोच विचार न करो। आततायी को—अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले को—भी भला कोई छोड़ता है?

अर्जुन ने कहा:—हे कृष्ण! यदि बहुत ही ज़रूरी समझा जाय तो शिखण्डी ही पितामह का वध साधन करें—वही उन्हें मारें। शिखण्डी को सामने देख कर महात्मा भीष्म हथियार रख देंगे। हाँ, भीष्म की रक्षा करनेवाले महारथी वीर वैसा न करेंगे। वे ज़रूर शिखण्डी पर वार करेंगे। पर हम उन लोगों की दाल न गलने देंगे—उनके आक्रमण से हम शिखण्डी को बचाते रहेंगे। इस तरह, जो बात हम चाहते हैं वह सहज ही में शिखण्डी के हाथ से हो जायगी।

अर्जुन की यह सलाह कृष्ण और पाण्डवों को पसन्द आ गई। वे लोग बहुत ख़ुश हुए और सोने के लिए अपने अपने डेरों में गये।

युद्ध होते नौ दिन हो गये। दसवाँ दिन आया। उस दिन पाण्डवों ने भीष्म के मारने का सङ्कल्प किया और अपनी सेना का एक ऐसा अच्छा व्यूह बनाया जो किसी तरह तोड़ा न जा सके। उसके द्वार की रक्षा का काम उन्होंने शिखण्डी के सिपुर्द किया। अर्जुन और भीमसेन व्यूह के दाहिने बायें हुए। अभिमन्यु को उसके पिछले भाग की देख-रेख का काम मिला। जितने सेनाध्यक्ष थे सब अपनी अपनी सेना लेकर इन लोगों को चारों तरफ़ से घेर कर खड़े हुए। इस तरह बड़ी मज़बूती के साथ व्यूह की रचना करके भीष्म पर आक्रमण करने के लिए पाण्डव लोग धीरे धीरे कौरवों की तरफ़ बढ़ने लगे।

अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार करके धीरे धीरे बाण बरसा कर रास्ता रोकनेवाले कौरव-योद्धाओं को पीड़ित करने लगे। उनके तितर-बितर हो जाने पर पाण्डवों के लिए आगे बढ़ने का रास्ता साफ़ हो गया। तब दुर्योधन ने भीष्म से कहा:—

हे पितामह! हमारी सेना शत्रुओं की मार से बेहद पीड़ित हो रही है। इससे अब आप युद्ध करके उनकी रक्षा कीजिए।

भीष्म ने पाण्डवों के व्यूह के आगे शिखण्डी को देख कर दुर्योधन से कहा:—

हे राजन्! हमने यह प्रतिज्ञा की थी कि जहाँ तक हो सकेगा हम पाण्डवों की सेना का नाश करेंगे। उस प्रतिज्ञा का हमने आज तक पालन किया है। आज हम अपनी शक्ति का सबसे भारी परिचय देकर युद्ध के मैदान में प्राण छोड़ेंगे। स्वामी का अन्न जो आज तक हमने खाया है उसके ऋण से आज हम छूट जायँगे।

यह कह कर भीष्म पितामह पाण्डवों की सेना में घुस पड़े। अपनी अद्भुत शक्ति का पूरा परिचय देते हुए उन्होंने सैकड़ों वीरों को ज़मीन पर सदा के लिए सुलाना आरम्भ कर दिया। दुर्योधन भी बहुत बड़ी सेना लेकर भीष्म के साथ हुए और पद पद पर उनकी रक्षा करने लगे। तब पाण्डवों की सेना के बड़े बड़े वीरों से रक्षा किये गये शिखण्डी ने ज्यों ही आगे बढ़ने की चेष्टा की त्यों ही अश्वत्थामा सात्यकि की तरफ़, द्रोणाचार्य्य धृष्टद्युम्न की तरफ़, और जयद्रथ विराट की तरफ़ दौड़ पड़े। इस तरह दोनों दलों के रक्षक लोगों के द्वारा परस्पर एक दूसरे की राह रोकी जाने पर महा घोर युद्ध होने लगा।

युद्ध के मैदान में सञ्जय सब बातें अपनी आँखों देखते थे और सायङ्काल युद्ध का सच्चा सच्चा हाल धृतराष्ट्र से कहते थे। उस दिन सन्ध्या समय जब वे युद्ध के मैदान से लौटे तब उदास और चिन्ता में डूबे बैठे हुए राजा धृतराष्ट्र से इस प्रकार युद्ध का हाल कहा:—

महाराज! हम सञ्जय हैं। आपको हमारा प्रणाम है। कुरु पितामह भीष्म आज युद्ध में मारे गये। योद्धाओं में जो सबसे श्रेष्ठ थे, और कौरव-वीरों को जिनका इतना भरोसा था, वही भीष्म आज बाणों की सेज पर सोये हैं। जिन्होंने काशी के महायुद्ध में सैकड़ों राजाओं के साथ एक-रथ युद्ध करके सबको हरा दिया; खुद परशुराम भी जिन्हें नहीं जीत सके; वही भीष्म आज शिखण्डी के द्वारा परास्त होकर ज़मीन पर पड़े हैं। शूरता में जो इन्द्र के समान, स्थिरता में हिमालय के समान, सहन-शीलता में

पृथ्वी के समान और गम्भीरता में समुद्र के समान थे, वीरों का संहार करनेवाले वही महावीर भीष्म दस दिन तक अपनी सेना की रक्षा करके और अनेक अद्भुत अद्भुत काम करके आज सूर्य की तरह अस्त हो गये।

धृतराष्ट्र ने कहाः—हे सञ्जय! यह तुम कैसे कह रहे हो कि भीष्म आज मारे गये! देवता भी जिन्हें नहीं जीत सकते थे ऐसे महादुर्धर्ष भीष्म को पाञ्चाल देश के शिखण्डी ने युद्ध में क्यों कर मारा? संसार में जितने धनुष धरनेवाले हैं उन सबमें श्रेष्ठ भीष्म के मारे जाने की ख़बर सुनने से अधिक और क्या दुःख हो सकता है? ओहो! क्या ही आश्चर्य की बात है! जिसने दस दिन तक इन्द्र की तरह अनन्त बाण-वर्षा करके एक अरब वीरों को मार गिराया वही आज ख़ुद ही मारा जाकर, प्रचण्ड पवन के झकोरों से टूट कर गिरे हुए वृक्ष की तरह युद्ध के मैदान में पड़ा है। महारथियों के कुल में उत्पन्न हुए उस वीर पुरुष के हारने का सारा वृत्तान्त हमसे कहो; क्योंकि सब बातें अच्छी तरह सुने बिना हम नहीं रह सकते।

सञ्जय बोलेः—महाराज इस युद्ध के सम्बन्ध में जिस महात्मा के वरदान से हम आँख से न देख पड़नेवाली बातें भी देख सकते हैं, बहुत दूर होनेवाली बातें भी सुन सकते हैं, और दूसरों की मन की भी बातें जान सकते हैं, उन्हीं को नमस्कार करके हम विस्तारपूर्वक युद्ध का वर्णन करते हैं, सुनिए।

इसके अनन्तर पहली रात को पाण्डवों का भीष्म के पास जाने, उनके उपदेश के अनुसार व्यूह की रचना करने और युद्धारम्भ होने आदि का यथार्थ वर्णन करके सञ्जय कहने लगेः—

जब शिखण्डी को आगे करके पाण्डवों की सेना ने कौरवों से घिरे हुए भीष्म पर आक्रमण किया तब महा घन-घोर युद्ध होने लगा। वज्र हाथ में लिये हुए इन्द्र का सामना जैसे दैत्यों के दल ने किया था, ठीक उसी तरह महारथी भीष्म का सामना पाण्डव लोगों ने किया। तब पितामह ने महाघोर मूर्ति धारण की और इन्द्र के वज्र पर रगड़ कर तेज़ किये गये सैकड़ों-हज़ारों बाणों की वर्षा करके आकाश-पाताल एक कर दिया।

धीरे धीरे हमारी सेना का नाश करते करते भीम और अर्जुन व्यूह के द्वार पर जा पहुँचे। शिखण्डी के रथ को बीच में डाल कर वे उसकी रक्षा करते थे। इससे शिखण्डी का रथ क्रम क्रम से आगे को बढ़ता गया और कुछ देर में भीष्म के रथ के पास पहुँच गया। तब अर्जुन ने कहाः—

हे शिखण्डी ! तुम्हारे लिए यही सबसे अच्छा मौक़ा है। इस समय और किसी बात का सोच विचार न करके तुम तुरन्त ही भीष्म पर वार करो।

अर्जुन के कहने के अनुसार शिखण्डी ने भीष्म की छाती पर बाण मारना आरम्भ कर दिया। परन्तु पितामह ने शिखण्डी की तरफ़ तुच्छ दृष्टि से देखा—उन्होंने शिखण्डी की अवज्ञा-मात्र की। शिखण्डी के वार पर वार करने पर भी उन्होंने एक बार भी उन पर बाण न चलाया न और ही किसी शस्त्र से उन पर चोट की। शिखण्डी की मार की कुछ भी परवा न करके पहले ही की तरह वे और और योद्धाओं पर बाण-वर्षा करते रहे।

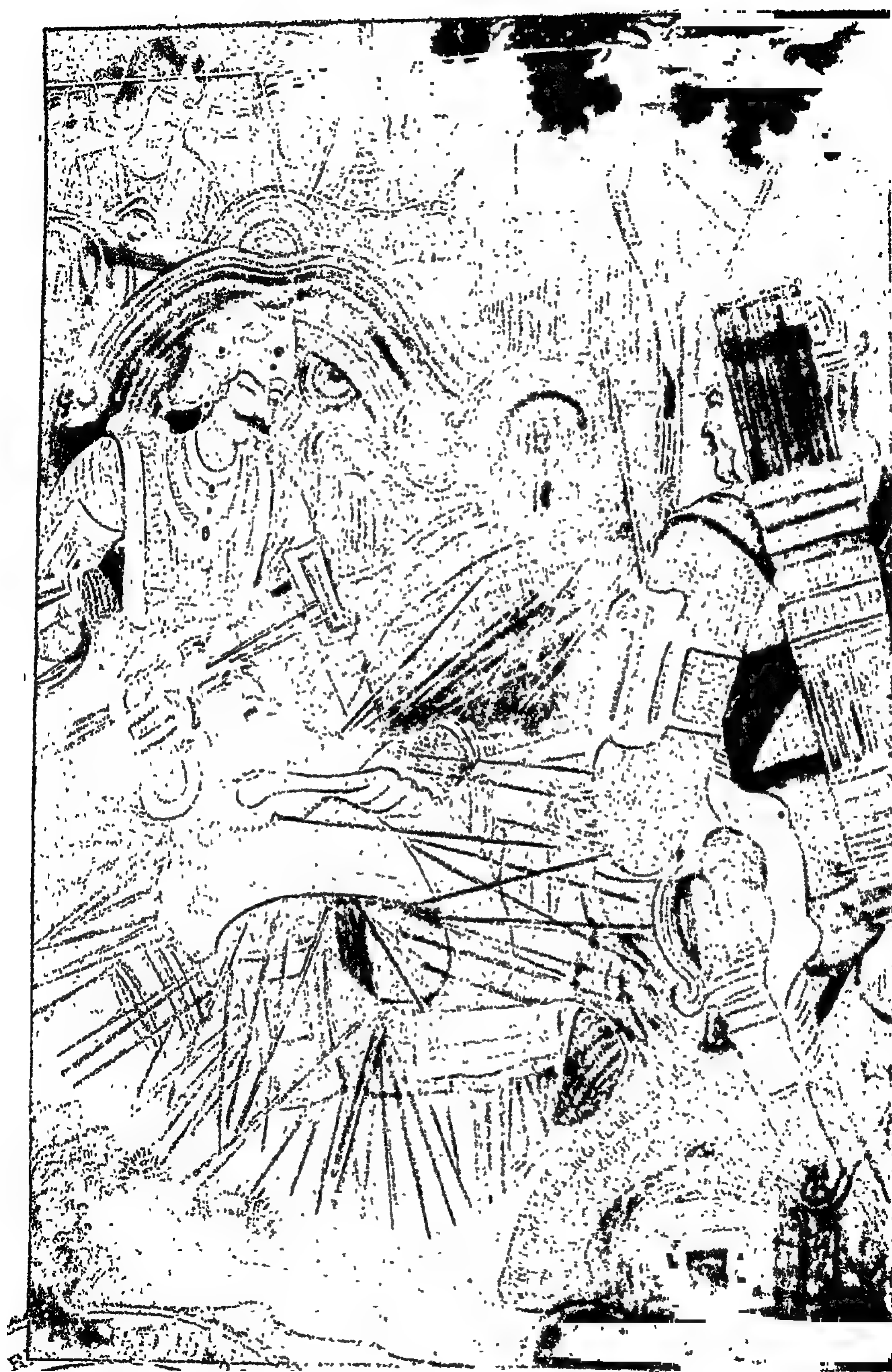
किन्तु शिखण्डी के ध्यान में यह बात नहीं आई। जिसमें शिखण्डी को यह न मालूम हो कि पितामह उन पर शस्त्र नहीं चलाते, अर्जुन बार बार शिखण्डी के उत्साह को बढ़ा कर उन्हें उत्तेजित करने लगे। अर्जुन बोले:—

हे शिखण्डी ! इस समय भीष्म को मारने की जी खोल कर चेष्टा करो। इस इतनी बड़ी सेना में तुम्हें छोड़ कर ऐसा एक भी योद्धा नहीं जो इस महान् काम को कर सके। यदि तुम्हारी चेष्टा निष्फल गई तो हमारी और तुम्हारी दोनों की बे-तरह हँसी होगी।

तब बल के मद से मतवाले से होकर शिखण्डी ने अपने बाणों से भीष्म को तोप दिया। परन्तु पितामह इससे ज़रा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने हँसते हँसते उन सब बाणों को अपने शरीर पर धारण कर लिया। शरीर में इतने बाण छिद जाने पर भी उन्होंने व्यथा के कोई चिह्न नहीं प्रकट किये। उलटा दूने उत्साह से वे पाण्डवों की सेना का नाश करते रहे। दुर्योधन ने देखा कि अर्जुन इस तरह शिखण्डी की रक्षा कर रहे हैं कि किसी भी कौरव-वीर की पहुँच शिखण्डी तक नहीं होती। इसलिए दुर्योधन ने ललकार कर कहा:—

हे योद्धाओ ! तुम लोग तुरन्त ही अर्जुन पर आक्रमण करो। भीष्म तुम्हारी रक्षा करेंगे। कोई तुम्हारा कुछ भी न कर सकेगा।

इस आज्ञा के अनुसार बड़े बड़े राजा—बड़े बड़े बल-विक्रमशाली वीर—अर्जुन पर टूटने के लिए इस तरह दौड़े जैसे दीपक पर गिर कर जलने के लिए पतंगे दौड़ते हैं। किन्तु अर्जुन के महा-वेगशाली बाणों और अस्त्र-शस्त्रों की मार से विकल होकर कुछ ने तो गिर कर वहीं प्राण छोड़ दिये और कुछ भाग निकले। भीष्म की रक्षा करनेवाले लोग शिखण्डी को मारने की जो चेष्टा करते थे उसे अर्जुन पहले ही की तरह अपने बाणों से व्यर्थ करते रहे। कोई भी शिखण्डी को कुछ भी हानि न पहुँचा सका।



भीष्म की सरशय्या।

इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा। अन्त में शिखण्डी और दूसरे योद्धाओं के बाणों ने पितामह को बे-तरह घायल कर दिया। उनके शरीर में सब तरफ़ घाव ही घाव होगये। इससे उन्हें बहुत पीड़ा होने लगी। उन्होंने जान लिया कि हमारा अन्त काल अब समीप है। तब उन्होंने अपनी रक्षा का यत्न करना छोड़ दिया। धनुर्बाण तो उन्होंने रख दिया और तलवार लेकर रथ से उतर पड़े। उस समय पितामह पर अर्जुन को दया आई। उन्होंने शिखण्डी के शिथिल बाणों द्वारा पितामह को बहुत देर तक पीड़ित करना और व्यथा पहुँचाना व्यर्थ समझा। इसलिए उन्होंने क्षुद्रक नामक एक एक करके पच्चीस बाणों से उनके शरीर को भीतर तक बे-तरह छेद दिया। तब पितामह का अङ्ग क़ाबू में न रहा; हाथ पैर आदि सब शिथिल हो गये। इस दशा को प्राप्त होने पर, बग़ल में खड़े हुए दुःशासन से उन्होंने कहाः—

हे दुःशासन! ये बाण, जो हमारे इतने मज़बूत कवच को फोड़ कर शरीर के भीतर चले जा रहे हैं, कदापि शिखण्डी के चलाये हुए नहीं हैं। ये वज्र और ब्रह्म-दण्ड की तरह वेगवाले अत्यन्त असह्य शर, जो हमारे शरीर की हड्डियों तक को तोड़ कर हमें बे-तरह विकल कर रहे हैं, शिखण्डी के धनुष से कभी नहीं छूट सकते। ये अत्यन्त क्रुद्ध फुफकारते हुए विषधर नाग के समान तीर, जो हमारे मर्म्मस्थानों के भीतर प्रवेश करके हमारा प्राण ले रहे हैं, अर्जुन के गाण्डीव धन्वा से निकले हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। गाण्डीव को छोड़ कर और कोई हमें ज़मीन पर नहीं गिरा सकता।

यह कहते हुए वृद्ध पितामह धीरे धीरे ज़मीन पर गिर गये। किन्तु उनके शरीर में इतने बाण छिदे हुए थे कि वह ज़मीन को नहीं छू गया। वीरों के योग्य शर-शय्या पर इस समय पितामह सो रहे हैं।

हे महाराज! इस महावीर के शरीर के साथ हम लोगों का सारा उत्साह नष्ट हो गया। सूर्य के समान तेजस्वी इस महात्मा के साथ हमारी सारी आशा धूल में मिल गई।

धृतराष्ट्र ने कहा:—हमारी ही मूर्खता के कारण पितृतुल्य भीष्म की आज यह दशा हुई। इससे अधिक दुःख की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है? हमारा हृदय सचमुच ही पत्थर का है, नहीं तो ऐसी शोचनीय घटना को सुन कर भी वह फट क्यों न गया? ऋषियों ने क्षत्रियों के धर्म्म को बड़ा ही दुःखदायी बनाया है। उसे उन्होंने ऐसा दारुण कर दिया है कि उसके पालन के लिए पितामह ऐसे महात्मा का वध करा कर हम लोग राज्य करने की इच्छा करते हैं, और उधर पाण्डव भी उनका संहार करके राज्य पाने की आशा रखते हैं। बीच धारा में नाव डूब जाने से पार जाने की इच्छा

रखनेवाले की जो दशा होती है, भीष्म की मृत्यु से हमारे पुत्रों की ठीक वही दशा हुई है। हाय! भीष्म के विना इस समय दुर्योधन अब किसके आसरे रहेंगे? हे सञ्जय! इस युद्ध में हमारे पुत्रों की क्या दशा होगी, यह सोच कर पहले ही से हमारा हृदय शोकाग्नि से जल रहा था। तुमने भीष्म की मृत्यु की ख़बर सुना कर उस आग में मानों घी डाल कर उसे और भी प्रज्वलित कर दिया। उस भीमकर्म्मा महायोद्धा भीष्म की मृत्यु-वार्ता सुन कर हमारे मुँह से अब बात नहीं निकलती। हमारी वाणी बन्द सी हो रही है। हममें और अधिक बोलने की शक्ति नहीं।

इधर कुरु-सेनापति भीष्म के शर-शय्या में सो जाने पर कौरव लोग बे-तरह घबरा गये। कुछ देर तक एक दूसरे का मुँह देखते हुए सब लोग खड़े रह गये। यह किसी को न सूझा कि अब क्या करना चाहिए। अन्त में दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन, द्रोणाचार्य्य की सेना की तरफ़ दौड़ते हुए गये। उन्हें इस प्रकार जल्दी जल्दी जाते देख सैकड़ों योद्धा, यह जानने के लिए कि मामला क्या है, उन्हें चारों ओर से घेर कर उनके साथ साथ चले।

द्रोण के पास पहुँच कर दुःशासन ने उनसे भीष्म के मरने की बात कही। इस महा अमङ्गल समाचार को सुनते-ही द्रोणाचार्य्य एकाएक मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़े। होश आने पर उन्होंने दूत-द्वारा अपने सेना-विभाग को तत्काल युद्ध बन्द करने के लिए आज्ञा दी। तब पाण्डवों ने भी शङ्ख-ध्वनि करके उस दिन का युद्ध समाप्त किया।

युद्ध बन्द होने पर दोनों दलों के सैनिक लोग अपने अपने कवच उतार कर और हथियार रख कर, भीष्म की शर-शय्या के पास आये और बड़े आदर से भीष्म को प्रणाम करके उन्हें चारों तरफ़ से घेर कर खड़े हो गये। तब कुरु-पितामह ने कहा:—

हे महाशयो! आपका स्वागत है। आपके दर्शनों से हमें बड़ा आनन्द हुआ।

कुछ देर ठहर कर भीष्म फिर बोले:—

हे नरेश-वृन्द! हमारे सिर के नीचे ख़ाली है; इससे हमारे लिए एक तकिया ला दीजिए।

राजों ने उसी क्षण कई कोमल कोमल बहुमूल्य तकिये ला दिये। परन्तु भीष्म ने उन्हें न लेकर अर्जुन की तरफ़ देखा और कहा:—

बेटा! तुम्हीं हमें सिर के नीचे रखने योग्य कोई चीज़ दो।

आँखों में आँसू भरे हुए अर्जुन ने पितामह के मन की बात जान ली। गाण्डीव उठा कर भीष्म के मस्तक के नीचे तीन बाण उन्होंने मारे। वे सिर और ज़मीन के बीच

ठहर गये। उन्होंने तकिये का काम दिया। जैसी शर-शय्या थी, वैसा ही शरों का तकिया बन गया। भीष्म यही चाहते थे। ऐसा तकिया पाकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए और अर्जुन को हृदय से आशीर्वाद दिया।

भीष्म बड़े ही दृढ़-स्वभाव के और धीर पुरुष थे। शस्त्रों के सैकड़ों घावों से उन्हें जो असह्य पीड़ा हो रही थी उसे ज़रा भी प्रकट न करके शान्त भाव से उन्होंने पीने के लिए पानी माँगा। सब लोग चारों ओर दौड़ पड़े। अनेक प्रकार की खाने पीने की सामग्री और ठंडा जल लाया गया। परन्तु इन चीज़ों से पितामह को सन्तोष न हुआ देख, अर्जुन ने फिर उनके मन की बात जान कर, उनके दक्षिण तरफ़ की ज़मीन को वारुणास्त्र-द्वारा पाताल तक छेद दिया। उससे अत्यन्त शीतल, विमल और स्वादिष्ट दिव्य जल की धारा निकली। उसने भीष्म की इच्छा पूर्ण कर दी। उसे देख उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अर्जुन की बहुत प्रशंसा की।

इसके अनन्तर, शरीर के भीतर धँसे हुए बाणों और दूसरे प्रकार के अस्त्रों को निकालने और मरहमपट्टी करनेवाले बहुत से कुशल वैद्य बुलाये गये। वे लोग नाना प्रकार के यन्त्र और दवायें आदि लेकर भीष्म के पास उपस्थित हुए। उन शल्यो-द्धार-कुशल वैद्यों को देख कर भीष्म बोले:—

हे दुर्योधन! तुम इन लोगों का अच्छी तरह आदर-सत्कार करके बिदा कर दो। क्षत्रियों को जिस गति की वाञ्छा होती है उसी गति को हम प्राप्त हुए हैं। हमारे लिए दवा-पानी की ज़रूरत नहीं। हमारी मृत्यु हो जाने पर इसी शर-शय्या के साथ हमारे शरीर को दग्ध कर देना। जिस समय घायल होकर हम युद्ध में गिरे हैं उस समय सूर्य्य दक्षिण दिशा में थे। हमने वर पाया है कि बिना इच्छा के हमारी मृत्यु न होगी। अतएव जब तक सूर्य्य दक्षिण दिशा को छोड़ न देंगे तब तक हम शरीर न छोड़ेंगे।

शल्य-वैद्यों के चले जाने पर भीष्म ने दुर्योधन से कहा:—

बेटा! तुम्हें चाहिए कि तुम क्रोध को छोड़ दो। जी से हमारी यही इच्छा है कि हमारे मरने ही से युद्ध समाप्त हो जाय। हम चाहते हैं कि हमारी मृत्यु के अनन्तर प्रजा को शान्ति-सुख मिले, राजा लोग प्रसन्न होकर परस्पर एक दूसरे को गले से लगावें, पिता पुत्र से मिलें, भाई भाई से मिलें, और कुटुम्बीय कुटुम्बियों से मिलें। इससे, हे राजन्! तुम ईर्ष्या-द्वेष छोड़ो। मन की मलीनता दूर कर दो। प्रसन्न हो। पाण्डवों को आधा राज्य देकर उनके साथ सन्धि कर लो।

शस्त्रों के गहरे घाव लगने के कारण भीष्म पितामह विकल हो रहे थे। इससे और अधिक वे न बोल सके। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और योगियों की तरह प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में खींच कर चुप हो रहे। पाण्डवों, कौरवों और अन्य राजा लोगों ने तीन दफ़ उनकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। फिर उनके चारों तरफ़ खाईं खोद कर और संतरी मुकर्रर करके सब लोग उदास-मन अपने अपने डेरे को लौट आये।

जिस मनुष्य की मृत्यु निकट होती है उसे दवा नहीं अच्छी लगती। ठीक यही हाल दुर्योधन का समझिए। उन्हें भीष्म का उपदेश बिलकुल ही नहीं रुचा।

इधर महावीर कर्ण ने जब भीष्म की शर-शय्या का हाल सुना तब वे पहला वैर भूल गये और तुरन्त उनके पास आकर उपस्थित हुए। आँखें बन्द किये हुए, लोहू से सराबोर, आख़िरी शय्या पर लेटे कुरु पितामह को देख कर दयावान् कर्ण का कण्ठ भर आया। वे उनके पैरों पर गिर कर कहने लगे:—

हे महात्मा! आपकी आँखों के सामने होने पर आप सदैव जिस पर अप्रसन्न होते थे वही राधेय कर्ण आपको प्रणाम करता है।

यह वचन सुन कर भीष्म ने बड़े कष्ट से आँखें खोलीं। उन्होंने देखा कि कर्ण के सिवा वहाँ और कोई नहीं है। तब उन्होंने संतरियों को दूर हटा कर, कर्ण को, पिता की तरह, दाहने हाथ से छाती से लगाया और बड़े प्रेम से इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—

हे कर्ण! यद्यपि तुमने सदा ही हमारे साथ स्पर्द्धा की है—सदा ही हमसे ईर्ष्या-द्वेष रक्खा है—तथापि इस समय यदि तुम हमारे पास न आते तो हम निश्चय ही बहुत दुखी होते। हमने यह बात बहुत विश्वासपात्र मार्ग से सुनी है कि तुम राधा के नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। हम सच कहते हैं। हमने कभी तुमसे द्वेष नहीं किया। तुम पाण्डवों का विरोध करते थे; इसलिए, हम कभी कभी कठोर वचन कह कर तुम्हें राह पर लाने का यत्न करते थे। हम चाहते थे कि तुम्हें अपने स्वरूप का—अपने तेज का ज्ञान हो जाय। हम इस बात को बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि तुम बड़े वीर और बड़े धर्मात्मा हो। पहले जो तुम पर हमारा क्रोध था वह आज बिलकुल जाता रहा। हे वीरशिरोमणि! पौरुष और प्रयत्न की अपेक्षा भाग्य ही बलवान् है। इससे और वृथा युद्ध करने से क्या लाभ? तुम यदि अपने सहोदर भाई पाण्डवों के साथ मेल कर लोगे तो यह सारा वैर-भाव मिट जायगा, अतएव, हमारी इच्छा है कि हमारे प्राणों के खर्च ही से इस युद्ध की समाप्ति हो जाय।

कर्ण बोले:—हे पितामह ! आपने जो कुछ कहा उसमें कुछ भी सन्देह नहीं। सचमुच ही हम कुन्ती के पुत्र हैं। किन्तु कुन्ती ने पैदा होते ही हमें त्याग दिया। सूत अधिरथ ने हमें पड़ा देख दया करके बड़े प्रेम से हमारा लालन-पालन किया। इसके बाद दुर्योधन की कृपा से हम बड़े हुए। हमारे ही कारण इस विषम वैर की आग जली है। इससे आप हमें अर्जुन के साथ युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। बीमार होकर मरना क्षत्रियों को कभी उचित नहीं। इसी से इन महापराक्रमी पाण्डवों के साथ युद्ध करने की हमने प्रतिज्ञा की है।

तब भीष्म ने कहा:—

हे कर्ण ! यह दारुण वैर मेट देना यदि बिलकुल ही असम्भव हो तो हम आज्ञा देते हैं कि स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से तुम अहङ्कार छोड़ कर युद्ध करो। हमने पहले ही से इस युद्ध को रोकने की बहुत कुछ चेष्टा की; पर हमारी सारी चेष्टायें व्यर्थ गईं।

भीष्म का उपदेश सुन चुकने पर कर्ण उनको प्रणाम करके दुर्योधन के पास गये।

४—युद्ध जारी

शर-शय्या पर लेटे महात्मा भीष्म के दर्शन करके आँखों से आँसू बहाते हुए कर्ण कौरवों की सेना में पहुँचे। वहाँ उन्होंने कौरवों को बहुत तरह से आशा-भरोसा दिया। बहुत दिनों के बाद कर्ण को युद्ध के मैदान में रथ पर सवार देख दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कहा:—

हे कर्ण ! भीष्म के मरने से हमारी सेना अनाथ हो गई थी। उसकी रक्षा का भार आज जो तुमने अपने ऊपर ले लिया है, इससे हम उसे फिर सनाथ समझते हैं। अब, इस समय, क्या करना चाहिए, सो निश्चय करो।

कर्ण ने कहा:—हे महाराज ! आप बड़े बुद्धिमान् और चतुर हैं। इसलिए, आप ही को निश्चय करना चाहिए कि इस समय हम लोगों का कर्त्तव्य क्या है। सब बातों की देखभाल जितनी अच्छी तरह राजा कर सकता है उतनी अच्छी तरह और लोग नहीं कर सकते। आपके अधीन जो नरेश हैं वे आपका उपदेश सुनने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

दुर्योधन बोले:—हे कर्ण ! बल, विक्रम, शास्त्र-विद्या और उम्र, सभी बातों में श्रेष्ठ पितामह ने सेनापति होकर दस दिन तक हमारी रक्षा और शत्रुओं का नाश किया।

जो काम किसी और से शायद ही हो सके ऐसे बड़े बड़े दुष्कर काम करके उन्होंने इस समय देवलोक का आसरा लिया है। इससे, इस समय एक और सेनापति नियत करना सबसे पहला काम होना चाहिए। विना पतवार के नाव और विना सारथि के रथ की तरह, विना सेनापति के एक पल भर भी सेना नहीं रह सकती। अतएव, हमारे बड़े बड़े योद्धाओं में से कौन योद्धा भीष्म के बाद सेनापति होने योग्य है, इस बात का तुम्हें विचार करना चाहिए।

कर्ण बोले:—महाराज! इस समय जो महात्मा यहाँ उपस्थित हैं वे सभी महाबली, महा-पराक्रमी और युद्ध-सम्बन्धी बातों के जाननेवाले हैं। इससे, सभी सेनापति होने की योग्यता रखते हैं। किन्तु, ये लोग परस्पर एक दूसरे के साथ स्पर्द्धा रखते हैं—ये इस बात को नहीं देख सकते कि और कोई उनसे किसी बात में बढ़ जाय। इससे, इनमें से यदि किसी एक को सेनापति का पद दिया जायगा तो बाकी के सब योद्धा जी लगा कर युद्ध न करेंगे। अतएव, किसी ऐसे पुरुष को सेनापति बनाना चाहिए जिसमें कोई विशेष गुण हो। हमारी समझ में धनुष धारण करनेवालों में सबसे श्रेष्ठ, और जितने योद्धा हैं सबके आचार्य्य, महात्मा द्रोण को सेनापति करना चाहिए। वे शुक्र और बृह-स्पति के समान तेजस्वी हैं। उन्हें सेनापति बनाने से सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक उनकी आज्ञा मानेंगे।

कर्ण की बात सुन कर सेना के बीच में खड़े हुए द्रोणाचार्य्य से राजा दुर्योधन ने कहा:—

हे आचार्य्य! आप सर्व-पूज्य ब्राह्मण हैं; जन्म भी आपने बड़े ही विमल वंश में पाया है; बुद्धि, वीरता और चतुराई में भी आप सबसे श्रेष्ठ हैं। इससे, इन्द्र जैसे देव-ताओं की रक्षा करते हैं वैसे ही आप हमारी रक्षा करें। आप सेनापति होकर, देव-ताओं के आगे स्वामि-कार्त्तिक की तरह, हमारे आगे आगे चलें।

दुर्योधन की बात समाप्त होते ही राजा लोगों ने सिंहनाद करके, दुर्योधन की प्रस-न्नता को बढ़ाते हुए, द्रोणाचार्य्य का जयजयकार किया। सैनिकों का आनन्दसूचक कोलाहल बन्द होने पर द्रोण ने सेनापति का पद स्वीकार करके कहा:—

हे दुर्योधन! शत्रुओं को जीतने की इच्छा से तुमने हममें जिन गुणों का होना बतलाया उन्हें हम युद्ध में सार्थक करने की चेष्टा करेंगे।

इसके अनन्तर द्रोणाचार्य्य को सेनापति के पद पर नियत करने का मङ्गल-कार्य्य, अर्थात् अभिषेक आदि, हो चुकने पर कौरवों ने फिर बाजे और शङ्ख बजा कर हर्ष प्रकट

किया। पुण्याह और स्वस्तिवाचन हुआ। ब्राह्मणों ने वेद-पाठ किया। वन्दीजनों ने स्तुतिगान किया। द्विजों ने जयजयकार किया। सेनापति नियत होने पर द्रोणाचार्य्य का, इस प्रकार, बहुत अच्छी तरह सत्कार किया गया। सेनापति का पद प्राप्त होने पर महारथ द्रोणाचार्य्य ने सैनिकों के सामने दुर्योधन से कहा:—

महाराज! कौरवों में श्रेष्ठ भीष्म के बाद ही हमें सेनापति बना कर आपने हमारा जो इतना आदर किया उसके बदले, कहिए, हम आपका कौन सा अभिलषित काम करें।

कर्ण और दु:शासन आदि से सलाह करके राजा दुर्योधन ने कहा:—

हे आचार्य्य! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर को जीता पकड़ कर हमारे पास ले आइए। यही हमारी प्रार्थना है।

द्रोण ने कहा:—युधिष्ठिर को धन्य है, क्योंकि आप भी उनकी मृत्यु की कामना नहीं करते। यह कम आश्चर्य्य की बात नहीं कि आप उनके शत्रु होकर भी उनका वध न करके, सिर्फ़ उन्हें पकड़ने की इच्छा रखते हैं। धर्म्मराज सचमुच ही अजात-शत्रु हैं—सचमुच ही उनका शत्रु आज तक नहीं पैदा हुआ।

तब दुर्योधन ने अपने मन की बात खोल कर इस प्रकार कही:—

हे आचार्य्य! युधिष्ठिर को मार डालना हमारे लिए अच्छा नहीं; उन्हें मारने से हमें सुभीता न होगा। उनका नाश होने से अर्जुन ज़रूर ही हम लोगों का नाश कर डालेंगे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु, युधिष्ठिर को अपने वश में कर लेने से उनके साथ फिर जुआ खेल कर हम अपना मतलब साध सकेंगे।

दुर्योधन के इस कुटिल अभिप्राय को जान कर द्रोणाचार्य्य मन ही मन उनसे बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने दुर्योधन को वरदान तो दिया; पर युधिष्ठिर को बचने के लिए जगह रख छोड़ी। उन्होंने कहा:—

हे राजन्! यदि अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा करेंगे तो उन्हें पकड़ लेना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। शस्त्र-विद्या में हम अर्जुन के गुरु ज़रूर हैं; पर उन्होंने खुद शङ्कर से शस्त्र प्राप्त किये हैं। तथापि, यदि, किसी ढँग से अर्जुन को तुम दूसरी जगह हटा सको, और युधिष्ठिर यदि भाग न जायँ, तो हम आपकी इच्छा पूर्ण करेंगे।

इसके बाद, युद्ध के ग्यारहवें दिन, सेनापति द्रोण ने सेना का व्यूह बना कर और दुर्योधन तथा दु:शासन आदि कौरवों को साथ लेकर, युद्ध के मैदान की तरफ़ प्रस्थान किया। कृप, कृतवर्म्मा और दु:शासन आदि वीर द्रोण की रक्षा करने के लिए उनकी

बाईं तरफ़ नियत किये गये। जयद्रथ, कलिङ्ग-नरेश और धृतराष्ट्र के पुत्र उनकी दाहिनी तरफ़ रहे। मद्रनरेश आदि वीरों के साथ कर्ण और दुर्योधन आगे हुए।

कर्ण सबके आगे गमन करने लगे। उनका सिंह के चिह्नवाला, सूर्य के समान चमकीला, पताका कौरवों के सैनिकों का आनन्द बढ़ाते हुए फहराने लगा। तब कर्ण को देख कर कौरव लोग भीष्म का अभाव भूल गये। युधिष्ठिर ने भी कौरवों के व्यूह के जवाब में व्यूह बना कर अर्जुन को उसके द्वार पर नियत किया। दोनों दल आमने सामने होने पर जन्म के वैरी कर्ण और अर्जुन परस्पर एक दूसरे को देखने लगे।

इसके अनन्तर, वन में आग जैसे पेड़ों को जलाती चली जाती है उसी तरह, चारों तरफ़ तेज़ी से घूमनेवाले सोने के रथ पर सवार द्रोण, युद्ध का आरम्भ करके, पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे। बार बार गरजनेवाले मेघों से, हवा के झोंकों के साथ, पत्थरों की वर्षा की तरह द्रोण के बाणों की वर्षा से पाण्डवों का दल व्याकुल हो उठा। यह देख कर बहुत से पाण्डव वीरों के साथ युधिष्ठिर दौड़ पड़े और द्रोण की बाणवर्षा को रोकने लगे।

उस समय महा घोर युद्ध होने लगा। शकुनि ने सामने आकर बड़े ही तेज़ बाणों से सहदेव पर आक्रमण किया। उधर द्रोणाचार्य द्रुपद के ऊपर टूट पड़े। सात्यकि कृतवर्म्मा के साथ और धृष्टकेतु कृपाचार्य के साथ युद्ध करने लगे। किन्तु शल्य को छोड़ कर भीमसेन का तेज कोई भी न सह सका।

अन्त को इन पिछले दोनों वीरों में गदा-युद्ध होने लगा। बड़े वेगवाले मतवाले हाथियों की तरह ये दोनों वीर गदा हाथ में ऊँची उठा कर एक दूसरे के ऊपर टूट पड़े। कुछ देर में वे चक्कर लगाते हुए मण्डलाकार घूमने लगे। फिर उन्होंने पैतड़ा बदल कर उन्हीं लोहे के डण्डे-रूपी गदाओं से परस्पर एक दूसरे पर आघात किया। थोड़ी देर तक इसी तरह भीषण युद्ध होता रहा। उन्होंने एक दूसरे पर ऐसी चोटें कीं कि दोनों एक ही साथ ज़मीन पर लोट पोट हो गये। किन्तु भीमसेन ज़मीन पर गिरने के साथ ही उठ बैठे। इतने में कौरव लोग शल्य को वहाँ से एक सुरक्षित स्थान में तुरन्त ही उठा ले गये।

तब लम्बी भुजाओंवाले भीमसेन ने गदा हाथ में लेकर कौरवों की सेना पर आक्रमण किया। पाण्डव लोग अपनी जीत से प्रसन्न होकर सिंहनाद करने और भीमसेन की सहायता करके कौरवों की सेना को कँपाने लगे। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, सेनापति, द्रोणाचार्य ने देखा कि कौरव लोग बे-तरह घबरा रहे हैं। इससे पहले तो उन्होंने उन्हें धीरज

देकर कहा कि डरने की कोई बात नहीं; घबराओ मत। फिर क्रोध से लाल होकर वे पाण्डवों की सेना में कूद पड़े और युधिष्ठिर के सामने हुए। उन्होंने देखते ही देखते युधिष्ठिर के चक्ररक्षक को मार गिराया; और जो लोग युधिष्ठिर की रक्षा के लिए थे उन्हें बेहद पीड़ित करके युधिष्ठिर के शरीर को सैकड़ों शरों से छेद दिया।

इस समय सेना में यह खबर उड़ी कि राजा पकड़े गये। इससे चारों तरफ़ कोलाहल मच गया। अर्जुन उस समय दूर युद्ध कर रहे थे। उन्होंने भी यह कोलाहल सुना। सुनते ही वे वहाँ से चल दिये। रास्ते में उन्होंने शूरवीरों के हाथ, पैर, धड़, सिर आदि बहा ले जानेवाली रुधिर की नदी बड़ी जल्दी से पार की। फिर अपने रथ की भयानक घरघराहट से सारी दिशाओं को कँपा कर और कौरवों को बड़ी निर्दयता से मार भगा कर तुरन्त ही वे युधिष्ठिर के पास आ पहुँचे। उन्होंने उस समय इतनी बाण-वर्षा की कि पृथ्वी, आकाश, दिशा, विदिशा सब कहीं घोर अन्धकार छा गया—हाथ मारा न सूझने लगा।

इस समय धूल की चादर में छिपा हुआ सूर्य्य अस्ताचलगामी हुआ—सायङ्काल हो गया। अतएव द्रोण ने लाचार होकर अर्जुन के द्वारा परास्त की गई कौरव-सेना को युद्ध बन्द करने की आज्ञा दी। पाण्डव लोग भी प्रसन्न होकर विश्राम करने के लिए अपने अपने डेरों में गये। जब रात को शिविर में सेना चली गई तब दुर्योधन को देख कर मन ही मन लज्जित हुए द्रोण ने कहा:—

महाराज! हमने पहले ही आप से कह दिया था कि युद्ध के मैदान में अर्जुन के रहते युधिष्ठिर को देवता तक नहीं पकड़ सकते। हम सबने मिल कर बहुत कुछ यत्न किया, पर अर्जुन ने हमारे सारे परिश्रम को व्यर्थ कर दिया। इससे यदि किसी हिकमत से अर्जुन हटा न दिये जायँगे तो युधिष्ठिर का पकड़ा जाना सम्भव नहीं। कोई वीर अर्जुन को युद्ध करने के लिए ललकारे और युद्ध के मैदान से दूर हटा ले जाय। ऐसा होने से उस वीर को परास्त किये बिना अर्जुन कभी न लौटेंगे। इसी अवसर में पाण्डवों की सेना के भीतर घुस कर हम युधिष्ठिर को पकड़ने का यत्न करेंगे।

यह सुन कर त्रिगर्त्तराज ने दुर्योधन से कहा:—

महाराज! अर्जुन हम लोगों को हमेशा ही परास्त करता है—कभी हम लोग उससे नहीं जीतते। इस कारण हम सब हमेशा ही क्रोध की आग से जला करते हैं। इससे हमीं उसे युद्ध के लिए ललकारेंगे और मैदान के बाहर जाकर उसके साथ युद्ध करेंगे। वहां उसे युद्ध में लगा रख कर आपका हित-साधन करेंगे। जब तक हम अर्जुन के

साथ युद्ध करें आप युधिष्ठिर को पकड़ लीजिएगा। इससे आपका हित और हमारा यश दोनों बातें होंगी। इसके अनन्तर त्रिगर्त्तराज ने अपने पाँचों भाइयों को बुलाया। उनके अधिकार में जो सेना थी वह भी इकट्ठी हुई। फिर उन्होंने आग को सामने रख कर, स्वर्गप्राप्ति की इच्छा से यह शपथ की कि जब तक शरीर में प्राण रहेंगे तब तक हम लोग अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे।

दूसरे दिन युद्ध छिड़ने पर त्रिगर्त्त लोगों ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा और ललकारते हुए दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया।

तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा:—

महाराज! युद्ध के लिए ललकारे जाने पर हम युद्ध किये बिना नहीं रह सकते। हमें युद्ध करना ही पड़ता है। हमने यही नियम कर रक्खा है। इस समय, देखिए, त्रिगर्त्त लोग युद्ध के लिए हमें पुकार रहे हैं। इससे उनका नाश करने के लिए हमें आज्ञा दीजिए।

युधिष्ठिर बोले:—हे अर्जुन! महावीर द्रोणाचार्य्य ने हमारे सम्बन्ध में जो प्रतिज्ञा की है वह तो तुमने सुनी ही है। अतएव उसका कोई उपाय किये बिना युद्ध करने न जाना।

अर्जुन ने कहा:—पाञ्चालवीर सत्यजित आज आपकी रक्षा करेंगे। यदि द्रोण उन्हें मार डालें तो तुम युद्ध के मैदान में किसी तरह न ठहरना।

इसके अनन्तर युधिष्ठिर ने बड़े प्रेम से अर्जुन को हृदय से लगाया और त्रिगर्त्त लोगों के साथ युद्ध करने के लिए जाने की आज्ञा दी। अतुल वीर अर्जुन भूखे बाघ की तरह त्रिगर्त्तों की तरफ़ दौड़े। तब युधिष्ठिर को बिना अर्जुन के देख, उन्हें पकड़ने के लिए, द्रोणाचार्य्य की सेना मन में बहुत खुश होकर आगे बढ़ी। दोनों दलों के वीर बड़े वेग से एक दूसरे से भिड़ गये।

इधर त्रिगर्त्त लोगों ने युद्ध के मैदान के बाहर एक चौरस जगह में खड़े होकर चक्र के आकार का एक व्यूह बनाया। जब उन्होंने देखा कि अर्जुन उनसे लड़ने आ रहे हैं तब वे मारे खुशी के उछलने, कूदने और शोर मचाने लगे। उन्हें इतना प्रसन्न देख अर्जुन ने कृष्ण से हँस कर कहा:—

हे वासुदेव! मरने की इच्छा रखनेवाले इन त्रिगर्त्त लोगों को तो देखो। रोने के बदले ये लोग खुश हो रहे हैं। अथवा, रण में मरने से हमें स्वर्ग मिलेगा, यह समझ कर सचमुच ही ये लोग आनन्द मना रहे हैं।

यह कह कर अर्जुन ने त्रिगर्त्तराज के सामने रथ खड़ा कराया और सोने के काम-वाला अपना देवदत्त शङ्ख बड़े ज़ोर से बजाया। तब त्रिगर्त्त लोग सब मिल कर एक ही साथ अर्जुन को ताक कर बाण मारने लगे। उनमें त्रिगर्त्तराज का एक भाई भी था। उसने यहाँ तक साहस किया कि अर्जुन के किरीट पर शस्त्र चलाया। अर्जुन ने तत्काल ही उसका सिर काट गिराया और सावन-भादों की वृष्टि की तरह बाण बरसा कर उसके सैनिकों का संहार आरम्भ किया। इस पर वे लोग बे-तरह डर गये और दुर्योधन की सेना में जा मिलने के इरादे से भागने का विचार करने लगे। यह देख कर त्रिगर्त्तराज को बड़ा क्रोध हुआ। वे पुकार कर कहने लगे:—

हे वीरो! भागना मत। कौरवों के सामने ऐसी भयानक शपथ करके इस समय कौन मुँह लेकर तुम लोग उनके सामने जावगे।

यह सुन कर सैनिक लोग उत्तेजित हो उठे—उन्हें फिर साहस आ गया। वे सब मिल कर फिर युद्ध के लिए तैयार हुए। अर्जुन उन लोगों को लौटते देख कृष्ण से कहने लगे:—

हे केशव! जान पड़ता है कि शरीर में प्राण रहते ये लोग युद्ध का मैदान न छोड़ेंगे। इसलिए हमारे रथ को और पास ले चलो। आज तुम हमारे भुज-बल और गाण्डीव-माहात्म्य को अच्छी तरह देखोगे।

तब कृष्ण ने रथ चलाने में बेहद कौशल दिखाया। कभी उन्होंने चक्र की तरह रथ को चक्कर दिया; कभी उसे आगे ले गये; कभी तत्काल ही पीछे लौटा लाये। इस तरह, कृष्ण ऐसी चतुराई से त्रिगर्त्त लोगों की सेना में रथ चलाने लगे कि अर्जुन का उत्साह दूना हो गया। उन्होंने अनन्त शर बरसा कर सामने के सारे वीरों को यमपुरी भेज दिया। बाक़ी जो बचे उनको उन्होंने बड़ी ही बेदर्दी से मारना आरम्भ किया।

अन्त में त्रिगर्त्त लोगों ने जीने की आशा छोड़ दी। सब एक जगह इकट्ठे हो गये और एक ही साथ अर्जुन पर बाणों की बौछार करने लगे। सैकड़ों, हज़ारों बाण अर्जुन पर एकबारगी गिरने लगे। उस बाण-वर्षा ने कृष्ण और अर्जुन को बिलकुल ही तोप दिया—यहाँ तक कि एक दूसरे को देखना असम्भव हो गया। यह दशा देख त्रिगर्त्त लोगों ने समझा कि कृष्ण और अर्जुन दोनों मारे गये। तब वे अपना अपना वस्त्र ऊँचा उठा कर हिलाने और कोलाहल मचाने लगे। कृष्ण के कितने ही घाव लगे; वे विकल हो उठे और अर्जुन से कहने लगे:—

हे अर्जुन ! अच्छी तरह तो हो ? तुम्हारे तो कोई घाव नहीं लगा ? तुम हमें देख नहीं पड़ते।

कृष्ण के मुँह से यह सुन कर अर्जुन ने एक ऐसा वायव्य अस्त्र छोड़ा कि त्रिगर्त्तों के चलाये हुए सारे बाण न मालूम कहाँ चले गये। बाणों के जाल के भीतर से कृष्ण और अर्जुन दोनों निकल आये। तब अर्जुन ने त्रिगर्त्तों को मारते मारते व्याकुल कर दिया; और भल्लास्त्र द्वारा किसी का सिर, किसी का हाथ, किसी का पैर काट काट कर फेंकने लगे। इस तरह बहुत सी त्रिगर्त्त-सेना मारी गई। जो थोड़ी सी बच रही थी उससे अर्जुन का प्रभाव और अधिक न सहा गया। वह भाग गई।

अर्जुन ने जब देखा कि शत्रुओं ने पूरी हार खाई तब युधिष्ठिर के पास लौट आने के लिए बड़ी तेज़ी से रथ हाँका। राह में जो लोग उनके लौटने में रुकावट पैदा करने लगे उनका अर्जुन ने इस तरह नाश किया जैसे कमलों के वन में घुस कर मतवाला हाथी कमलों का नाश करता है। उनको इस तरह ठिकाने लगा कर अर्जुन ने बड़े वेग से प्रस्थान किया। परन्तु, उनके लौटने में फिर एक विघ्न उपस्थित हुआ। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त ने अपने मेघ-सदृश हाथी के ऊपर से अर्जुन पर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया।

उस समय अर्जुन और भगदत्त में परस्पर महाघोर संग्राम हुआ। महाबाहु भगदत्त ने अर्जुन के बाणों को बात कहते व्यर्थ कर दिया; उनका एक भी बाण अपने पास तक न पहुँचने दिया। उन्होंने रथ-समेत कृष्ण और अर्जुन को मार डालने के इरादे से अपने हाथी को आगे बढ़ाया। कालान्तक यम की तरह उस हाथी को अपनी तरफ़ आते देख महात्मा कृष्ण ने बड़ी फुरती से रथ को हटा कर अपनी दाहिनी तरफ़ कर दिया।

हाथी और उसके सवार को पीछे से मार डालने का अर्जुन के लिए यह अच्छा मौक़ा था। पर अधर्म्म के ख़याल से उन्होंने वैसा न किया। उधर उस महा-गज ने पाण्डवों की सेना का संहार आरम्भ कर दिया। इस पर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। हाथी पर लोहे की जाली की जो झूल पड़ी थी उसे अर्जुन ने अपने तेज़ बाणों से काट डाला और भगदत्त के फेंके हुए सारे अस्त्र-शस्त्रों को रोक कर उन्हें बे तरह घायल किया। तब भगदत्त ने धनञ्जय के सिर पर तोमर नाम का हथियार मारा। उसके आघात से अर्जुन का किरीट टेढ़ा हो गया। अर्जुन ने किरीट को सीधा करके बड़े क्रोध में आकर भगदत्त से कहा:—

हे प्राग्ज्योतिष-नरेश ! अब सब लोगों को तुम अच्छी तरह देख लो। तुम्हारा अन्त

समय आ पहुँचा। हमारे किरीट को अपनी जगह से हटानेवाला बहुत देर तक जीता नहीं रह सकता।

यह सुन कर भगदत्त क्रोध से जल उठे और एक अंकुश अर्जुन पर फेंका। कृष्ण ने देखा कि अर्जुन उससे अपना बचाव नहीं कर सकते। इससे उन्होंने अर्जुन को तुरन्त अपनी आड़ में कर दिया और अपने ही ऊपर उस अंकुश को लिया। अर्जुन को यह बहुत बुरा लगा। वे दुखी होकर कृष्ण से कहने लगे:—

हे मधुसूदन! तुमने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की थी; उसे इस समय तुमने तोड़ दिया। यदि हम अशक्त हों, या और किसी कारण से अपनी रक्षा न कर सकते हों, तो हमारी रक्षा करना तुम्हारा काम है। परन्तु, इस समय तो हमारे हाथ में हथियार हैं और हम युद्ध कर रहे हैं; अतएव, ऐसी दशा में, तुम्हें युद्ध में दस्तंदाज़ी न करना चाहिए।

यह कह कर अर्जुन ने भगदत्त के हाथी के मस्तक को सहसा सैकड़ों शरों से छेद दिया। भगदत्त ने हाथी को चलाने की हज़ार कोशिशें कीं, पर वह वहाँ से एक इंच भर भी न हटा। उसे बहुत सख़्त चोट लगी थी। इससे कुछ ही पलों में उसका शरीर सन्न हो गया, वह ज़मीन पर गिर पड़ा, और ज़ोर से चिल्लाकर उसने प्राण छोड़ दिये। उसी समय अर्जुन ने अर्द्धचन्द्र नामक बाण से भगदत्त के हृदय को छेद दिया। भगदत्त के हाथ से धनुर्बाण छूट पड़ा और प्राण-पक्षी शरीर से उड़ गया। तब अर्जुन ने रास्ता साफ़ देख फिर युधिष्ठिर के पास लौट चलने के लिए ज़ोर से रथ चलाया।

इधर अर्जुन के दूर चले जाने पर द्रोणाचार्य्य ने एक ऐसा व्यूह बनाया जो किसी तरह तोड़ा न जा सके। फिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार युधिष्ठिर को पकड़ने के इरादे से वे पाण्डवों की सेना के सामने हुए। द्रोण के व्यूह के जवाब में युधिष्ठिर ने भी एक व्यूह बनाया। उस समय द्रोण और युधिष्ठिर के शरीर-रक्षकों में घमासान का युद्ध होने लगा। युधिष्ठिर की तरफ़ की जो सेना द्रोणाचार्य्य का आगे बढ़ना रोकती थी वह इस तरह तितर बितर होने लगी जैसे वायु के वेग से मेघों का जमाव छिन्न भिन्न हो जाता है। इसी समय महावीर द्रोण युधिष्ठिर के ठीक सामने आ पहुँचे और सैकड़ों बाण बरसा कर उन्होंने युधिष्ठिर को तोप दिया।

हाथियों के झुण्ड के सबसे बड़े हाथी पर सिंह को टूटते देख जैसे सारे हाथी बे-तरह चिल्लाने लगते हैं, युधिष्ठिर पर द्रोण का आक्रमण देख पाण्डव-सेना ने उसी तरह कोलाहल आरम्भ कर दिया। अर्जुन ने सत्यजित को युधिष्ठिर की रक्षा का काम पहले

ही से दे रक्खा था। जब उन्होंने देखा कि द्रोणाचार्य्य युधिष्ठिर को पीड़ित कर रहे हैं तब बड़े वेग से दौड़ कर द्रोण के सारथि और घोड़ों को उन्होंने अपने तीक्ष्ण शरों से छेद दिया। फिर मण्डलाकार घूम कर उन्होंने आचार्य्य की ध्वजा को काट गिराया। इससे द्रोणाचार्य्य को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने दस वाण सत्यजित के शरीर के भीतर प्रविष्ट कर दिये। परन्तु इतने वाण लगने पर भी सत्यजित ज़रा भी न घबराये। उन्होंने फिर भी द्रोण पर आघात किया।

पाण्डव लोगों ने सत्यजित के इस पराक्रम को देख कर सिंहनाद करके और जय-सूचक वस्त्र हिला कर खुशी मनाई। द्रोणाचार्य्य बार बार सत्यजित का धनुष काटने लगे; परन्तु परम पराक्रमी सत्यजित क्रम क्रम से दूसरे धनुष ले लेकर बिना ज़रा भी भय या चञ्चलता प्रकट किये, पहले से भी अधिक घोर संग्राम करने लगे। अन्त में मौक़ा पाते ही आचार्य्य ने अर्द्धचन्द्र वाण से सत्यजित का सिर धड़ से अलग कर दिया। तब अर्जुन के उपदेश के अनुसार द्रोणाचार्य्य के सामने रहना उचित न समझ युधिष्ठिर ने युद्ध के मैदान से प्रस्थान किया।

युधिष्ठिर को पकड़ न सकने के कारण द्रोणाचार्य्य के क्रोध की सीमा न रही। रण-भूमि में घूम घूम कर अनन्त पाञ्चाल लोगों को उन्होंने मार गिराया। इसी समय भगदत्त को मार कर, और रास्ते में कौरवों की अनगिनत सेना नष्ट करके, अर्जुन वहाँ पहुँच गये। उन्हें लौट आया देख पाण्डवों की सेना का उत्साह बढ़ गया। उसने बहुत ही घोर युद्ध आरम्भ कर दिया। इससे कौरव-सेना एक क्षण भर भी उसके सामने न ठहर सकी। द्रोणाचार्य्य पर चारों तरफ़ से धावा होने लगा। इससे उनका मनोरथ सफल न हो सका। उन्होंने वहाँ से हट जाना ही उचित समझा। तब दुर्योधन ने अपने पक्षवालों की बड़ी ही दुर्दशा और हँसी होते देख आचार्य्य के कहने से उस दिन का युद्ध समाप्त होने की आज्ञा दी।

दूसरे दिन, सवेरे, युद्ध का आरम्भ होने के पहले ही, सब लोगों के सामने दुर्योधन ने द्रोण से उदास होकर कहा:—

हे आचार्य्य! प्रसन्न मन से हमें वरदान देकर अब आप अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ रहे हैं। भक्त-जनों को इस तरह निराश करना क्या आप ऐसे महात्माओं को उचित है?

तब द्रोण बहुत लज्जित होकर कहने लगे:—

हम तुम्हारे मन के अनुकूल काम करने का निरन्तर यत्न करते हैं; किन्तु, कृष्ण की चालाकी और अर्जुन के पराक्रम के कारण हमारी एक भी नहीं चलती। जो कुछ हम

करते हैं सभी व्यर्थ जाता है। ख़ैर, आज फिर अर्जुन को युद्ध के मैदान से दूर हटा ले जाव। हम एक ऐसी व्यूह रचना करेंगे—हम एक ऐसी मोरचाबन्दी करेंगे—कि उसके भीतर जो पाण्डव-वीर पड़ जायगा वह जीता न बचेगा।

आचार्य्य के मुँह से यह बात सुन कर मारे जाने से बचे हुए त्रिगर्त्त लोगों ने फिर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। फिर वे लड़ते लड़ते अर्जुन को दूर ले गये और वहाँ उन्हें घोर युद्ध में लगा रक्खा। इधर द्रोण ने अपने कथन के अनुसार एक बड़ा ही विकट व्यूह रचा और बे-धड़क पाण्डवों की तरफ़ बढ़े।

आचार्य्य को इस तरह बड़े ही भीम विक्रम और साहस से आते देख युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। वे उनसे बचने का उपाय सोचने लगे। द्रोण के बनाये हुए उस चक्रव्यूह (चक्राव्यू) नामक मोरचे के भीतर घुस कर उसे तोड़ने के योग्य वीर वे ढूँढ़ने लगे। पिता ही के समान तेजस्वी अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को छोड़ कर और किसी को उन्होंने इस योग्य न समझा। इसलिए यह काम अभिमन्यु को सौंप कर युधिष्ठिर बोले:—

बेटा! इस व्यूह को कैसे तोड़ना चाहिए, यह कुछ भी हमारी समझ में नहीं आता। ऐसा न हो कि लौटने पर अर्जुन हम सबकी निन्दा करें। इससे तुम्हीं को इस समय जो उचित जान पड़े करो।

अभिमन्यु ने कहा:—हे आर्य्य! हम इस व्यूह के भीतर घुस जाने की युक्ति तो ज़रूर जानते हैं; परन्तु इससे निकल आने की युक्ति नहीं जानते। इससे जलती हुई आग में पतंगे की तरह इस विपदाजनक व्यूह के भीतर घुसना क्या आप उचित समझते हैं?

तब युधिष्ठिर ने कहा:—तुम यदि एक बार व्यूह को तोड़ कर भीतर घुस जावगे तो तुम्हारे पीछे हम लोग भी सब घुस कर तुम्हारी रक्षा और कौरवों का नाश करेंगे। इससे शत्रुओं के बीच में घुसने को हमारे लिए तुम जगह भर कर दो।

चचा युधिष्ठिर की इस प्रकार आज्ञा पाकर महावीर अभिमन्यु ने सारथि से कहा:—

हे सुमित्र! तुम द्रोणाचार्य्य की सेना के सामने शीघ्र ही हमारा रथ ले चलो।

अभिमन्यु के बार बार इस तरह आज्ञा देने पर सारथि बोला:—

हे राजकुमार! आप बहुत बड़ा काम अपने ऊपर ले रहे हैं। ऐसा बुरा साहस करना आपको उचित है या नहीं, इसका अच्छी तरह विचार करके तब युद्ध के लिए प्रस्थान करना उचित होगा।

तब अर्जुन-सुत अभिमन्यु ने हँस कर कहा:—

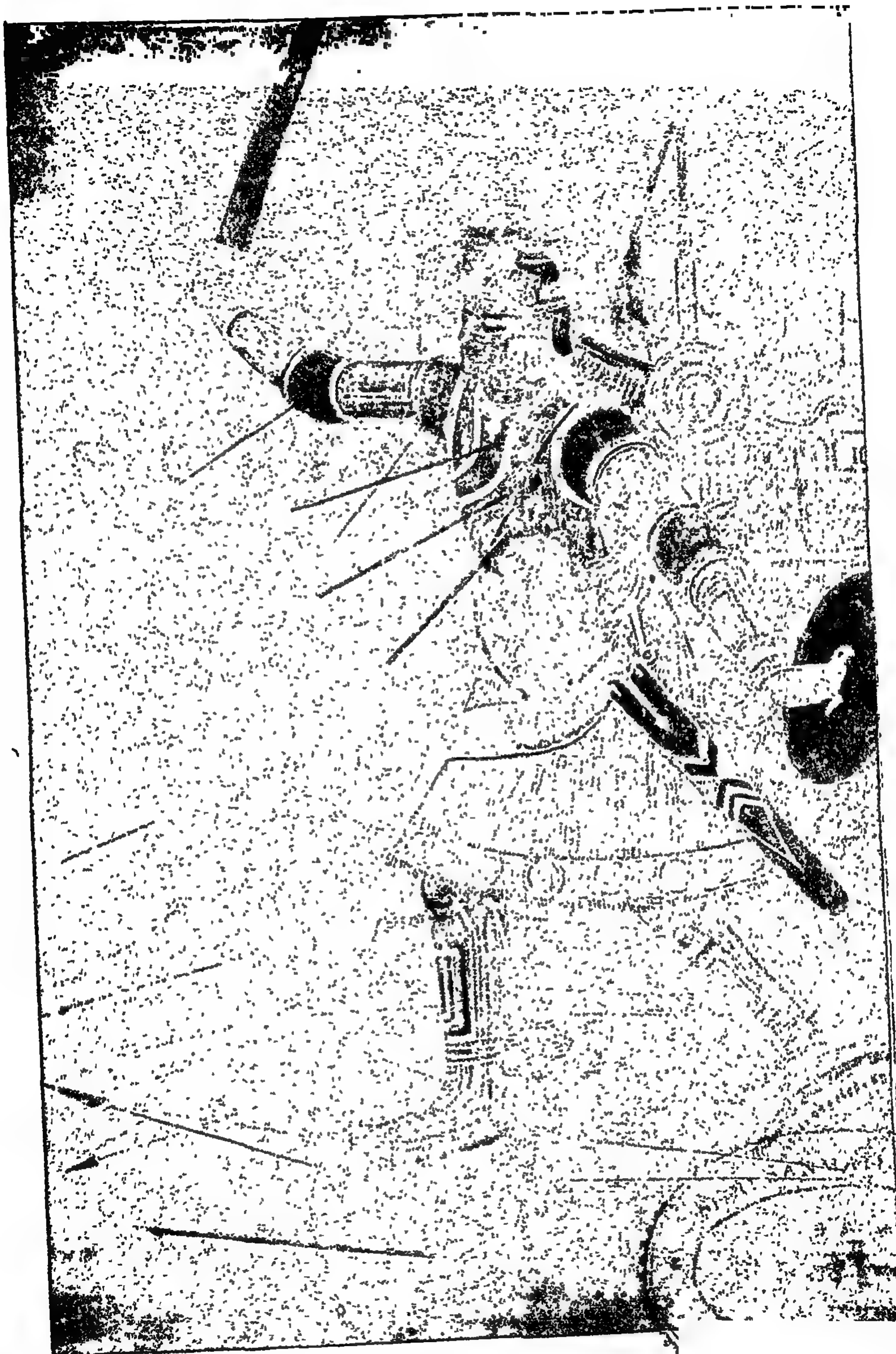
क्षत्रियों से घिरे हुए द्रोण की बात तो दूर रही, ऐरावत हाथी पर सवार देवराज इन्द्र से भी युद्ध में हम पीछे नहीं हट सकते। इससे ज़रा भी विलम्ब न करके तुम हमारे रथ को द्रोणाचार्य्य की तरफ़ चलाओ।

सारथि ने देखा कि अभिमन्यु ने मेरी बात का कुछ भी आदर न किया। यह बात उसे बुरी लगी। पर वह करता क्या? बेचारा लाचार था। उसे रथ चलाना ही पड़ा। सोने के साज से शोभित पीले घोड़ों की रास उसने हिलाई और वे तुरन्त ही द्रोणाचार्य्य की सेना के सामने चले। तब पाण्डव-वीर भी अभिमन्यु के पीछे हो लिये। गंगा का एक सोता जैसे समुद्र में प्रवेश करे, वैसे ही द्रोण की सेना से अभिमन्यु जा मिले। घोर युद्ध ठन गया। द्रोणाचार्य्य के देखते देखते उनके व्यूह को तोड़ कर अभिमन्यु उसके भीतर घुस गये।

किन्तु, जो पाण्डव-वीर अभिमन्यु के पीछे व्यूह के भीतर घुसने की चेष्टा करते थे उन्हें जयद्रथ ने व्यूह के द्वार ही पर रोक दिया। मिल कर सबके बहुत प्रयत्न करने पर भी पाण्डवों की एक न चली। दैव कौरवों की तरफ़ था। महाबली सिन्धुराज को हटा कर एक भी पाण्डव-वीर व्यूह के भीतर न धँस सका। कौरवों ने टूटे हुए व्यूह को फिर सुधार लिया और अभिमन्यु को भीतर पाकर चारों तरफ़ से उन्हें घेर लिया।

इसके अनन्तर दुर्योधन ही ने अभिमन्यु पर पहले आघात किया। किन्तु प्रबल वीर अभिमन्यु का प्रचण्ड प्रताप दुर्योधन से न सहा गया। अभिमन्यु ने शीघ्र ही उनको नाकों दम कर दिया। तब द्रोणाचार्य्य, अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, शल्य और कृत-वर्म्मा ने मिल कर दुर्योधन को अभिमन्यु के पंजे से छुड़ाया। शिकार का इस तरह जाल से निकल जाना अभिमन्यु से न सहा गया। मारे क्रोध के वे अधीर हो उठे और अपने तेज़ बाणों से सबके सारथियों और घोड़ों को व्याकुल करके उन महारथियों को उन्होंने वहाँ से शीघ्र ही मार भगाया। उन्हें इस तरह युद्ध के मैदान से पराङ्मुख देख अभिमन्यु ने बड़े ज़ोर से सिंहनाद किया।

कुछ देर बाद अभिमन्यु को कुछ दूर पर शल्य दिखाई दिये। अभिमन्यु ने उन्हें अपने विषम बाणों से इतना घायल किया कि शल्य को मूर्च्छा आ गई। यह देख कर शल्य की सेना इस तरह भागी जैसे सिंह से पीछा किया गया हिरन भागता है। शल्य का छोटा भाई उस समय वहीं था। उसने बड़े भाई को मूर्छित देख अभिमन्यु पर आक्र-मण किया। अभिमन्यु का युद्ध-कौशल यहाँ तक बढ़ा चढ़ा था कि उन्होंने शल्य के



व्यूह के भीतर अभिमन्यु ।

छोटे भाई, उनके सारथि, और उनके दोनों चक्र-रक्षकों को एक ही दफ़े में मार गिराया।

तब सैकड़ों योद्धा—कोई घोड़े पर सवार होकर, कोई रथ पर सवार होकर, कोई हाथी पर सवार होकर—एक ही साथ अभिमन्यु पर दौड़े। परन्तु, अभिमन्यु इससे ज़रा भी न डरे। उनमें से जो उनके सामने आया उसे उन्होंने हँसते हँसते भूमि पर सदा के लिए सुला दिया।

इसके अनन्तर अर्जुननन्दन अभिमन्यु ने युद्ध के मैदान में चारों ओर चक्कर लगा कर द्रोण, कर्ण, शल्य आदि सेनाध्यक्षों को अपने पैने बाणों से वेधना शुरू किया। उस समय अस्त्र-शस्त्र चलाने में अभिमन्यु ने बड़ी बेढब फुरती दिखाई। मालूम होने लगा कि एक ही समय में वे चारों तरफ़ युद्ध कर रहे हैं। तब क्रुद्ध होकर दुर्योधन कहने लगे:—

हे भूपाल-वृन्द! देखिए, अपने शिष्य अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को आचार्य्य स्नेह के कारण नहीं मारना चाहते। यदि वे इसे मारने पर उतारू होते तो यह बालक कभी न जीता बचता। अर्जुन के पुत्र की द्रोणाचार्य्य रक्षा करते हैं। इसी से यह अपने को बड़ा वीर समझता है। इस मूढ़ का शीघ्र ही संहार कीजिए। वीरता-विषयक इसका झूठा अभिमान दूर कर देना चाहिए।

इस पर घमण्ड में चूर होकर दुःशासन ने कहा:—

जिस तरह राहु सूर्य्य का ग्रास करता है उसी तरह सबके सामने हम अभिमन्यु का संहार करेंगे।

यह कह कर दुःशासन ने अभिमन्यु को ज़ोर से ललकारा और बड़े क्रोध में आकर उन पर बाण बरसाना आरम्भ किया। अभिमन्यु और दुःशासन दोनों ही रथ-युद्ध में निपुण थे। अतएव दोनों में बड़ा ही भीषण युद्ध होने लगा। कभी दाहिनी कभी बाईं तरफ़ होकर, इधर से उधर मण्डलाकार चक्कर लगाते हुए, अभिमन्यु और दुःशासन परस्पर एक दूसरे पर आघात करने लगे। महावीर अभिमन्यु ने दुःशासन से कहा:—

आज हमने बड़े भाग्य से युद्ध में तुम्हें सामने पाया है। हमारे चचा लोगों को जो तुमने कटु वाक्य कहे हैं उन सबका बदला आज हम लिये लेते हैं।

यह कह कर दुःशासन का नाश करने के लिए अर्जुननन्दन अभिमन्यु ने आग के सदृश तेजवाले बाण मारे। वे बाण दुःशासन के शरीर के भीतर घुस गये। दुःशासन रथ पर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उनकी यह दशा देख सारथि उन्हें मैदान से भगा लाया।

तब धृतराष्ट्र के पुत्रों के परम हितकारी महा-धनुर्धर कर्ण ने बड़ा क्रोध करके अभिमन्यु को एक तीक्ष्ण बाण मारा। परन्तु, अभिमन्यु इससे ज़रा भी न पीड़ित हुए और ज़रा भी अपनी जगह से न हटे। उन्होंने न मालूम कितने बाण कर्ण के शरीर में छेद दिये, और जो रथी या महारथी उनके सामने आया उसे उन्होंने बे-तरह घायल किया। बड़ी फुर्ती से वे कौरवों की सेना का संहार करने लगे। कौरवों की तरफ़वालों में से कोई भी अभिमन्यु की चपेट से अपनी सेना को न बचा सका। अभिमन्यु के छोड़े हुए महा विषम बाण रथों को तोड़ने और घोड़ों तथा हाथियों को काटने लगे। हथियार लिये हुए, बाज़ूबन्द बाँधे हुए, अँगूठियां आदि सोने के आभूषण पहने हुए वीरों के कटे हुए हाथ और माला तथा कुण्डल धारण किये हुए उनके मस्तक ज़मीन पर धड़ाधड़ गिरने लगे।

उधर धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, आदि महारथियों से रक्षा किये जाने पर भी जितने बार पाण्डवों ने अभिमन्यु को बचाने के इरादे से उस चक्रव्यूह के भीतर घुसने की चेष्टा की उतने ही बार अकेले सिन्धुराज जयद्रथ ने, अभिमन्यु के तोड़े हुए व्यूह के द्वार को बन्द करके, उन्हें भीतर जाने से रोका। यह देख कर सैनिकों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इतने में टूटे हुए व्यूह को फिर मज़बूत बना लेने के लिए कौरवों को काफ़ी वक्त मिल गया। उन्होंने उस व्यूह को फिर जैसे का तैसा बना दिया। इससे उसके भीतर घुसने की पाण्डवों की सारी आशा धूल में मिल गई। अतएव, अन्त तक, बिना किसी और की सहायता के, अकेले अर्जुनसुत अभिमन्यु ने, समुद्र के बीच में तैरते हुए मगर की तरह, उस उतनी बड़ी कौरव-सेना को पीडित किया।

धीरे धीरे अभिमन्यु की मार ने बड़ा ही भयङ्कर रूप धारण किया। कर्ण आदि वीरों का बार बार निवारण करके—उन्हें पास तक न फटकने देकर—जब अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण और मद्रराज के पुत्र रुक्मारथ आदि बहुत से राजकुमारों और कोशल-देश के राजा महारथ बृहद्बल को मार गिराया तब कौरव लोग बे-तरह घबरा कर द्रोणाचार्य्य की शरण गये।

कर्ण बोले:—हे ब्रह्मन्! यदि आप बहुत जल्द कोई उपाय न करेंगे तो अर्जुन का पुत्र हममें से किसी को न छोड़ेगा—एक एक का संहार कर डालेगा।

आचार्य्य अपने प्यारे शिष्य अर्जुन के पुत्र का युद्ध-पराक्रम प्रसन्नतापूर्वक देखते रहे थे। उन्होंने कहा:—

हे वीरो! अभिमन्यु को इस समय तक क्या तुमने कभी एक दफ़े भी सुस्ताते

देखा है ? अर्जुन के पुत्र के हाथ की सफ़ाई और बाण चलाने की फुरती तो देखो। कौरवों के महारथी वीर क्रोध से पागल होकर भी यद्यपि अभिमन्यु पर चोट करने के लिए बार बार कोशिश करते हैं, तथापि, अब तक, अभिमन्यु को ज़रा भी नहीं घायल कर सके। अपने शिष्यपुत्र की इस रण-चातुरी से हम बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। उसके शर-समूह से पीड़ित होकर भी हमें सन्तोष ही होता है।

कर्ण ने कहाः—हे आचार्य्य ! युद्ध का मैदान छोड़ कर भाग निकलना बड़ी लज्जा की बात है। यही सोच कर हम अब तक यहाँ हैं; नहीं तो न मालूम कब हमने पीठ फेर दी होती। इस महा-तेजस्वी अर्जुन-कुमार के दारुण बाणों की पीड़ा से हमारा शरीर जल सा रहा है।

तब महावीर द्रोणाचार्य्य हँस कर बोलेः—

हे कर्ण ! अभिमन्यु जो यह कवच पहने हुए है वह अभेद्य है—न वह टूट सकता है, न फूट सकता है, न कट सकता है। उसके बाँधने की युक्ति हमने अभिमन्यु के पिता को बतलाई थी। इससे तुम लोग जो अभिमन्यु पर बाण बरसाते हो वे सब व्यर्थ हैं। यदि उसे जीतने की इच्छा हो तो रथ पर सवार होकर युद्ध करना बन्द करो। तुम सब लोग मिल कर पहले अभिमन्यु के हाथ से हथियार छीन लो; फिर उसे रथ से उतार दो। तब उसके साथ युद्ध करो। अभिमन्यु के हाथ में हथियार रहते उसे परास्त करना तुम लोगों की शक्ति के बाहर की बात है।

द्रोण की बात सुनते ही सब लोग इकट्ठे होकर एक ही साथ अभिमन्यु पर टूटे। किसी ने अभिमन्यु का धनुष काट डाला, किसी ने उनके सारथि का वध किया, किसी ने उनके घोड़ों को मार गिराया, किसी ने उनके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रों को छेद कर व्यर्थ कर दिया। यह हो चुकने पर द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्म्मा, दया और धर्म्म दोनों छोड़ कर उस बालक पर एक ही साथ हथियार चलाने लगे।

तब अभिमन्यु ढाल-तलवार लेकर बे-घोड़ों के रथ से कूद पड़े। उन्हें अपनी तरफ़ तलवार लिये हुए दौड़ते देख द्रोण ने उनकी तलवार और कर्ण ने ढाल काट डाली। एक एक करके जब अभिमन्यु के सारे अस्त्र कट गये तब बचा हुआ अकेला एक चक्र लेकर बड़ी निर्भयता के साथ वे द्रोण पर दौड़े। उस समय वीरों से घिरे हुए, रुधिर से लदफद, थोड़ी उम्र के कुमार अभिमन्यु के रूप ने बहुत ही अपूर्व शोभा धारण की। कौरवों के पक्षवाले राजा लोग उस दिव्य तेजस्वी बालक को देख कर घबरा गये और सबने एक ही साथ अस्त्रों की वर्षा करके अभिमन्यु के चक्र के टुकड़े टुकड़े कर डाले।

उस समय दुःशासन के पुत्र ने हाथ में गदा लेकर अभिमन्यु पर आक्रमण किया और उनके माथे पर गदा मारी। सैकड़ों-हज़ारों पेड़ों को जड़ से उखाड़ने के बाद बन्द होनेवाले प्रचण्ड पवन की तरह, हाथी-घोड़े-रथसहित अनगिनत वीरों को यमालय भेज कर, पौर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखवाले अभिमन्यु ने उस गदा की एका-एक चोट से भूमि पर गिर कर प्राण छोड़ दिये।

उस समय कौरवों की सेना की आनन्द-सूचक ध्वनि आकाश फाड़ने लगी। उसे सुन कर पाण्डवों ने अभिमन्यु की महाशोचनीय मृत्यु का समाचार जाना। इस पर, जब सैनिक लोगों ने युधिष्ठिर के सामने ही भागने की ठानी तब युधिष्ठिर ने कहा:—

हे वीरो! शत्रुओं की असंख्य सेना में अकेले पड़ जाने पर भी महाबाहु अभिमन्यु, युद्ध से मुँह न मोड़ कर, क्षत्रियोचित परम गति को प्राप्त हुए हैं। तुम्हें भी उन्हीं का अनुकरण करना चाहिए—तुम्हें भी उन्हीं का ऐसा व्यवहार करना चाहिए। भागना मत।

यह सुन कर पाण्डवों के पक्षवाले योद्धाओं को बड़ी लज्जा लगी। उन्होंने बेढब शूरवीरता दिखाई, वे इतने साहस से लड़े कि कौरवों के पैर लड़ाई के मैदान से उखड़ गये। उस समय दिन और रात की सन्धि उपस्थित हो गई—शाम होने को आ गई। भगवान् सूर्य्य सारे अस्त्र-शस्त्रों की प्रभा हरण करके, लाल कमल के समान शरीर का रंग बनाये हुए, अस्ताचल पर्वत की चोटी पर चढ़ गये। इससे दोनों पक्षों की सेना, जो दिन भर युद्ध करते करते थक गई थी, विश्राम करने गई। देखते देखते युद्ध का मैदान ख़ाली हो गया।

अभिमन्यु की मृत्यु से पाण्डव वीरों को बड़ा दुःख हुआ। अपने अपने रथ, कवच और धनुष छोड़ कर वे लोग युधिष्ठिर के चारों तरफ़ बैठ गये। सबके मुँह पर बे-तरह उदासीनता छाई हुई थी। धर्म्मराज उन्हें देख कर और भी विकल हो उठे और विलाप करने लगे:—

हाय! हमारी ही आज्ञा से महावीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह के भीतर घुस कर प्राण त्याग किया। उस बालक को उतना बड़ा काम सौंप कर हम लोग उसकी रक्षा न कर सके। पुत्र को प्राणों से भी अधिक प्यार करनेवाली सुभद्रा और भाई अर्जुन को आज हम कैसे मुँह दिखावेंगे! आज न हमें जीत अच्छी लगती है और न राज्य की प्राप्ति ही अच्छी लगती है। स्वर्ग भी आज हमें सुखकर नहीं मालूम होता।

जिस समय युधिष्ठिर इस तरह धीरज छोड़ कर विलाप कर रहे थे उसी समय

कृष्ण द्वैपायन पाण्डवों के शिविर में आकर उपस्थित हुए। उनकी यथोचित पूजा करके युधिष्ठिर ने उन्हें आदर-पूर्वक बिठाया। फिर शोक से व्याकुल होकर उन्होंने युद्ध का सारा हाल कह सुनाया। वे बोले:—

भगवन्! हमने उस सुकुमार बालक को बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी का काम दिया। हमें ऐसा न करना था। यह हमसे बड़ी भूल हुई। फिर, अकेले जयद्रथ ने हमें व्यूह के भीतर न धँसने दिया। इससे हम अभिमन्यु की सहायता भी कुछ न कर सके। यही सोच सोच कर हम अथाह शोक-सागर में डूब रहे हैं। बहुत सोच, विचार और चिन्ता करने पर भी हमारा जी नहीं मानता। हज़ार समझाने पर भी हमारा चित्त शान्त नहीं होता।

व्यासदेव ने देखा कि युधिष्ठिर बहुत ही शोकाकुल हो रहे हैं। इससे उन पर उन्हें दया आई। काम्यक वन में द्रौपदी-हरण करने के कारण भीम ने जो जयद्रथ का अपमान किया था उसका स्मरण दिला कर व्यासदेव ने कहा कि, उसके बाद जयद्रथ की बहुत बड़ी तपस्या से प्रसन्न होकर महादेव ने उन्हें यह वर दिया है कि अर्जुन को छोड़ कर और पाण्डवों को एक न एक दिन तुम युद्ध में ज़रूर परास्त करोगे। इससे युधिष्ठिर को विदित हो गया कि अभिमन्यु के मरने की जो यह दुर्घटना हुई है सो उसी वरदान का प्रभाव है। इसमें उन्होंने दैव-गति ही को प्रबल समझा। अतएव उन्हें कुछ धीरज आया और कलेजे को थाम कर किसी तरह अर्जुन के आने की राह देखने लगे। मनुष्यों का क्षय करनेवाले उस भयानक दिन के अन्त में, अपने दिव्य अस्त्रों से त्रिगर्त्त लोगों का समूल संहार करके, अर्जुन अपने विजयी रथ पर सवार हुए और कृष्ण से युद्ध की बातें करते हुए अपनी सेना के पड़ाव में आ पहुँचे। वहाँ बड़ी उदासी देख कर उनके मन में शङ्का हुई। वे कृष्ण से कहने लगे:—

हे जनार्दन! न आज दुन्दुभी बज रही है, न आज शंख-ध्वनि हो रही है, न आज मङ्गल-सूचक तुरही ही सुनाई पड़ती है। यह बात क्या है? योद्धा लोग भी हमें देख कर इधर उधर भाग रहे हैं। हे माधव! हम लोगों पर कोई बहुत बड़ी विपदा तो नहीं आई?

इस तरह बातचीत करते करते कृष्ण और अर्जुन ने डेरों में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा कि पाण्डव लोग मन मलीन, मुँह लटकाये, आधे जी के बैठे हुए हैं। यह दशा देखते ही अर्जुन के पेट में खलबली पड़ गई। वहाँ उन्होंने अपने सब भाइयों और पुत्रों को तो देखा; परन्तु अभिमन्यु को न देखा। तब व्याकुल होकर उन्होंने कहा:—

हे वीरो! तुम सबके मुँह उतरे हुए हैं और तुम लोग सदा की तरह प्रसन्न-मन:

हमसे मिलते भी नहीं। बेटा अभिमन्यु कहाँ है? वह तेजस्वी बालक प्रति दिन उठ कर और कुछ दूर चल कर हमसे मिलता था। आज हम शत्रुओं का संहार करके आ रहे हैं; किन्तु वह हँसता हुआ आता हमें नहीं देख पड़ता। हमने सुना है कि आज आचार्य्य ने चक्रव्यूह की रचना की थी। कहीं तुमने अभिमन्यु को उसके भीतर तो नहीं घुसने दिया? उस व्यूह के भीतर प्रवेश करना भर वह जानता है; हमने उसे उससे निकल आने की युक्ति नहीं बतलाई।

जब किसी ने अर्जुन की बात का उत्तर न दिया तब वे जान गये कि अभिमन्यु अब इस संसार में नहीं है। इससे उन्हें दुःसह दुःख हुआ। वे शोक-सागर में डूब कर विलाप करने लगे:—

हाय! पुत्र! तुम्हें बार बार देख कर भी हमारा जी न भरता था। इस समय इस अभागी के गोद से निर्दयी काल ने तुम्हें हर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि हमारा हृदय ईसपात का, नहीं नहीं वज्र का, है। इसी से ऐसे प्यारे पुत्र के न रहने से अब तक भी उसके दो टुकड़े नहीं हो गये। अब समझ में आया कि गर्व में चूर होकर धृतराष्ट्र की सन्तान क्यों सिंहनाद कर रही थी। जिस समय कृष्ण हमारे साथ आ रहे थे उस समय उन्होंने भी युयुत्सु को इस विषय में कौरवों का तिरस्कार करते सुना था। युयुत्सु यह कह कर कौरवों का धिक्कार कर रहे थे कि:—

हे अधर्म्मियो! अर्जुन से पार न पाकर एक बालक के प्राण लेकर तुम लोग वृथा आनन्द मना रहे हो।

पुत्र के शोक से अर्जुन को बहुत ही व्याकुल देख कृष्ण ने उन्हें दिलासा देने के लिए कहा:—

हे धनञ्जय! इतने विकल मत हो। शूर-वीरों की ऐसी ही गति होती है; वे हमेशा यही इच्छा रखते हैं कि रण में प्राण छोड़ कर हम स्वर्ग जायँ। जिस दिव्य लोक के पाने की वीर जन कामना करते हैं, अभिमन्यु निःसन्देह उसी लोक को प्राप्त हुए हैं। तुम्हारे भाई और बन्धु बान्धव तुम्हें इतना शोक करते देख अत्यन्त दुःखित और सन्तप्त हो रहे हैं। इससे अब अधिक शोक न करके उन लोगों को शान्त करो।

कृष्ण के वचन सुन कर अर्जुन ने बड़े कष्ट से पुत्र-शोक को कुछ कम करके कहा:—

हे भाई! उस सुन्दर-मुख और कमल-लोचन अभिमन्यु ने किस प्रकार युद्ध किया, सो वर्णन करो। अनेक शत्रुओं के बीच युद्ध करके उस वीर-वर ने जितने वीरता के काम किये हों उन्हें हम सुनना चाहते हैं। इससे हमें बहुत कुछ धीरज होगा। हमने

कभी स्वप्न में भी यह न समझा था कि तुम लोगों के रहते खुद देवराज इन्द्र भी अभिमन्यु का बाल बाँका कर सकते हैं। हाय! यदि हम यह जानते कि पाण्डव और पाञ्चाल लोग हमारे पुत्र की रक्षा न कर सकेंगे तो हम खुद ही उसकी रक्षा के लिए युद्ध के मैदान में उपस्थित रहते। इस समय तुम्हारे पौरुष और पराक्रम का हाल हमें अच्छी तरह मालूम हो गया। अभिमन्यु तुम्हारी आँखों के सामने ही मारा गया। सचमुच ही तुम बड़े बहादुर हो! अथवा इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, सारा दोष हमारा ही है। क्योंकि अत्यन्त दुर्बल और डरपोक पुरुषों के भरोसे अभिमन्यु को छोड़ कर हम यहाँ से चले गये। तुम लोग यदि हमारे पुत्र की रक्षा न कर सके तो तुम्हारा यह कवच और तुम्हारे ये अस्त्र क्या सिर्फ़ शोभा के लिए हैं? और तुम्हारी वाणी और बुद्धि क्या सभा में सिर्फ़ वक्तृता झाड़ने के लिए है?

पुत्र-शोक से दुखी अर्जुन ने, आँखों में आँसू भरे हुए, इस प्रकार कुछ देर तक विलाप करके अपने बन्धु-बान्धवों को धिक्कारा। फिर धनुष और तलवार उठा कर, बैठे बैठे, इस तरह ज़ोर ज़ोर से साँस छोड़ने लगे जैसे क्रोध से भरा हुआ काला नाग फुफकारें छोड़ता है। उस समय युधिष्ठिर और कृष्ण को छोड़ कर और कोई भी उनकी तरफ़ देखने या उन्हें उत्तर देने को समर्थ न हुआ। धीरे धीरे धर्म्मराज ने बहुत धीमे स्वर से कहना आरम्भ किया:—

हे महाबाहु! त्रिगर्त्त लोगों के साथ युद्ध करने के लिए तुम्हारे चले जाने पर द्रोणाचार्य्य ने एक ऐसा व्यूह बनाया जिसका तोड़ना बहुत ही कठिन था। व्यूह की रचना करके हमारे पकड़ने के लिए उन्होंने जी जान से यत्न करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि अनगिनत वीर हमारी रक्षा कर रहे थे तथापि द्रोण के धावे से हम बेहद तंग आ गये। शत्रुओं के उस व्यूह को तोड़ना तो दूर रहा, उनके सामने एक क्षण भर भी ठहरना हम लोगों के लिए असह्य हो गया। तब हमने अद्भुत वीर अभिमन्यु से कहा:—

बेटा! द्रोणाचार्य्य की सेना के भीतर प्रवेश करो; हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

निडर अभिमन्यु ने हमारे कहने के अनुसार उस विकट काम को अपने ऊपर लेने से, उत्तम घोड़े की तरह, ज़रा भी आनाकानी न की। बड़े वेग और बड़े उत्साह से वह द्रोण की सेना के भीतर घुस गया।

हम लोग अभिमन्यु के पीछे पीछे चले और उसी की तरह शत्रुओं की सेना के भीतर घुसने की चेष्टा करने लगे। परन्तु, उसी समय जयद्रथ ने, क्षुद्र होकर भी, शङ्कर के

वरदान के प्रभाव से हम लोगों को रोका और अभिमन्यु के द्वारा तोड़े गये व्यूह का द्वार बन्द कर दिया।

तब द्रोण, कर्ण, कृप आदि छः रथियों ने उस असहाय बालक को चारों तरफ़ से घेर लिया। महावीर अभिमन्यु के हाथ से सैकड़ों सैनिक, घोड़े, हाथी, राजकुमार और योद्धा मारे गये; सैकड़ों रथ चूर हो गये; यहाँ तक कि महारथी राजा बृहद्बल को भी प्राण छोड़ने पड़े। अन्त में शत्रुओं ने अधर्म्म युद्ध करके अभिमन्यु को रथ और शस्त्र हीन कर दिया। तब अभिमन्यु को बहुत थका हुआ और ख़ाली हाथ देख कर दुःशासन के पुत्र ने गदा मारी। उसी से प्यारे अभिमन्यु की मृत्यु हुई।

हे धनञ्जय ! तुम्हारे पुत्र ने अत्यन्त अद्भुत काम करके स्वर्ग-लोक को गमन किया है।

युधिष्ठिर की बात समाप्त होने पर, अर्जुन—हा पुत्र !—बस इतना ही कह कर भूमि पर गिर पड़े। उन्हें मूर्छा आ गई; वे बेहोश हो गये। इस तरह अचेत और व्याकुल पड़े हुए अर्जुन को घेर कर सब लोग बैठ गये और बिना पलक बन्द किये परस्पर एक दूसरे को देखने लगे। कुछ देर में महावीर अर्जुन को होश आया। तब वे विषम ज्वर चढ़े हुए आदमी की तरह काँपने और ज़ोर ज़ोर से साँस छोड़ने लगे। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

इस तरह घड़ी आध घड़ी तक अभिमन्यु के वध से सम्बन्ध रखनेवाली बातें सोचते सोचते अर्जुन धीरे धीरे क्रोध से अधीर हो उठे। तब बड़े ज़ोर से हाथ मल कर और पागल की तरह इधर उधर देख कर वे युधिष्ठिर से कहने लगे:—

महाराज ! हम प्रतिज्ञा करते हैं कि कल ही हम जयद्रथ को मारेंगे। हमारे पहले उपकारों को भूल कर उस पापात्मा ने दुर्योधन का साथ दिया। इतना ही करके वह चुप नहीं रहा। आज वह अभिमन्यु की इस महाशोचनीय मृत्यु का भी कारण हुआ। इससे कल ही हम उसे इस संसार से सदा के लिए विदा कर देंगे।

हे पुरुषों में श्रेष्ठ जन ! जो कुछ हमने कहा वह यदि हम न करें तो पुण्यवान् लोगों की सी हमारी गति न हो—हम स्वर्ग न जायँ। यदि हम जयद्रथ का वध न कर सकें तो हमारी वही गति हो जो माता पिता के मारनेवाले विश्वासघाती मनुष्यों की होती है। यदि कल दुरात्मा जयद्रथ के जीते सूर्य्य अस्त हो गया तो इसी जगह तुम लोगों के सामने जलती हुई चिता में घुस कर हम भस्म हो जायँगे।

महावीर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा करके अपने गाण्डीव धन्वा को इस ज़ोर से ज़मीन

पर पटका कि उससे जो शब्द हुआ उससे आकाश गूँज उठा। श्रीकृष्ण ने भी अपने पाञ्चजन्य नाम के शंख को बड़े ज़ोर से बजा कर अर्जुन की उस भीषण प्रतिज्ञा का समर्थन किया। उन्होंने उस शंख-ध्वनि से यह सूचित किया कि अर्जुन ने उचित प्रतिज्ञा की; हमें वह बहुत पसन्द आई। कृष्ण को शंख बजाते देख अर्जुन ने भी देवदत्त शंख की ध्वनि की। इस पर चारों तरफ़ सेना में सैकड़ों-हज़ारों शंख, दुन्दुभी, तुरही और भेरी आदि बाजे बजने और वीर लोग सिंहनाद करने लगे।

कौरवों को अपने जासूसों के द्वारा उस महा कोलाहल का कारण मालूम होने पर, सिन्धुराज जयद्रथ मारे डर के काँप उठे। बहुत देर तक मन ही मन चिन्ता करने के बाद सभा में जाकर वे कहने लगे:—

हे भूपाल-वृन्द! धनञ्जय ने हमें यमराज के घर की हवा खिलाने की प्रतिज्ञा की है। इससे आप लोग हमारे बचाव का कोई अच्छा प्रबन्ध करें; नहीं तो, राम आपका भला करे, लीजिए हम अपने घर जाकर खुद ही अपने प्राण बचाने का यत्न करते हैं।

दुर्योधन तो अपना काम निकालने में बड़े ही चतुर थे। जयद्रथ को इस तरह डरा हुआ देख उन्होंने कहा:—

हे सिन्धुराज! डरिए मत। इन सब वीरों के बीच में तुम्हारे रहने से कोई भी तुम्हारा कुछ न कर सकेगा। हम अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना को आज्ञा देंगे कि और सब काम छोड़ कर कल वह सिर्फ़ तुम्हारी ही रक्षा करे। कर्ण, भूरिश्रवा, शल्य, सुदक्षिण, अश्वत्थामा, शकुनि आदि वीर तुम्हें बीच में डाल कर तुम्हारे चारों तरफ़ रहेंगे। तुम ख़ुद भी रथी वीरों में एक श्रेष्ठ योद्धा हो। फिर अर्जुन की प्रतिज्ञा से डरने का क्या काम?

दुर्योधन जब जयद्रथ को इस तरह दिलासा दे चुके तब उनके साथ जयद्रथ द्रोणाचार्य्य की शरण गये। द्रोणाचार्य्य ने जयद्रथ को अभय-दान दिया—उन्होंने कहा, तुम निश्चिन्त रहो; हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। वे बोले:—

हे राजन्! घबराने की कोई बात नहीं; हम तुम्हें अर्जुन से ज़रूर बचावेंगे। तुम्हारी रक्षा के लिए कल हम एक ऐसा व्यूह बनावेंगे जिसके भीतर अर्जुन कभी न घुस पावेंगे। तुम हरगिज़ न डरो; निडर होकर तुम ख़ूब युद्ध करो।

द्रोणाचार्य्य के इस प्रकार कहने से जयद्रथ का डर छूट गया। उन्होंने कहा:—बहुत अच्छा; तो हम ज़रूर युद्ध करेंगे। तब सारी कौरव-सेना अनेक प्रकार के बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगी।

इधर कृष्ण और अर्जुन को सोच के कारण उस रात को नींद नहीं आई। वे लोग शय्या पर पड़े पड़े बड़ी देर तक ठंडी साँसें भरते रहे। बहुत सोच-विचार के बाद अर्जुन ने कृष्ण से कहा:—

हे केशव! तुम अपनी बहन सुभद्रा और हमारी बहू उत्तरा को दिलासा दे कर उनका शोक दूर करो।

तब अर्जुन के घर के भीतर जाकर बुद्धिमान् कृष्ण ने रोती और सिर पीटती हुई अपनी बहन से कहा:—

हे सुभद्रा! अच्छे कुल में जन्म लेनेवाले धर्म्मज्ञ क्षत्रिय को जिस तरह प्राण छोड़ना चाहिए, तुम्हारे पुत्र ने उसी तरह छोड़ा है। इससे तुम अब और शोक न करो। पिता के समान पराक्रमी अभिमन्यु को बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिए; इसी से वीर जनों की गति को वह प्राप्त हुआ है। वीर लोग इसी तरह रण में वीरता दिखा कर प्राण छोड़ने की इच्छा रखते हैं। तुम वीर-माता, वीर-पत्नी, वीर-पुत्री और वीर-बान्धवा हो; इससे अभिमन्यु के स्वर्ग-गमन के कारण तुम्हें शोक न करना चाहिए। हे बहन! बाल-हन्ता पापी जयद्रथ बन्धु-बान्धवों सहित अपने इस कर्म्म का फल बहुत जल्द पावेगा।

इसी समय उत्तरा को साथ लिये हुए द्रौपदी वहाँ आकर उपस्थित हुई। उत्तरा को देख कर उन लोगों का शोक नया हो गया। वे फिर रोने और विलाप करने लगीं। उन्हें बाल बिखराये हुए ज़मीन पर पड़ी देख कृष्ण को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपनी शोक-विह्वला बहन के शरीर पर हाथ रख कर कहा:—

हे सुभद्रा! तुम्हारे पुत्र को पुण्य-लोक प्राप्त हुआ है। फिर उसके लिए इतना शोक क्यों? हे पाञ्चाली! तुम अपने शोक को रोक कर उत्तरा को समझाओ। हे चन्द्रवदनी! हमारी तो यही कामना है कि यशस्वी अभिमन्यु ने जो गति पाई है, अन्त-काल में हम सब लोग वही गति पावें! अकेले अभिमन्यु ने जैसे कठिन काम किये हैं, जी से हमारी यही इच्छा है कि हम सब लोग मिल कर वैसे ही काम कर सकें!

सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तरा को इस प्रकार समझा बुझा कर महात्मा कृष्ण फिर अर्जुन के पास लौट आये। आकर पहले तो उन्होंने जयद्रथ के वध के विषय में सलाह की; फिर कुछ देर के लिए सो गये। किन्तु, कृष्ण कुछ रात रहे ही जगे और अपने सारथि दारुक के पास जाकर रथ सजाने के विषय में उसे बहुत कुछ शिक्षा दी।

दारुक ने कहा:—हे पुरुषोत्तम! आप जिसके सारथि हुए हैं उसका काम अवश्य ही सिद्ध होगा। आपने जिस तरह आज्ञा दी है, सब काम उसी तरह होगा। आपको



शोकातुरा सुभद्रा और उत्तरा।

उसी तरह रथ तैयार मिलेगा। ईश्वर करे अर्जुन ही के विजयी होने के लिए आज प्रातःकाल हो!

अर्जुन की भी रात, महादेवजी के दिये हुए अस्त्रों की चिन्ता करते करते, बीत गई।

प्रातःकाल होने पर परम वीर द्रोणाचार्य्य ने अपने रथ के घोड़ों की रास खुद अपने ही हाथ में ली और बड़ी फुरती से सेना की देख-भाल करके व्यूह-रचना आरम्भ कर दी। जब व्यूह-रचना हो गई, और जिन सैनिकों को जहाँ रहना चाहिए वहाँ वे अपनी अपनी जगह पर डट गये, तब द्रोण ने जयद्रथ से कहाः—

हे सिन्धुराज! तुम छः कोस हमारे पीछे रहो। वहाँ एक लाख सेना लेकर कर्ण, अश्वत्थामा और कृप तुम्हारी रक्षा करेंगे। कई बड़े बड़े वीर अपनी अपनी ब्रिगेड लेकर बीच में रहेंगे। इससे तुम तक पहुँचने के पहले पाण्डवों को पहले तो हमारी सेना को पार करना पड़ेगा; फिर बीचवाले सेनाध्यक्षों की सेना में घुस कर उस तरफ़ जाना होगा; और सूर्य्यास्त के पहले हम सबको पार करके तुम तक पहुँच जाना पाण्डवों के लिए तो क्या खुद देवताओं के लिए भी असम्भव है।

द्रोण के इस कहने से जयद्रथ को बहुत कुछ धीरज हुआ। गान्धार देश के बहुत से योद्धाओं, और रिसाले के बहुत से कवच-धारी सवारों, को लेकर वे आचार्य्य के बतलाये हुए स्थान पर उनके पीछे की तरफ़ गये। धृतराष्ट्र के पुत्र दुःशासन और दुर्म्मर्षण आगे-वाली सेना में रहे। उसके पीछे द्रोणाचार्य्य ने सेना को शकट (बैलगाड़ी) के आकार में खड़ा करके व्यूह बनाया और अपने रथ को उसके द्वार पर खड़ा किया—अर्थात् व्यूह की द्वार-रक्षा का भार आपने खुद अपने ही ऊपर लिया। उसके पीछे भोजराज कृत-वर्म्मा और काम्बोजराज सुदक्षिण ने अपनी अपनी ब्रिगेड को चक्र के आकार में खड़ा करके जयद्रथ के पास पहुँचने का रास्ता रोका।

इस इतने बड़े व्यूह के पीछे, कई योजन का बीच देकर, सूचिनामक एक और बहुत ही गूढ़ व्यूह की रचना की गई। उसके मध्य भाग में कर्ण, दुर्योधन, शल्य, कृप आदि वीर जयद्रथ को बीच में डाल कर खड़े हुए। अद्भुत कौशल से भरे हुए इन दोनों व्यूहों को देख कर कौरवों ने मन ही मन इस बात का निश्चय कर लिया कि जयद्रथ अब बच गये और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन चिता में जल मरे।

इधर पाण्डवों ने भी अपनी सेना का व्यूह बनाया। उसके बन चुकने पर युधिष्ठिर की रक्षा के लिए उचित प्रबन्ध करके अर्जुन ने कृष्ण से कहाः—

हे वासुदेव ! जिस जगह दुर्म्मर्षण हैं वहीं पहले हमारा रथ ले चलो। इस हाथियों पर सवार सेना को पार करके हम शत्रुओं के व्यूह में घुसना चाहते हैं।

अर्जुन के कहने के अनुसार कृष्ण के उस जगह रथ ले जाने पर कौरवों के साथ अर्जुन का महा विकट युद्ध आरम्भ हुआ। वर्षा-काल के मेघ पर्वतों के ऊपर जैसे पानी बरसाते हैं उसी तरह महा-पराक्रमी अर्जुन ने अपने वैरियों पर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। बात की बात में अर्जुन ने असंख्य रथी, हाथी और पैदल सेना काट डाली। इससे कौरवों के योद्धाओं का उत्साह टूट गया और वे भागने लगे।

अपने भाई दुर्म्मर्षण के ब्रिगेड की यह दशा देख दुःशासन ने बड़ा कोप किया। वे अर्जुन का सामना करने आये और हाथियों पर सवार सेना से उन्हें घेर लिया। उस समय दुःशासन के शरीर को बाणों से छिन्न भिन्न करके, ऊँची ऊँची लहरों से लहराते हुए महासागर के समान शत्रुओं की सेना में क्षत्रिय-श्रेष्ठ अर्जुन घुस पड़े और हाथियों पर सवार सैनिकों के सिर अपने तीक्ष्ण शरों से छेद छेद कर गेंद की तरह फेंकने लगे।

कुछ ही देर में कितने ही हाथियों के हौदे ख़ाली हो गये और कितने ही हाथी खुद भी ज़मीन पर गिर गिर कर मर गये। बिना सवारों के ख़ाली हौदेवाले हाथी इधर उधर सेना में दौड़ने लगे। यह दशा देख बची हुई सेना ने फिर भागने की ठानी। अर्जुन के शरों से घायल हुए दुःशासन ने भी द्रोण के द्वारा रचित व्यूह में घुस कर अपने प्राण बचाये।

तब अर्जुन उस शकटाकार व्यूह के द्वार पर जा पहुँचे। वहाँ उनका और आचार्य्य द्रोण का सामना हुआ। अर्जुन ने द्रोणाचार्य्य से उस व्यूह के भीतर घुसने की अनुमति बड़ी ही अधीनता से माँगी। उन्होंने आचार्य्य से विनती की कि—हे गुरु महाराज! हमें इस व्यूह के भीतर घुस जाने दीजिए। पर आचार्य्य ने हँस कर कहा:—

हे अर्जुन ! पहले हमें जीते बिना तुम जयद्रथ के पास तक कदापि नहीं पहुँच सकते।

यह कह कर द्रोण ने अपने तीक्ष्ण शरों से अर्जुन को तोप दिया। तब लाचार हो कर अर्जुन को गुरु के साथ युद्ध करना पड़ा। युद्ध-विद्या में गुरु जैसे प्रवीण थे चेले भी वैसे ही थे। दोनों की फुरती, चालाकी और हाथ की सफ़ाई तारीफ़ के लायक़ थी। दोनों ही एक दूसरे को अपना अपना युद्ध-कौशल दिखाने लगे। दोनों ही ने परस्पर एक दूसरे के अस्त्र-शस्त्रों को व्यर्थ करना और धनुष की डोरियों को काटना

आरम्भ कर दिया। बहुत देर तक बड़ा ही अद्भुत युद्ध हुआ। श्रीकृष्णजी तो बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने देखा कि द्रोणाचार्य्य के साथ युद्ध करने में समय व्यर्थ जा रहा है। इससे आज के जयद्रथ-वधरूपी मुख्य काम को ध्यान में रख कर उन्होंने अर्जुन से कहा:—

हे महाबाहु! अब और वक़् खोना उचित नहीं। आचार्य्य के साथ बहुत देर तक युद्ध हो चुका। अब उन्हें यहीं छोड़ व्यूह के भीतर घुसना चाहिए।

अर्जुन ने कृष्ण की बात मान ली। तब कृष्ण ने बड़ी तेज़ी से रथ हाँका और द्रोणाचार्य्य की प्रदक्षिणा करके रथ उनके पीछे निकाल ले गये। अर्जुन के रथ को आगे बढ़ने से रोकना द्रोणाचार्य्य ने अपनी शक्ति के बाहर समझा। इससे अर्जुन को व्यूह की तरफ़ बड़ी तेज़ी से जाते देख द्रोण ने कहा:—

हे अर्जुन! तुम तो शत्रु को हराये बिना कभी नहीं लौटते! अब, इस समय, कहाँ आगे जा रहे हो?

अर्जुन तो जयद्रथ को मारने के लिए उतावले हो रहे थे। उन्होंने कहा:—

हे आचार्य्य! आप हमारे गुरु हैं, शत्रु नहीं; इससे हमारा वह नियम आपके विषय में नहीं लग सकता।

यह कह कर युधामन्यु और उत्तमौजा नामक दो चक्ररक्षक लेकर उन्होंने शत्रुओं की विशाल सेना में प्रवेश किया।

तब काम्बोज और भोजराज नें अर्जुन को वहीं रोक रखना चाहा। भीषण युद्ध छिड़ गया। महाप्रतापी पाण्डुनन्दन के विषम बाणों के प्रभाव से घोड़ों के समूह घायल होने, जितने रथ थे सब टूटने, और सवारों-समेत हाथियों के झुण्ड के झुण्ड ज़मीन पर गिरने लगे। कौरवों की असंख्य सेना के साथ अकेले अर्जुन ने बड़ा ही भयङ्कर युद्ध किया। पर, एक और अनेक में बहुत अन्तर होता है। टिड्डी दल के समान कौरवों की सेना उनके आगे बढ़ने में विघ्न डालने लगी। यह देख कर अर्जुन को उत्तेजित करने के लिए कृष्ण ने कहा:—

हे पृथापुत्र! इन वीरों पर दया करने की ज़रूरत नहीं। इन्हें यमपुर पठाने में विलम्ब न करो। हमें जो काम आज करना है उसके लिए अब बहुत ही थोड़ा समय रह गया है।

यह सुन कर अर्जुन ने बड़े ही वेग से बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। वह कृतवर्म्मा और सुदक्षिण से न सही गई। वे प्रायः मूर्च्छित हो गये। इस मौके को अच्छा हाथ आया जान कृष्ण ने रथ को इस तेज़ी से दौड़ाया कि रथ का देख पड़ना मुश्किल हो

गया। भोज और काम्बोज-सेना के नायक कृतवर्म्मा और सुदक्षिण होश में थे ही नहीं। अतएव इस सेना-समूह को पार करके अर्जुन के रथ को कृष्ण उस तरफ़ आगे निकाल ले गये।

दुर्योधन को मालूम हो गया कि अर्जुन शकट-व्यूह से निकल आये और अब सूचि-व्यूह की तरफ़ दौड़े चले आ रहे हैं। इससे वे द्रोणाचार्य्य के पास पहुँचे और झिड़क कर उनसे कहने लगे:—

हे आचार्य्य! अर्जुन को आपके सामने ही सेना में घुसते, और, सूखे तिनकों के ढेर को आग जैसे जलाती है उस तरह सैनिकों का नाश करते देख हम अपने पक्ष को बिलकुल ही आश्रयहीन समझते हैं। हमें जान पड़ता है कि हमारा कोई भी योग्य सहायक नहीं। जहाँ तक हो सकता है हम आपके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं; हर तरह हम आपको प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं; परन्तु, आप इस बात का कुछ भी लिहाज़ नहीं करते। हम आपके बहुत बड़े भक्त हैं; परन्तु हमारा नाश करने पर कमर कसनेवाले पाण्डवों पर आप हमेशा ही दया करते हैं। हम न जानते थे कि आप शहद में डूबे हुए छुरे की धार के समान हैं। आप यदि अभयदान न देते—आप यदि जयद्रथ से यह न कहते कि डरने की कोई बात नहीं—तो हम कभी जयद्रथ को न रोकते। वे कभी के भाग गये होते। आपही के विश्वास दिलाने पर हमने जयद्रथ को आज मौत के मुँह में फेंका है। यह हमसे बड़ी भूल हुई। यदि आप हमें अपने बल-पौरुष का भरोसा न देते तो कभी यह बात न होती। काल के कराल गाल में गया हुआ मनुष्य चाहे बच जाय, पर अर्जुन के सामने जयद्रथ नहीं बच सकते। इस समय हम बड़े दुःखी हैं—हम अत्यन्त आर्त हैं। इससे हम जो यह अंड बंड बक रहे हैं उसके कारण आप हम पर क्रोध न कीजिएगा। सिन्धुराज जयद्रथ आपकी शरण हैं। उन्हें जिस तरह हो सके बचाइए।

दुर्योधन के वचन सुन कर द्रोणाचार्य्य ने कहा:—

महाराज! तुम हमारे पुत्र-तुल्य हो। इससे हम तुम्हारी बात का बुरा नहीं मानते। सच मानो, इस विषय में हमारा कुछ भी अपराध नहीं। श्रीकृष्ण बहुत ही अच्छे सारथि हैं। उनके हाँके हुए घोड़े हवा से बातें करते हैं। इस कारण बहुत थोड़ा सा रास्ता पाने से भी अर्जुन बड़ी तेज़ी से रथ निकाल ले जाते हैं। हम इस समय बहुत बूढ़े हो गये हैं। पाण्डवों की सेना हमारी सेना के बिलकुल पास आ गई है; और हममें अब इतनी फुरती नहीं रही कि इधर इस सेना को रोकें और उधर अर्जुन को भी आगे न

बढ़ने दें। एक बात और है, जिसके कारण हम इस समय अर्जुन के पीछे दौड़ कर उनकी राह नहीं रोक सकते। हमने सबके सामने युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की है। इस समय युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए अर्जुन उनके पास नहीं; वे देखो, हमारे सामने ही धर्म्मराज विराज रहे हैं। अतएव हमें पहले उनसे युद्ध करना होगा। कुछ भी हो, हम तुम्हारे बदन पर एक ऐसा कवच बाँधे देते हैं जिसे छेद कर कोई भी शस्त्र तुम्हें घायल न कर सकेगा। तुम खुद भी महा बलवान् और पराक्रमी हो। प्रयत्न करने से तुम खुद ही विजय प्राप्त कर सकते हो। अतएव तुम्हीं जाकर अर्जुन का सामना करो और उन्हें रास्ते ही में रोक रक्खो।

यह कह कर द्रोणाचार्य्य ने दुर्योधन के बदन पर मन्त्रों से पवित्र किया हुआ एक महा-अद्भुत कवच बाँधा और उन्हें उस भयानक युद्ध में भेज दिया। दुर्योधन एक हज़ार चतुरंगिनी सेना और बहुत से महारथी योद्धा लेकर, मारू बाजे बजाते हुए, बड़े आडम्बर के साथ अर्जुन को रोकने दौड़े।

इधर दो-पहर ढल गई। धीरे धीरे सूर्यास्त होने में कुछ ही समय बाक़ी रहा। तब तक अर्जुन ने कौरवों के अनगिनत योद्धा और सैनिक मार गिराये। सारी सेना को उन्होंने मथ डाला। चारों तरफ़ हाहाकार मच गया। देर तक महा भीषण युद्ध करने से अर्जुन बहुत थक गये। उनके रथ के घोड़े भी बहुत घायल हो गये। कौरवों की सेना में महाप्रलय मचा कर किसी तरह जल्दी जल्दी वे शकट-व्यूह से निकल आये। तब उन्हें बहुत दूर पर आगे वह जगह दिखाई दी जहाँ सूचि-व्यूह के बीच में बड़े बड़े महारथियों से रक्षित जयद्रथ सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अर्जुन ने कहा:—हे माधव! हमारे घोड़े बहुत घायल हैं और थक भी बहुत गये हैं। इससे उन्हें कुछ देर विश्राम देने के लिए यही अच्छा मौक़ा है।

कृष्ण ने भी इस बात को अच्छा समझा। तब अर्जुन रथ से उतर पड़े और गाण्डीव को हाथ में लेकर घोड़ों की, रथ की और कृष्ण की रक्षा करने लगे। घोड़ों की चिकित्सा में कृष्ण बड़े चतुर थे। उन्होंने देखा कि अर्जुन तो रखवाली कर ही रहे हैं, घोड़ों को खोल देना चाहिए। इससे उन्होंने घोड़ों को रथ से खोल दिया। फिर टूटे हुए बाण आदि उनके बदन से निकाल कर उन्हें खूब मला और पानी पिलाया।

कुछ देर तक आराम करने पर घोड़ों की थकावट दूर हो गई। शस्त्र लगने के कारण उत्पन्न हुई पीड़ा भी जाती रही। उनमें मानों नई जान आ गई। तब कृष्ण ने

उन्हें फिर जोता और अर्जुन को सवार करा कर आप भी रथ पर सवार हो गये। घोड़े बड़ी तेज़ी से उस तरफ़ भागे जहाँ जयद्रथ एक एक पल दिन का हिसाब लगा रहे थे।

अर्जुन को बड़े वेग से इस तरह बेरोक-टोक जाते देख कौरवों की सेना में महा कोलाहल होने लगा। तब उन्हें रोकने के लिए दुर्योधन जल्दी जल्दी आगे बढ़े। अर्जुन ने बहुत क्रुद्ध होकर दुर्योधन पर आक्रमण किया। इतने में किसी ने झूठी ख़बर उड़ा दी कि—राजा मारे गये! इससे सेना में चारों तरफ़ हाहाकार होने लगा। परन्तु जब अर्जुन के महा प्रचण्ड शस्त्रों को दुर्योधन बड़ी बहादुरी से सहन करने और कृष्ण तथा अर्जुन को उलटा मारने लगे तब सब लोगों को धीरज आया। कौरवों के पक्षवालों को यह तमाशा देख कर बड़ा विस्मय हुआ। वे मारे ख़ुशी के सिंहनाद करने लगे।

कृष्ण ने कहा:—हे पार्थ! बड़े आश्चर्य्य की बात है कि तुम्हारे सारे बाण व्यर्थ जा रहे हैं। एक भी दुर्योधन पर असर नहीं करता। यह मामला क्या है, कुछ समझ में नहीं आता। आज क्या पहले की अपेक्षा गाण्डीव कमज़ोर हो गया है, अथवा तुम्हारी मुट्ठी या भुजाओं में ही कमज़ोरी आ गई है?

अर्जुन बोले:—हे वासुदेव! आचार्य्य द्रोण ने दुर्योधन के बदन पर ऐसा कवच बाँधा है जो शस्त्रास्त्र द्वारा नहीं छिद सकता। इस बात को आप सच समझिए। इस कवच के बाँधने की तरकीब आचार्य्य ने अकेले हमीं को सिखलाई थी। मनुष्य के चलाये हुए बाणों की बात तो दूर है, इन्द्र के वज्र की मार से भी वह नहीं टूट सकता। किन्तु इस कवच को दुर्योधन ने स्त्रियों की तरह मानों सिर्फ़ शोभा के लिए शरीर पर धारण किया है। ऐसे कवचवाले को युद्ध करने का सर्वोत्तम ढँग ज्ञात होना चाहिए। सो बात दुर्योधन में बिलकुल ही नहीं है। ख़ैर वह अब हमारे भुज-बल को देखें।

यह कह कर अर्जुन ने दुर्योधन के कवच को तोड़ने की चेष्टा छोड़ दी। उन्होंने उनकी शरमुष्टि और धनुष दोनों काट दिये और सारथि तथा घोड़ों को मार कर रथ के खण्ड खण्ड कर डाले। उस समय दुर्योधन की रक्षा के लिए कौरवों की असंख्य सेना वहाँ आ गई। वह अर्जुन को आगे बढ़ने से रोकने लगी।

दिन बहुत ही थोड़ा रह गया। अर्जुन आगे बढ़ने से रोक दिये गये। यह देख धूल में लिपटे और पसीने में डूबे हुए कृष्ण ने कुमक के लिए अपने पाञ्चजन्य नाम के शङ्ख को बार बार बड़े ज़ोर से बजाना आरम्भ किया।

उधर अर्जुन को रोकने के लिए दुर्योधन को भेज कर द्रोणाचार्य्य ने युधिष्ठिर पर

आक्रमण किया। तब सात्यकि और धृष्टद्युम्न आदि वीर धर्म्मराज को घेर कर उनकी रक्षा करने लगे। इन लोगों को हटा कर युधिष्ठिर तक पहुँचने की द्रोण ने बहुत कोशिश की। पर उनके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। तब उन्होंने लाचार होकर युधिष्ठिर को पाने की आशा छोड़ दी और सबके देखते पाञ्चाल लोगों का संहार आरम्भ कर दिया।

बहुत देर तक घोर युद्ध होता रहा। इतने में कृष्ण के शङ्ख की आवाज़ और उसके साथ ही कौरवों की सेना का सिंहनाद युधिष्ठिर को दूर से सुनाई दिया। उसे सुन कर युधिष्ठिर का चित्त चञ्चल हो उठा। वे घबरा गये। अन्त में जब उनसे न रहा गया तब उन्होंने सात्यकि से कहा:—

हे युयुधान! यह सुनो, अर्जुन के रथ के सामने महा कोलाहल हो रहा है और कृष्ण भी अपना शङ्ख बजा रहे हैं। यह देखो, अनगिनत चतुरङ्गिनी सेना चारों ओर से उसी तरफ़ दौड़ी जा रही है। इससे आकाश में धूल ही धूल दिखाई दे रही है। यह सेना इतनी अधिक है कि देवराज इन्द्र को भी यह सामने समर में हरा सकती है। इसे जीते बिना अर्जुन कदापि जयद्रथ तक न पहुँच सकेंगे। इधर सूर्य्य डूबने चाहता है। तुम अर्जुन के प्यारे शिष्य और हमारे परम हितकारी हो इससे अर्जुन की सहायता के लिए इस समय तुम्हें ज़रूर जाना चाहिए। यदि आचार्य्य तुम्हें रोकेंगे और तुम पर आक्रमण करेंगे तो हम सब मिल कर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

सात्यकि ने कहा:—हे धर्म्मराज! आप जिस तरह अर्जुन को आज्ञा दे सकते हैं उसी तरह सङ्कोच छोड़ कर हमें भी दे सकते हैं। हम सर्वथा आपके आज्ञाकारी हैं। ऐसा कोई काम नहीं जिसे करने के लिए हम आपकी आज्ञा न मान सकें। विशेष करके अर्जुन के सम्बन्ध में दी गई आपकी आज्ञा तो हम प्राणों की भी परवा न करके पालन करने को तैयार हैं। किन्तु, एक बात हमें आपसे कहनी है, सुनिए। वीरशिरोमणि अर्जुन ने जाते समय बार बार हमसे कहा था:—

हे सात्यकि! धर्म्मराज को हम तुम्हारे और धृष्टद्युम्न के भरोसे छोड़ते हैं। हमारी ग़ैरहाज़िरी में द्रोण के आक्रमण से उनकी रक्षा करना।

इस दशा में उनकी आज्ञा और अपने निज के कर्त्तव्य का हम कैसे उल्लङ्घन कर सकते हैं। धनञ्जय के समान संसार में अन्य योद्धा नहीं। बड़े से बड़ा काम हाथ में लेने पर भी कभी उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। काम चाहे जैसा हो उसे वे पूरा कर ही के छोड़ते हैं। अतएव उनके विषय में आप कुछ भी चिन्ता न करें। कौरव लोग उनका कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे।

सात्यकि की बात का अच्छी तरह विचार करके धर्म्मराज ने कहा:—

हे सात्यकि ! तुमने सब बात कही, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु हमारा मन नहीं गवाही देता। हमारे मन में बार बार यही शङ्का होती है कि कहीं अर्जुन को कुछ हो न जाय। हमें अपनी रक्षा करनी चाहिए या अर्जुन की सहायता—इन दो बातों का विचार करने में अर्जुन के पास तुम्हें भेजना ही हम मङ्गलजनक समझते हैं। हमारे कहने से यदि तुम अर्जुन के पास जावगे तो तुम पर कोई दोष न आवेगा। महावीर धृष्टद्युम्न और हमारे भाई हमारी रक्षा करेंगे।

तब धर्म्मराज की आज्ञा से सात्यकि ने उसी राह से आगे बढ़ना आरम्भ किया जिस राह से अर्जुन गये थे। युधिष्ठिर भी द्रोण के आक्रमण से उनकी रक्षा करने के लिए बहुत से वीर लेकर उनके पीछे पीछे चले। इस पर कौरवों की सेना के बड़े बड़े योद्धाओं ने उनका सामना किया; परन्तु उन्हें इन लोगों ने मार भगाया। तब द्रोणाचार्य्य ने पैने बाण बरसा कर सात्यकि को रोका।

महावीर सात्यकि इससे ज़रा भी न घबराये। उन्होंने द्रोण की ध्वजा काट दी, उनके रथ के घोड़ों को मार गिराया, तथा उनके सारथि को भी बाणों से छेद कर भूमि पर सुला दिया। यह देख द्रोणाचार्य्य को बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले:—

हे सात्यकि ! यदि अपने गुरु अर्जुन की तरह तुम भाग न गये तो आज तुम जीते न बचोगे।

द्रोणाचार्य्य के साथ अन्त तक युद्ध न करके जिस युक्ति से—जिस हिकमत से—अर्जुन आगे बढ़ गये थे वह सात्यकि जान गये थे। इससे द्रोण के वचन सुन कर उन्होंने कहा:—

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! भगवान् आपका भला करें। शिष्य को गुरु ही की चाल चलनी चाहिए। शिष्य का कर्त्तव्य है कि जिस ढँग से उसका गुरु कोई काम करे उसी ढँग से वह भी करे। अतएव, लीजिए, हम आपको छोड़ कर अपने गुरु के पास चले।

यह कह कर सात्यकि ने द्रोण को छोड़ कर व्यूह में प्रवेश किया। शत्रुओं के अगाध सैन्य-सागर में उन्हें इस तरह अकेले घुसते देख धर्म्मराज सोचने लगे:—

सात्यकि को हमने अर्जुन के पास तो भेजा; किन्तु, उनकी रक्षा का कोई उचित उपाय नहीं किया। पहले तो हमें अकेले अर्जुन ही के लिए चिन्ता थी, पर अब सात्यकि और अर्जुन दोनों के लिए हमारा जी ऊब रहा है। संसार में कोई बात ऐसी नहीं जो भीम के लिए असाध्य हो। वे क्या नहीं कर सकते ? उन्हीं के बल-पौरुष के भरोसे

हम लोगों ने वनवास के बारह वर्ष बिताये हैं। अतएव, वीर-वर भीमसेन को सात्यकि और अर्जुन के पास भेजने से उन्हें ज़रूर सहायता मिलेगी—उनका ज़रूर मङ्गल होगा।

मनही मन इस तरह का निश्चय करके युधिष्ठिर ने भीम के पास रथ ले जाने के लिए आज्ञा दी। उनके पास पहुँच कर उन्होंने कहा:—

हे भीम! जिस वीर ने एक ही रथ की सवारी से देवताओं, दानवों और गन्धर्वों को परास्त किया है, उन्हीं तुम्हारे भाई अर्जुन का ध्वजदण्ड अब और नहीं देख पड़ता।

यह कहते कहते युधिष्ठिर मोह के वशीभूत हो गये। दुःख से उनका कण्ठ भर आया। भाई की यह दशा देख भीम बेतरह घबरा उठे। वे बोले:—

हे धर्म्मराज! हमने आपको कभी इस तरह कातर होते नहीं देखा। पहले जब कभी हम किसी कारण से घबरा जाते थे तब तुम्हीं हमें उलटा धीरज देते थे। तुम्हारा इस तरह दुखी होना हम नहीं सहन कर सकते। इस समय शोक दूर करके आज्ञा दीजिए कि हमें कौन काम करना होगा।

यह सुन कर युधिष्ठिर का जी कुछ ठिकाने हुआ। वे कहने लगे:—

हे वृकोदर! जयद्रथ को मारने के लिए आज सूर्योदय होते ही अर्जुन ने कौरवों की सेना में प्रवेश किया था। इस समय सायङ्काल होने को आया; पर अब तक वे नहीं लौटे। यही हमारे शोक का मूल कारण है। पीछे से सात्यकि को अकेले हमने उनकी सहायता के लिए भेजा। इससे, दुबारा जलाई गई आग की तरह हमारा शोक और भी अधिक हो गया है। हमारी बात मानना यदि तुम अपना कर्तव्य समझते हो तो उनकी रक्षा के लिए तुम्हें तुरन्त ही रवाना होना चाहिए।

भीमसेन ने कहा:—महाराज! बस अब और वृथा शोक करने की ज़रूरत नहीं। लीजिए, हम चले। उनके पास पहुँच कर हम शीघ्र ही तुम्हें समाचार देंगे।

इसके अनन्तर भाई के हित में तत्पर भीमसेन ने अस्त्र-शस्त्र लेकर शङ्ख-ध्वनि की और सिंहनाद करके चल दिया। हवा के समान जानेवाले घोड़ों के रथ पर सवार होकर, कौरवों की सेना को मारते-काटते और राह रोकनेवालों को हटाते हुए, बड़े वेग से वे उस व्यूह की तरफ़ दौड़े जिसके द्वार की रक्षा द्रोण बड़ी सावधानी से कर रहे थे।

उन्हें आते देख द्रोण ने कहा:—हे भीमसेन! आज हम तुम्हारे विपक्ष में हैं—तुम्हारा मुक़ाबला करने को खड़े हैं। हमें जीते बिना तुम हमारी सेना में कदापि न घुस सकोगे।

भीम इस बात से क्रुद्ध होकर बोले:—

ब्रह्मन् ! अब तक हम आपको अपना गुरु और बन्धु जानते रहे हैं। आज आप हम से वैरी के समान व्यवहार कर रहे हैं ! खैर, जो आपके जी में आवे करें। हम भोले भाले अर्जुन नहीं जो आप पर कृपा करेंगे। यदि आप हमारे शत्रु बनने की इच्छा रखते हैं तो हम भी आपके साथ शत्रु ही के समान व्यवहार करने को तैयार हैं।

इतना कह कर महा पराक्रमी भीमसेन ने काल-दण्ड के समान गदा घुमा कर द्रोण पर फेंकी। उससे बचने का और कोई उपाय न देख द्रोण तत्काल रथ से कूद पड़े। वे तो बच गये, पर उस गदा के प्रचण्ड आघात से रथ, सारथि और घोड़े सब एक ही साथ नष्ट हो गये।

तब धृतराष्ट्र की सन्तान चारों तरफ़ से दौड़ पड़ी और भीमसेन पर उसने आक्रमण किया। परन्तु, सामने आये हुए वीरों का अनायास ही संहार करके, भीमसेन ने कौरवों की सेना के इस तरह धुर्रे उड़ा दिये जिस तरह कि प्रचण्ड पवन का वेग पेड़ों को तोड़ ताड़ और उखाड़ कर फेंक देता है।

इस तरह मारते काटते भीमसेन शकटव्यूह के पिछले हिस्से तक पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भोज और काम्बोज-राज की ब्रिगेड के साथ सात्यकि घोर युद्ध कर रहे हैं। भीम को यह अच्छा मौक़ा मिला। वे चुपचाप शकटव्यूह को पार करके निकल गये; किसी ने उन्हें न देखा। आगे जाते ही उन्हें अर्जुन का कपिध्वज रथ कृष्णार्जुन सहित देख पड़ा। तब उन्होंने वर्षाकाल के बादलों की गम्भीर गर्जना के समान भयङ्कर सिंहनाद किया।

कृष्णार्जुन ने भीम की आवाज़ पहचान ली। भीम को अपनी सहायता के लिए आया देख वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भीम के सिंहनाद का उत्तर हर्ष सूचक ध्वनि से दिया। यह शब्द सुनने पर युधिष्ठिर के आनन्द का पारावार न रहा। वे भीमसेन पर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करके मन ही मन कहने लगे:—

ओहो ! भीम ने सचमुच ही हमारी आज्ञा का पालन करके अर्जुन का कुशल-समाचार हमें ज्ञात कराया। शत्रुओं पर विजय पानेवाले अर्जुन के सम्बन्ध में जो हम इतना घबरा रहे थे वह हमारी घबराहट अब दूर हो गई। हमारे मन में जो अनेक प्रकार की चिन्तायें हो रही थीं वे सब इस समय जाती रहीं।

व्यूह पार करके भीम को निकल जाते देख धृतराष्ट्र की सन्तान ने जीने की आशा छोड़ दी और उन पर पीछे से फिर आक्रमण किया। यद्यपि वे लोग बहुत अधिक थे

तथापि महाबली भीम ने उनकी अधिकता की कुछ भी परवा न करके अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार एक एक को यमपुरी भेजना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जब धृतराष्ट्र के इकतीस पुत्र मारे जा चुके तब भीम का सामना करने के लिए विलक्षण वीर कर्ण सूचि-व्यूह से निकल कर आगे आये।

तब दोनों वीरों में महाघोर युद्ध होने लगा। कर्ण अस्त्र-विद्या में बहुत प्रवीण थे ही; उन्होंने भीम के चलाये हुए सारे अस्त्र-शस्त्रों को काट कर खण्ड खण्ड कर डाला। भीम ने देखा कि कर्ण के साथ धनुर्बाण लेकर युद्ध करना व्यर्थ है। इससे ढाल तलवार लेकर वे रथ से उतर पड़े। किन्तु, कर्ण ने अस्त्र-द्वारा उनकी ढाल-तलवार भी काट डाली। इस तरह भीमसेन ख़ाली हाथ हो गये। तब कर्ण उन पर बड़े वेग से दौड़े। अब भीमसेन क्या करें? बचने का और कोई उपाय न देख कर कर्ण के सामने से वे भाग गये और जहाँ मारे गये हाथियों के ढेर के ढेर पड़े थे वहाँ उनकी लोथों के बीच जा छिपे।

इस समय यदि कर्ण चाहते तो भीमसेन को मार डालते; उन्हें मारने का यह अच्छा मौक़ा था। परन्तु कुन्ती से जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी उसे याद करके उन्होंने भीम को छोड़ दिया। हाथियों की जिन लोथों के बीच में वे घुसे थे उन्हें काट काट कर कर्ण ने रथ के लिए पहले रास्ता बनाया; फिर भीमसेन के पास जाकर उन्हों ने अपने धनुष की नोक से उन पर एक तड़ाका लगाया। यह करके कर्ण ने हँस कर कहा:—

भीमसेन! यही तुम्हारी वीरता है! तुम ख़ाक भी अस्त्र-विद्या नहीं जानते। युद्ध का मैदान तुम्हारे लिए उचित स्थान नहीं। तुम्हें रण-स्थल में क़दम ही न रखना चाहिए। हमारे साथ युद्ध करने से यही दशा होती है।

भीम के बदन पर कर्ण के धनुष का स्पर्श होते ही भीम ने धनुष को पकड़ कर तोड़ दिया और उसके एक टुकड़े से कर्ण को मार कर तत्काल ही बदला ले लिया। उन्होंने कहा:—

रे मूढ़! ख़ुद इन्द्र की भी हार और जीत दोनों ही होती हैं। हमने भी पहले बहुत दफ़े तुम्हें हराया है। फिर क्यों अपने ही मुँह अपनी वृथा बड़ाई बघारते हो? यदि वीरता और बल का घमण्ड हो तो आओ हमारे साथ एक बार मल्ल-युद्ध करो। तब हम देखेंगे कि तुममें कितना बल और कितना पौरुष है।

किन्तु कर्ण ने सबके सामने भीमसेन से मल्ल-युद्ध करना नामंज़ूर किया। उन्होंने

वहाँ से अपने स्थान को चल दिया। इस बीच में भोज और काम्बोज लोगों को हरा कर सात्यकि अर्जुन के पास जाने लगे। कृष्ण ने उनको दूर से देख कर कहाः—

हे अर्जुन! तुम्हारे प्यारे शिष्य सात्यकि बड़ी ही बहादुरी दिखा कर तुम्हारी सहायता के लिए आ रहे हैं।

किन्तु अर्जुन इस बात को सुन कर प्रसन्न न हुए। उन्होंने कहाः—

हे वासुदेव! हमने सात्यकि को युधिष्ठिर की रक्षा का भार सौंपा था। तब फिर क्यों वे हमारे पास आ रहे हैं? इसके सिवा थके हुए घोड़े और प्रायः चुके हुए शस्त्र लेकर इस शत्रुओं से परि-पूर्ण स्थान में आकर सात्यकि करेंगे क्या? इस समय हमें सिर्फ़ जयद्रथ के वध की चिन्ता है। और कोई काम हमें न करना चाहिए। परन्तु सात्यकि के आने से अब हमें उनकी रक्षा भी करनी होगी, और इसमें समय का व्यर्थ नाश होगा। जान पड़ता है, धर्मराज की भी बुद्धि मारी गई है। द्रोण से न डर कर उन्होंने व्यर्थ ही सात्यकि और भीम को हमारे पास भेजा है। यह काम उनसे नहीं बना।

इस तरह अर्जुन कह ही रहे थे कि सात्यकि को आगे बढ़ने से रोकने के लिए विकट वीर भूरिश्रवा दौड़ पड़े। भूरिश्रवा उस समय बड़े जोश में थे। पर सात्यकि बहुत थके हुए थे। मतवाले हाथी की तरह भूरिश्रवा सात्यकि पर टूटे और देखते देखते उनके सारथि को मार कर रथ को चूर चूर कर डाला। सात्यकि बिना रथ के होकर ज़मीन पर आ रहे। तब कृष्ण ने फिर कहाः—

हे अर्जुन! देखो, यादव-श्रेष्ठ सात्यकि इस समय कैसी विपद में हैं। तुम्हारे ही कारण तुम्हारे प्यारे शिष्य की यह दशा हुई है। इसलिए उनकी शीघ्र ही रक्षा करो।

युधिष्ठिर को छोड़ कर चले आने के कारण एक तो अर्जुन सात्यकि पर नाराज़ थे, दूसरे भूरिश्रवा का उत्तम युद्धकौशल को देख कर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। इससे न तो कृष्ण की बात का उन्होंने कोई उत्तर दिया और न सात्यकि को बचाने का कोई प्रयत्न ही किया।

इसके अनन्तर, रथहीन सात्यकि के पास पहुँच कर कृष्ण और अर्जुन के सामने ही भूरिश्रवा ने उन्हें लात मार कर ज़मीन पर गिरा दिया और उनके बाल पकड़ कर मियान से तलवार निकाली। अब क्या हो! जिस हाथ से भूरिश्रवा ने सात्यकि के बाल पकड़ रक्खे थे उस हाथ-समेत सात्यकि ने अपने मस्तक को तलवार की वार से बचाने के लिए इधर उधर घुमाना आरम्भ किया। तब रथ को और पास ले जाकर कृष्ण ने बड़े ही कातर-कण्ठ से आग्रह कियाः—

हे पार्थ ! सात्यकि तुम्हारे ही समान वीर हैं। परन्तु इस समय भूरिश्रवा के हाथ में पड़ कर, देखो, प्राण खोना चाहते हैं। हे महाबाहु ! उनकी ज़रूर रक्षा करो।

तब अर्जुन ने देखा कि शिष्य की विपद की ओर अधिक उपेक्षा करने से काम न चलेगा—अब सात्यकि की प्राण-रक्षा का उपाय करना ही होगा। अर्जुन ने कहा:—

हे वासुदेव ! हम एकाग्र-चित्त होकर जयद्रथ के वध की चिन्ता करते थे; इसी से भूरिश्रवा को हमने नहीं देखा। यद्यपि इन दो वीरों के पारस्परिक युद्ध में दख़ल देना उचित नहीं; तथापि इस समय हम भूरिश्रवा पर ज़रूर प्रहार करेंगे।

यह कह कर अर्जुन ने एक छुरे की धार के समान तेज़ बाण गाण्डीव पर रक्खा। उसका छूटना था कि तलवार और बाज़ूबन्द-समेत भूरिश्रवा के दोनों हाथ कट कर ज़मीन पर गिर पड़े। बिना हाथों के हो जाने से भूरिश्रवा युद्ध के काम के न रहे। तब सात्यकि को छोड़ कर भूरिश्रवा इस प्रकार अर्जुन को धिक्कारने लगे:—

हे कुन्ती-नन्दन ! जिस समय और सब कहीं से अपने मन को खींच कर हम दूसरे काम में लगे थे उस समय हमारे दोनों हाथ काट कर तुमने बड़ा ही निन्द्य काम किया है। ऐसी अवस्था में शस्त्र चलाने का उपदेश तुम्हें किसने दिया है ? इन्द्र ने दिया है ? कि महादेव ने दिया है ? कि द्रोणाचार्य्य ने दिया है ? तुम क्षत्रियों में श्रेष्ठ माने जाते हो और दूसरे वीरों की अपेक्षा तुम्हें क्षत्रिय-धर्म्म का ज्ञान भी अधिक है। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि भ्रष्ट यादवों के कुल में उत्पन्न कृष्ण के कहने से ही तुमने यह काम किया है।

अपने बन्धु कृष्ण की निन्दा अर्जुन से न सही गई। वे बोले:—

हे प्रभु ! जो पुरुष अपने आसरे हो—जो पुरुष अपनी शरण हो—उसकी रक्षा करना क्षत्रियों का प्रधान कर्त्तव्य है। तुम्हीं कहो, इतनी बड़ी चतुरङ्गिनी सेना से परिपूर्ण इस भीषण समर-सागर में एक ही मनुष्य के साथ कैसे युद्ध हो सकता है ? अपनी रक्षा की परवा न करके दूसरों को मार डालने पर तुम उतारू थे। क्या तुम्हें यही उचित था ? अतएव भ्रमवश यदि ऐसा काम हमसे हो गया तो आश्चर्य्य ही क्या है ? भूरिश्रवा ने अर्जुन का यह युक्तिपूर्ण उत्तर मान लिया और चुपचाप बैठ जाने का निश्चय किया। सूर्य्य की तरफ़ दृष्टि करके वे शर-शय्या पर बैठ गये और महोपनिषद् का ध्यान करते करते योगारूढ़ होकर मौनव्रत धारण कर लिया। पराजित होने के कारण सात्यकि क्रोध से पागल हो रहे थे। उनकी सारासार-विचार-शक्ति जाती रही थी—उचित और अनुचित का ज्ञान उस समय उन्हें न था। अतएव उन्होंने उस तरह

चुपचाप बैठे हुए भूरिश्रवा का सिर तलवार से काट लिया। सात्यकि को ऐसा नीच काम करते देख चारों तरफ़ से लोग उनकी निन्दा करने लगे। अर्जुन को भी सात्यकि का यह काम अच्छा न लगा। मन ही मन भूरिश्रवा की प्रशंसा करते करते उन्होंने जयद्रथ की तरफ़ अपना रथ फेरा।

जिस समय अर्जुन ने, इसके पहले, कौरवों की सेना को पार किया था, उस समय उनके दोनों चक्र-रक्षक उनके साथ उस सेना-समुद्र को पार न कर सके थे। परन्तु पीछे से युधामन्यु और उत्तमौजा, दोनों ही, कौरवों की सेना को पार कर गये और अर्जुन को ढूँढ़ते हुए धीरे धीरे सेना के बाहरी भाग से आकर वहाँ उपस्थित हुए। भीम और सात्यकि दोनों के रथ टूट गये थे, इससे इन चक्र-रक्षकों को देख कर वे बड़े प्रसन्न हुए। वे इनके साथ एक ही रथ पर सवार होकर अर्जुन के पीछे पीछे चले। तब जयद्रथ की रक्षा करनेवाले दुर्योधन, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि वीर और स्वयं सिन्धुराज युद्ध के लिए तैयार हुए।

सारे दिन की चेष्टा के बाद जयद्रथ को सामने देख कर क्रोध से जलते हुए नेत्रों से अर्जुन मानों उन्हें जलाने लगे।

दुर्योधन ने कहा:—हे कर्ण! अर्जुन के साथ युद्ध करने का अब तुम्हें अवसर मिला है। अतएव ऐसा उपाय करो जिसमें जयद्रथ की जान बचे। सूर्य्यास्त होने में कुछ ही देरी है। इससे यदि हम लोग अर्जुन के युद्ध में विघ्न डाल सकें तो जयद्रथ की प्राणरक्षा भी हो जाय और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन के जल मरने से युद्ध में हमारी जीत भी हो जाय।

उत्तर में कर्ण ने कहा:—

महाराज! इसके पहले ही महाबलशाली भीमसेन के साथ युद्ध करने में हमारा शरीर बे-तरह घायल हो चुका है। ख़ैर, कुछ भी हो। आपही के लिए हम अब तक प्राण धारण किये हुए हैं। अतएव जहाँ तक हो सकेगा, हम अर्जुन को रोकने की चेष्टा करेंगे।

इतने में, जयद्रथ के पास तक पहुँच जाने के लिए, अर्जुन ने कौरवों की सेना का संहार आरम्भ कर दिया। वीरों की भुजायें और मस्तक काट काट कर उन्होंने रुधिर की नदियाँ बहा दीं। अन्त में जयद्रथ को अपने पीछे करके दुर्योधन, कर्ण, शल्य, कृप और अश्वत्थामा ने अर्जुन पर आक्रमण किया। इसके साथ ही कौरवों के अन्यान्य

वीरों ने भी, सूर्य्य को लाल रङ्ग धारण करते देख बड़े उत्साह में आकर, अर्जुन पर अनन्त बाण-वर्षा आरम्भ कर दी।

महावीर अर्जुन ने क्रोध में आकर पहले तो सबके आगे बढ़ कर युद्ध करनेवाले कर्ण के सारथि और घोड़ों को मार गिराया। फिर कर्ण के मर्म-स्थानों में बाण छेद कर उन्हें बे-तरह घायल किया। कर्ण का सारा शरीर लोहू से लदफद हो गया। उनका रथ बे-काम हो चुका था; इससे उन्हें अश्वत्थामा के रथ पर सवार होना पड़ा। तब अर्जुन अश्वत्थामा और मद्रराज के साथ युद्ध करने लगे। कौरवों ने इस बीच में बाणों की इतनी वर्षा की कि चारों तरफ़ अन्धकार छा गया। अर्जुन ने इस अन्धकार को दिव्यास्त्र द्वारा दूर कर दिया। इस प्रकार अपने शत्रुओं के प्राण और यश दोनों का नाश करके महावीर अर्जुन युद्ध के मैदान में साक्षात् मृत्यु के समान विचरण करने लगे।

इन्द्र के वज्र की प्रचण्ड गर्जना के समान गाण्डीव की टङ्कार सुन कर, तूफ़ान आने से क्षुब्ध हुए सागर की तरह कौरवों के सैन्य-दल में बे-तरह खलबली मच गई। चारों तरफ़ सेना तितर-बितर हो गई। परन्तु प्रधान प्रधान कौरव-वीरों ने जब देखा कि सूर्य्यास्त होने में अब देर नहीं है तब ख़ुशी के मारे वे फूल उठे और अपने अपने रथों को एक दूसरे से भिड़ा कर जयद्रथ की रक्षा करने में बड़ी तत्परता दिखाने लगे। ख़ूब जी कड़ा करके और ख़ूब मन लगा कर उन्होंने अर्जुन के बाणों का निवारण आरम्भ कर दिया। इससे महावीर अर्जुन को जयद्रथ पर आक्रमण करने का ज़रा भी मौक़ा न मिला।

इस संकट की अवस्था में अस्त होनेवाले सूर्य्य का बिम्ब बादलों में छिप गया। इससे कौरवों ने समझा कि दिन डूब गया। तब वे आनन्द के मारे उछलने और युद्ध में बे-परवाही करने लगे। उन्होंने सोचा, सूर्य्य तो अस्त हो ही गया; अब सावधानता रखने की क्या ज़रूरत ? उधर जयद्रथ भी आनन्द से फूल उठे और जिस रक्षित स्थान में थे उसे छोड़ कर छिपे हुए सूर्य्य की तरफ़ ख़ुशी ख़ुशी देखने लगे।

ठीक बात क्या है सो अकेले कृष्ण ही की समझ में आई। एक-मात्र उन्हीं ने जाना कि सूर्य्य अभी अस्त नहीं हुआ। इससे उन्होंने तत्काल अर्जुन से कहा:—

हे अर्जुन ! यथार्थ में सूर्य्य डूबा नहीं। ज़रा देर के लिए वह छिप भर गया है। इस मौक़े को तुम हाथ से न जाने दो। तुरन्त ही जयद्रथ के सिर को धड़ से अलग कर दो। इस समय इस काम को तुम अनायास ही कर सकते हो।

इतनी बात सुनते ही अर्जुन जयद्रथ के रथ के सामने तत्काल ही दौड़ पड़े। जो लोग जयद्रथ की रक्षा करते थे वे पहले की तरह सावधान तो थे ही नहीं। इससे जयद्रथ को घेर कर खड़े होने का उन्हें अच्छा अवसर न मिला। अर्जुन को क्रोध से भरे हुए आते देख सैनिक लोग भी डर गये और उन्हें घुस जाने के लिए राह दे दी। तब वे अभिमन्यु की मृत्यु के कारणीभूत जयद्रथ के पास पहुँच गये और अपना ही होंठ अपने ही दाँतों से काटते हुए एक अत्यन्त भीषण बाण छोड़ा। बाज़ जैसे किसी चिड़िया को लेकर उड़ जाता है वैसे ही गाण्डीव से छूटा हुआ वह बाण जयद्रथ के मस्तक को ले भागा।

इस बीच में बादल हट गया और सूर्य्य के लाल लाल बिम्ब का बचा हुआ अंश निकल आया। तब सबने देखा कि सूर्य्यास्त होने के पहले ही अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी।

उस समय जीत की सूचना देने के लिए कृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख ज़ोर से बजाया और भीम ने महा घोर सिंहनाद करके पृथ्वी-आकाश एक कर दिया। उसे सुन कर युधिष्ठिर समझ गये कि जयद्रथ अब जीते नहीं हैं। इससे उन्हें परमानन्द हुआ। बाजे बजवा कर उनकी ध्वनि से उन्होंने दिशाओं को कँपा दिया। इसके बाद अर्जुन को हृदय से लगा कर कृष्ण ने कहा:—

हे धनञ्जय! हम लोगों को अपना भाग्य सराहना चाहिए जो तुम जयद्रथ को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके। कौरवों की इस सेना में देवताओं के सेनापति खुद स्वामिकार्तिक भी यदि उतर पड़ते तो उन्हें भी व्याकुल होना पड़ता। तुम्हारे सिवा और किसी के भी हाथ से यह काम होने योग्य न था।

अर्जुन ने कहा:—हे कृष्ण! आपही की कृपा से हम इस कठिन प्रतिज्ञा को पूरी कर सके हैं। जिसके सहायक आप हैं उसकी जीत होने में आश्चर्य्य ही क्या?

इसके अनन्तर, धीरे धीरे रथ चला कर कृष्ण ने पाण्डव-सेना की तरफ़ लौटना आरम्भ किया। युधिष्ठिर के पास रथ पहुँचने पर कृष्ण रथ से उतर पड़े और अत्यन्त आनन्दित होकर युधिष्ठिर के पैर उन्होंने छुए। कृष्ण बोले:—

हे नर-श्रेष्ठ! हम लोगों के भाग्य से महावीर अर्जुन ने आज अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। शत्रु को मार कर आज वे अपनी महा भयङ्कर प्रतिज्ञा की फाँस से उद्धार हो गये।

कृष्ण के वचन सुन कर युधिष्ठिर भी रथ से उतर पड़े और कृष्णार्जुन को गले से लगा कर बोले:—

हे वीर! तुम्हें विजयी और प्रतिज्ञा से छूटे हुए देख कर हमें जो आनन्द हुआ है उसका वर्णन नहीं हो सकता। हे कृष्ण! तुम्हारी सहायता पाने पर कौन काम ऐसा है जो न हो सके?

इसके अनन्तर, पाण्डवों की सेना में सब कहीं आनन्द ही आनन्द छा गया। सब लोग आनन्द-सागर में यहाँ तक मग्न हो गये कि सायङ्काल होने पर भी युद्ध बन्द करने की किसी की भी इच्छा न हुई।

इधर जयद्रथ के मारे जाने से दुर्योधन का धीरज छूट गया। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। उनके चेहरे का रङ्ग फीका पड़ गया। बहुत ही दीन-वदन होकर, दाँत उखाड़े गये साँप की तरह, वे ठंडी साँसें लेने लगे। कुछ देर में द्रोण के पास जाकर उन्होंने कहा:—

हे आचार्य्य! हमारी तरफ़ होकर लड़नेवाले राजाओं का विनाश देखिए! जिन राजों ने हमें राज्य देने की इच्छा प्रकट की थी वे सब इस समय पृथ्वी पर सोये पड़े हैं। उनका बल—उनका ऐश्वर्य्य—कुछ भी हमारे काम न आया। हाय हाय! हमने अपना काम सिद्ध करने के लिए अपने इष्ट-मित्रों को मृत्यु के मुँह में झोंक दिया। अतएव हमारी बराबर कापुरुष—हमारी बराबर नालायक़—मनुष्य पृथ्वी की पीठ पर न होगा। गुरु महाराज! आपही ने हम लोगों की मौत बुलाई है। हमारे कारण ये सब राजा लोग जब नष्ट हो गये, और आप उनकी रक्षा न कर सके, तब हमारे जीते रहने से क्या प्रयोजन! जीने की अपेक्षा हमारे लिए अब मरना ही अच्छा है।

उत्तर में द्रोण ने कहा:—

हे दुर्योधन! अपने वचनरूपी बाणों से क्यों हमें व्यर्थ छेदते हो? हम तो तुमसे सदा ही से कहते आये हैं कि अर्जुन को जीत लेना असम्भव है। तीनों लोकों में हम जिसे सबसे बड़ा योद्धा समझते थे वही भीष्म इनके प्रभाव से शर-शय्या में पड़े मृत्यु की राह देख रहे हैं। फिर यदि हम तुम्हारी सेना की रक्षा न कर सकें तो इसमें हमारा क्या अपराध है? बेटा! जुआ खेलते समय शकुनि ने जो पाँसे चलाये थे वही पाँसे इस समय अर्जुन के हाथ में तीक्ष्ण बाण बन कर तुम्हारी सेना का नाश कर रहे हैं। अधर्म्म का फल हमेशा ही बुरा होता है; उससे कोई नहीं बच सकता। कुछ भी हो, पाण्डवों के साथ पाञ्चाल-सेना हम पर आक्रमण करने के लिए आ रही है। अतएव, तुम्हारे वाक्य-बाणों से पीड़ित होने पर भी, हम, इस समय, प्राणों की परवा न करके युद्ध करने जाते हैं। जहाँ तक हो सके तुम भी सेना की रक्षा के लिए कमर कसो।

यह कह कर, मन ही मन दुःखित द्रोण, पाण्डवों की सेना के सामने चले और युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। भीम और अर्जुन ने देखा कि आचार्य्य के बाणों से हमारी सेना बे-तरह पीड़ित हो रही है। इससे वे दौड़ पड़े और कौरवों की सेना में घुस कर द्रोणाचार्य्य पर बाण बरसाने लगे।

महा-भीषण संग्राम होने लगा। असंख्य वीर कट कट कर ज़मीन पर गिरने लगे। इस घोर युद्ध में जितनी तरह के शब्द सुन पड़ते थे, अर्जुन के गाण्डीव की टङ्कार का शब्द उन सबसे अधिक कलेजा कँपानेवाला था। भीमसेन धन्वा पर बाण रख कर धृतराष्ट्र की सन्तान को, वज्र के आघात से गिरे हुए पेड़ों की तरह, ज़मीन पर गिराने लगे। महा-धनुर्धारी सात्यकि ने भी अपना बल-विक्रम दिखाने में कोई कसर न की। उन्होंने अनेक प्रकार से शर-युद्ध करके वीरों के मस्तक, हाथियों की सूँड़, और घोड़ों की गरदनें काट गिराईं। युद्ध की रात एक तो यों ही भयावनी होती है। घायल वीरों, घोड़ों और हाथियों की चीत्कार के कारण उसने और भी अधिक भयानक रूप धारण किया।

युद्ध का यह हाल देख दुर्योधन ने कर्ण से कहा:—

हे मित्र-वत्सल! देखो, इन्द्र के समान पराक्रमी पाण्डव और पाञ्चाल लोग आनन्दित होकर किस तरह सिंहनाद कर रहे हैं। इस समय तुम्हीं हमारे पक्ष के योद्धाओं की रक्षा करो।

कर्ण ने कहा:—महाराज! हमारे जीते जी तुम्हें खेद करने का कोई कारण नहीं। पाण्डवों के साथ पाञ्चाल, केकय और यादव लोग जो ये सब इकट्ठे देख पड़ते हैं उनको जीत कर आज हम तुम्हें भारत का एकच्छत्रधारी राजा बनावेंगे।

यह बात कृपाचार्य्य को सहन न हुई। वे बोले:—

हे कर्ण! कुरुराज दुर्योधन के सामने तुमने अनेक बार अपने मुँह अपनी बड़ाई की है। परन्तु तुम्हारे पराक्रम का फल आज तक हमें देखने को नहीं मिला। तुम्हें डींग मारने का रोग सा हो गया है। महावीर अर्जुन की ग़ैरहाज़िरी में तो तुम बहुत पैतड़े बदला करते हो—बहुत घमण्ड की बातें कहा करते हो—पर उनके सामने वे सब बातें भूल जाते हो; फिर तुम्हारा गर्जन-तर्जन नहीं सुनाई पड़ता। जिस वीर पुरुष ने महादेव को प्रसन्न किया है उसकी बराबरी करने की किसमें शक्ति है?

कृपाचार्य्य की बात पर कर्ण को हँसी आई। उन्होंने कृपाचार्य्य से कहा:—

हे ब्राह्मण! समर-धुरन्धर वीरों के लिए अपने मुँह अपनी बड़ाई करना अनुचित

नहीं। आप अर्जुन को जितना ज्ञानवान् और गुणवान् समझते हैं, वे उतने या उससे भी अधिक हो सकते हैं। परन्तु, याद रहे, हमें इन्द्र ने एक ऐसी शक्ति दी है जो कभी निष्फल नहीं हो सकती। जिस पर वह चलाई जाती है उसके प्राण लिये विना वह नहीं रहती। इसी शक्ति के भरोसे हम कहते हैं कि आज हम अर्जुन को ज़रूर मारेंगे। अतएव हमारा गर्जन-तर्जन यथार्थ है। उसे आप व्यर्थ न समझिए। आप ब्राह्मण हैं और वृद्ध हैं। इसी से आज आप इस तरह हमारा अपमान कर सके हैं। नहीं तो मजाल थी जो हमारे विषय में आप ऐसे शब्द कहते। परन्तु, ख़बरदार, फिर इस तरह के अनुचित शब्द अपने मुँह से न निकालिएगा; नहीं तो हम तलवार से आपकी जीभ काट लेंगे।

अपने मामा कृपाचार्य्य के विषय में कर्ण को ऐसे कठोर वचन कहते सुन महा-तेजस्वी अश्वत्थामा ने तलवार निकाल ली और कर्ण की तरफ़ दौड़े:—

हे नराधम! अर्जुन ने तुम्हारी आँख के सामने ही जब सिन्धुराज जयद्रथ को यमपुर पठाया तब तुम्हारा बल-वीर्य्य कहाँ था? कुछ भी हो, आज हम तुम्हारी इस अशिष्टता और मूढ़ता का फल तुम्हें चखायें विना न रहेंगे।

अश्वत्थामा को तिरस्कार की दृष्टि से देख कर कर्ण ने दुर्योधन से कहा:—

महाराज! इस अधम और बुद्धिहीन ब्राह्मण का परित्याग कीजिए। हम इसे अपना भुज-बल अभी दिखाते हैं।

तब अश्वत्थामा ने कहा:—

हे सूतपुत्र! हमने तुम्हें क्षमा किया। अर्जुन ही तुम्हारा घमण्ड शीघ्र चूर करेंगे।

इसके बाद दुर्योधन ने समझा बुझा कर सबको शान्त किया। तब पाण्डवों के साथ कर्ण का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। इस समय बहुत रात हो गई थी। महा-घोर अन्धकार छाया था। इससे, द्रोण की आज्ञा के अनुसार, कौरवों के सेनाध्यक्षों ने मारे जाने से बची हुई सेना एकत्र करके एक व्यूह बनाया। तब आचार्य्य ने कहा:—

हे पैदल सेना के वीरो! तुम लोग अपने अपने अस्त्र-शस्त्र रख कर जलती हुई मशालें हाथ में लो।

यह देख कर पाण्डवों ने भी वैसा ही किया। फल यह हुआ कि युद्ध का वह महा-भयङ्कर मैदान जगमगा उठा और वीरों के हाथ में चमचमाते हुए तेज़ धारवाले हथियार बिजली की तरह अपनी दीप्ति प्रकाशित करने लगे। तब कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य

ने बाण-वर्षा करके पाण्डवों की सेना का नाश आरम्भ किया। अपनी सेना की बुरी गति होते देख युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहाः—

भाई! देखो, इस डरावनी रात में महा धनुर्द्धर कर्ण सूर्य्य के समान शोभित हो रहे हैं। हमारे योद्धा उनके प्रबल प्रताप को न सह कर हाहाकार कर रहे हैं। इससे इस समय समयोचित काम करना चाहिए।

अर्जुन ने कृष्ण से कहाः—

हे वासुदेव! साँप जैसे पैर का स्पर्श नहीं सह सकता वैसे ही युद्ध-स्थल में हम कर्ण का पराक्रम नहीं सह सकते। इससे बहुत जल्द हमारा रथ कर्ण के पास ले चलो।

इन्द्र ने जो निष्फल न जानेवाली शक्ति कर्ण को दी थी उसका हाल कृष्ण को मालूम था। इस बात को ध्यान में रख कर कृष्ण ने उत्तर दियाः—

हे अर्जुन! कई कारण ऐसे हैं जिससे इस समय तुम्हारा कर्ण के सामने जाना उचित नहीं। तुम्हारा पुत्र निशाचर घटोत्कच कर्ण की अच्छी तरह ख़बर ले सकता है। अतएव उसे ही यह काम सिपुर्द कीजिए।

कृष्ण की आज्ञा के अनुसार अर्जुन ने घटोत्कच को बुला कर कहाः—

बेटा! युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने का तुम्हारे लिए इस समय अच्छा मौक़ा आया है। राक्षसी माया आदि जो कुछ बल-पौरुष तुम्हारे पास हो उससे काम लेकर कर्ण का मुक़ाबला करो।

घटोत्कच ने कहाः—हे पिता! आपकी आज्ञा से हम कर्ण के साथ आज ऐसा युद्ध करेंगे जिसका स्मरण लोगों को बहुत दिनों तक बना रहेगा।

शत्रुओं के नाश में परम प्रवीण निशाचर घटोत्कच ने, इतना कह कर, कर्ण पर आक्रमण किया। दोनों में महा-घोर युद्ध होने लगा। कर्ण किसी तरह भी घटोत्कच से पार न पा सके। तब उन्होंने दिव्यास्त्रों से काम लेना आरम्भ किया। यह देख घटोत्कच ने राक्षसी माया रची। पल भर में भयङ्कर शस्त्र धारण किये हुए राक्षसों का एक बहुत बड़ा दल न मालूम कहाँ से अचानक उमड़ आया। घटोत्कच को बीच में डाल कर उसने पत्थरों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस समय दिन तो था नहीं, थी रात। और रात को राक्षस और भी प्रबल हो उठते हैं। अतएव इन राक्षसों ने कौरवों की सेना के नाकों दम कर दिया। सब वीर विकल हो उठे।

अकेले कर्ण नहीं घबराये। उन्होंने समझ लिया कि यह सारी राक्षसी माया है। अतएव उन्होंने उस माया को दिव्यास्त्र द्वारा दूर कर दिया। राक्षसों ने देखा कि यह

मायावी युद्ध से काम न चलेगा। तब उन्होंने अस्त्रों की वर्षा द्वारा कर्ण के संहार की चेष्टा की। अनन्त शर, शक्ति, शूल, गदा, चक्र आदि की मार खाकर कौरव-वीरों के होश उड़ गये। बहुत सेना मारी गई; जो बची वह भाग गई। घोड़े कट गये; हाथी घबरा कर तितर-बितर हो गये; पत्थरों की मार से रथ चूर हो गये।

कर्ण की भी बुरी दशा हुई। राक्षसों ने अस्त्र-शस्त्रों से उन्हें तोप दिया। तथापि वे मैदान में डटे ही रहे। उन्हें छोड़ कर कौरवों के पक्ष का एक भी वीर युद्ध-स्थल में न टिक सका। सब भाग निकले। कर्ण को स्थिर देख घटोत्कच को बड़ा क्रोध हुआ। उसने शतघ्नी की एक ऐसी वार की कि कर्ण के चारों घोड़े एक ही साथ मर कर ज़मीन पर गिर गये। कर्ण बिना रथ के हो गये। उस समय कर्ण ने देखा कि हम तो इधर रथहीन खड़े हैं, उधर हमारी सेना लड़ाई के मैदान में नहीं है। राक्षस घटोत्कच जीत के मद में मग्न हो रहा है, अब क्या करना चाहिए ? इस तरह से वे सोच ही रहे थे कि चारों ओर से कौरवों का दल बड़े ही कातर स्वर से इस प्रकार विनती करने लगा:—

हे सूत-नन्दन ! जान पड़ता है, कौरवों की सेना का आज ही जड़ से नाश हो जायगा। अतएव इन्द्र की दी हुई शक्ति चला कर तुम तुरन्त ही इस निशाचर का संहार करो। यह घोर और भयङ्कर रात बीत जाने पर अर्जुन को परास्त करने के लिए हमारे वीरों को आगे बहुत मौक़े मिल रहेंगे। इससे इस अमोघ शक्ति को उनके लिए व्यर्थ न रख छोड़ कर इससे इस राक्षस को इसी समय मार डालिए। इसे अब और अधिक देर तक जीता न रखिए।

इस महा-भयङ्कर रात में कर्ण अपने पक्षवालों की दुखभरी पुकार की उपेक्षा न कर सके। अर्जुन के मारने के लिए बहुत दिनों से बड़े यत्न से रक्खी हुई उस अमोघ शक्ति को उन्हें हाथ में लेना ही पड़ा। बस, उसका छूटना था कि उसने घटोत्कच के हृदय को फाड़ दिया और ऊपर आकाश की तरफ़ उड़ कर इन्द्र के पास लौट गई। कौरव लोग निशाचर घटोत्कच को मरा देख मारे आनन्द के सिंहनाद करने और शङ्ख बजाने लगे। दुर्योधन भी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कर्ण की यथोचित पूजा की और उन्हें अपने रथ में सवार करा कर सेना में चले गये।

परन्तु भीमसेन के पुत्र की मृत्यु के कारण पाण्डवों को शोक से व्याकुल देख कर भी कृष्ण आनन्द-प्रकाश करने लगे। उनके इस काम से पाण्डवों का दुःख दूना हो गया। उनके हृदय पर और भी अधिक चोट लगी। तब अर्जुन ने कृष्ण से कहा:—

हे वासुदेव ! पुत्र घटोत्कच की मृत्यु से हम लोग तो मारे शोक के विकल हो रहे हैं; आप क्यों ऐसे कुसमय में खुश हो रहे हैं ?

कृष्ण ने कहा:—हे अर्जुन ! इन्द्र की दी हुई महाशक्ति को छोड़ कर कर्ण ने आज बहुत ही अच्छा काम किया है। कर्ण के पास इस महा-अस्त्र के रहते साक्षात् यमराज भी उनका सामना नहीं कर सकते थे। महा-तेजस्वी कर्ण ने अपना कवच और कुण्डल देकर जिस दिन से इस शक्ति को प्राप्त किया था उसी दिन से उन्होंने इसे तुम्हारे मारने के लिए बड़े यत्न से रख छोड़ा था। हे पार्थ ! कर्ण के पास से उस शक्ति के चले जाने से आज तुम उन्हें मरा हुआ समझो। उसी से तुम्हें रोक कर हमने निशाचर घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने भेजा था। यह शक्ति तुम्हारी मृत्यु का कारण थी। अतएव, जब तक इससे बचने का उपाय हम नहीं कर सके तब तक न हमें निद्रा आई और न हमें किसी प्रकार का हर्ष ही हुआ। आज हमारा कौशल सफल हुआ—आज हमारी युक्ति कारगर हुई। इसी से हमें इस समय आनन्द हो रहा है।

कुछ भी हो, इस समय हमारी सेना हाहाकार करती हुई इधर उधर भाग रही है। जान पड़ता है, वीर-शिरोमणि द्रोण उस पर बड़ी निर्दयता से आक्रमण कर रहे हैं। अतएव, हे अर्जुन ! तुम द्रोण के आक्रमण से उसकी रक्षा करो।

इस पर युधिष्ठिर ने द्रोण पर धावा करने के लिए अपनी सेना को उत्साहित किया। सैनिक लोग मन ही मन द्रोण को जीतने का प्रण करके अर्जुन के साथ बड़े वेग से दौड़े। यह देख कर राजा दुर्योधन ने बड़े क्रोध में आकर द्रोणाचार्य की रक्षा के लिए बहुत से कौरव-वीरों को आज्ञा दी। किन्तु दोनों तरफ़ के वीरों के वाहन—हाथी और घोड़े—सारा दिन युद्ध करने के कारण बेहद थक गये थे; और रात अधिक बीत जाने से योद्धा-जनों को नींद भी आ रही थी। इससे वे लोग चेष्टाहीन काठ की तरह युद्ध करने लगे। उनकी यह दशा देख सेनापति अर्जुन ने ज़ोर से पुकार कर कहा:—

हे सैनिक वीरो ! रात बहुत बीत गई है। अँधेरा इतना हो गया है कि हाथ मारा नहीं सूझता। इसके सिवा तुम लोग थक भी बहुत गये हो। अतएव थोड़ी देर के लिए युद्ध बन्द करके यहीं लड़ाई के मैदान में सो जाव।

कौरवों के सेनापति द्रोण ने भी यह बात मान ली। इस पर कौरवों और पाण्डवों के सैनिक अर्जुन की प्रशंसा करके कोई रथ पर, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर और कोई ज़मीन पर लेट कर निद्रासुख लेने लगे।

इसके अनन्तर, नेत्रों को आनन्द देनेवाले पाण्डु-वर्ण चन्द्रमा ने पूर्व दिशा की

शोभा बढ़ा कर धीरे धीरे सारे संसार को अपनी चाँदनी से सफ़ेद रंग का कर दिया। उजेला होते ही सब लोग जाग उठे और पिछली रात में फिर युद्ध के लिए तैयार हो गये। तब द्रोणाचार्य्य के पास जाकर दुर्योधन ने कहा:—

हे आचार्य्य! पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिए आपने शत्रुओं को थकावट दूर करने का मौक़ा दे दिया। आप पाण्डवों की रक्षा कर रहे हैं। इसी से उनकी जीत होती जा रही है और हमारे बल-वीर्य्य का नाश। अब आप आज्ञा दें तो आज हम दुःशासन, कर्ण और मामा शकुनि को लेकर अर्जुन को मारें।

महावीर द्रोण को इस तरह के तिरस्कार-वाक्य सहन न हुए। उन्होंने क्रोध में आकर कहा:—

हे दुर्योधन! तुम बड़े ही निठुर और निर्दयी हो। जी-जान होम कर तुम्हारी भलाई करने की हम निरन्तर चेष्टा करते हैं। तिस पर भी तुम सन्देह करते हो। कुछ भी हो, इस शत्रुता के मूल कारण तुम्हीं हो। इससे अर्जुन का सामना करना तुम्हारा ही काम होना चाहिए। शकुनि निश्चय ही बड़े वीर हैं। वे अर्जुन को मारेंगे, इसमें आश्चर्य्य ही क्या है! हम पाञ्चाल लोगों को मार कर अपना कर्तव्य-पालन करेंगे; तुम अर्जुन से युद्ध करो।

इसके बाद कौरवों की सेना के दो भाग हुए। एक भाग द्रोणाचार्य्य के, दूसरा दुर्योधन और कर्ण के अधीन हुआ। पाण्डवों के पक्ष की सेना से फिर घोर युद्ध आरम्भ हो गया। तब युधिष्ठिर ने कहा:—

हे केशव! अभिमन्यु की मृत्यु के सम्बन्ध में जयद्रथ का बहुत ही थोड़ा अपराध था। किन्तु, अर्जुन ने उन्हें मार कर कत्ल की। हमारी समझ में तो यदि किसी प्रधान शत्रु को मारने की सबसे अधिक ज़रूरत है तो अर्जुन को पहले द्रोण और कर्ण को मारना चाहिए। इन्हीं की मदद से दुर्योधन अब तक युद्ध कर रहे हैं।

यह कह कर युधिष्ठिर ने द्रोण पर आक्रमण किया। और और वीरों के साथ अर्जुन उनकी रक्षा करने लगे। सबसे आगे द्रुपद और विराट द्रोण पर दौड़े। किन्तु द्रोण ने बिना विशेष परिश्रम के ही उनके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रों के टुकड़े टुकड़े कर डाले। तब विराट ने एक तोमर और द्रुपद ने एक प्रास चलाया। इस पर द्रोण बेहद क्रुद्ध हुए और उन दोनों हथियारों को खण्ड खण्ड करके अपने तीक्ष्ण बाण द्वारा द्रुपद और विराट दोनों को एक ही साथ यम के दरबार में हाज़िरी देने भेज दिया।

यह देख कर द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने प्रतिज्ञा की:—

यदि द्रोण आज हमारे हाथ से बच जायँ तो हम मानों क्षत्रियों के लोक से भ्रष्ट हुए।

तब एक तरफ़ से पाञ्चाल लोगों ने और दूसरी तरफ़ से अर्जुन ने द्रोणाचार्य्य पर शस्त्र चलाना आरम्भ किया। परन्तु देवराज इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जिस तरह दानवों का संहार किया था, उसी तरह वीरवर द्रोणाचार्य्य पाञ्चाल लोगों के प्राण-हरण करने लगे। तब पाण्डवों ने कहा:—

जब आचार्य्य पर हाथ उठाने के लिए किसी तरह अर्जुन राज़ी नहीं तब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि हमें आचार्य्य से हार खानी पड़ेगी।

यह सुन कर कृष्ण ने कहा:—

हे अर्जुन! तुम्हारे सिवा और किसी में इतना बल-पराक्रम नहीं कि द्रोणाचार्य्य को मार सके। अतएव यदि और किसी के हाथ से आचार्य्य का नाश करना होगा तो बिना कोई कौशल रचे काम न चलेगा। यदि आचार्य्य के कान में यह बात पड़े कि अश्वत्थामा मारे गये तो वे ज़रूर ही शोक से व्याकुल होकर निश्चेष्ट हो जायँगे। इससे कोई उनसे कहे कि अश्वत्थामा मारे गये।

इस बात पर अर्जुन ने कान ही न दिया—उन्होंने उसे सुना ही नहीं। परन्तु, कृष्ण के कहने से युधिष्ठिर ने उनकी सलाह बड़े कष्ट से किसी तरह मान ली। खोज करने से मालूम हुआ कि अवन्तिराज के पास अश्वत्थामा नाम का एक हाथी है। अतएव सब बातों का निश्चय हो जाने पर भीमसेन ने इस हाथी को मार डाला। फिर वे मन ही मन बहुत लज्जित होकर द्रोण के पास गये और अश्वत्थामा मारे गये, अश्वत्थामा मारे गये—कह कर चिल्लाने लगे।

यह महा-दारुण समाचार सुन कर शोक के मारे द्रोणाचार्य्य विकल और विह्वल हो उठे। किन्तु, अश्वत्थामा को परम पराक्रमी समझ कर पुत्र की मृत्यु पर उन्हें विश्वास न हुआ। इससे धीरज धर कर वे धृष्टद्युम्न के साथ फिर युद्ध करने लगे। उन्होंने मन में कहा कि यदि पुत्र के मरने की बात सच होगी तो उसका समर्थन और भी कोई ज़रूर ही करेगा। यह दशा देख कर कृष्ण ने फिर युधिष्ठिर से कहा:—

हे राजन्! यदि क्रोध के वशीभूत होकर और आधा दिन आचार्य्य इसी तरह युद्ध करेंगे तो निश्चय ही तुम्हारी सारी सेना मारी जायगी। अतएव तुम्हें अश्वत्थामा के मरने का समाचार फिर द्रोण को सुनाना चाहिए। बिना तुम्हारे ऐसा किये सेना को बचाने और द्रोण को मारने का और कोई उपाय नहीं। प्राण बचाने के लिए झूठ

बोलने से पाप नहीं होता। भीम की बात पर आचार्य्य को विश्वास नहीं। किन्तु यदि तुम कहोगे तो ज़रूर विश्वास आ जायगा।

युधिष्ठिर ने सोचा, भावी नहीं टलती—जो होने को होता है वह हुए बिना नहीं रहता। उन्होंने यह भी देखा कि आचार्य्य धर्म्म अथवा अधर्म्म का विचार न करके बड़ी ही निर्दयता से सेना का संहार कर रहे हैं। इससे सब बातों का विचार करके कृष्ण के कहने के अनुसार काम करने को वे तैयार हो गये। किन्तु जब वे द्रोण के पास गये तब झूठ बोलने से बे-तरह डरे। उधर जीतने की अभिलाषा भी उनके हृदय में बड़े ज़ोर से जगी। अतएव पाप के डर और जीत की इच्छा के झूले में वे झोंके खाने लगे। अन्त में उन्हें एक युक्ति सूझी। अश्वत्थामा मारे गये—यह बात साफ़ साफ़ ज़ोर से कह कर—हाथी शब्द उन्होंने धीरे से कहा। पहला वाक्य तो द्रोण ने सुन लिया; परन्तु पिछला शब्द उन्हें न सुन पड़ा। इस तरह भीम की बात का युधिष्ठिर के द्वारा समर्थन होने पर द्रोणाचार्य्य ने समझा कि अश्वत्थामा सचमुच ही मारे गये। इससे पुत्र-शोक के कारण उनका सारा शरीर सुन्न हो गया और उनकी चेतना-शक्ति प्रायः जाती रही।

ऐसा अच्छा मौक़ा हाथ आया देख तलवार को घुमाते हुए धृष्टद्युम्न रथ से कूद पड़े। उस समय अर्जुन को आचार्य्य पर दया आई। ख़बरदार, आचार्य्य पर हाथ मत छोड़ना—ख़बरदार आचार्य्य को मत मारना—कह कर चिल्लाते हुए धृष्टद्युम्न को रोकने के लिए वे उनकी ओर दौड़े। किन्तु उनके पहुँचने के पहले ही द्रुपद-नन्दन धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य्य के पास पहुँच गये और उनके सिर को धड़ से अलग करके ज़मीन पर गिरा दिया। यह देख कर भुजा पर भुजा को मार भीमसेन ने धरती को कँपा दिया। फिर परमानन्दित होकर धृष्टद्युम्न को हृदय से लगा कर उन्होंने कहाः—

हे शत्रुमर्दन! कर्ण और दुर्योधन की भी यही दशा होने पर हम तुम्हें समर-विजयी कह कर फिर गले से लगावेंगे।

इसके अनन्तर प्रति दिन के नियम के अनुसार रात होने पर सञ्जय धृतराष्ट्र के पास गये और आचार्य्य के मारे जाने का हाल उनसे कहा। उस महा-शोककारक समाचार को सुन कर धृतराष्ट्र को इतना दुःख हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। वे बे-तरह कातर और विकल हो उठे। पुत्रों की जीत की आशा उन्होंने छोड़ दी। मानों उनके प्राण निकल से गये। कुछ देर तक वे काठ की तरह चेष्टा-हीन बैठे रहे। शोक का वेग ज़रा कम होने पर काँपते हुए कण्ठ से उन्होंने पूछाः—

हे सञ्जय ! द्रोणाचार्य्य तो बड़े विचित्र योद्धा थे। शस्त्र चलाने में जैसे वे सिद्ध-हस्त और फुरतीले थे वैसा एक भी योद्धा इस संसार में नहीं देख पड़ता। फिर धृष्टद्युम्न उन्हें किस तरह मार सके ? हमारे मूढ़ पुत्रों को जिनके बल-विक्रम का इतना भरोसा था उन्हीं शूर-शिरोमणि उग्रकर्म्मा द्रोणाचार्य्य ने दीन दुर्योधन के लिए प्राण छोड़ दिया ! इस समय हम बल-पौरुष को व्यर्थ और भाग्य ही को प्रधान समझते हैं।

इसके उत्तर में द्रोणाचार्य्य के युद्ध और मृत्यु का वर्णन विस्तारपूर्वक करके सञ्जय ने कहा।

इस प्रकार महात्मा द्रोणाचार्य्य ने दुर्योधन के कल्याण की इच्छा से पाण्डवों की दो अक्षौहिणी सेना को मार कर अनेक बड़े बड़े योद्धाओं को यमपुरी भेजा, और कितने ही महारथी वीरों का मानमर्दन किया। ऐसे, न मालूम कितने, महा-कठिन काम करके, सब लोगों को दारुण दुःख देकर, प्रलय-काल के जलते हुए सूर्य्य की तरह परम प्रतापी आचार्य्य द्रोण सदा के लिए इस लोक से अस्त हो गये। हमें धिक्कार है जो यह सब अपनी आँखों से देख कर भी हम अब तक जीते हैं।

५—अन्त का युद्ध

महा-पराक्रमी द्रोणाचार्य्य ने पाँच दिन तक घोर युद्ध करके, इस नाशवान् देह को छोड़ ब्रह्मलोक का रास्ता लिया। दुर्योधन आदि नरेश अत्यन्त दुखी हो कर शोक से व्याकुल अश्वत्थामा को घेर कर बैठ गये और उन्हें समझाने बुझाने लगे। इस तरह रोते-धोते और विलाप करते वह लम्बी रात बीत गई। तदनन्तर राजा दुर्योधन ने कहा:—

हे बुद्धिमान् नरपतिगण ! जो कुछ होने को था हो गया। अब आप लोग अपनी अपनी राय दीजिए कि इस समय क्या करना चाहिए।

कुरुराज दुर्योधन के मुँह से यह बात सुन कर सिंहासनों पर बैठे हुए राजा लोगों ने अनेक तरह की बातें कह कर युद्ध जारी रखने की सलाह दी। किसी ने भौंहें टेढ़ी कीं; किसी ने भुजा उठाई; किसी ने ओठ फरकाये। इस प्रकार अङ्ग-भङ्गी और वचन, दोनों, के द्वारा सबने यही सलाह दी कि युद्ध बन्द न करना चाहिए। यह देख आचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा ने कहा:—

हे वीरो अपने प्रभु की हृदय से शुभ-कामना करनेवाले देवतुल्य जिन महारथी वीरों ने हमारे वश में होकर युद्ध किया उनमें से अनेक वीर इस समय मर चुके हैं। तथापि, इस इतनी बात से जीत की आशा न छोड़नी चाहिए। अच्छी नीति और अच्छी युक्ति से दैव भी अपने अनुकूल कर लिया जा सकता है। अतएव, आइए, हम लोग सर्वगुण-सम्पन्न, अस्त्रविद्या के उत्तम ज्ञाता, महा-योद्धा कर्ण को सेनापति के पद पर नियुक्त करके शत्रुओं का नाश करें। विना परिश्रम किये ही वे युद्धस्थल में पाण्डवों को परास्त कर सकेंगे।

अश्वत्थामा के ये बड़े ही प्रीति-जनक वाक्य सुन कर दुर्योधन को परमानन्द हुआ। भीष्म और द्रोणाचार्य्य की मृत्यु के बाद उनकी सारी आशा—उनका सारा भरोसा—कर्ण ही के ऊपर रह गया था। अतएव अश्वत्थामा के वचन सुन कर दुर्योधन का शोक बहुत कुछ कम हो गया। वे बोले:—

हे कर्ण! हम तुम्हारे बलवीर्य्य को अच्छी तरह जानते हैं। हम यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि हम पर तुम्हारी कितनी प्रीति है। हमारे सेनापति महारथ भीष्म और द्रोणाचार्य्य मारे गये हैं। इससे इस समय तुम्हें छोड़ कर हमारे लिए और कोई गति नहीं। तुम उन लोगों की भी अपेक्षा अधिक योग्य सेनापति होगे। वे दोनों महा-धनुर्द्धर बूढ़े वीर पेट से अर्जुन का भला चाहते थे। पितामह होने के कारण भीष्म ने दस दिन तक पाण्डवों की रक्षा की। उस समय तुम युद्ध से पराङ्मुख थे—भीष्म के जीते हथियार न उठाने की तुमने शपथ खाई थी—इसीसे अन्त में वे मारे गये। पाण्डवों को अपना शिष्य समझ कर आचार्य्य भी उन पर कृपा करते थे। हमें विश्वास है कि इस समय तुम्हारे द्वारा हमारी ज़रूर जीत होगी। अतएव तुम सेनापति के पद को स्वीकार करो।

दुर्योधन की बात सुन कर महावीर कर्ण ने कहा:—

हे कुरुराज! हमने पहले ही तुम्हें कह रक्खा है कि पाण्डवों को हम बन्धु-बान्धवों समेत परास्त करेंगे। अतएव तुम्हारी आज्ञा के अनुसार सेनापति के पद को हम इस समय ज़रूर ही ग्रहण करेंगे। तुम अपने मन में अपने शत्रुओं को अब निश्चय ही मरा हुआ समझो।

तब जीत की अभिलाषा से उत्साहित हुए राजों को साथ लेकर दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाने की तैयारी की। उन्होंने सोने और मिट्टी के कलश, हाथी, गैंडे और बैल के सींग, अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य तथा और भी बहुत तरह की सामग्री

मँगा कर, रेशमी बहुमूल्य वस्त्र पहने और ऊँचे आसन पर बैठे हुए महावीर कर्ण को विधि-पूर्वक सेनापति बनाया।

इसके अनन्तर, थोड़ी रात रह जाने पर, तुरही आदि बाजे बजा कर कर्ण के कहने से उन्होंने सेना को तैयार होने के लिए आज्ञा दी। उस समय महा-धनुर्द्धर कर्ण को अन्धकार का नाश करनेवाले सूर्य्य की तरह रथ पर बैठा देख कौरवों को भीष्म, द्रोण तथा और और वीरों के मारे जाने का दुःख भूल गया।

वीर-श्रेष्ठ कर्ण ने बड़े ज़ोर से शङ्ख बजा कर योद्धाओं के उत्साह को बढ़ाया। वे लोग शीघ्र ही युद्ध के लिए तैयार हो गये। तब कर्ण ने मकरव्यूह—मगर के आकार का एक व्यूह—बनाया। इस व्यूह के मुँह की जगह खुद कर्ण हुए; दोनों आँखों की जगह शकुनि और उलूक हुए; मस्तक की जगह अश्वत्थामा हुए; कमर की जगह बड़े बड़े वीरों को अपने चारों तरफ़ करके दुर्योधन हुए; और गर्दन की जगह धृतराष्ट्र के अन्यान्य पुत्र हुए। रहे चारों पैर, सो एक की जगह नारायणी सेना से घिर कर कृतवर्म्मा विराजमान हुए; दूसरे की जगह दाक्षिणात्य सेना लेकर कृपाचार्य्य विराजमान हुए; तीसरे और चौथे की जगह महावीर त्रिगर्त्तराज और मद्रराज शल्य अपनी अपनी सेनासमेत विराजमान हुए।

नर-श्रेष्ठ कर्ण के इस तरह युद्ध के लिए तैयार होने पर युधिष्ठिर ने अर्जुन की तरफ़ देख कर कहा:—

भाई! यह देखो अद्भुत वीर कर्ण ने कौरवों की सेना को कैसे कौशल से खड़ा किया है। कैसे चुने हुए वीर उन्होंने उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किये हैं। परन्तु, कौरवों के श्रेष्ठ योद्धा सब मारे जा चुके हैं; इससे तुम्हारी जीत होने में हमें कोई सन्देह नहीं। तुम अब युद्ध करके आज बारह वर्ष से हमारी छाती में गड़े हुए काँटे को निकालो। कौरवों ने जो व्यूह बनाया है उसके जवाब में पहले तुम्हें किसी अच्छे व्यूह की रचना करनी चाहिए।

बड़े भाई की बात सुन कर अर्जुन ने अधकटे चन्द्रमा के आकार का व्यूह बनाया। उसकी बाईं तरफ़ भीमसेन, दाहिनी तरफ़ महा-धनुर्द्धर धृष्टद्युम्न, बीच में अर्जुन से रक्षा किये गये धर्म्मराज, और पीछे की तरफ़ नकुल तथा सहदेव विराजमान हुए।

सब हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का वह कुरु-पाण्डव-सेना-समुद्र उमड़ कर परस्पर भिड़ गया। एक वीर दूसरे पर प्रहार करने लगा। योद्धा लोग अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों द्वारा नर-मस्तक काट काट कर पृथ्वी को पाटने लगे। धीरे धीरे बड़े बड़े महारथी समर

में एक दूसरे के सामने निकल आये और बहुत तरह के द्वैरथ-युद्ध उन्होंने आरम्भ कर दिये। अन्त में कर्ण इतने प्रबल हो उठे और उन्होंने इतनी वीरता दिखाई कि कोई भी उन्हें रोकने को समर्थ न हुआ। उनके विषम बाणों से छिद कर हाथियों के समूह के समूह इतने व्याकुल हो उठे कि महा भीषण चिग्घाड़ मार कर चारों तरफ़ दौड़े दौड़े फिरने लगे। पैदल सेना की दुर्दशा तो कुछ पूछिए ही नहीं। उसके तो दल के दल मर मर कर ज़मीन पर गिरने लगे।

अपनी सेना की ऐसी दुर्गति देख नकुल से न रहा गया। उन्होंने कर्ण पर आक्रमण करके उनके सारथि को बाण से वेध दिया। इस पर वीर-शिरोमणि कर्ण के कोप की सीमा न रही। उन्होंने पहले की भी अपेक्षा अधिक भयानक मूर्ति धारण की और सैकड़ों शरों से नकुल को तोप कर उनके धनुष को काट गिराया। जब तक नकुल दूसरा धनुष लें तब तक कर्ण ने उनके सारथि और घोड़ों को मार कर अस्त्र-शस्त्र-समेत उनके रथ के टुकड़े टुकड़े कर डाले। नकुल बिना रथ और शस्त्रों के हो गये। इससे लाचार होकर उन्होंने भागने की ठानी। पर सूत-पुत्र कर्ण ने हँस कर उनका पीछा किया और अपने धनुष को उनके गले में डाल कर खींच लिया। इससे नकुल भाग न सके; उनका गला घुटने लगा; वे वहीं खड़े रह गये। तब कर्ण ने उनसे कहा:—

हे माद्री-नन्दन! तुम हमारे साथ युद्ध करने योग्य नहीं। तुम्हें ऐसे साहस का काम न करना चाहिए था। ख़ैर, अब लज्जित होने से क्या है; किन्तु महा-पराक्रमी कौरवों के साथ फिर कभी युद्ध करने की चेष्टा न करना।

महावीर कर्ण यदि चाहते तो नकुल को उसी क्षण मार डालते; परन्तु कुन्ती से उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी उसे याद करके नकुल को उन्होंने छोड़ दिया। उन्हें छोड़ कर कर्ण ने पाञ्चाल लोगों पर आक्रमण किया और चक्र की तरह चारों तरफ़ घूम घूम कर उनका नाश करने लगे। कुछ ही देर में कर्ण ने पाञ्चाल लोगों के रथों के पहियों, आरों और ध्वजाओं आदि को तोड़ ताड़ डाला। तब जीते बचे हुए रथी लोगों को उन्हीं टूटे रथों में डाल कर उनके सारथि भगा ले चले।

इस प्रकार प्रचण्ड पराक्रमी कर्ण के बाणों की मार से पाण्डवों की सेना के योद्धाओं की दुर्गति हो गई। अब तक अर्जुन दूसरी जगह संसप्तक लोगों के साथ युद्ध कर रहे थे। पाण्डव-वीरों को बे-तरह भयभीत होकर भागते देख कृष्ण ने अर्जुन से कहा:—

हे धनञ्जय! तुम यह क्या खेल सा करके समय को वृथा नष्ट कर रहे हो। इन संसप्तक लोगों का बहुत जल्द नाश करके कर्ण के मारने की चेष्टा करो।

कृष्ण की बात सुन कर महावीर अर्जुन उत्तेजित हो उठे और दानवों के मारने-वाले इन्द्र की तरह बल-विक्रम दिखला कर बचे बचाये सम्मक लोगों पर टूट पड़े। उन्होंने इस फुरती से उन लोगों को मारना आरम्भ किया कि कब उन्होंने तरकस से बाण खींचा, कब धनुष पर चढ़ाया, और कब छोड़ा—यह सब व्यापार बहुत ध्यान से देखने पर भी किसी को न दिखाई दिया। अर्जुन के हाथ की ऐसी आश्चर्य-जनक सफ़ाई देख कृष्ण को भी बड़ा कौतूहल हुआ।

इसके अनन्तर वहाँ की सारी कौरव-सेना के मारे जाने पर कर्ण के वध का मन ही मन निश्चय करके अर्जुन उनकी तरफ़ दौड़े। रास्ते में अश्वत्थामा और दुर्योधन ने उन्हें रोकने की चेष्टा की; किन्तु देखते देखते अर्जुन ने उनके सारथि, घोड़े और धनुष काट-कूट डाले। इससे वे लोग अर्जुन को एक क्षण भर भी राह में न रोक सके।

क्रोध से भरे हुए कर्ण जहाँ पर पाण्डवों की सेना का तहस नहस कर रहे थे वहाँ पहुँच कर अर्जुन ने हँसते हुए बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन के बाणों ने कर्ण के बाणों को व्यर्थ कर दिया। उन्होंने इतने बाण बरसाये कि आकाश में जिधर देखो उधर अर्जुन के बाण ही बाण देख पड़ने लगे। अर्जुन के बाणों ने धीरे धीरे ऐसा विकराल रूप धारण किया कि वे मुसल की तरह, परिघ की तरह, शतघ्नी की तरह, और अत्यन्त कठोर वज्र की तरह, गिरने लगे। कौरवों की सेना का भीषण नाश आरम्भ हो गया। उनके सैनिक मारे डर के आँखें बन्द करके इधर उधर भागने और व्याकुल होकर चिल्लाने लगे।

इसी समय भगवान् भास्कर अस्ताचल पर पहुँच गये। युद्ध के मैदान में इतनी धूल उड़ी कि उसने सायङ्काल के अन्धेरे को और भी घना कर दिया; कुछ भी न सुझाई पड़ने लगा। कौरवों के महारथी डरे कि कहीं फिर भी रात को युद्ध न जारी रहे। इससे अपने अपने दल को लेकर उन्होंने रणभूमि से चल दिया। लाचार होकर सेनापति कर्ण को युद्ध बन्द करना पड़ा। पाण्डव लोग जीत की ख़ुशी में शत्रुओं की हँसी और कृष्णार्जुन की स्तुति करते करते अपने अपने डेरों में गये।

दूसरे दिन महाबली कर्ण दुर्योधन के पास जाकर बोले:—

महाराज! आज हम महावीर अर्जुन के साथ आख़िरी युद्ध करेंगे। अनेक कामों में लगे रहने से आज तक हम दोनों परस्पर एक दूसरे के सामने रथ खड़ा करके द्वैरथ युद्ध नहीं कर सके। आज या तो हम उन्हें मारेंगे, या वे हमारा संहार करेंगे। अर्जुन से हम कई बातों में कम हैं। इस कमी को हमें इस समय स्वीकार कर लेना चाहिए। अर्जुन का धन्वा दिव्य है; उनके दोनों तरकस कभी ख़ाली नहीं होते, सदा भरे ही

रहते हैं; अग्नि का दिया हुआ उनका रथ कभी टूट नहीं सकता; उनके घोड़े हवा की तरह तेज़ जानेवाले हैं; और उनके सारथि खुद कृष्ण हैं। यदि हमें योग्य सारथि मिल जाय तो और बातों में अर्जुन से कम होने पर भी हम उनके साथ युद्ध करने में ज़रा भी भयभीत न हों। अतएव, रथ हाँकने में कृष्ण की बराबरी करनेवाले शूर-शिरोमणि मद्रराज को हमारा सारथि बनने के लिए राज़ी कीजिए और आज्ञा दीजिए कि हथियारों से भरे हुए छकड़े हमारे पीछे पीछे चलें। ऐसा होने से हम अर्जुन से अधिक हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं।

राजा दुर्योधन यह सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। कर्ण का यथोचित सत्कार करके उन्होंने कहा:—

हे कर्ण! तुमने जो कुछ कहा हम वही करेंगे।

यह कह कर दुर्योधन, महारथी मद्रराज के पास गये। उनके साथ बहुत सी प्रीतिपूर्ण बातें करके बड़ी नम्रता से उन्होंने कहा:—

महाराज! आप सत्यव्रत हैं—सत्य को छोड़ कभी असत्य का आसरा नहीं लेते। आपके सारे काम शत्रुओं के दहलानेवाले होते हैं। इसी से सारे वीरों में से कर्ण ने आपही को एक काम के लिए चुना है। उसी के विषय में हम आपसे निवेदन करने आये हैं। हम सिर झुका कर अधीनतापूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे कहने से, शत्रुओं के संहार के निमित्त, आप कर्ण का सारथ्य करें—उनका रथ हाँकें। आपके इस काम से हमारी अवश्य जीत होगी। सारथि का काम करने में केवल आप ही कृष्ण की बराबरी कर सकते हैं। इससे यदि आप कर्ण के रथ के घोड़ों की रास अपने हाथ में लेंगे तो वे अनायास ही अर्जुन को परास्त कर सकेंगे। पाण्डव लोगों की संख्या बहुत थोड़ी होने पर भी उन्होंने हमारी अधिकांश सेना नष्ट कर दी है। अब ऐसा उपाय कीजिए जिसमें बची हुई सेना न मारी जाय।

महावीर शल्य ने युधिष्ठिर से जो प्रतिज्ञा की थी उसका उन्हें स्मरण हो आया। दुर्योधन के बहुत कहने सुनने से उन्होंने कर्ण का सारथि होना तो स्वीकार कर लिया; पर उसके साथ ही उन्होंने एक शर्त भी की। वे बोले:—

हे कुरुराज! तुम जो हमें कृष्ण के बराबर समझते हो इससे हमें बड़ी खुशी हुई है। तुम्हारी जो यही इच्छा है तो सूत-पुत्र कर्ण का सारथि होना हमें स्वीकार है। परन्तु एक बात है। सारथि का काम करते समय जो हमारे जी में आवेगा हम कर्ण को

कहेंगे। ऐसा करने से वे हमें न रोक सकेंगे। यह शर्त तुम्हें और कर्ण दोनों को माननी होगी।

कर्ण और दुर्योधन ने शल्य की यह शर्त मंज़ूर कर ली। तब शल्य ने—जय हो!—कह कर कर्ण का रथ तैयार किया और तुरन्त ही उसे उनके पास ले आये। महावीर कर्ण ने उस रथ की विधिपूर्वक पूजा और प्रदक्षिणा की। फिर सूर्य की उपासना करके पास ही खड़े हुए मद्रराज को रथ पर सवार होने के लिए आज्ञा दी। तब महातेजस्वी शल्य उस रथ पर इस तरह जा बैठे जैसे सिंह किसी ऊँचे पर्वत पर चढ़ जाता है। वीरवर कर्ण भी उस रथ पर सवार होकर मेघों के बीच सूर्य की तरह शोभायमान हुए। उस समय युद्ध के लिए तैयार हुए उस शूर-वीर से दुर्योधन ने कहा:—

हे कर्ण! महारथी भीष्म और द्रोण से युद्ध में जो बात नहीं हो सकी वही बात—वही महा-कठिन काम—आज तुम, सारे धनुर्द्धारियों के सामने, कर दिखाओ। अङ्ग-राज! तुम्हारी जीत हो! तुम्हारा मङ्गल हो! तुम्हारा प्रस्थान शुभदायक हो!

इसके अनन्तर, कौरवों की सेना में मेघों की गर्जना के समान हज़ार तुरही और दस हज़ार भेरी का महागम्भीर शब्द होने लगा। इससे पाण्डवों की निद्रा भङ्ग हुई। उन्होंने जाना कि कर्ण युद्ध के लिए रवाना हुए। कर्ण ने शल्य से कहा:—

हे मद्रराज! रथ चलाइए; अब देर न कीजिए; हम बहुत जल्द पाण्डवों को परास्त करेंगे। अर्जुन को हम अभी दिखा देंगे कि हमारी भुजाओं में कितना बल है। दुर्योधन को जिताने के लिए आज हम ऐसे तेज़ बाणों की वर्षा करेंगे कि पाण्डव भी याद करेंगे।

कर्ण की बात सुन कर शल्य कहने लगे:—

हे सारथि के बेटे! प्रत्यक्ष इन्द्र को भी जिनके डर से कँपकँपी छूटती है उन्हीं महा-धनुर्धारी और सब शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता पाण्डवों की तुम किस बिरते पर अवज्ञा करते हो? युद्ध के मैदान में जब तुम वज्र के कड़ाके के समान अर्जुन के गाण्डीव की महा-भीषण टङ्कार सुनोगे, जब तुम महाबली भीमसेन के हाथ से कौरवों को कट कट कर ज़मीन पर गिरते देखोगे, और जब नकुल-सहदेव को साथ लिये धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर के अनगिनत बाण आकाश-मण्डल में घन-घटा की तरह छा जायँगे; तब तुम्हारे मुँह से इस तरह की बातें न निकलेंगी।

मद्रराज की बात को सुनी अनसुनी करके कर्ण ने फिर उन्हें रथ हाँकने की आज्ञा दी। शल्य ने कर्ण की आज्ञा पालन की। अन्धकार का नाश करके सूर्य्य जैसे उदित होता है उसी तरह शल्य के द्वारा चलाया गया कर्ण का वह सफ़ेद घोड़ोंवाला रथ शत्रुओं

का संहार करते हुए दौड़ने लगा। तब महावीर कर्ण परम प्रसन्न होकर पाण्डव-वीरों से कहने लगे:—

हे वीर-गण ! तुम लोगों में से जो कोई हमें अर्जुन को दिखा देगा वह जो कुछ माँगेगा हम वही देंगे।

कर्ण बराबर यह बात कहते हुए समुद्र से निकला हुआ अपना अच्छे सुरवाला शङ्ख बजाने लगे। यह देख कर कुरु-राज दुर्योधन के हर्ष का ठिकाना न रहा। वे कर्ण के पीछे पीछे चले। किन्तु महावीर शल्य उनका ठट्ठा करने लगे। वे बोले:—

हे सूत-पुत्र ! तुम्हें किसी को कुछ भी देकर अपना धन व्यर्थ न फूँकना होगा। तुम्हें बहुत जल्द अर्जुन दिखाई देंगे। यह तुम्हारा लड़कपन अथवा नासमझी है जो तुमने कृष्णार्जुन के मारने का सङ्कल्प किया है। क्या तुम्हारा कोई भी इष्ट-मित्र और बन्धु-बान्धव ऐसा नहीं है जो तुम्हें इस समय इस आग में गिरते देख रोके ? जब तुम्हें भले बुरे का ज्ञान ही नहीं रहा तब निश्चय ही तुम्हारे जीवन के दिन बीत चुके। गले में पत्थर बाँध कर समुद्र पार करने, अथवा पहाड़ की चोटी से कूद कर उससे उतरने, के समान तुम्हारी यह कृष्णार्जुन के मारने की इच्छा महा अनर्थ करनेवाली है। यदि तुम अपना भला चाहते हो तो अपने योद्धाओं के दल का एक व्यूह बनाओ और उनसे कहो कि वे तुम्हारी रक्षा करें। इस प्रकार उनसे रक्षित हो कर तुम अर्जुन के साथ युद्ध करो। यह न समझो कि हम तुमसे द्वेष करते हैं; नहीं, दुर्योधन के भले के लिए ही हम तुमसे ऐसा कहते हैं।

कर्ण ने कहा:—हे शल्य ! हमें अपने भुज-बल पर पूरा भरोसा है। हमने अपने बल का अच्छी तरह विचार कर लिया है; तब हम इस तरह अर्जुन के साथ युद्ध करने चले हैं। तुम मित्रता के बहाने हमसे शत्रुता करते हो। इसी से तुम हमें डराने की चेष्टा कर रहे हो। परन्तु तुम्हारी यह चेष्टा व्यर्थ है। हमने अपने मन में जो निश्चय कर लिया है उससे मनुष्य तो क्या साक्षात् इन्द्र भी हमें नहीं डिगा सकते।

शल्य को तो कर्ण का तेज हरण करना था। वे पहले से भी अधिक तीव्र बातें कहने लगे:—

हे सूत-पुत्र ! ख़रगोशों के बीच में बैठे हुए गीदड़ ने शेर को जब तक जंगल में नहीं देखा तब तक वह अपने ही को शेर समझता है। जब तक घोर युद्ध में गाण्डीव की टङ्कार तुम्हारे कान में नहीं पड़ती तब तक जो कुछ तुम्हारे मुँह से निकले कह सकते

हो। रे मूढ़! मूसे और बिलार में, कुत्ते और बाघ में, गीदड़ और शेर में, खरगोश और हाथी में जो अन्तर है तुम्हारे और अर्जुन के बीच भी वही अन्तर है।

ये वाक्यरूपी बाण कर्ण के कलेजे में छिद गये। उनसे उन्हें बड़ी व्यथा हुई। क्रोध से जल भुन कर वे कहने लगे:—

रे बकवादी! गुणग्राही के सिवा गुणवान का गुण और कोई नहीं जान सकता। अतएव तुम किस तरह हमारे गुण-दोष जान सकोगे? और, अर्जुन के बल की बात भी तुम हमारे सामने क्या कहोगे? तुम्हारी अपेक्षा हमें उसका ज्ञान अधिक है और हम इस बात को सबके सामने कहने के लिए भी प्रसन्नतापूर्वक तैयार हैं। अपने दोनों के बल-वीर्य का अच्छी तरह विचार करके ही हमने गाण्डीव-धन्वा को युद्ध के लिए ललकारा है। रुधिर का प्यासा और विष का बुझा हुआ एक सोने का नागास्त्र हमारे पास है। उससे हम सुमेरु पर्वत को भी फाड़ सकते हैं। इस सर्पास्त्र को बहुत दिन से हम अपने पास यत्नपूर्वक रक्खे हुए हैं। हम सच कहते हैं, इस शर को आज हम कृष्ण और अर्जुन को छोड़ और किसी पर न छोड़ेंगे। हे अधम क्षत्रिय! अर्जुन का कपिध्वज रथ और गाण्डीव धन्वा डरपोकों ही को डरा सकते हैं; हमें तो उन्हें देख कर उलटा हर्ष होगा। हे तुच्छ! हे क्षत्रियों में कुलाङ्गार! तुम हमारे पक्ष के होकर शत्रुओं की तरह हमें व्यर्थ डराते हो। हम डरनेवाले नहीं। अस्त्र-युद्ध में प्राण छोड़ कर स्वर्ग प्राप्त करने ही को हम सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। आज चाहे अर्जुन हमारा विनाश करें, चाहे हम अर्जुन का, हमारे लिए डरने की कोई बात नहीं। इससे तुम्हारा और अधिक बकवाद करना व्यर्थ है। हमने दुर्योधन से वादा कर लिया है कि हम तुम्हारी बातें चुपचाप सुन लेंगे। इसी से तुम अब तक जीते हो। परन्तु, यदि, कदाचित् फिर तुमने ऐसी ही अनुचित बातें कहीं तो हमारी यह गदा तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े कर देगी।

शल्य ने कहा:—हे कर्ण! जान पड़ता है तुम होश में नहीं हो। तुम तो मतवाले की तरह बातें कर रहे हो। बन्धुभाव के कारण, हम तुम्हारे मतवालेपन का इलाज करने की चेष्टा में थे। बिना अपराध के ही तुम हम पर क्यों इतना गर्जन-तर्जन करते हो? हम तुम्हारे सारथि हैं; इससे हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि शत्रुओं के बली या निर्बली होने आदि के विषय में तुम्हें उपदेश दें। इसी से हम कहते हैं कि कृष्णार्जुन को जो तुम तुच्छ समझते हो सो यह तुम्हारी नादानी है। जब तुम उन दोनों वीरों को एक रथ में बैठा हुआ देखोगे तब तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें न निकलेंगी।

राजा दुर्योधन ने देखा कि कर्ण और शल्य का विवाद बढ़ता जाता है। यह बात

उन्होंने अच्छी न समझी। इससे मित्र-भाव से कर्ण को, और हाथ जोड़ कर मामा शल्य को, उन्होंने चुप किया। दुर्योधन के समझाने पर कर्ण ने अपने क्रोध को रोका और शल्य की किसी बात का उत्तर न देकर हँसते हुए उन्हें रथ चलाने की आज्ञा दी।

इधर कर्ण को कौरवों की सेना के आगे देख युधिष्ठिर ने शत्रु-संहारक धनञ्जय से कहा:—

हे अर्जुन! यह देखो सूत-पुत्र कर्ण ने युद्ध के लिए कितने विकट व्यूह की रचना की है। इस समय तुम कर्ण के साथ युद्ध करो; हम कृप के साथ युद्ध करेंगे। भीमसेन दुर्योधन के साथ, नकुल वृषसेन के साथ, सहदेव शकुनि के साथ और सात्यकि कृतवर्म्मा के साथ युद्ध करें। अर्जुन ने धर्म्मराज की बात सुन कर—तथास्तु—कहा। उन्होंने बड़े भाई की आज्ञा को सिर आँखों पर रक्खा और अपने सेना-दल को उसी आज्ञा के अनुसार काम करने के लिए हुक्म दिया। इसके बाद वे कौरव-सेना की तरफ़ बढ़े।

तब शल्य ने कहा:—

हे कर्ण! तुम जिनकी तलाश में थे वही विकट वीर अर्जुन, कृष्ण के द्वारा चलाये गये परमोत्कृष्ट रथ पर सवार, हमारी सेना को मारते काटते आ रहे हैं। देखो, मेघों की गर्जना के समान गंभीर शब्द सुनाई पड़ता है; रथ के पहियों के आघात से धरती काँप रही है; उड़ी हुई धूल का चँदोवा सा आकाश में तन गया है—अतएव इसमें सन्देह नहीं कि कृष्णार्जुन आ रहे हैं। उनके सिवा और कोई नहीं हो सकता। देख लो शत्रुओं के हृदय में डर उत्पन्न करनेवाला, देखने में महा-भयङ्कर, बन्दर के चिह्नवाला अर्जुन का ध्वजाग्र फहराता चला आता है। अभी, ज़रा ही देर में, कृष्ण के साथ एक ही रथ में बैठनेवाले उस शत्रु-सन्तापकारी दुर्मद वीर का प्रभाव तुम्हें मालूम हो जायगा।

यह सुनते ही क्रोध से लाल आँखें करके कर्ण ने उत्तर दिया:—

यह देखो, क्रोध से भरे हुए संसप्तक लोगों ने अर्जुन पर धावा किया और मेघों से घिरे सूर्य्य की तरह उनका रथ न मालूम कहाँ छिप गया। जान पड़ता है, हमारे पास तक पहुँचने के पहले ही उन्हें इस वीर-सागर में डूब कर वहीं प्राण छोड़ना पड़ेगा।

शल्य ने कहा:—हे कर्ण! हवा का रोक रखना, समुद्र को सुखा डालना और ईंधन डाल कर आग को बुझा देना जैसे असम्भव है, युद्ध में अर्जुन का संहार करना भी वैसे ही असम्भव है।

इसके बाद, अर्जुन के साथ युद्ध करने के पहले, कर्ण के बल का क्षय करने के निमित्त, मद्रराज शल्य ने फिर कर्ण से कहा:—

हे कर्ण! यह देखो, विकट से विकट काम करनेवाले, क्रोध से जलते हुए, भीमसेन, कौरवों का बहुत दिनों का वैर याद करते हुए, युद्ध के मैदान में सुमेरु पर्वत की तरह किस वीर-वेश में विराज रहे हैं।

यह कह कर शल्य, कर्ण का रथ शीघ्र ही उस जगह ले गये जहाँ भीमसेन कौरवों की सेना का संहार कर रहे थे। वृकोदर और कर्ण दोनों परस्पर एक दूसरे के सामने हुए। कर्ण को देखते ही भीम के तलवों की क्रोधाग्नि मस्तक तक जा पहुँची। उन्होंने एक बड़ा ही पैना बाण छोड़ कर कर्ण के शरीर को वेध दिया। कर्ण कुछ कम न थे। उन्होंने भी एक फुफकारता हुआ शर ऐसा मारा कि वह भीम के ठीक हृदय पर लगा। भीम के शरीर से रुधिर की धारा वह निकली। भीम बड़े ही उग्र योद्धा थे। क्रोध से उनकी आँखें जलने सी लगीं। उसी घायल अवस्था में उन्होंने सूत-पुत्र के संहार के लिए अपने धनुष को कान तक खींचा और एक ऐसा बाण उन पर छोड़ा जो मनुष्य को तो क्या पर्वत को भी फाड़ने की शक्ति रखता था। वह महा-भीषण बाण कर्ण को पूरा पूरा लगा। उससे बचने की हज़ार कोशिश करके भी वे बच न सके। उसकी चोट से वे बेहोश हो गये और रथ पर काठ की तरह बैठे रह गये। मद्रराज शल्य उन्हें अचेत देख युद्ध-भूमि से भगा लाये। इस प्रकार कर्ण को परास्त करके समर-भूमि में भीमसेन इधर उधर घूम घूम कर कौरवों की सेना की दुर्दशा और धृतराष्ट्र की सन्तान का संहार करने लगे।

कुछ देर बाद कर्ण की मूर्च्छा जगी। वे फिर युद्ध के मैदान में आकर उपस्थित हुए। उन्होंने देखा कि नकुल और सहदेव की रक्षा में धर्म्मराज युधिष्ठिर सामने ही युद्ध कर रहे हैं। अतएव दुर्योधन की हित-कामना से उन्होंने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया और एक के बाद एक ऐसे तीन बाण छोड़ कर उनके शरीर को छेद दिया। युधिष्ठिर ने भी अपने बाणों से कर्ण के घोड़ों और सारथि को बेहद पीड़ा पहुँचाई। यह देख महाप्रतापी कर्ण को अपार क्रोध हुआ। उन्होंने एक शस्त्र से तो युधिष्ठिर और नकुल के घोड़ों को मार गिराया और दूसरे से युधिष्ठिर का शिरस्त्राण ज़मीन पर गिरा कर नकुल के धनुष की डोरी काट दी। इस पर मद्रराज शल्य को दया आई। युधिष्ठिर की यह गति देख कर्ण को रोकने के इरादे से वे कहने लगे:—

हे कर्ण! आज तुम्हें अर्जुन के साथ युद्ध करना है। क्या यह तुम्हें याद नहीं?

तो फिर क्यों पागल से होकर दोपहर होने के पहले ही अपना सारा बल खर्च किये देते हो ? युधिष्ठिर के साथ युद्ध करने के बाद बचे हुए थोड़े से शस्त्र, टूटा फूटा कवच और थके हुए घोड़े लेकर अर्जुन के सामने जाने से तुम्हारी ज़रूर हँसी होगी।

परन्तु, कर्ण ने शल्य की बात की कुछ भी परवा न की। उन्होंने बड़े ही तेज़ बाणों से तीनों पाण्डवों को घायल करके युधिष्ठिर को युद्ध के मैदान से विमुख होने के लिए विवश किया। शल्य ने जब देखा कि युधिष्ठिर की दुर्दशा करने पर कर्ण जी जान से उतारू हैं तब उन्होंने एक और युक्ति निकाली। वे बोले:—

हे कर्ण ! यह देखो भीमसेन, कुरुराज दुर्योधन के साथ युद्ध कर रहे हैं। अतएव तुम्हें कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें हम लोगों के सामने ही आज भीम उनका विनाश न करें।

कर्ण अपने मित्र दुर्योधन का बड़ा प्यार करते थे। उन पर विपद आई देख उन्होंने युधिष्ठिर को तो छोड़ दिया, भीमसेन के ऊपर दौड़े। तब घायल युधिष्ठिर मन ही मन अत्यन्त लज्जित होकर नकुल को लेकर सहदेव के रथ पर सवार हुए और रण-भूमि छोड़ कर डेरों में चले आये। वहाँ रथ से उतर कर उन्होंने शय्या की शरण ली। अच्छे अच्छे वैद्यों ने आकर उनके घावों की मरहम-पट्टी की। परन्तु घाव ऐसे गहरे थे कि उनसे उन्हें बड़ा कष्ट मिला। नकुल और सहदेव को भीम की सहायता के लिए रण-भूमि में भेज कर युधिष्ठिर प्रायः अचेत अवस्था में चारपाई पर पड़ रहे।

इस समय वीर-वर अर्जुन ने संशप्तकों के साथ बहुत देर तक युद्ध करके उन्हें परास्त किया। तब अश्वत्थामा उनसे लड़ने आये और आगे बढ़ने से रोकने लगे। परन्तु अश्वत्थामा की भी उन्होंने एक न चलने दी। उनसे फ़ुरसत पाकर अर्जुन वहाँ पहुँचे जहाँ कुछ देर पहले युधिष्ठिर ने युद्ध किया था। पर वहाँ उन्हें न देख अर्जुन को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने भीमसेन से पूछा:—

हे आर्य्य ! धर्म्मराज कहाँ हैं ?

भीम बोले:—भाई ! सूत-पुत्र के शरों से अत्यन्त पीड़ित होकर धर्म्मराज डेरों में चले गये हैं। हम यहाँ युद्ध करते हैं; तुम शीघ्र ही जाकर उनकी तबीयत का हाल देखो। द्रोण के साथ युद्ध करके भी उन्हें रण-भूमि नहीं छोड़नी पड़ी थी। परन्तु कर्ण के साथ युद्ध करने में, जान पड़ता है, उन्हें भारी चोट आई है; इसी से उन्हें रण से भागना पड़ा है। कहीं उनके प्राण जाने का डर न हो !

भीमसेन से यह अशुभ समाचार सुन कर कृष्ण ने अर्जुन को लेकर डेरों की तरफ़

बड़े वेग से रथ दौड़ाया। वहाँ पहुँच कर वे दोनों वीर रथ से उतर पड़े और अकेले लेटे हुए धर्म्मराज के पैर छुवे। युधिष्ठिर को उन्होंने अच्छी हालत में पाया। इससे उनकी चिन्ता दूर हो गई। रण-स्थल से कृष्णार्जुन को चला आया देख युधिष्ठिर ने समझा कि कर्ण मारे गये। अतएव बहुत प्रसन्न होकर रुँधे हुए कण्ठ से वे कहने लगे:—

हे मधुसूदन! हे अर्जुन! कहो तुम अच्छे तो हो? बिना कोई घाव लगे और बिना किसी तरह की विपद में पड़े जो तुमने कर्ण का संहार किया इससे हम बहुत प्रसन्न हुए। वह सदा ही अपनी सेना के आगे रह कर अपने पक्षवालों की रक्षा और हमारे पक्षवालों का नाश करता था, और दुर्योधन के हितसाधन में सदा ही तत्पर रह कर हम लोगों को बेहद कष्ट देता था। भीष्म, द्रोण और कृप के हाथ से हमारी जो दशा नहीं हुई वह दशा आज कर्ण के हाथ से हुई। इसीसे हम उसकी मृत्यु की खबर विशेष करके पूछते हैं। हम बड़ी देर से तुम्हारे आने की राह उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे।

उत्तर में अर्जुन ने कहा:—

हे धर्म्मराज! संसप्तक लोगों के साथ हम युद्ध समाप्त न कर पाये थे कि कौरवों की सेना के आगे महावीर अश्वत्थामा हमें दिखाई दिये। उन्होंने हमारा आगे बढ़ना रोकने के लिए बड़ी ही भीषण बाण-वर्षा करके हम पर आक्रमण किया। हमारे ठीक सामने आकर वे हमारे ऊपर ऐसे टूटे जैसे शेर हाथी पर टूट पड़ता है। तब गुरु-पुत्र अश्वत्थामा के साथ हमारा घोर युद्ध होने लगा। उन्होंने पहले तो विष के बुझे, आग के समान जलते हुए, तीक्ष्ण बाणों से हमें और वासुदेव को बे-तरह पीड़ित किया। परन्तु पीछे से जब हमने उनके सारे अस्त्र-शस्त्रों को व्यर्थ करके उन पर लगातार विकट बाणों की वर्षा आरम्भ की, तब हमारे बाणों की मार से कौरव-सेना को अत्यन्त पीड़ित और रुधिर में सराबोर देख वे कर्ण की रथ-सेना में घुस गये। हम उनके पीछे दौड़े। परन्तु राह में भीमसेन ने तुम्हारी हार की ख़बर सुनाई। इससे तुम्हारे कुशल-समाचार जानने के लिए हम तुम्हारे पास आये हैं। चलो, कर्ण के साथ अब हमारा युद्ध देखो।

महाबली कर्ण के द्वारा परास्त किये जाने से युधिष्ठिर को बे-हद सन्ताप हुआ था। इससे उन्हें अब तक जीवित सुन वे अपने आपको न सँभाल सके—वे आपे से बाहर हो गये और अर्जुन पर क्रोध करके कहने लगे:—

हे अर्जुन! तुमने बार बार प्रतिज्ञा की है कि तुम सूत-पुत्र को अकेले ही मारोगे। इस समय तुम्हारी वह प्रतिज्ञा कहाँ गई? कर्ण से डर कर भीमसेन को अकेला छोड़ आज तुम कैसे चले आये? केवल तुम्हारे ही भरोसे आज तेरह वर्ष से हम राज्य पाने

की आशा कर रहे हैं। पर आज तुमने हम लोगों को ऊपर उठा कर बड़े ज़ोर से ज़मीन पर पटक दिया। तुम्हारे गाण्डीव को धिक्कार है! तुम्हारे बाहुबल और कभी न खाली होनेवाले तुम्हारे तरकस को धिक्कार है! बन्दर के चिह्नवाली ध्वजा और अग्नि के दिये हुए दिव्य रथ को भी धिक्कार है! युद्ध के मैदान में हमारी सेना के नाकों दम करने वाले सूत-पुत्र का यदि तुम निवारण नहीं कर सकते—यदि उन्हें तुम उचित दण्ड नहीं दे सकते—तो इस गाण्डीव धन्वा को क्यों तुमने हाथ में रख छोड़ा है? क्यों नहीं उसे अपने से अधिक योग्य किसी राजा को दे देते? ऐसा करने से लोग हमें स्त्री-पुत्र-हीन और राज्यभ्रष्ट तो नहीं देखेंगे।

युधिष्ठिर की बात समाप्त न होने पाई थी कि अर्जुन ने तलवार खींच ली। तब कृष्ण बहुत घबरा कर कहने लगे:—

हे अर्जुन! इस समय यहाँ पर तुम्हारा कोई शत्रु नहीं, फिर तुम्हारे इस तलवार निकालने से क्या मतलब? धर्म्मराज को तुमने कुशल-पूर्वक पाया है; अतएव तुम्हें आनन्द मनाना चाहिए, तलवार निकालना नहीं! तुम इस समय पागल की तरह क्यों काम कर रहे हो? हम तो यहाँ किसी को भी नहीं देखते जिसे मारने की तुम्हें ज़रूरत हो। फिर तुम किस पर चोट करना चाहते हो?

महा तेजस्वी अर्जुन ने युधिष्ठिर की तरफ़ कड़ी नज़र से देखा और चपेट में पड़े हुए साँप की तरह ज़ोर से साँस लेकर कृष्ण से कहा:—

हे जनार्दन! जो हमारा अपमान करे वही हमारा शत्रु है। जो हमें दूसरे के हाथ में गाण्डीव देने को कहे वही हमारे बध करने योग्य है। इसी से हमने तलवार निकाली है। इस विषय में तुम्हें और जो कुछ कहना हो कह डालो।

तब कृष्ण ने कहा:—हाय हाय! धिक्कार है तुम्हारी इस समझ को! तुच्छ और नादान आदमियों की तरह क्रोध के वशीभूत होकर तुम्हें आज अपने जेठे भाई को मारने के लिए तैयार देख हम बहुत ही विस्मित हुए हैं। सूत-पुत्र कर्ण की निरन्तर बाण-वर्षा से घायल होने के कारण धर्म्मराज अत्यन्त विकल और दुःखित हैं। इसी से क्रोध में आकर तुम्हें उन्होंने ऐसे अनुचित वचन कहे हैं। इससे उनका केवल इतना ही मतलब है कि कुपित होकर तुम शीघ्र ही कर्ण का संहार करो।

इस पर अर्जुन ने तलवार को मियान के भीतर कर लिया और युधिष्ठिर से इस प्रकार कठोर वचन कहना आरम्भ किया:—

राजन्! तुम युद्ध-भूमि से एक कोस दूर अपने डेरों में हो। युद्ध का हाल तुम्हें

कुछ भी नहीं मालूम। फिर क्या समझ कर तुमने हमारा धिक्कार किया ? शत्रुनाशक भीमसेन शत्रुओं के साथ युद्ध कर रहे हैं। वे चाहें तो हमारी निन्दा कर सकते हैं—कठोर वचनों से हमारी ताड़ना कर सकते हैं। किन्तु तुम्हारी रक्षा तो हमेशा हमीं लोग करते हैं; तुम्हारे इष्ट-मित्र ही सदा तुम्हें अनिष्ट से बचाते रहते हैं। इससे हमारी निन्दा करना तुम्हें शोभा नहीं देता। स्त्री, पुत्र, शरीर और प्राणों तक की परवा न करके हम तुम्हारी भलाई के लिए यत्न कर रहे हैं। तिस पर भी तुम वाक्य-बाणों से हमें पीड़ा पहुँचाने से न चूके। जुआ खेल कर तुम्हीं ने यह सारी विपत्ति बुलाई है और अब इच्छा यह रखते हो कि शत्रुओं का पराजय करें हम ! खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब फिर कठोर वचन कह कर कभी हमें व्यथा न पहुँचाना।

यह सुन कर सन्ताप से तपे हुए धर्म्मराज शय्या से उठ बैठे और बड़े दुःख से कहने लगे:—

हे अर्जुन ! हमने बहुत बुरा काम किया। इसी से तुम्हें इतना दुःख हुआ। हम बड़े ही मूर्ख, डरपोक और कठोरवादी हैं। हमारे ही कारण हमारे कुल का नाश हुआ है। अतएव तुम शीघ्र ही हमारा सिर धड़ से जुदा कर दो।

अपने जेठे भाई के मुँह से ऐसे नम्र वचन सुन कर अर्जुन प्रसन्न भी हुए और लज्जित भी। वे युधिष्ठिर के पैरों पर गिर पड़े और बार बार कहने लगे:—

हमने क्रोध में आकर जो दुर्वचन तुम्हें कह डाले हैं उनके लिए कृपापूर्वक हमें क्षमा कीजिए।

अर्जुन को अपने पैरों पर लोटते और रोते देख युधिष्ठिर ने उन्हें उठा लिया और हृदय से लगा कर बड़े प्रेम से उनके आँसू पोंछने लगे। इस तरह दोनों भाई बड़ी देर तक रोते रहे। अन्त में दोनों के मन का मैल दूर हो गया और वे फिर परस्पर एक दूसरे के ऊपर पहले ही की तरह प्रेम करने लगे। तब धर्म्मराज ने कहा:—

हे अर्जुन ! तुमने जो कुछ कहा, बुरा नहीं कहा। तुम्हारी बात कठोर होकर हमारे लिए हितकर है अतएव हमने तुम्हें क्षमा किया। जो न कहना चाहिए था वह हमने तुम्हें कह डाला। इससे तुम क्रोध न करना। अब हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि तुम कर्ण को मारो।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर युद्ध में जाने के पहले अर्जुन ने कहा:—

महाराज ! तुम्हारा पैर छूकर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि कर्ण को मारे बिना आज इस युद्ध-भूमि से न लौटेंगे।

दोपहर के बाद, भीमसेन की आँखों के सामने ही, महावीर कर्ण ने सोमक-सेना को बहुत ही पीड़ित करना आरम्भ किया। भीम भी दुर्योधन की सेना में घुस पड़े और महा अद्भुत पराक्रम दिखाने लगे। वे ऐसी विषम मार मारने लगे कि कौरवों की सेना का धीरज छूट गया। उसकी दुर्गति होते देख दुर्योधन, अश्वत्थामा और दुःशासन आदि वीरों ने, अपनी सेना के बचाव के लिए, भीमसेन पर आक्रमण किया।

सबसे पहले वीररत्न दुःशासन ने बाण-वर्षा करके बड़ी ही निर्भयता से भीमसेन के साथ युद्ध आरम्भ किया। दोनों वीर एक दूसरे को मार डालने की जी जान से कोशिश करने लगे। वे लोग ऐसे तेज़ बाण छोड़ने लगे जिनमें देह को काट कर टुकड़े टुकड़े कर डालने की शक्ति थी। इस तरह के बाणों से उन्होंने परस्पर एक दूसरे को तोप दिया। इस पर महा पराक्रमी भीम को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने दुःशासन पर एक चमचमाती हुई तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी। दुःशासन ने देखा कि जलती हुई उल्का की तरह वह हमारे ऊपर आ रही है। इस पर उन्होंने अपने धन्वा को कान तक खींच कर दस बाण एक ही साथ ऐसे मारे कि बीच ही में वह टुकड़े टुकड़े होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। यह देख कर कौरवों को बड़ी खुशी हुई। वे इस काम के कारण दुःशासन की बार बार प्रशंसा करने लगे।

वीरवर दुःशासन ने समर के मैदान में आश्चर्यकारक कौशल दिखाया। उन्होंने भीमसेन के शरीर को अपने तीखे शरों से छेद दिया, उनके धनुष को काट डाला और सारथि को घायल किया। तब भीमसेन ने छुरे के समान तेज़ दो बाण मार कर दुःशासन के धनुष और ध्वजदण्ड के टुकड़े टुकड़े कर डाले और उनके सारथि को मार गिराया। इस कारण, राजकुमार दुःशासन को घोड़ों की रास अपने ही हाथ में लेनी पड़ी। उन्होंने घोड़ों को वश में रख कर एक नया धनुष ग्रहण किया। उस पर उन्होंने वज्र के समान एक महा भीषण शर सन्धान करके भीमसेन पर छोड़ा। वह बाण भीम की देह फाड़ कर निकल गया और वे दोनों हाथ फैला कर रथ पर गिर पड़े। परन्तु, ज़रा ही देर में वे फिर उठ बैठे और दुःशासन से कहने लगे:—

हे दुरात्मा! तू तो हम पर चोट कर चुका; अब हमारी इस गदा का आघात सिर पर ले।

यह कह कर महाबली भीमसेन ने एक बड़ी ही दारुण गदा चलाई। चलाते ही वह बड़े वेग से दुःशासन के सिर पर लगी। उसकी चोट से दुःशासन रथ से कोई बीस गज़ की दूरी पर जा गिरे। उनका रथ चूर चूर हो गया और घोड़ों की भी चटनी

हो गई। दुःशासन में उठने की शक्ति न रही। उनका सारा शरीर थर थर काँपने लगा। वे उसी दशा में ज़मीन पर लोट गये।

उस महाघोर संग्राम-भूमि में दुःशासन को गिरा देख, भीमसेन को धृतराष्ट्र की सन्तान के किये हुए सारे अत्याचार याद हो आये। वनवास का क्लेश, द्रौपदी के केशों का खींचा जाना, और वस्त्र-हरण आदि सारी विपत्तियाँ उन्हें आज हुई सी जान पड़ने लगीं। भीमसेन क्रोध से लाल हो गये। वे रथ से कूद पड़े और कुछ देर तक दुःशासन को देखते रहे। फिर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए उन्होंने एक तेज़ धारवाली तलवार निकाली। ज़मीन पर पड़े हुए दुःशासन पर पैर रख कर उसे उन्होंने उनकी छाती में घुसेड़ दिया। घाव से रुधिर की धारा बह निकली। उस गरम गरम रुधिर को उन्होंने अपनी अंजुली में भर कर, पास ही चित्र के समान चकित खड़े हुए वीरों से कहा:—

हे कौरव-गण! पापी दुःशासन को यमपुरी भेज कर और उसका रुधिर पीकर आज हम अपनी प्रतिज्ञा से छूट गये। यह महा संग्राम एक प्रकार का यज्ञ है। इसमें दुःशासन-रूप एक पशु का बलिदान हो चुका। दुर्योधन-रूप दूसरे पशु का बलिदान बाक़ी है। उसके भी हो जाने पर यज्ञ समाप्त हो जायगा।

इस समय, रुधिर से तर बतर और लाल लाल आँखें किये हुए महा-भयङ्कर-वेशवाले भीमसेन को युद्ध के मैदान में आनन्द से इधर उधर घूमते देख किसी किसी कौरव-योद्धा के हाथ से हथियार छूट पड़े; किसी किसी ने आँखें बन्द करके मुँह फैला दिया; कोई कोई डर से धीरे धीरे चिल्लाने लगा। कुछ देर में सैनिकों ने भयभीत होकर भागना शुरू कर दिया।

इसी अवसर पर युधिष्ठिर के पास से अर्जुन युद्ध-भूमि में आ पहुँचे। इधर से ये और उधर से कर्ण शत्रुओं का संहार करते करते एक दूसरे के सामने आने के लिए आगे बढ़ने लगे। इन दोनों वीरों की मार से दोनों पक्षों की चतुरङ्गिनी सेना विकल होकर, सिंह से पीछा किये गये हिरनों के झुण्ड की तरह, चारों तरफ़ भागने लगी। हाथी के चिह्नवाला कर्ण का और बन्दर के चिह्नवाला अर्जुन का रथ घोर घरघराहट करते हुए एक दूसरे की तरफ़ बड़े वेग से दौड़ने लगा। यह देख कर राजा लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। सिंहनाद करके वे दोनों वीरों की प्रशंसा करने लगे। कर्ण का उत्साह बढ़ाने के लिए कौरवों ने चारों ओर से मारू बाजा बजाना आरम्भ किया। यह देख कर पाण्डवों ने भी अर्जुन की उत्तेजना के लिए शङ्ख और तुरही आदि बजा कर पृथ्वी और आकाश एक कर दिया।

इसके अनन्तर, बड़े बड़े दाँतोंवाले मतवाले हाथी जिस तरह किसी हथिनी को पाने के लिए परस्पर टक्करें मारते हैं उसी तरह कर्ण और अर्जुन एक दूसरे से भिड़ गये। पहले महावीर कर्ण ने दस बाणों से अर्जुन को छेद दिया। तब अर्जुन ने भी हँस कर बड़े ही तेज़ धार-वाले दस बाण कर्ण की छाती पर मारे। तदनन्तर उन दोनों विख्यात वीरों ने अनगिनत बाणों से परस्पर को घायल किया।

इस समय द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने दुर्योधन का हाथ पकड़ कर कहा:—

महाराज! बस अब युद्ध बन्द करो। जिस युद्ध में महारथी भीष्म और अस्त्र-विद्या के सर्वोत्तम ज्ञाता हमारे पिता को प्राण छोड़ने पड़े उस युद्ध को धिक्कार है! हम और हमारे मामा कृपाचार्य्य सिर्फ़ इसलिए जीते हैं कि हम अवध्य हैं—किसी के हाथ से हम मर नहीं सकते। कर्ण के मारे जाने से तुम भी न बच सकोगे। अतएव, हे कुरुराज! तुम आज्ञा दो तो हम अर्जुन से युद्ध बन्द करने के लिए प्रार्थना करें। हमें विश्वास है, वे निश्चय ही हमारी बात मान लेंगे।

यह सुन कर दुर्योधन कुछ देर तक मन ही मन विचार करते रहे। उसके अनन्तर उन्होंने कहा:—

मित्र! जो बात तुमने कही वह ज़रूर सच है। किन्तु सिंह की तरह भीमसेन ने दुःशासन को मार कर जैसी बातें कही हैं वे तुमसे छिपी नहीं हैं। फिर किस प्रकार हम युद्ध बन्द कर सकते हैं? कर्ण की भी बहुत दिन से यह इच्छा थी कि अपने सामने रथ पर बैठ कर अर्जुन से युद्ध करें। सो वह समय अब आ गया है। इससे उन्हें इस युद्ध से रोकना उचित नहीं। हे गुरु-पुत्र! डरने का कोई कारण हमें नहीं देख पड़ता। हवा का प्रचण्ड वेग जैसे मेरु पर्वत को नहीं गिरा सकता वैसे ही अर्जुन भी महावीर कर्ण को कभी नहीं परास्त कर सकते।

इधर कर्ण और अर्जुन में महाघोर युद्ध जारी था। एक दूसरे को मारने में अपना सारा बल-विक्रम और सारा अस्त्र-कौशल खर्च कर रहा था। धनुष का टङ्कार बार बार वज्रपात के समान हो रहा था। इतने में अत्यन्त अधिक खींची जाने के कारण अर्जुन के धनुष की डोरी महा भयानक शब्द करके तड़ाक से टूट गई। बाण चलाने में कर्ण के हाथ की सफ़ाई और फुर्ती तारीफ़ के लायक़ थी। अर्जुन का धनुष बेकार हो गया देख कर्ण ने नाना प्रकार के अनगिनत बाणों से अर्जुन को तोप दिया। जो योद्धा अर्जुन की रक्षा करते थे उन्होंने उनके पास आकर बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु कर्ण के बाणों को वे काट न सके। फल यह हुआ कि कृष्ण और अर्जुन दोनों बे-तरह घायल

हुए। उनके शरीर लोहू से लद फद हो गये। यह दशा देख, कौरवों ने समझा, हमारी जीत हुई। इससे वे लोग आनन्द-ध्वनि और सिंहनाद करने लगे।

इस पर महावीर अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने धनुष को झुका कर फिर उस पर डोरी चढ़ाई और कर्ण के सारे बाणों को व्यर्थ कर दिया। उनके अस्त्रों से यहाँ तक आकाश-मण्डल परिपूर्ण हो गया कि पक्षियों के उड़ने के लिए भी जगह न रह गई। अर्जुन के वज्र-तुल्य बाणों ने कर्ण की दुर्गति कर डाली। अपने लोगों में से कितनों ही को मरते देख, उनके रक्षकों ने भागना आरम्भ कर दिया। किन्तु रक्षकों के भाग जाने पर भी कर्ण निडर होकर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे।

इस प्रकार बल, वीर्य, पराक्रम और युद्ध-कौशल के प्रभाव से कभी कर्ण अर्जुन से बढ़ गये, कभी अर्जुन कर्ण से।

बहुत देर तक युद्ध करके भी जब कर्ण ने देखा कि अर्जुन से किसी तरह पार नहीं पा सकते, उलटा उनके धनुष से छूटे हुए शरों से हमीं घायल हो रहे हैं, तब बहुत दिन से यत्नपूर्वक रक्खे हुए विष के बुझे उस नागास्त्र की उन्हें याद आई। अर्जुन का मस्तक छेदने के लिए उसी ज्वाला के समान कराल शर को धन्वा पर रख कर उन्होंने ज़ोर से खींचा। मद्रराज शल्य ने देखा कि अर्जुन पर अब घोर विपद आना चाहती है। इससे उन्होंने चाहा कि कर्ण को दुचित्ता करके निशाने को चुका दें। इसी मतलब से वे कहने लगे:—

हे कर्ण! यह शर कभी अर्जुन का सिर न काट सकेगा। अतएव और कोई इससे अच्छा शर निकाल कर धनुष पर चढ़ाओ।

कर्ण ने कहा:—हे शल्य! एक शर धनुष पर रख कर उसे छोड़े बिना कर्ण कभी दूसरा शर हाथ से नहीं छूते।

यह कह कर, बहुत वर्षों से जिसकी उन्होंने पूजा की थी उस भयङ्कर शर को उन्होंने उसी क्षण छोड़ दिया और कहा:—

अर्जुन! इस दफ़े तुम मारे गये।

सूत-पुत्र के द्वारा चलाये गये उस नागास्त्र को आकाश में जलते देख कृष्ण ने एक चाल चली। उनके घोड़े तो ख़ूब सधे हुए थे ही। कृष्ण का इशारा पाते ही घुटने तोड़ कर वे ज़मीन पर बैठ गये। इससे रथ का अगला भाग अचानक झुक कर नीचा हो गया और अर्जुन का मस्तक तक कर मारा गया वह सर्पास्त्र मस्तक पर न लग कर इन्द्र के दिये हुए सुदृढ़ किरीट पर गिरा। अर्जुन बच गये; किरीट चूर चूर हो गया।

अर्जुन इससे ज़रा भी नहीं घबराये। सफ़ेद कपड़े से उन्होंने अपने बाल बाँधे और छड़ी से छेड़े गये साँप की तरह क्रुद्ध होकर दो बाण धनुष पर रक्खे। ये बाण यमराज के महा-भयङ्कर डण्डे के समान लोहे के थे। उनसे उन्होंने कर्ण की छाती छेद दी। बाण लगते ही घाव से रुधिर का पनाला बह निकला। कर्ण की मुट्ठी ढीली हो गई। धनुष और तर्कस छूट पड़े। कर्ण को मूर्छा आ गई। वे रथ पर गिर गये। अर्जुन तो बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने कहा—आतुर आदमी पर चोट करना उचित नहीं। इससे उन्होंने कर्ण को उस मूर्छित दशा में मारने की चेष्टा नहीं की। यह देख कृष्ण ने घबरा कर अर्जुन से कहा:—

हे अर्जुन! क्यों तुम चुप हो? क्या तुम होश में नहीं? वैरी के दुर्बल होने पर भी उसे मारने के लिए पण्डित और समझदार आदमी कभी समय की प्रतीक्षा नहीं करते।

कृष्ण के उपदेश के अनुसार अर्जुन ने कर्ण पर छोड़ने के लिए फिर धनुष पर बाण चढ़ाया। इस बीच में कर्ण को होश हो आया। किन्तु पीड़ा के मारे परशुराम के सिखलाये हुए अस्त्र-शस्त्र चलाना वे भूल गये—उनकी याद ही उन्हें न आई। वे बहुत ही अधीर और विह्वल हो उठे और हाथ उठा कर इस प्रकार आक्षेप-पूर्ण वचन कहने लगे:—

धर्म्मात्मा लोग कहा करते हैं कि धर्म्म धार्मिक जनों की रक्षा करता है। हमारी तो धर्म्म में दृढ़ भक्ति है। फिर धर्म्म हमें क्यों छोड़ता है?

यह कह कर वे बहुत ही उदास हुए और बड़ी बे-परवाही से युद्ध करने लगे। युद्ध में उनका जी न लगने लगा। उनके हर काम में शिथिलता होने लगी। सूतपुत्र की यह दशा देख कृष्ण ने कहा:—

हे अर्जुन! कर्ण को मोह हो रहा है; उनके होश-हवास ठिकाने नहीं। उन्हें संहार करने का यही अच्छा मौक़ा है।

किन्तु, अर्जुन की बाण-वर्षा से कर्ण को फिर क्रोध हो आया। उनका उत्साह फिर बढ़ा और उन्होंने ब्रह्मास्त्र छोड़ना आरम्भ कर दिया। वे फिर प्रबल हो उठे। इसी समय उनके रथ का दाहिना पहिया कीचड़ में अचानक फँस गया। कर्ण का रथ उसमें धँस गया; वह आगे न बढ़ सका। यह अवस्था देख कर्ण की आँखों से आँसू बह चले। उन्होंने अर्जुन से कहा:—

हे पार्थ! दैव-योग से हमारे रथ का पहिया धरती में धँस गया है। अतएव ज़रा देर के लिए युद्ध बन्द रक्खो; हम उसे कीचड़ से निकाल लें। अर्जुन! तुमने बड़े

कुल में जन्म पाया है और क्षत्रियों के धर्म्म को तुम अच्छी तरह जानते हो। इसी से हम कहते हैं कि इस समय कायर की तरह हम पर चोट न करना।

कर्ण की प्रार्थना के उत्तर में कृष्ण बोले:—

हे सूत-पुत्र ! यह हमारा अहोभाग्य है जो तुम्हें इस समय धर्म्म याद आ गया। नीच आदमियों पर जब विपद आती है तब वे अपने दुष्ट कर्म्म झट भूल जाते हैं और भाग्य की निन्दा करने लगते हैं। इस समय तुम्हारा ठीक यही हाल है। तुम्हारी सलाह से जुआ-घर में जब द्रौपदी का अपमान किया गया था तब तुम्हारा धर्म्म कहाँ था ? भोले भाले धर्म्मराज जब शकुनि के द्वारा जुए में अन्यायपूर्वक जीते गये थे तब तुम्हारा धर्म्म कहाँ था ? और, जब तुम सब सात महारथियों ने मिल कर अकेले बालक अभिमन्यु को घेर कर उसका वध किया था तब भी तुम्हारा धर्म्म कहाँ था ? इस समय धर्म्म, धर्म्म, की व्यर्थ रोर मचाने से क्या होना है ?

कृष्ण के ऐसे वचन सुन कर कर्ण ने सिर नीचा कर लिया और चुप हो रहे। उनके मुँह से कोई उत्तर न निकला। वे कीच में फँसे हुए अचल रथ से ही महावीर बाण बरसाने लगे। उनमें से एक बड़ा ही भयङ्कर बाण बड़े वेग से अर्जुन की छाती में लगा। वह शरीर के भीतर दूर तक धँस गया। उससे अर्जुन बहुत घायल हुए। ऐसी गहरी चोट उन्हें लगी कि गाण्डीव उनके हाथ से छूट पड़ा और उनका सारा शरीर कँपने लगा। कुछ देर वे काठ की तरह रथ पर अचेत बैठे रह गये।

इसी समय कर्ण रथ से कूद पड़े और प्राणों की परवा न करके रथ के पहिये को कीच से निकालने की चेष्टा करने लगे। परन्तु पहिया कीचड़ में इतना धँस गया था कि हज़ार प्रयत्न करने पर भी वह टस से मस न हुआ। इतने में अर्जुन की तबीयत ठिकाने आई देख कृष्ण ने कहा:—

हे अर्जुन ! कर्ण के फिर रथ पर चढ़ने के पहले ही उनका सिर काट लो।

तब अर्जुन ने इन्द्र के वज्र सदृश एक बाण तरकस से निकाल कर गाण्डीव पर रक्खा। मुँह फैलाये हुए काल की तरह उस महाभीषण अस्त्र को कान तक खींच कर उन्होंने छोड़ दिया। जलती हुई उल्का की तरह आकाश को प्रकाशपूर्ण करके उसने कर्ण के सिर को काट लिया और शरद ऋतु के आकाश-मण्डल से गिरे हुए सूर्य्य की तरह उस सिर को धड़ से धरती पर गिरा दिया। बिजली के गिरने से जैसे पर्वत का शिखर कट कर ज़मीन पर गिर जाता है और उससे गेरू की धारा बह निकलती

है उसी तरह कर्ण का ऊँचा पूरा शरीर भी ज़मीन पर धड़ाम से गिर पड़ा और कटी हुई गरदन से रुधिर का फ़व्वारा छूटने लगा।

तब वासुदेव को परमानन्द हुआ—उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने बड़े ज़ोर से शङ्ख बजाना आरम्भ किया। पाण्डवों के पक्ष के अनगिनत वीर अर्जुन के पास इकट्ठे हो गये और उनकी प्रशंसा करके सिंहनाद करने और अस्त्रों को ऊँचा उठा उठा कर हिलाने लगे।

दुर्योधन के दुःख की कुछ न पूछिए। उनके नेत्रों से आँसुओं की नदी बह चली। बड़े ही दीनभाव से वे कर्ण की लोथ के पास पहुँचे। उनके साथ अनेक कौरव लोग भी आये। उन सबने कर्ण के मृत शरीर को घेर लिया। तब रुँधे हुए कण्ठ से मद्रराज शल्य इस प्रकार कहने लगे:—

महाराज! कर्ण और अर्जुन का ऐसा महा-युद्ध और कभी नहीं हुआ। महावीर कर्ण ने कृष्ण और अर्जुन को पहले अत्यन्त ही पीड़ित किया—उनकी नाकों दम कर लिया। परन्तु दैव पाण्डवों के पक्ष में है; इसी से अर्जुन जीते हैं और कर्ण इस प्रकार धरती पर पड़े हुए हैं। ख़ैर, जो कुछ होना था हो गया। अब सोच करने से क्या है। भाग्य में जो कुछ होता है वह टल नहीं सकता।

राजा दुर्योधन ने शल्य की बात का कुछ भी उत्तर न दिया; परन्तु अपनी अनीति याद करके वे दुःख से अचेत से हो गये और ठंडी साँसें खींचने लगे।

सायङ्काल सञ्जय ने युद्ध-भूमि से लौट कर युद्ध-सम्बन्धी सारी कथा धृतराष्ट्र से कह सुनाई। अन्त में उन्होंने कहा:—

इस प्रकार महावीर कर्ण ने अपने विषम बाणों से पाण्डवों की सेना को पीड़ित कर दिया। परन्तु अर्जुन से वे पार न पा सके। अन्त को सन्ध्या समय उनके बल-विक्रम के प्रभाव से कर्ण को प्राण छोड़ने पड़े।

ऐसी अमङ्गल बात सुनते ही धृतराष्ट्र को मूर्छा आ गई। जड़ कटे हुए पेड़ की तरह वे ज़मीन पर गिर पड़े। यह देख महात्मा विदुर और सञ्जय घबरा उठे। उन्होंने बूढ़े राजा को उठाया और भाँति भाँति की बातें कह कर उन्हें दिलासा दिया। धृतराष्ट्र ने सोचा, भावी बड़ी प्रबल होती है। जो बात होने को होती है वह कभी नहीं चूकती। तथापि, यह सब सोच समझ कर भी उनके जी की जलन न गई। जड़ पदार्थ की तरह वे चुपचाप बैठे रहे।

इधर दुर्योधन शोक-सागर में एक-दम ही डूब गये। हाय कर्ण! हाय कर्ण! कह

कर बड़ी देर तक वे विलाप करते रहे। मारे जाने से बचे हुए राजों के साथ इसी तरह रोते धोते और विलाप करते करते बड़े कष्ट से वे अपने डेरों तक पहुँचे। अनेक युक्तियों से—अनेक तरह की कथा-कहानियों से—कौरव लोगों ने दुर्योधन को दिलासा देने का निरन्तर यत्न किया। किन्तु, दुर्योधन को कर्ण बहुत प्यारे थे और उन्हीं के ऊपर दुर्योधन का सबसे अधिक भरोसा था। इससे उनकी मृत्यु को सोच सोच कर वे मन ही मन घुलने लगे। किसी भी बात में सुख और शान्ति पाने में वे समर्थ न हुए।

इस समय परमसुशील कृपाचार्य्य ने युद्ध के मैदान में जो इधर उधर नज़र दौड़ाई तो बड़ा ही भयङ्कर दृश्य उन्हें देख पड़ा। वह युद्ध का मैदान क्या था काल-भैरव की क्रीड़ा-भूमि थी—उनके खेलने का अखाड़ा था। उन्होंने देखा, कहीं रथ टूटे पड़े हैं; कहीं उनकी धुरी, छतरी, पहिये आदि बिखरे पड़े हैं; कहीं हाथियों और घोड़ों के ढेर के ढेर कटे पड़े हैं; कहीं पैदल सेना के रुण्ड-मुण्डों के ऊँचे ऊँचे टीले से लग रहे हैं; कहीं राजा लोगों की चीज़ें पड़ी हुई उनके मारे जाने की गवाही दे रही हैं। जो सेना बच गई है वह अर्जुन के पराक्रम को देख कर मारे डर और चिन्ता के पागल की तरह इधर उधर घूम रही है। घायल हाथी और घोड़े बे-तरह चिल्ला रहे हैं; जो घायल नहीं हुए वे भी भयभीत होकर भाग रहे हैं। कौरवों की सेना की यह दुर्दशा देख महात्मा कृपाचार्य्य को बड़ी दया आई। वे कुरुराज दुर्योधन के पास जाकर कहने लगे:—

यह भयङ्कर युद्ध होते आज सत्रह दिन हुए। आज तक असंख्य मनुष्यों का संहार हुआ। हवा के ज़ोर से शरद्-ऋतु के बादल जैसे, न मालूम कहाँ, उड़ जाते हैं, अर्जुन के बल-विक्रम और प्रभाव से तुम्हारी सेना की भी वही दशा हुई है; वह भी पूरे तौर से छिन्न भिन्न हो गई है। जिस समय अर्जुन ने जयद्रथ पर आक्रमण किया था उस समय द्रोण, कर्ण और कितने ही वीरों को साथ लिये हुए दुःशासन भी उपस्थित थे; हम भी उपस्थित थे; खुद तुम भी उपस्थित थे; किन्तु हम लोगों से कुछ भी न बन पड़ा; तो अब आगे भी हम लोगों से और क्या होने की आशा है? इससे इस समय तुम्हें अपने बचाव की फ़िक्र करनी चाहिए। शत्रु अपने से निर्बल हो, तभी युद्ध करना अच्छा होता है। प्रबल शत्रु से युद्ध करना मूर्खता है। इस समय हम लोग पाण्डवों की अपेक्षा बहुत निर्बल हो गये हैं। अतएव हमारी सलाह है कि पाण्डवों से सन्धि कर ली जाय। उनसे सन्धि कर लेने ही में हमारी भलाई है। यदि धर्म्मराज के सामने सिर झुकाने से—यदि उनसे नम्रता दिखाने से—हमें राज्य मिल जाय तो कोई हानि नहीं। हम तो उसी में अपना मङ्गल समझते हैं। महाराज! दीनता के कारण अथवा

प्राण-रक्षा करने के इरादे से हम आपको यह सलाह नहीं देते। हम इसी में आपका भला समझते हैं। अतएव आपके हित के लिए हम ऐसा कहते हैं।

कृपाचार्य्य की बात सुन कर दुर्योधन कुछ देर तक सोचते रहे। फिर वे बोले:—

हे आचार्य्य! महापराक्रमी पाण्डवों की सेना में घुस कर आपने युद्ध किया है, यह हमने अपनी आँखों देखा है। इस समय जो सलाह आप दे रहे हैं वह बुरी नहीं। बन्धुओं और हित-चिन्तकों को ऐसी ही सलाह देनी चाहिए। जितनी बातें आपने कहीं सब हमारे हित की हैं। परन्तु मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए मनुष्य को जैसे ओषधि अच्छी नहीं लगती वैसे ही आपका हितकर उपदेश मानने को हमारा भी जी नहीं चाहता। जिस पुरुष के साथ जुआ खेल कर हमने उसका राज्य ही नहीं छीन लिया, किन्तु उसे न मालूम कितने कष्ट भी दिये, वह क्या हमारे सन्धि के सँदेशे पर कभी ध्यान दे सकता है? अभिमन्यु के मारे जाने से अर्जुन भी महा शोकाकुल हो रहे हैं। अतएव वे भी क्या कभी हमारी हित-चिन्तना कर सकेंगे? भीमसेन का स्वभाव तो आप जानते ही हैं कितना उग्र है। इसके सिवा उन्होंने महाघोर प्रतिज्ञा की है। वे मर जायँगे, पर हमें क्षमा न करेंगे। फिर, पाण्डवों के साथ सन्धि होने की आप कैसे आशा करते हैं? सन्धि करने पर वे कभी राज़ी न होंगे। एक और बात का भी विचार कीजिए। अपने ही बुद्धि-बल से प्राप्त करके जिस राज्य को हमने इतने दिन तक भोग किया उसी को हम दूसरे के अनुग्रह से कैसे ले सकते हैं? आज तक हम राजा लोगों के ऊपर सूर्य्य की तरह तपते रहे; अब युधिष्ठिर के दास बन कर कैसे रह सकेंगे? इसकी अपेक्षा युद्ध में प्राण देकर स्वर्ग जाना हम सौगुना अधिक अच्छा समझते हैं। हमारे ही कारण हमारे पक्ष के सारे राजों की हार हुई है। अतएव, धर्म्म के अनुसार युद्ध करके स्वर्ग जाने ही को इस समय हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

दुर्योधन के मुँह से यह बात सुन कर सारे क्षत्रिय 'वाह! वाह!' कह कर उनकी प्रशंसा करने लगे। फिर वे सब लोग एकत्र होकर दुर्योधन से बोले:—

महाराज! आप किसी को सेनापति बना कर शत्रुओं के साथ युद्ध कीजिए।

तब दुर्योधन ने अश्वत्थामा का नाम लेकर उनसे कहा:—

हे गुरुपुत्र! अब किसे सेनापति बनाना चाहिए, इस विषय में आप ही उपदेश दीजिए। इस समय हमें एक-मात्र आप ही का भरोसा है।

उत्तर में अश्वत्थामा ने कहा:—

महाराज! मद्र-नरेश में बल, वीर्य्य और यश आदि सभी गुण वास करते हैं। वे

आपके इतने कृतज्ञ हैं कि अपने भानजे युधिष्ठिर को छोड़ कर आपकी तरफ़ से युद्ध कर रहे हैं। अतएव, उन्हीं को सेनापति बनाने से हम लोग जीत जाने की आशा कर सकते हैं।

अश्वत्थामा की सलाह दुर्योधन को बहुत पसन्द आई। वे तुरन्त ही शल्य के पास गये और हाथ जोड़ कर कहने लगे:—

हे मद्रराज! आप हमारे बहुत बड़े मित्र हैं। शत्रु और मित्र की परीक्षा विपद्-काल ही में होती है। आज वही समय उपस्थित हुआ है। यदि आप हमें अपना कृपापात्र समझते हैं—यदि हम पर आपका कुछ भी स्नेह है—तो इस समय आप हमारे सेनापति हूजिए। इन्द्र ने दानवों का जैसे नाश किया था वैसे ही आप भी पाण्डवों और पाञ्चाल लोगों का नाश कीजिए।

शल्य बोले:—

हे कुरुराज! आपकी आज्ञा हमें स्वीकार है। हमने सेनापति होना मंज़ूर किया। पाण्डवों की तो कोई बात नहीं, यदि देवता भी युद्ध के लिए तैयार हों, तो हम उनके भी साथ युद्ध करने में ज़रा भी आगा पीछा न करेंगे।

मद्रराज के मुँह से ऐसे उत्साह-पूर्ण वचन सुन कर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए और उनको शास्त्र की रीति से सेनापति के पद पर नियत किया। इसके अनन्तर सब लोगों ने मिल कर यह नियम किया कि कोई मनुष्य पाण्डवों के साथ अकेले युद्ध न करे; किन्तु सब लोग मिल कर परस्पर एक दूसरे के बचाव का यत्न करके युद्ध करें।

प्रातःकाल हुआ। प्रबल प्रतापी मद्रराज ने सर्वतोभद्र नाम के व्यूह की रचना की और मद्रदेश के वीरों को साथ लेकर खुद ही उसके मुँह पर आ विराजे। कौरव-लोगों से घिरे हुए महाराज दुर्योधन व्यूह के बीच में, संसप्तक लोगों को ले कर कृतवर्म्मा बाईं तरफ़, यवन-सेना के साथ कृपाचार्य्य दाहिनी तरफ़, और काम्बोज लोगों को अपना रक्षक बना कर अश्वत्थामा पीछे की ओर लड़ने के लिए तैयार हुए। पाण्डवों पर आक्रमण करने के लिए सवारों का दल लेकर शकुनि और उलूक सबसे आगे बढ़े।

इसके अनन्तर, मद्रराज शल्य अच्छे सजे हुए रथ पर सवार होकर, अपने प्रचण्ड धन्वा की लगातार टङ्कार करते हुए शत्रुओं का नाश करने के लिए बड़े वेग से दौड़े। यह देख दुर्योधन के निराश मन में फिर आशा का उदय हुआ। इधर पाण्डवों ने भी कौरवों के व्यूह के जवाब में एक विकट व्यूह बनाया और कौरवों के आक्रमण को रोकने लगे। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि शल्य की सेना के साथ युद्ध करने चले:—

कृतवर्म्मा के द्वारा रक्षा किये गये संसप्तक लोगों से लड़ने के लिए अर्जुन रवाना हुए; सोमक लोगों को साथ लेकर भीमसेन ने कृपाचार्य्य की सेना से भिड़ने के लिए भेरी बजाई, नकुल और सहदेव अपनी अपनी सेना-समेत शकुनि और उलूक से लड़ने दौड़े।

कुछ देर में शल्य का बल-विक्रम असह्य हो गया। उनकी भीषण मार से पाण्डवों की सेना में हाहाकार होने लगा। शल्य अकेले ही पाण्डवों की मानों सारी सेना के साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने शरों से युधिष्ठिर के होश उड़ा दिये—उनको उन्होंने बे-तरह व्याकुल कर दिया। इस पर महारथी धर्म्मराज क्रोध से लाल हो उठे। उन्होंने प्रण किया कि या तो आज हमीं मारे जायँगे या शल्य ही को मार कर युद्ध से निवृत्त होंगे। यह निश्चय करके उन्होंने कृष्ण और अपने भाइयों से इस प्रकार पुरुषार्थ भरे हुए वचन कहे:—

हे कृष्ण! हे भाइयो! भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि जिन सब वीरों ने दुर्योधन की तरफ़ होकर युद्ध के मैदान में पराक्रम दिखाया उन सबको तुम लोगों ने अपने अपने हिस्से के अनुसार मार गिराया। शल्य जो अब तक बच रहे हैं उन्हें, इस समय, हम अपना हिस्सा समझते हैं। इससे हमीं उन्हें मारेंगे। नकुल और सहदेव हमारे चक्र की रक्षा करें, सात्यकि और धृष्टद्युम्न हमारे दाहिने और बायें भाग की। धनञ्जय हमारे पीछे रहें और भीमसेन आगे। हम सच कहते हैं, चाहे हार हो चाहे जीत, आज हम क्षत्रियों के धर्म्म के अनुसार ज़रूर ही मामा शल्य के साथ युद्ध करेंगे।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके धर्म्मराज युधिष्ठिर शल्य के पास पहुँचे। तब मद्रराज शल्य ने युधिष्ठिर पर ऐसी बाण-वर्षा आरम्भ करदी जैसी कि आकाश से जल-वृष्टि होती है। उस समय कोई भी उन्हें नीचा न दिखा सका। पाण्डवों के पक्षवालों का एक भी बाण उनके शरीर को न छू गया। पर, कुछ देर में, युधिष्ठिर ने भी अस्त्र-शस्त्रों की झड़ी लगा दी। तब युद्ध ने बड़ा ही भयङ्कर रूप धारण किया। सिंह के समान दोनों वीर एक दूसरे को मारने का मौक़ा ढूँढ़ने लगे। दोनों के कितने ही घाव लगे। शल्य ने एक ऐसा तेज़ बाण मारा कि युधिष्ठिर का धनुष कट कर गिर गया। तब युधिष्ठिर को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने दूसरा धनुष लेकर कई बाण उस पर जोड़े और शल्य के सारथि और घोड़ों को मार कर पृथ्वी पर पटक दिया। इस पर अश्वत्थामा ने शल्य को अपने रथ पर चढ़ा लिया। उन्हें लेकर वे वहाँ से दूसरी जगह चले गये।

किन्तु युधिष्ठिर का सिंहनाद और उनके साथी पाण्डवों की आनन्द-ध्वनि शल्य

से न सही गई। दूसरे रथ पर सवार होकर वे शीघ्र ही लौट आये और युधिष्ठिर के सामने आकर उपस्थित हुए। उस समय पाण्डव, पाञ्चाल और सोमक लोगों ने उन्हें चारों तरफ़ से घेर लिया। यह देख दुर्योधन भी कौरवों को लेकर उनकी रक्षा के लिए चले। इतने में मद्रराज शल्य ने युधिष्ठिर की छाती में अचानक एक बाण मारा। इससे युधिष्ठिर बे-तरह उत्तेजित हो उठे और तमतमा कर ऐसे वेग से शल्य पर एक शर चलाया कि उसकी चोट से शल्य प्रायः मूर्छित होकर रथ पर गिर पड़े। इस पर युधिष्ठिर को परमानन्द हुआ।

तब महावीर कृप ने छः बाण धनुष पर जोड़े और युधिष्ठिर के सारथि को मार गिराया। यह देखते ही महाबली भीमसेन ने शल्य के धनुष के दो टुकड़े करके उनके घोड़ों को मार डाला। साथ ही धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि आदि वीरों ने पैने पैने बाणों की वर्षा करके शल्य को सब तरफ़ से तोप दिया।

इस बाण-वर्षा से शल्य घबरा उठे; उनके होश उड़ गये। बे-घोड़ों के रथ से वे उतर पड़े और ढाल-तलवार लेकर युधिष्ठिर की तरफ़ दौड़े। वे कुछ ही दूर आगे बढ़े होंगे कि भीमसेन ने उन्हें देखा। वे समझ गये कि अब युधिष्ठिर पर आफ़त आई। इससे उन्होंने शल्य की ढाल-तलवार बीच ही में अपने तीक्ष्ण बाणों से काट डाली। महा-तेजस्वी भीमसेन को ऐसा अद्भुत काम करते देख पाण्डव लोग आनन्द से फूल उठे और बार बार सिंहनाद करने लगे।

परन्तु, हथियार पास न रहने पर भी मद्रराज ने युधिष्ठिर पर आक्रमण करने का विचार न छोड़ा। वे खाली हाथ ही उनकी तरफ़ दौड़े। इस पर धर्मराज क्रोध से जल उठे। उन्होंने एक प्रचण्ड शक्ति हाथ में लेकर बड़े यत्न से शल्य पर छोड़ा और हाथ उठा कर खूब गर्जते हुए कहा:—

हे मद्रराज! इस दफ़े तुम्हारे प्राण गये।

यह शक्ति शल्य की छाती फाड़ती हुई भीतर तक चली गई। उससे उनके मर्म्म-स्थल कट गये। रुधिर से उनका सारा शरीर भीग गया। दोनों भुजायें फैला कर वे भूमि पर गिर पड़े। होम हो चुकने पर शान्त हुई अग्नि की तरह महारथी शल्य पृथ्वी पर सदा के लिए सो गये। सेनापति के मारे जाने से कौरवों की सेना में हाहाकार होने लगा। सेना तितर बितर होकर भागने लगी। घबरा कर सैनिकों के भागने से युद्ध के मैदान में इतनी धूल उड़ी कि कुछ भी न दिखाई देने लगा। सब तरफ़ अन्धकार छा गया।

पाण्डवों ने जो देखा कि कौरवों की सेना घबरा कर इधर उधर भाग रही है तो उनका उत्साह दूना हो गया। वे बड़े प्रसन्न हुए और उसका संहार करने के लिए दौड़े। तब दुर्योधन ने अपने सारथि से कहा:—

हे सूत! धनुर्धारी अर्जुन हमारी सेना पर आक्रमण करने की चेष्टा कर रहे हैं। इससे हमारे रथ को, इस समय, सैनिकों के पीछे ले चलो। युद्ध-भूमि में हमें युद्ध करते देख सैनिक लोग ज़रूर ही लौट आवेंगे।

दुर्योधन ने यह बात वीरों के योग्य ही कही। इससे सारथि ने उनकी आज्ञा का तत्काल पालन किया। पैदल सेना ने राजा को अकेले युद्ध करते देख, उन्हें असहाय अवस्था में छोड़ जाना उचित न समझा। इससे वह लौट आई और फिर युद्ध के मैदान में डट गई। दुर्योधन ने जो बात सोची थी वह सच निकली। कौरव-पक्ष के योद्धाओं ने जीने की आशा छोड़ कर फिर युद्ध आरम्भ किया। अर्जुन के ऊपर फिर बाण-वर्षा होने लगी। किन्तु गाण्डीव की बदौलत अर्जुन ने उन लोगों के सारे अस्त्र-शस्त्र सहज ही में व्यर्थ कर दिये। उनकी एक भी न चली।

अर्जुन के वज्र समान बाण आकाश से गिरी हुई जल-धारा की तरह कौरवों पर बरसने लगे। उन्हें वे लोग किसी तरह न सह सके। कोई बे-रथ और बे-घोड़े के हो गये; किसी के अस्त्र-शस्त्र टुकड़े टुकड़े हो गये; कोई गहरी चोट लगने से मूर्च्छित हो गये; और कोई कोई फिर भाग निकले। कुछ वीरों ने डेरों में जा कर रथ और हथियार आदि युद्ध का सामान लिया और फिर युद्ध करने चले।

इस समय धृतराष्ट्र के सिर्फ़ बारह पुत्र बच रहे थे। उन्होंने मिल कर एक ही साथ भीमसेन पर आक्रमण किया। वीर-शिरोमणि भीमसेन ने क्रोध में आकर अपने पैने बाणों से किसी का सिर काट लिया; किसी की छाती फाड़ कर ज़मीन पर गिरा दिया; किसी का और किसी तरह प्राण-नाश किया। अनेक तरह के अस्त्रों द्वारा उन्होंने एक एक करके सबको यम-लोक भेज दिया। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके वे ज़ोर ज़ोर से आनन्द-ध्वनि करने लगे।

अब तक कौरवों की बहुत सेना कट चुकी थी। कुछ ऐसी ही थोड़ी सी रह गई थी। सो वह भी बे-तरह घबराई हुई थी। उसकी दीन दशा देख कृष्ण ने अर्जुन से कहा:—

हे अर्जुन! अनगिनत शत्रु मारे जा चुके हैं। हमारे योद्धाओं को जो काम दिया गया था उसे करके वे लोग अपने अपने दल में इस समय आनन्द से आराम कर रहे

हैं। बची हुई थोड़ी सी सेना का व्यूह बना कर उसके बीच में खड़े हुए दुर्योधन इधर उधर देख रहे हैं; अपना एक भी अच्छा सहायक इस समय उन्हें नहीं देख पड़ता। इस कारण उनके चेहरे पर दीनता झलक रही है। जो कौरव-वीर मारे जाने से बच गये हैं उनमें से एक भी इस समय उनके पास नहीं। इससे युद्ध समाप्त करने का यही अच्छा अवसर है। इस मौक़े को हाथ से न जाने दो। दुर्योधन को मार कर वहुत काल से जलती हुई शत्रुतारूपी आग को बुझाने में अब देर न करो।

उत्तर में अर्जुन ने कहा:—

मित्र! भीमसेन ने धृतराष्ट्र के और सारे पुत्रों को संहार किया है। अतएव दुर्योधन का भी उन्हीं के हाथ से मारा जाना उचित है। इस समय कोई पाँच सौ घोड़े, दो सौ रथ, एक सौ हाथी और तीन हज़ार पैदल सेना कौरवों की बाक़ी है। यह इतनी सेना अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य, त्रिगर्त्तराज, उलूक, शकुनि और कृतवर्मा के अधीन है। ये लोग भी अब तक जीते हैं। किन्तु आज ये भी सेना-समेत काल के गाल में चले जायँगे, बचने के नहीं। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि आज ही हम धर्म्मराज को बिना शत्रु का कर देंगे। आप रथ चलाइए। यदि दुर्योधन भाग न जायँगे तो उनकी भी मृत्यु आज हमारे ही हाथ से होगी।

यह सुन कर कृष्ण ने अर्जुन का रथ दुर्योधन की सेना के सामने चलाया। इस समय प्रबल पराक्रमी सहदेव को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई। वे शकुनि पर दौड़े और बाणों से उन्हें बे-तरह पीड़ित किया। इतने में शकुनि के पुत्र उलूक उन्हें सामने देख पड़े। उनका सिर काट कर सहदेव कहने लगे:—

हे सुबल के पुत्र! क्षत्रियों के धर्म्म के अनुसार स्थिर हो कर युद्ध करो। जुआ-घर में ख़ुशी के मारे जो नाच नाच उठे थे उसका फल इस समय भोग करो।

वीरवर सहदेव यह कह कर बड़े क्रोध से शकुनि पर अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे। अपने ही सामने पुत्र के मारे जाने के कारण आँखों में आँसू भरे हुए शकुनि को विदुर का दिया हुआ वह उस समय का हितोपदेश याद हो आया। पर यह समय रोते बैठने का न था। इससे क्षण भर शोक करके वे सहदेव के सामने हुए और उनके चलाये गये शस्त्रों से बचने की चेष्टा करने लगे।

किन्तु, क्रोध से भरे हुए माद्री-तनय सहदेव का वेग उनसे किसी तरह न सहा गया। उन्होंने देखा कि बाण-युद्ध में हम सहदेव से पार नहीं पा सकते। इससे वे गदा और तलवार आदि हथियार चलाने लगे। परन्तु उनको भी सहदेव ने बीच ही में

खण्ड खण्ड करके फेंक दिया। अन्त को शकुनि ने सोने से मँढ़ा हुआ प्रास नाम का एक शस्त्र हाथ में लिया और उसे सहदेव पर फेंकने लगे। यह देख कर क्रोध से सहदेव जल उठे। उन्होंने उस प्रास-समेत शकुनि की दोनों भुजायें काट डालीं और बड़े ज़ोर से सिंहनाद किया। इसके बाद एक तेज़ बाण धनुष पर चढ़ा कर उन्होंने सारी अनीति और सारे अन्याय की जड़ शकुनि का मस्तक भी काट गिराया।

शकुनि को मारा गया देख कौरवों की सेना का कलेजा काँप उठा। वह फिर चारों तरफ़ भागने लगी। इधर पाण्डवों के पक्षवालों ने बड़े ज़ोर से शङ्ख बजाया। इसी समय इधर उधर भागती हुई कौरव-सेना पर भीम और अर्जुन दोनों एक ही साथ टूट पड़े। कुछ ही देर में वह सारी की सारी सेना मारी गई। दो चार मनुष्यों को छोड़ कर समुद्र के समान लम्बी चौड़ी उस ग्यारह अक्षौहिणी सेना में से कोई भी योद्धा उस समय युद्ध-भूमि में जीता न रहा।

राजों में से अकेले दुर्योधन जीते रह गये। उन्हें इस समय दसों दिशायें सूनी देख पड़ने लगीं। पाण्डवों की आनन्द-ध्वनि और अपनी यह गति देख युद्ध के मैदान से भाग जाना ही उन्होंने अपने लिए अच्छा समझा। अतएव, सिर्फ़ एक गदा हाथ में लेकर, विदुर का उपदेश याद करते करते, और मन ही मन चिन्ता के समुद्र में डूबते उतराते, वे पैदल ही पूर्व की तरफ़ चले। एक बहुत बड़े तालाब में उनका तैयार कराया हुआ पानी का एक स्तम्भ था। उसी में छिप रहने के इरादे से वे दौड़े।

इस समय युद्ध का मैदान कौरवों के पक्ष के लोगों से बिलकुल ही खाली था। ऐसे कौरव-शून्य मैदान से सञ्जय घर जा रहे थे। राह में उन्हें अचानक दुर्योधन देख पड़े। दुर्योधन की उस समय बुरी दशा थी। वे बेहद घबराये हुए थे। उसी दशा में वे सञ्जय के पास आये और उनके शरीर पर बार बार हाथ रख कर बड़ी बड़ी आँखों से उन्हें देख देख कहने लगे:—

हे सञ्जय! इस समय तुम्हें छोड़ कर अपने पक्ष के किसी मनुष्य को हम जीता नहीं देखते। हमारे भाइयों की और हमारी सेना की क्या दशा हुई, सो मालूम है?

सञ्जय ने कहा:—महाराज! आपके भाई आपकी सारी सेना-समेत मारे गये, यह हमने अपनी आँखों देखा है। सुना है कि कौरवों के पक्ष के सिर्फ़ तीन आदमी जीते बचे हैं।

दुर्योधन ने लम्बी साँस खींच कर कहा:—

हे सञ्जय! पिता से कहना कि आपका पुत्र दुर्योधन बे-तरह घायल होकर समर-

भूमि से चला आया है और तालाब में छिप कर प्राण-रक्षा कर रहा है। हाय! हाय! बिना बन्धु-बान्धवों के हो कर अब हम किस तरह जीवन धारण कर सकेंगे।

कुरुराज दुर्योधन यह कह कर पास ही तालाब के किनारे गये और उसके बीच में बने हुए जल-स्तम्भ के भीतर घुस कर वहीं छिप रहे। कुछ ही देर में घायल कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और कृतवर्म्मा अपने थके हुए घोड़ों-समेत वहीं आ पहुँचे। उन्होंने सञ्जय को दूर से देखते ही बड़े वेग से घोड़े दौड़ाये और सञ्जय के पास आ कर उनसे बोले:—

हे सञ्जय! हमारे बड़े भाग्य थे जो आज हमने तुम्हें जीता देखा। कहिए हमारे राजा दुर्योधन का क्या हाल है। जीते तो हैं?

तब सञ्जय ने दुर्योधन के तालाब में छिप रहने की बात कही। दुर्योधन की यह गति हुई सुन सब लोगों ने बड़ी देर तक विलाप किया। फिर सञ्जय को कृतवर्म्मा के रथ पर सवार करा कर उन्हें शिविर में भेज दिया।

कौरव-सेना का संहार हो गया देख धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु सोचने लगे:—

महाबली और महापराक्रमी पाण्डवों ने दुर्योधन को हरा कर बचे हुए कौरव-वीरों और हमारे भाइयों को मार डाला। इस समय भाग्य से अकेले हमीं जीवित हैं। डेरों में जितने नौकर-चाकर थे सभी भाग गये हैं। इससे राज-स्त्रियों को साथ लेकर इस समय हमें हस्तिनापुर लौट जाना चाहिए।

यह सोच कर युयुत्सु युधिष्ठिर के पास गये और उनसे अपने मन की बात कही। युधिष्ठिर तो बड़े दयालु थे। उन्होंने युयुत्सु को हृदय से लगा कर उसी क्षण विदा किया। युयुत्सु ने राज-स्त्रियों की अच्छी तरह रक्षा करके उन्हें हस्तिनापुर पहुँचा दिया। कौरवों के मन्त्रियों को भी वे अपने साथ लेते गये। परम बुद्धिमान् विदुर ने युयुत्सु को देख कर उनकी बड़ी प्रशंसा की। वे बोले:—

बेटा! कौरवों की स्त्रियों की रक्षा करके और उन्हें हस्तिनापुर पहुँचा कर तुमने बहुत अच्छा काम किया। इस समय तुम्हें यही मुनासिब था। तुमने अपने कुल के धर्म्म का पालन किया। यह हमारा अहोभाग्य है जो हम तुम्हें वीरों का नाश करने-वाले इस युद्ध से सकुशल लौट आया देखते हैं। तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र बड़े ही अदूरदर्शी और डामाडोल चित्तवाले निकले। उनका राज्य-लोभ ही कौरवों के नाश का कारण हुआ। इस समय इस अभागी अन्धे राजा के बुढ़ापे की लकड़ी होने के लिए एक तुम्हीं बच रहे हो।

६—युद्ध की समाप्ति

स्त्रियों के चले जाने और नौकरों के भाग जाने से कौरवों का शिविर—उनके रहने के डेरे—बिलकुल ही सूने हो गये। इससे सञ्जय-सहित बचे हुए वे तीनों कौरव-वीर वहाँ न रह सके। वे फिर उस तालाब के पास गये और किनारे पर खड़े होकर जल के भीतर छिपे हुए दुर्योधन को पुकार कर कहने लगे:—

महाराज! जल से निकल कर हमारे पास आइए और शत्रुओं के साथ युद्ध करके या तो राज्य ही प्राप्त कीजिए या सुर-लोक ही का रास्ता लीजिए। पाण्डवों के पास बहुत ही थोड़ी सेना रह गई है। यदि हम लोग मिल कर एक ही साथ उन पर आक्रमण करेंगे तो निश्चय ही वे लोग मारे जायँगे।

उत्तर में राजा दुर्योधन ने कहा:—

हे महारथी महाशयो! हम इसे अपना अहोभाग्य समझते हैं, जो इस नर-नाशकारी युद्ध से तुम जीते बच गये हो। हमारा एक भी अङ्ग ऐसा नहीं जिसमें घाव न हो। तुम भी बहुत थक गये हो। पाण्डवों की बची हुई सेना भी बहुत थोड़ी नहीं है। तुम वीरों में श्रेष्ठ हो। इससे, हमारे हित-साधन के लिए, युद्ध करने का उत्साह दिखाना तुम्हें उचित ही है। परन्तु, हमारी समझ में यह समय पराक्रम दिखाने का नहीं है। आज रात भर आराम कीजिए और थकावट मिटाइए। कल तुम्हें अपने साथ लेकर हम निश्चय ही युद्ध करेंगे।

तब महावीर अश्वत्थामा ने कहा:—

महाराज! तुम तालाब से निकल आवो और निश्चिन्त होकर बैठो; हमीं शत्रुओं का नाश करेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि शत्रुओं का संहार किये बिना हम शरीर से कदापि कवच न उतारेंगे।

इसी समय कुछ व्याध उस जगह से आ निकले। वे मांस आदि लेकर पाण्डवों के शिविर को जा रहे थे। थक जाने के कारण वे वहीं तालाब के किनारे बैठ गये। उन्होंने ये बातें सुन लीं। इससे उन्हें मालूम हो गया कि राजा दुर्योधन जल के भीतर छिपे हुए हैं। इसके पहले ही विशेष रूप से दुर्योधन की खोज हो रही थी। शिविर में जो लोग आते जाते थे उनसे दुर्योधन का पता लगाने के लिए कहा जाता था। यह बात इन व्याधों को भी मालूम हो गई थी। इससे, बहुत सा धन पाने की आशा से, ये लोग युधिष्ठिर के डेरों की तरफ़ बड़ी शीघ्रता से चले। वहाँ पहुँचने पर द्वारपालों के मना

करने की कुछ भी परवा न करके वे तुरन्त ही युधिष्ठिर के पास उपस्थित हुए और उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

दुर्योधन का कुछ भी पता न पाने से पाण्डव लोग उस समय उदास बैठे थे। सारे झगड़े की जड़ दुर्योधन ही थे। उनके इस तरह लापता हो जाने से पाण्डव बहुत निराश हो रहे थे। चारों ओर भेजे गये दूत लौट लौट कर यही कहते चले जाते थे कि कुरुराज दुर्योधन का कुछ भी पता नहीं चलता। इस दशा में व्याधों के मुँह से दुर्योधन की ख़बर सुन कर पाण्डवों को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने उन व्याधों को बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट किया और उन्हें विदा करके तत्काल ही उस तालाब की ओर प्रस्थान किया।

उस समय महा भीषण सिंहनाद और कलकल-शब्द होने लगा। दुर्योधन का पता पाने से पाण्डव-सेना के वीर ज़ोर ज़ोर से आनन्द-ध्वनि करने लगे। बड़े वेग से दौड़ते हुए रथों की घरघराहट से धरती कँपने लगी। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, और बचे हुए पाञ्चाल लोग चतुरङ्गिनी सेना लेकर पाण्डवों के साथ युधिष्ठिर के पीछे पीछे चले।

कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और कृतवर्म्मा यह कोलाहल सुन कर दुर्योधन से कहने लगे:—

महाराज! युद्ध में विजय पाये हुए पाण्डव लोग यहाँ आ रहे हैं; आज्ञा हो तो अब हम यहाँ से चल दें।

बहुत अच्छा—कह कर दुर्योधन उसी जल-स्तम्भ के भीतर चुपचाप बैठे रहे। वहाँ से कुछ दूर पर बरगद का एक पेड़ था। कृपाचार्य्य ने उसके नीचे जाकर घोड़ों को खोल दिया और वहीं ठहर गये।

इतने में पाण्डव लोग उस तालाब के तट पर आ गये। वहाँ जल-स्तम्भ देख कर धर्म्मराज ने कृष्ण से कहा:—

हे कृष्ण! इस तालाब से दुर्योधन को निकालने की क्या तरकीब करनी चाहिए। हमारे जीते रहते यह पापात्मा कभी चुप बैठने का नहीं; एक न एक षड्यन्त्र रचा ही करेगा।

कृष्ण बोले:—हे धर्म्मराज! इस समय कोई कौशल करना चाहिए। दुर्योधन के साथ उस्तादी किये बिना काम न चलेगा। तुम ऐसी कड़ी कड़ी बातें उसे सुनाओ कि क्रोध से उत्तेजित होकर वह जल के बाहर निकल आवे।

तब जल के भीतर छिपे बैठे हुए दुर्योधन को पुकार कर युधिष्ठिर इस प्रकार ज़ोर ज़ोर कहने लगे:—

हे कुरुराज ! तुमने अपने पक्ष के सारे क्षत्रियों का नाश कर दिया। यही नहीं, किन्तु तुम्हारे कारण तुम्हारे वंश का भी कोई मनुष्य जीता नहीं बचा। अब क्या समझ कर तुम अपनी जान बचाने के लिए जल के भीतर छिपे बैठे हो ? सब लोग तुम्हें बहुत बड़ा वीर बतलाते हैं; परन्तु आज तुम्हें प्राण जाने के डर से छिपे बैठे देख तुम्हारी वीरता की बात बिलकुल ही मिथ्या मालूम होती है। इससे तुम्हें चाहिए कि तुम तुरन्त ही जल से निकल आवो और हमें मार कर या तो राज्य प्राप्त करो या हमारे हाथ से परास्त होकर स्वर्ग की राह लो।

यह सुन कर दुर्योधन ने जल के भीतर ही से कहा:—

महाराज ! जितने प्राणी हैं सभी को अपना अपना प्राण प्यारा है। अतएव, प्राण जाने से यदि कोई डरे तो आश्चर्य्य ही क्या है ? परन्तु, हम प्राण बचाने के लिए नहीं भाग आये। रथ और अस्त्र-शस्त्र पास न रह जाने से हम बहुत थक गये हैं। इससे, हम यहाँ सिर्फ़ विश्राम कर रहे हैं—सिर्फ़ थकावट दूर करने के लिए हम यहाँ आ बैठे हैं। तुम ज़रा देर अपने साथियों-सहित ठहरो। हम बहुत जल्द जल से निकल कर तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा:—दुर्योधन ! हम खूब आराम कर चुके हैं। तुम्हें ढूँढ़ते हमें बड़ी देर हुई। इससे तुरन्त ही जल से निकल कर तुम युद्ध करो। अधिक देर तक हम नहीं ठहर सकते।

तब दुर्योधन ने उत्तर दिया:—

महाराज ! अपने जिन भाइयों के लिए हम राज्य पाने की कामना करते थे वे सभी स्वर्गवासी हो चुके हैं। इस समय हमें यह क्षत्रिय-शून्य और धनहीन राज्य पाने की ज़रा भी इच्छा नहीं। हम इस समय भी सारे पाण्डवों और पाञ्चाल लोगों को मारने में समर्थ हैं। किन्तु भीष्म, द्रोण और कर्ण आदि के मारे जाने से हम अब और युद्ध नहीं करना चाहते। अतएव, तुम्हीं इस धन, धान्य, हाथी, घोड़े और बन्धु-बान्धवहीन राज्य का भोग करो। हमारे सदृश राजा इस तरह का राज्य पाने की इच्छा नहीं रखता। इसके सिवा, अपने प्यारे पुत्र और भाइयों के न रहने से हम अब जीते भी नहीं रहना चाहते। हम तो अब मृगछाला लेकर वन का रास्ता लेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा:—

हे दुर्योधन! जल के भीतर बैठे बैठे तुम व्यर्थ विलाप कर रहे हो। तुम्हारे ऐसा करने से हमें ज़रा भी दया आने की नहीं। राज्य दे डालने की जो तुम बात कहते हो सो तुम्हारा बकवाद-मात्र है। उससे कुछ लाभ नहीं। राज्य-दान करने का तुम्हें अधिकार ही कहाँ? और, तुम्हारा दिया हुआ राज्य हम लेंगे क्यों? अब हम और तुम दोनों एक साथ जीते नहीं रह सकते। या तो तुम्हीं जीते रहोगे, या हमीं। इससे वृथा बातें मत बनाओ। या तो राज्य लो, या स्वर्ग की राह। दो में से एक बात करो। देर मत करो।

युधिष्ठिर के तिरस्कार-पूर्ण वचन दुर्योधन से और नहीं सहे गये। वे तुरन्त ही जल से निकल आये और बोले:—

हे कुन्तीनन्दन! तुम्हारे पास रथ हैं, हाथी हैं, घोड़े हैं, बन्धु-बान्धव हैं, सेना है। हम अकेले हैं और थके हुए हैं; न हमारे पास सेना है, न हमारे पास हथियार हैं। फिर किस तरह हम तुमसे युद्ध करेंगे? एक मनुष्य का अनेक मनुष्यों के साथ युद्ध करना धर्म्म की बात नहीं। हे पाण्डव! यह न समझना कि तुम्हें देख कर हम डर गये हैं। यदि तुम में से एक एक आदमी हमसे युद्ध करेगा तो हम सबको यमराज के घर भेज देंगे।

दुर्योधन के मुँह से यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा:—

हे दुर्योधन! अहोभाग्य! जो तुम आज क्षत्रियों के धर्म्म का स्मरण करते हो। किन्तु जिस समय अनेक महारथियों के साथ तुम लोगों ने बालक अभिमन्यु का वध किया उस समय तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई थी? तब न तुम्हें क्षत्रिय-धर्म्म याद आया! विपत्ति पड़ने पर सभी को धर्म्म याद आता है; परन्तु सम्पत्ति के समय परलोक का दरवाज़ा बन्द देख पड़ता है। ख़ैर, इन बातों से अब क्या लाभ है? तुम कवच पहन कर और जो हथियार चाहो लेकर, हम में से जिसके साथ तुम्हारा जी चाहे, युद्ध करो। हम लोगों में से यदि तुम एक को भी मार सको तो यह सारा राज्य तुम अपना ही समझो। हमारी इस बात को सच मानो; इसमें ज़रा भी बनावट नहीं।

यह सुन कर दुर्योधन बड़े ख़ुश हुए। उन्होंने लोहे का कवच पहना, केशों को कस कर सिर पर बाँधा, और गदा हाथ में लेकर कहा:—

हे धर्म्मराज! तुमने हमें एक आदमी के साथ युद्ध करने की अनुमति दी है। इससे, तुममें से जिसका जी चाहे हमारे साथ गदा-युद्ध के लिए निकल आवे। तुम

लोगों में कोई भी ऐसा नहीं जो गदा-युद्ध में हमारी बराबरी कर सके। जिसकी इच्छा हो, हाथ में गदा ले और हमारी बात के झूठ-सच होने की परीक्षा कर देखे।

दुर्योधन के मुँह से इस प्रकार घमण्ड की बातें सुन और उन्हें पैतड़ा बदलते देख कृष्ण को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा:—

महाराज! दुर्योधन के द्वारा एक ही आदमी के मारे जाने पर तुमने किस बल पर—किस साहस पर—सारा राज्य ले जाने की अनुमति दी? यह दुरात्मा यदि तुमको, या अर्जुन को, या नकुल-सहदेव को गदा-युद्ध के लिए ललकारता तो तुम्हारी क्या दशा होती? गदा-युद्ध में तुममें से कोई भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। भीमसेन अधिक बलवान् ज़रूर हैं; पर दुर्योधन का अभ्यास बहुत बढ़ा चढ़ा है। और, इस युद्ध में अभ्यास ही प्रधान है। इस समय, निश्चय जान पड़ता है, कि पाण्डवों के भाग्य में राज्य पाना बिलकुल लिखा ही नहीं; विधाता ने उन्हें वनवास करने और भीख माँग कर पेट भरने ही के लिए पैदा किया है।

यह सुन कर महातेजस्वी भीमसेन ने मुसकरा कर कहा:—

हे मधुसूदन! आप क्यों व्यर्थ दुःख करते हैं? दुर्योधन को मार कर आज हम निश्चय ही वैर की आग बुझा देंगे।

इस पर कृष्ण को धीरज हुआ। भीमसेन की प्रशंसा करके वे बोले:—

हे वीर! इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे ही बाहुबल के प्रभाव से धर्म्मराज शत्रुहीन होंगे। इस समय बड़ी सावधानी से तुम्हें युद्ध करना चाहिए।

यादव-श्रेष्ठ बलराम इस समय तीर्थ-यात्रा करने गये थे। वहाँ से लौटने पर उन्हें युद्ध का हाल मालूम हुआ। इससे युद्ध-सम्बन्धी सारी बातें जानने के लिए वे वहाँ आकर उपस्थित हुए। उन्हें देख कर सब लोग झट पट उठ बैठे और आगे बढ़ कर उन्हें लिया। उनके पैर छूकर सबने उनका यथेष्ट आदर-सत्कार किया। तदनन्तर, उन्होंने युद्ध का सारा वृत्तान्त बलराम से कह सुनाया। बलराम ही ने भीम और दुर्योधन को गदा-युद्ध सिखलाया था। वे इन लोगों के गुरु थे। अतएव इन दोनों ने अपनी अपनी गदा उठा कर गुरु का अभिवादन किया। बलराम ने सबको हृदय से लगाया और कहने लगे:—

हे वीरो! तीर्थ-यात्रा करते हमें बयालीस दिन हुए। किन्तु अब तक तुम लोगों का युद्ध समाप्त नहीं हुआ। हमने मन में कहा था कि इस युद्ध में हम किसी प्रकार शामिल न होंगे। परन्तु, अपने दोनों शिष्यों का गदा-युद्ध देखने की अभिलाषा इस समय हमारे

मन में हो रही है। यह स्थान युद्ध के लिए अच्छा नहीं। इसकी अपेक्षा पुण्यतीर्थ कुरुक्षेत्र ही युद्ध के लिए अधिक उपयोगी है। अतएव, चलिए सब लोग वहीं चलें।

बलराम के कहने से सब लोग कुरुक्षेत्र गये। वहाँ गदा-युद्ध के योग्य एक अच्छी जगह चुनी गई। बलदेव मध्यस्थ बनाये गये। वे बीच में बैठे। और लोग युद्ध देखने के लिए उन्हें घेर कर उनकी चारों तरफ़ बैठ गये।

भीमसेन कवच पहन कर और एक बहुत बड़ी गदा लेकर अखाड़े में उतर पड़े। दुर्योधन ने भी सोने का कवच धारण किया, और एक महा भयङ्कर गदा हाथ में लेकर उनके सामने आ खड़े हुए! इसके अनन्तर, बड़े ज़ोर से गरज कर महाबली दुर्योधन के द्वारा युद्ध के लिए ललकारे जाने पर भीमसेन ने कहा:—

हे दुर्योधन! आज तक तुमने जितने दुष्कर्म्म किये हैं—जितने पाप किये हैं—सब का स्मरण कर लो। इस समय हम तुम्हें उन सबका उचित दण्ड देंगे।

इसके उत्तर में दुर्योधन बोले:—

रे कुलाधम! वृथा बकवाद करने की ज़रूरत नहीं। मुँह से जो कहते हो उसे कर दिखाओ।

यह सुन कर सेना के लोग दुर्योधन की प्रशंसा करने लगे। इससे दुर्योधन बहुत खुश हुए। भीम जल भुन गये। वे गदा उठा कर दौड़े। दोनों परस्पर भिड़ गये। एक दूसरे को हराने की इच्छा से अद्भुत अद्भुत दांव-पेंच खेलने लगे। घोर युद्ध होने लगा। गदायें तड़ातड़ एक दूसरी पर गिरने लगीं। उनकी रगड़ से चिनगारियां निकलने लगीं। उन चिनगारियों से युद्ध-भूमि व्याप्त हो गई।

दोनों वीर अपना अपना बचाव करके परस्पर एक दूसरे के बदन पर गदा मारने की जी जान से कोशिश करने लगे। कभी वे पीछे हट जाते, कभी आगे बढ़ जाते, कभी ऊपर उछल जाते, कभी पैतड़ा बदल कर एक तरफ़ हट जाते। कभी बदन सिकोड़ कर खड़े हो जाते, कभी चक्कर काट कर गदा की चोट बचा जाते। धीरे धीरे युद्ध ने बड़ा ही भयङ्कर रूप धारण किया। दोनों के योद्धो बहुत चोट लगी। बदन में जगह जगह से खून बह निकला।

अन्त में दुर्योधन दाहिनी तरफ़ हुए और भीमसेन बाईं तरफ़। दुर्योधन ने भीम के पेट और पीठ के बीच बाज़ू में गदा मारी। उसके लगने से भीम को बड़ा क्रोध हुआ। उसका बदला लेने के लिए उन्होंने अपनी वज्रतुल्य भीषण गदा उठा कर चलाने के लिए उसे घुमाया। पर दुर्योधन उस गदा पर अपनी गदा मार साफ़ बच गये। यह देख कर

लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। सबने आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाई। धीरे धीरे कुरु-राज दुर्योधन अनेक प्रकार के गदा-युद्ध-सम्बन्धी कौशल दिखाते हुए अखाड़े में चारों तरफ़ चक्कर लगाने लगे। इस पर सब लोगों को निश्चय हो गया कि गदा चलाने में वे भीम की अपेक्षा अधिक निपुण हैं। उनके गदा घुमाने के वेग को देख कर पाण्डवों के मन में डर का सञ्चार हो आया।

इसके अनन्तर, दुर्योधन ने भीमसेन के सिर पर गदा की एक चोट मारी। उससे भीमसेन घबराये तो नहीं, पर क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गईं और होंठ फरकने लगे। उन्होंने भी दुर्योधन को मारने के लिए गदा चलाई। पर दुर्योधन गदा-युद्ध में इतने प्रवीण थे कि उछल कर एक तरफ़ हो गये और भीम की वह गदा व्यर्थ गई। इतने में दुर्योधन को जो मौक़ा मिला तो उन्होंने भीमसेन की छाती पर अपनी गदा का एक ऐसा प्रचण्ड आघात किया कि भीमसेन के बड़ी चोट आई। वे प्रायः बे-होश हो गये। तथापि, इतने पर भी वे घबराये नहीं—उन्होंने धीर नहीं छोड़ा। दुर्योधन ने समझा था कि लगे हाथ भीम के एक और गदा मारेंगे। परन्तु भीमसेन के शरीर पर घबराहट के कोई चिह्न उन्होंने न देखे। उलटा भीमसेन को अपने ऊपर चोट करने के लिए गदा उठाते देखा। इससे दुर्योधन को भीमसेन पर फिर चोट करने का मौक़ा न मिला।

इसके बाद, ज़रा देर में, भीमसेन की तबीयत जो फिर पहले की तरह ठीक हुई तो उन्होंने अपनी गदा सँभाली और बड़े क्रोध में आकर दुर्योधन पर झपटे। उन्होंने कुरुराज दुर्योधन के पेट और पीठ के बीच बड़े ज़ोर से गदा मारी। उसकी चोट से दुर्योधन का शरीर थोड़ी देर तक सुन्न हो गया और गाँठों के बल वे ज़मीन पर आ रहे। यह देख पाण्डवों के पक्षवाले सिंहनाद करने लगे।

इस प्रकार की गई भीमसेन की प्रशंसा दुर्योधन से न सही गई। वे बे-तरह उत्तेजित हो उठे और गदा-युद्ध-सम्बन्धी नई नई करामातें दिखलाते हुए भीमसेन पर वार वार चोटें करने लगे। भीमसेन ने शरीर पर जो कवच धारण किया था वह टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गया। बड़ी कठिनता से वे धैर्य्य धारण कर सके। और कोई होता तो इतनी मार खाने पर कभी का अखाड़े से भाग गया होता। परन्तु भीम महाबली थे। इससे इतने पर भी वे वहाँ डटे रहे। इस समय कृष्ण को बड़ी चिन्ता हुई। वे अर्जुन से कहने लगे:—

मित्र! दुर्योधन के बहुत बड़े योद्धा होने में कोई सन्देह नहीं। अतएव, इसके साथ

न्याय-पूर्वक युद्ध करने से भीमसेन कभी जीतने के नहीं। दुर्योधन शठ हैं; इससे इसके साथ शठता किये बिना काम न चलेगा। खुद इन्द्र भी छल-कपट करके किसी तरह अपना काम सिद्ध करते हैं। भीमसेन ने जो दुर्योधन की जंघा तोड़ने की प्रतिज्ञा की है उसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके उन्हें दुर्योधन को मारना चाहिए। ऐसा किये बिना धर्म्मराज पर ज़रूर संकट आवेगा। तुम्हारे जेठे भाई बड़े ही नादान और कम समझ हैं। क्या सोच कर हममें से एक का भी पराजय होने पर उन्होंने राज्य दे देने की प्रतिज्ञा की?

यह सुन अर्जुन ने अपने बायें घुटने पर थपेड़ा मार कर भीमसेन को इशारा किया। भीमसेन इस इशारे को समझ गये। उन्हें अपनी प्रतिज्ञा याद हो आई। गदा उठाकर वे दुर्योधन की बाईं तरफ़ हो गये और उन्हें मारने का अवसर ढूँढ़ने लगे। दुर्योधन को धोखा देने के लिए वे इस तरह युद्ध करने लगे मानो उन्हें अच्छी तरह गदा चलाना आता ही नहीं। जान बूझ कर उन्होंने दुर्योधन को अपने शरीर पर वार करने का मौक़ा दिया। भीमसेन के फंदे में दुर्योधन आ गये। वे भीमसेन पर झपटे। इतने में भीमसेन ने एकाएक दुर्योधन पर आक्रमण किया। दुर्योधन उछल कर बच तो गये; परन्तु उछलने के साथ ही भीमसेन ने उनके दोनों घुटनों को ताक कर नियम के विरुद्ध गदा मारी। गदा बड़े ज़ोर से लगी। दुर्योधन की जंघा की हड्डी टूट गई और वे धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़े। तब भीमसेन क्रोध के वशीभूत होकर पागल की तरह दुर्योधन के पास गये और उनके मस्तक पर बार बार लात मार कर कहने लगे।

रे दुरात्मा! तू ने जो हमारी दिल्लगी और द्रौपदी का अपमान किया था उसी का यह फल है। भोग कर।

भीमसेन का यह नीच काम किसी को अच्छा नहीं लगा। सब लोग उनकी निन्दा करने लगे। भीम को अपने मुँह अपनी बड़ाई करते देख धर्म्मराज उनका तिरस्कार करने लगे। वे बोले:—

हे भीमसेन! शत्रुता के ऋण से तुम उद्धार हो गये। नीति से हो या अनीति से हो, किसी तरह तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दिखाई। अब शान्त हो जाव; और अधर्म्म मत करो। इस वीर की सेना, भाई, बन्धु-बान्धव और पुत्र आदि सभी मारे जा चुके हैं; कोई भी जीते नहीं। अतएव इसकी दशा इस समय बड़ी ही शोचनीय है। इसके सिवा, ये कुरुराज हमारे भाई हैं। फिर क्यों तुम इनके साथ ऐसा अनुचित और अपमानकारक व्यवहार करते हो?

इसके अनन्तर वे बड़े ही दीन भाव से दुर्योधन के पास गये और आँखों में आँसू भर कर कहने लगे:—

भाई! अपने किये कर्म्मों का तुमने बहुत ही घोर फल पाया। इस समय अब अधिक शोक करने से कोई लाभ नहीं। मृत्यु ही अब तुम्हारे दुःख को दूर करेगी। हम लोग बड़े अभागी हैं; क्योंकि हमें बन्धु-बान्धवों से शून्य राज्य करना और अपनी भौजाइयों को शोक से सन्तप्त देखना पड़ेगा।

इधर, अधर्म्म से दुर्योधन को मारा गया देख गदा-युद्ध में परम प्रवीण महात्मा बलराम बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगे:—

शास्त्र में लिखा है कि नाभि से नीचे किसी जगह गदा मारना मना है। यह बात सभी जानते हैं और इस नियम को सारे योद्धा मानते भी हैं। किन्तु महामूर्ख भीमसेन ने इस नियम का भङ्ग करके मनमानी की है।

यह कह कर हल के आकार का अपना शस्त्र उठा कर बलदेव भीमसेन पर झपटे:—

तब कृष्ण ने अपने दोनों हाथों से पकड़ कर बलराम को रोक लिया और कहने लगे:—

हे महात्मा! क्रोध मत करो। इतने क्रोध का कोई कारण नहीं। सोच देखो, पाण्डव लोग हमारे आत्मीय हैं। उनसे और हम से बहुत निकट का सम्बन्ध है। कौरवों के कारण विपद के अगाध सागर में बहुत दिन तक डूबे रहने के बाद कहीं आज इन्हें उससे निकलने का मौक़ा मिला है। इनकी उन्नति से ही हमारी उन्नति है—इनकी भलाई से ही हमारी भलाई है। अतएव हमें कोई काम ऐसा न करना चाहिए जिससे इन्हें हानि पहुँचे। इसके सिवा, भीमसेन ने भरी सभा में दुर्योधन की जंघा तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। क्षत्रिय होकर इस प्रतिज्ञा को वे टाल नहीं सकते थे।

नम्रता से भरे हुए कृष्ण के ऐसे वचन सुन कर बलराम रुक गये। परन्तु क्रुद्ध होकर कहने लगे:—

हे कृष्ण! इस समय सम्बन्ध और हानि-लाभ की बात कहना वृथा है। अर्थ और काम, यही दो बातें, धर्म के नाश का प्रधान कारण हैं। तुम चाहे जितनी युक्तिपूर्ण बातें कहो, हमारे मन से यह धारणा कभी नहीं जा सकती कि भीमसेन ने अधर्म्म किया है। लोक में भी सब लोग यही कहेंगे कि भीम कूट-योद्धा हैं; युद्ध में वे छल-कपट से काम लेते हैं।

यह कह कर बलराम मारे रिस के रथ पर सवार हुए और द्वारका को चल दिये। जेठे भाई बलराम के तिरस्कार-वाक्य सुन कर कृष्ण का चित्त चञ्चल हो उठा। वे युधिष्ठिर के पास गये और पूछने लगे:—

हे धर्म्मराज! तुम धर्म्म की गूढ़ बातें जानते हो। अतएव हमसे बतलाओ, क्या समझ कर—किस युक्ति के अनुसार—तुमने भीमसेन को इस अधर्म्मसङ्गत काम के लिए उन्हें क्षमा किया।

युधिष्ठिर बोले:—हे वासुदेव! भीमसेन का यह काम हमें पसन्द नहीं। किन्तु धृतराष्ट्र की सन्तान की शठता और बुरे व्यवहार के कारण हमारे भाई तङ्ग आ गये हैं—उन्हें न मालूम कितने कष्ट भोग करने पड़े हैं। इससे, वैर की आग बुझाने के इरादे से, बीच बीच में किये गये उनके अधर्म्मपूर्ण कामों पर भी हम धूल डाल दिया करते हैं।

इस बात से कृष्ण को किसी तरह सन्तोष हुआ। वे प्रसन्न हो गये।

इधर, दुर्योधन को ज़मीन पर गिरा देख पाण्डवों के पक्ष के पाञ्चाल और सञ्जय आदि योद्धा अपने अपने दुपट्टे हिला कर सिंहनाद करने लगे। किसी ने धनुष की टङ्कार की, किसी ने शङ्ख बजाया, किसी ने दुन्दुभी बजा कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। कोई कोई हँस कर कहने लगे:—

हे भीम! गदा-युद्ध में प्रवीण कुरुराज दुर्योधन को गिरा कर आज तुमने बहुत बड़ा काम किया। आज तुमने सौभाग्य से वैर-भाव की आग बुझा दी; परम धार्म्मिक युधिष्ठिर का अहित करनेवाले पापी दुर्योधन के मस्तक पर पैर रख दिया।

इस पर कृष्ण ने कहा:—

हे भूपाल-वृन्द! प्राय: मरे हुए शत्रु को दुर्वचन कहना उचित नहीं। जिस समय इस निर्लज्ज दुर्योधन ने लोभ के कारण अपने हितचिन्तकों और मित्रों का उपदेश न सुना था उसी समय हमने इसे मरा हुआ समझ लिया था। इस समय यह नराधम काठ की तरह जड़वत् ज़मीन पर पड़ा है; इसकी गिनती न शत्रु ही में हो सकती है, न मित्र ही में। इससे, इसको अब और कटुवाक्य कहना मुनासिब नहीं। चलो, रथ पर सवार होकर हम लोग यहाँ से चल दें।

कृष्ण के ये तिरस्कारपूर्ण वचन दुर्योधन से किसी तरह नहीं सहन हुए। दोनों हाथों को ज़मीन पर रख कर बड़े कष्ट से अपने शरीर को उन्होंने साधा और किसी तरह उठ बैठे। उठ कर दुर्योधन ने कृष्ण को इस तरह क्रोधपूर्ण आँखों से देखा मानों

वे उनको जला देना चाहते थे। इस समय उन्हें बेहद कष्ट हो रहा था—पीड़ा से मानों प्राण निकल रहे थे। तथापि किसी तरह उस पीड़ा को दाब कर वे बोले:—

रे कंस के दास-पुत्र! तुम्हारे ही कहने से भीम ने हमारी जंघा तोड़ कर अधर्म्म-युद्ध द्वारा हमें गिराया है। क्या इससे तुम्हें लज्जा नहीं आती? इस युद्ध को धर्म्म-युद्ध समझ कर लड़नेवाले अनगिनत राजे तुम्हारी ही शठता और दुष्टता के कारण प्रति दिन मारे गये हैं। तुम्हीं ने शिखण्डी को आगे करके अन्यायपूर्वक भीष्म पितामह का संहार कराया है। तुम्हीं ने अश्वत्थामा के मारने की झूठी ख़बर उड़ा कर शस्त्रहीन द्रोणाचार्य्य का वध कराया है। तुम्हारे ही आग्रह से हाथ कटे हुए और प्राय: बैठे हुए भूरिश्रवा का सिर काटा गया है। तुम्हारी ही दुष्ट-बुद्धि की प्रेरणा से, रथ से उतरे हुए महावीर कर्ण का अर्जुन के द्वारा असहाय अवस्था में नाश किया गया है। तुम्हारे बराबर पापी, निठुर और निर्लज्ज क्या और भी कोई है?

उत्तर में कृष्ण ने कहा:—

हे गान्धारी के पुत्र! बाल-पन ही से कुमार्गगामी होने के कारण ही तुम अपने बन्धु-बान्धवों सहित मारे गये हो। जिन कुकर्म्मों के लिए तुम हमें दोषी ठहराते हो, तुम्हारा लोभ और राज्य भोग करने की इच्छा से उत्पन्न हुई तुम्हारी अनीति ही उनका एक-मात्र कारण है। इस समय उसी का फल तुम भोग रहे हो।

तब राजा दुर्योधन बोले:—

हे कृष्ण! सागर-पर्य्यन्त इस इतनी बड़ी पृथ्वी पर हमने राज्य किया; अपने शत्रुओं के सिर के ऊपर सदा सिंहनाद किया; जो सुख सम्भोग तथा ऐश्वर्य और राजों को दुर्लभ हैं वे सब भोग किये; और, अन्त में, धर्म्मपरायण क्षत्रिय लोग जिस उत्तम गति की इच्छा रखते हैं उस गति को प्राप्त हुए। इस समय अपने भाइयों और बन्धु-बान्धवों सहित हम स्वर्ग चलते हैं; तुम अब इस शोकपूर्ण सूने राज्य को आनन्द से ले सकते हो।

दुर्योधन के मुँह से ये वचन सुन कर पाण्डवों के चेहरे पर उदासी छा गई। उन्हें चिन्तित देख कृष्ण ने कहा:—

भाइयो! भीष्म आदि वीर युद्ध-विद्या में अत्यन्त निपुण थे। धर्म्म-युद्ध करने से तुम कभी उनसे न जीत सकते। हमने केवल तुम्हारे हित के लिए अनेक युक्तियों से उनका वध-साधन किया है। अपनी रक्षा के लिए छल-कपटपूर्वक युद्ध करने में कोई दोष नहीं। अतएव भीमसेन ने युद्ध का नियम जो भङ्ग किया है उस विषय में और अधिक सोच विचार करने की ज़रूरत नहीं। जिस मतलब से हम लोग यहाँ आये थे

वह सिद्ध हो गया है, और इस समय सायङ्काल होने में भी थोड़ी ही देरी है। इससे चलिए किसी अच्छी जगह चलें और वहाँ युद्ध की समाप्ति के आनन्द में आवश्यक सङ्गल-कार्य्य का अनुष्ठान करें।

युधिष्ठिर बोले:—हे पाण्डवों के मित्रवर! तुम्हारे ही प्रसाद से हमें यह राज्य प्राप्त हुआ है। इसका पाना हमारे लिए बहुत कठिन था; पर आपकी कृपा और सहायता से वह हमें मिल गया। अब हम निष्कंटक हो गये। यदि तुम अर्जुन के सारथि न होते तो कभी हमारी जीत न होती। हे जनार्दन! तुमने हमारे कारण गदा, परिघ आदि न मालूम कितने शस्त्रों की कितनी चोटें सहीं। और, कठोर तथा कटु बातें जो तुम्हें सहनी पड़ीं उनकी तो गिनती ही नहीं। आज दुर्योधन के मारे जाने से वह सब सफल हो गया।

इस प्रकार बातें करते करते कृष्ण और पाण्डव सात्यकि को साथ लेकर पवित्र-जल-पूर्ण नदी के किनारे गये। कृष्ण के उपदेश के अनुसार वहाँ उन्होंने मङ्गल-कार्य्य समाप्त करके वह रात वहीं बिताने की ठानी।

इधर, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को लेकर आनन्द से सिंहनाद करते हुए पाञ्चाल लोगों ने कौरवों के शिबिर की ओर प्रस्थान किया। वहाँ कुछ देर ठहर कर वे दुर्योधन के डेरों में घुसे। उनके भीतर दास, दासी, सोना, चाँदी, मणि और मोती आदि जो अनेक प्रकार का राजसी सामान मिला, उसे अपने कब्ज़े में करके वे लोग मारे ख़ुशी के कोलाहल मचाने लगे।

महावीर अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य और कृतवर्म्मा ने दुर्योधन की जंघा टूटने का जो हाल सुना तो तुरन्त ही वे दुर्योधन के पास दौड़े आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि वायु के वेग से गिरे हुए एक बहुत बड़े पेड़ की तरह महाराज दुर्योधन ज़मीन पर पड़े हुए हैं। उनके सारे शरीर पर धूल लिपट रही है और माथे पर भौंहें क्रोध से टेढ़ी हो रही हैं। यह दशा देख इन तीनों वीरों का कलेजा शोक से फटने लगा। वे रथ से उतर पड़े और दुर्योधन के पास जाकर ज़मीन पर बैठ गये। तदनन्तर, आँखों में आँसू भरे हुए द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा रुँधे हुए कण्ठ से दुर्योधन को पुकार कर कहने लगे:—

हे राजेश्वर! धूल में लिपटे हुए तुम्हें ज़मीन पर पड़ा देख मन में यही धारणा होती है कि संसार के सारे पदार्थ तुच्छ हैं; किसी में कुछ भी सार नहीं। हाय! हाय! इन्द्र के तुल्य पराक्रमी होने पर भी अन्त में तुम्हारी यह गति हुई!

आचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा को इस प्रकार विलाप करते सुन दुर्योधन ने हाथ से आँखें पोंछीं और इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—

हे वीर-वर! जगत् की रचना करनेवाले विधाता ने मनुष्य के जीवन को ऐसा ही क्षणभंगुर बनाया है। उत्पन्न होकर सबको एक न एक दिन यह लोक छोड़ जाना पड़ता है। यहाँ के सारे सुख थोड़े दिन के लिए हैं। सम्पत्ति के बाद विपत्ति का आना स्वाभाविक है। हम भी विधना के इन्हीं नियमों के अनुसार आज इस दशा को प्राप्त हुए हैं। कुछ भी हो, हम इसे अपना अहोभाग्य समझते हैं जो विपद में भी हमने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा। यह भी हमारे लिए कम भाग्य की बात नहीं जो पापी पाण्डव बिना छल-कपट किये हमारा संहार करने में समर्थ नहीं हुए। इस बात को भी हम अपने सौभाग्य का कारण समझते हैं कि अपने बन्धु-बान्धवों और भाइयों के साथ हम युद्ध के मैदान ही में मारे गये। परन्तु, सबसे अधिक सौभाग्य की बात हमारे लिए यह है कि तुम तीनों वीर इस नरनाशकारी युद्ध से जीते बच गये। जहाँ तक तुमसे हो सका तुमने हमारे पक्ष को जिताने का यत्न किया। परन्तु, भाग्य के फेर से तुम्हारा प्रयत्न निष्फल गया; उसके लिए तुम दोषी नहीं ठहराये जा सकते। तुमसे जो कुछ बना तुमने किया। सफलता न हुई तो इसमें तुम्हारा क्या दोष? विधाता ने जो बात जिसके भाग्य में लिख दी है उसे कोई नहीं मेट सकता। अतएव हमारे मारे जाने के विषय में और शोक करना वृथा है। यदि वेद-वाक्य सत्य हैं तो हमें अवश्य ही स्वर्ग-लाभ होगा।

यह कहते कहते मारे पीड़ा के दुर्योधन अत्यन्त कातर और विह्वल हो उठे। कुरु-राज दुर्योधन की यह दशा देख महा-तेजस्वी अश्वत्थामा क्रोध से प्रलय-काल की अग्नि के समान जल उठे। हाथ मलते हुए रुँधे हुए कण्ठ से वे कहने लगे:—

महाराज! पाण्डव लोग महा नीच हैं। उन्होंने अधर्म्म से हमारे पिता का नाश किया। परन्तु पिता की मृत्यु से भी हम उतने दुखी नहीं हुए जितने कि तुम्हें इस दशा में देख हो रहे हैं। ख़ैर, आज तक हमने जो कुछ दान-पुण्य, धर्म-कर्म, पूजा-पाठ और सत्याचरण आदि किये हैं उन सबको साक्षी करके हम शपथ करते हैं कि चाहे जैसे हो आज हम इन सब अन्यायों का बदला लिये बिना न रहेंगे। कृपा करके तुम अब हमें ऐसा करने की आज्ञा दो।

अश्वत्थामा के ऐसे वचन सुन कर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए। कृपाचार्य्य को उन्होंने आज्ञा दी कि एक जल-पूर्ण कलश लाओ। उसके लाये जाने पर उन्होंने कृप से कहा:—

हे आचार्य्य ! आप यदि हमारी भलाई चाहते हों—यदि हम पर आपका कुछ भी प्रेम हो—तो अश्वत्थामा को सेनापति के पद पर नियत करो।

कृपाचार्य्य ने इस बात को प्रसन्नतापूर्वक मान लिया और उसी समय अश्वत्थामा को शास्त्र की रीति से सेनापति बनाया। तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने दुर्योधन को हृदय से लगाया और भीषण सिंहनाद करके दसों दिशाओं को कँपा दिया। इसके अनन्तर वे तीनों वीर वहाँ से रवाने हुए। रुधिर में डूबे हुए दुर्योधन ने वह घोर रात वहीं पड़े पड़े काटी।

कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और कृतवर्म्मा ने वहाँ से चल कर पाण्डवों को आनन्द से कोलाहल करते सुना। तब उन्हें यह शङ्का हुई कि पाण्डव लोग कहीं उनका पता न पा जायँ और उनके पीछे दौड़ न पड़ें। इससे वे लोग छिपे छिपे पूर्व की ओर चले। कुछ देर में उन्हें एक घना वन मिला। उसके पेड़ों पर चारों ओर से लतायें छाई हुई थीं। वहाँ बरगद का एक वृक्ष बहुत पुराना था। उसकी हज़ारों डालियाँ दूर दूर तक चली गई थीं। उसी के नीचे उन लोगों ने रथ खड़ा करके घोड़े खोल दिये और रात भर वहीं विश्राम करने का विचार किया।

कुछ ही देर में रात हो गई। ग्रह और नक्षत्र निकल आये। उनसे आकाश बहुत ही शोभायमान देख पड़ने लगा। निशाचर लोग अपनी इच्छा के अनुसार सब कहीं आने जाने लगे। कृपाचार्य्य और कृतवर्म्मा के शरीर पर अनेक घाव थे। थक भी वे बहुत गये थे। इससे लेटने के साथ ही उन्हें नींद आ गई। परन्तु अश्वत्थामा क्रोध से पागल हो रहे थे। इससे बहुत थके होने पर भी उन्हें नींद न आई। बिना पलकें झप-झायें ही वे पाण्डवों से बदला लेने का उपाय सोचने लगे।

उनके सामने ही एक पेड़ पर बहुत से कौवे रहते थे। वे अपने अपने घोंसलों में सुख से सो रहे थे। इतने में बादामी रंग का एक बहुत बड़ा उल्लू वहाँ आया। उसने धीरे धीरे एक डाल से दूसरी डाल पर जाकर एक एक कौवे का संहार आरम्भ किया। किसी के पंख उखाड़ डाले, किसी का सिर काट लिया, किसी के पैर तोड़ दिये। इस प्रकार उस उल्लू पक्षी ने सारे कौवों को मार डाला।

यह घटना देख कर महा-तेजस्वी अश्वत्थामा मन में सोचने लगे:—

यह पक्षी हमें अपने शत्रुओं का नाश करने की युक्ति बतला रहा है। आज हमने दुर्योधन के सामने बदला लेने की प्रतिज्ञा तो की है; किन्तु पाण्डव लोग बलवान हैं, अस्त्र-शस्त्र भी उनके पास हैं, और जीत के मद से मतवाले हो रहे हैं। अतएव उनके

सामने होकर युद्ध करने से हमें ज़रूर ही अपने प्राण देने पड़ेंगे; हम बचने के नहीं। हाँ, यदि, हम रात को चुपचाप उन पर आक्रमण करें तो काम सिद्ध होने में कोई सन्देह नहीं। ये पाण्डव महानीच हैं। पद पद पर इन्होंने हमारे साथ अन्याय किया है। ये लोग शठता और अनीति करने से कभी नहीं सकुचे। अतएव इनके साथ जैसा व्यवहार करना हमने विचारा है वह कदापि अनुचित नहीं। इनके साथ ऐसा ही करना चाहिए। ये इसी के पात्र हैं।

इस प्रकार मन में सोच कर अश्वत्थामा ने कृपाचार्य्य और कृतवर्म्मा को जगाया। परन्तु अश्वत्थामा की बात सुन कर उन्होंने लज्जा से अपना सिर नीचा कर लिया; उनकी बात का कुछ भी उत्तर उन्होंने न दिया। इस पर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आँखों में आँसू भर कर फिर कृपाचार्य्य से कहने लगे:—

मामा ! जिनके लिए हम लोग युद्ध में शरीक हुए उन्हीं महाबली दुर्योधन को नीच भीमसेन ने आज बड़ी ही निर्दयता से मार कर उनका अपमान किया है। यह सुनो, जीत से फूले हुए पाञ्चाल लोगों का सिंहनाद, शङ्ख आदि बाजों की ध्वनि, और हँसी-दिल्लगी की बातें हवा के ज़ोर से दसों दिशाओं में दूर दूर तक सुनाई देती हैं। इस समय कौरवों के पक्ष में हम लोग केवल तीन आदमी जीते हैं। अतएव, मोह के कारण यदि तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट न हो गई हो तो इस बात का निश्चय करो कि इस समय हमें क्या करना चाहिए।

कृपाचार्य्य ने कहा:—बेटा ! हमने तुम्हारी बात सुन ली; अब तुम हमारी बात सुनो। दुर्योधन ने दूर तक सोच कर काम नहीं किया। जिन लोगों ने उसे उसी के भले के लिए हितोपदेश किया उनका तो उसने निरादर किया, और जो महामूर्ख और निर्बुद्धि थे उनका कहना मान कर सर्वगुण-सम्पन्न पाण्डवों के साथ व्यर्थ वैर मोल लिया। इसी से वह मारा गया और आज उसकी यह गति हुई। उस पापी के कहने के अनुसार काम करने ही से आज हमारी भी यह दुर्दशा हुई। दुःख के मारे इस समय हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं; इससे हम अच्छी सलाह देने में असमर्थ हैं। जो मनुष्य मोह से अन्धा हो रहा हो उसे चाहिए कि वह अपने इष्ट मित्रों से सलाह ले। अतएव चलिए हम लोग धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर से उपदेश देने के लिए प्रार्थना करें।

यह सुन कर अश्वत्थामा क्रोध की आग से जल उठे। वे कहने लगे:—

हे दोनों वीर ! जितने मनुष्य हैं सबकी बुद्धि जुदा जुदा तरह की होती है। सभी अपनी अपनी बुद्धि को श्रेष्ठ समझते हैं और उसी के अनुसार वे काम भी करने को

लाचार होते हैं। हमने अपनी बुद्धि का हाल आपसे कह सुनाया। हमारी समझ में उसके अनुसार कारवाई करने ही से हमारा शोक दूर होगा। शत्रुओं के डेरों में घुस कर और पाण्डवों का प्राण लेकर आज हम शान्तिलाभ करेंगे। पाञ्चाल लोगों को मार कर आज हम पिता के ऋण से छूट जायँगे।

अश्वत्थामा को अपनी बात पर इस प्रकार दृढ़ देख कृपाचार्य्य उन्हें धर्म्म-मार्ग में लाने का बार बार यत्न करने लगे। वे बोले:—

बेटा! वैर का बदला लेने के लिए तुम अपनी प्रतिज्ञा से जो नहीं हटना चाहते, यह सौभाग्य की बात है; किन्तु शरीर से कवच खोल कर और हथियार रख कर इस समय थकावट तो दूर कर लो। रात भर यहाँ विश्राम करो। कल हम तीनों एक ही साथ युद्ध के लिए प्रस्थान करेंगे। हम सच कहते हैं, कल पाञ्चाल लोगों का नाश किये बिना हम युद्ध के मैदान से कदापि लौटने के नहीं।

तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने फिर क्रोध से आँखें लाल लाल करके कृप की ओर देखा और कहा:—

मामा! पिता की मृत्यु की बात याद करके हमारा हृदय दिन रात जला करता है। फिर, जंघा तोड़ी जाने के कारण ज़मीन पर व्याकुल पड़े हुए दुर्योधन ने हमारे सामने जैसा विलाप किया है उसे सुन कर किसकी छाती न फटेगी? तब, कहिए, आज रात को हमें निद्रा कैसे आ सकती है और विश्राम भी हम कैसे ले सकते हैं? अर्जुन और कृष्ण के द्वारा पाण्डवों की रक्षा होने से खुद इन्द्र भी उन्हें नहीं जीत सकते। इससे हमने जो बात करने का निश्चय किया है उसे छोड़ कर और कोई उपाय नहीं।

कृपाचार्य्य ने कहा:—अपने आत्मीय को—अपने मित्र को—पाप-कर्म करते देख चुप नहीं रहा जाता। इससे हे द्रोण-पुत्र! हमारी बात सुनो। क्रोध को रोक कर जो तुम हमारी बात न मानोगे तो तुम्हें पीछे से पछताना पड़ेगा। सब लोग जानते हैं कि तुम युद्ध-विद्या में बड़े निपुण हो। इससे प्रातःकाल होने पर कल तुम सबके देखते शत्रुओं को जीतना। आज तक तुमने रत्ती भर भी पाप नहीं किया। अब यदि तुम यह निन्द्य काम करोगे तो वह सफ़ेद कपड़े पर ख़ून के धब्बे की तरह सारी दुनिया की आँखों में खटकेगा।

तब अश्वत्थामा बोले:—

मामा! आपने जो कुछ कहा सच है। परन्तु, धर्म्म के पुल को पाण्डव लोग एक जगह नहीं, सौ जगह, पहले ही तोड़ चुके हैं। झूठी ख़बर सुना कर हमारे पिता के

हथियार रख देने पर उन्हें मार डाला; रथ का पहिया कीचड़ से निकालते समय कर्ण का सिर काट लिया; और, अन्त में, अधर्म्म-युद्ध करके कुरुराज दुर्योधन की जंघा की हड्डी तोड़ दी! मामा! आज ही रात को हम अपने पिता की हत्या करनेवालों का नाश करेंगे। इस काम से अगले जन्म में यदि हम पशु या कीड़े भी हों तो भी कुछ परवा नहीं। उसे भी हम अच्छा ही समझेंगे।

इतना कह कर महा-तेजस्वी अश्वत्थामा रथ में घोड़े जोत कर शत्रुओं के शिविर की तरफ़ चल पड़े। कृपाचार्य्य और कृतवर्म्मा लाचार होकर उनके पीछे पीछे दौड़े। क्रोध से भरे हुए अश्वत्थामा ने शिविर के पास पहुँच कर रथ के वेग को कम कर दिया। उस समय पाण्डव और पाञ्चाल लोग शिविर के भीतर सुख से सो रहे थे।

शिविर के द्वार पर पहुँच कर कृपाचार्य्य और कृतवर्मा ने जब यह देखा कि अश्वत्थामा भीतर घुसने को हैं तब वे वहीं ठहर गये। यह देख अश्वत्थामा प्रसन्न हो कर बोले:—

हे दोनों वीर! हम इस समय शत्रुओं के शिविर के भीतर जाकर काल की तरह भ्रमण करेंगे। हमारी आप से इतनी ही प्रार्थना है कि इस जगह से कोई जीता न जाने पावे। जो कोई आपको यहाँ इस द्वार पर मिले उसे मारे बिना न रहना।

इतना कह कर बड़ी बड़ी भुजाओंवाले द्रोण-पुत्र ने शिविर का सदर दरवाज़ा छोड़ दिया। संतरी लोगों की नज़र बचा कर छिपे छिपे वे एक और ही रास्ते से शिविर के भीतर घुसे। चुपचाप धीरे धीरे पैर रखते हुए सबसे पहले वे धृष्टद्युम्न के डेरों में गये। दिन भर युद्ध करने के कारण पाञ्चाल लोग बेहद थक गये थे। इससे वे अचेत सो रहे थे। यह देख अश्वत्थामा को बड़ी ख़ुशी हुई। बड़ी फुरती से वे धृष्टद्युम्न के सोने के कमरे में पहुँचे। उन्होंने देखा कि दिव्य सेज पर सुन्दर बिछौना बिछा हुआ है और सुगन्धित फूल-मालाओं से उसकी शोभा दूनी हो रही है। उसी पर धृष्टद्युम्न सुख से सोये हैं।

अश्वत्थामा ने लात मार कर उस सोते वीर को जगाया। धृष्टद्युम्न के उठते ही अश्वत्थामा ने उनके बाल पकड़ लिये और ज़मीन पर पटक दिया। सोते से अचानक उठने के कारण धृष्टद्युम्न का शरीर शिथिल हो रहा था; वह क़ाबू में न था। एकाएक आक्रमण होने से वे डर भी गये थे। अतएव, अश्वत्थामा से किसी तरह वे अपना बचाव न कर सके। धृष्टद्युम्न की छाती और कण्ठ पर लातों की मार, मार कर अश्वत्थामा पशु की तरह उनका वध करने लगे। धृष्टद्युम्न ने पड़े पड़े नाख़ूनों से खुरच कर अश्वत्थामा

के शरीर से ख़ून निकाल लिया। पर और कुछ उनसे नहीं कहते बना। बोला तो उस समय उनसे साफ़ साफ़ जाता ही न था। धीमे स्वर में किसी तरह उन्होंने कहा:—

हे अश्वत्थामा! हथियार से हमारा वध करो, जिसमें हम वीर-लोक को प्राप्त हों।

इस पर क्रोध से जल भुन कर अश्वत्थामा ने उत्तर दिया:—

रे कुलाङ्गार! आचार्य्य की हत्या करनेवालों को वीर-लोक तो क्या और भी कोई लोक पाने का अधिकार नहीं।

यह कह कर ज़ोर ज़ोर से लातों की मार देकर उन्होंने धृष्टद्युम्न के प्राण ले लिये। इतने में धृष्टद्युम्न के दुःख से भरे हुए चिल्लाने से स्त्रियाँ और संतरी जाग पड़े। उन्होंने अश्वत्थामा को भूत समझा। इसके मारे डर के उनके मुँह से शब्द तक न निकला। किसी को मुँह से बात निकालने का भी साहस न हुआ।

इसके अनन्तर और शत्रुओं को मारने के लिए अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के शिबिर से बाहर निकले। तब वहाँ बे-तरह चिल्लाहट मची—ज़ोर ज़ोर से रोने की आवाज़ आने लगी। उसे सुन कर प्रधान प्रधान पाञ्चाल वीर जाग पड़े और उसी तरफ़ को दौड़े। बहुतों ने अश्वत्थामा को देख कर झट पट कवच पहनें और उन्हें घेर लिया। परन्तु अश्वत्थामा अस्त्र-शस्त्र चलाने में बड़े प्रवीण थे। उन्होंने रुद्रास्त्र-द्वारा उन सब योद्धाओं को बात की बात में मार गिराया।

इसके बाद उन्होंने तलवार निकाल ली और काल की तरह चारों ओर घूम घूम कर सोते हुए और अधजगे पाञ्चाल लोगों का एक एक करके संहार कर डाला। सारा बदन रुधिर से सराबोर होने के कारण उनका उस समय का रूप बहुत ही भयानक मालूम होता था। इससे बहुत लोगों ने उनको राक्षस समझा। उन्हें दूर ही से देख कर वे भागे परन्तु, द्वार पर कृपाचार्य्य और कृतवर्म्मा के शिकार हो गये। वहाँ से आगे न जा सके। वहीं उन्हें प्राण देना पड़ा।

पाण्डवों के शिविर में फिरते फिरते अश्वत्थामा को द्रौपदी के पाँच पुत्र देख पड़े। उन पाँचों ने तुरन्त ही हथियार उठा कर अश्वत्थामा से अपनी रक्षा करने की बहुत कुछ चेष्टा की। परन्तु अश्वत्थामा से वे पेश न पा सके। उन्होंने पाँचों भाइयों को अपनी तलवार से बड़ी ही निर्दयतापूर्वक मार डाला।

इधर चारों ओर भीषण कोलाहल होने से डर के मारे हाथियों और घोड़ों ने अपने बन्धन तोड़ डाले और सारे शिविर में बे-तहाशा दौड़ने लगे। उनके पैरों के नीचे पड़

कर सैकड़ों योद्धा कुचल गये। उस समय एक तो रात का घोर अन्धकार, दूसरे हाथी-घोड़ों की भगदर। इस दशा में सोते से एकाएक जगे हुए वीरों ने अपने ही पक्षवालों को अपना शत्रु समझा। उन्होंने एक दूसरे को पहचाना ही नहीं। अतएव उन्होंने परस्पर मार काट आरम्भ कर दी। फल यह हुआ कि हज़ारों वीर अपने ही पक्षवालों के हथियारों की मार से ज़मीन पर लोट पोट हो गये। मानों काल ने उनसे ऐसा करा कर अश्वत्थामा की सहायता की।

इस समय कृतवर्म्मा के भी मन में आया कि अश्वत्थामा की सहायता करनी चाहिए। इससे उन्होंने शिविर में जगह जगह आग लगा दी। आग धायँ धायँ जलने लगी। सारा शिविर अग्निमय हो गया। तब कृतवर्म्मा और कृपाचार्य्य भी अश्वत्थामा से आ मिले। फिर इन तीनों योद्धाओं ने पाण्डवों के पक्ष के एक एक भागते हुए योद्धा को काट काट कर ज़मीन पर बिछा दिया। एक भी मनुष्य बच कर नहीं जाने पाया।

अन्त में, अश्वत्थामा के घुसने के समय शिविर में जैसा सन्नाटा छाया हुआ था, प्रातःकाल वैसा ही सन्नाटा फिर छा गया। तब अश्वत्थामा ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण समझी और पिता के मारे जाने से जो दुःख उन्हें हुआ था वह भी दूर हो गया। तदनन्तर रुधिर से लदफद हुए और तलवार की मूठ को हाथ से पकड़े वे शिविर से बाहर निकले। कृष्ण के कौशल और अर्जुन के भुजबल की सहायता न पाने से—उनके द्वारा रक्षित न होने से—पाण्डवों की सेना का जड़ से नाश हो गया। यदि कृष्ण और अर्जुन शिविर में होते तो अश्वत्थामा का यह क्रूर कर्म्म कभी सफल न होता।

उसके अनन्तर उन तीनों कौरवों ने एक दूसरे को गले से लगाया। फिर वे परस्पर एक दूसरे का मुँह देख देख ख़ुशी मनाते मनाते और अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते करते शीघ्र ही रथ पर सवार हुए और कुरुक्षेत्र के मैदान में पड़े हुए राजा दुर्योधन के पास गये।

वहाँ रथ से उतर कर उन्होंने देखा कि दुर्योधन अचेत पड़े हुए हैं, शरीर से रुधिर की धारा बह रही है, और मरने में अब थोड़ी ही कसर है। भेड़िये, गीदड़ और कुत्तों ने उन्हें घेर रक्खा है और जीते ही उन पर आक्रमण करना चाहते हैं। यद्यपि दुर्योधन का अन्तकाल पास है और अङ्ग शिथिल हो रहे हैं, तथापि बड़े कष्ट से हाथ उठा कर वे उन हिंस्र जीवों का निवारण कर रहे हैं। यह दशा देख उन तीनों वीरों के शोक की सीमा न रही। मारे दुःख के वे व्याकुल हो उठे और दुर्योधन को घेर कर बैठ गये। कुत्तों और गीदड़ों आदि के भाग जाते ही कुरुराज दुर्योधन बिलकुल ही अचेत हो गये।

तब वे तीनों कौरव-वीर मारे दुःख के ज़ोर ज़ोर रोने और हाथ से दुर्योधन के मुँह की धूल पोंछ कर विलाप करने लगे:—

हाय ! काल की लीला बड़ी विचित्र है । जो राजराजेश्वर थे—जिनके सामने बड़े बड़े राजे सिर झुकाते थे—वही इस समय यहाँ धूल में लिपटे हुए अनाथ की तरह पड़े हैं । भारत के असंख्य भूपाल मारे डर के जिनके पैरों पर अपना मस्तक रखते थे वही आज अचेत अवस्था में ज़मीन पर पड़े हैं और उन्हीं के शरीर का मांस नोच खाने के लिए कुत्ते और गीदड़ इकट्ठा हैं । इस गदा के प्रेमी वीर की गदा, प्यारी भार्य्या की तरह, इसके साथ अन्तिम शय्या में सो रही है ।

इसके अनन्तर दुर्योधन के प्यारे मित्र अश्वत्थामा, अचेत पड़े हुए दुर्योधन को पुकार कर, कहने लगे:—

महाराज ! यदि जीते हो तो कानों को सुख देनेवाला समाचार सुनो । इस समय पाण्डवों के पक्षवालों में से पाँच पाण्डव, कृष्ण, और सात्यकि, इन सात आदमियों को छोड़ कर और कोई जीता नहीं । गत रात को पाण्डवों के शिविर में घुस कर बची हुई सारी सेना, तथा द्रौपदी के पाँच पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि पाञ्चाल लोगों का नाश कर के हमने वैर का अच्छी तरह बदला ले लिया ।

द्रोण-पुत्र के मुँह से ऐसा आनन्ददायक और प्रीति-वर्द्धक समाचार सुनने से दुर्योधन को क्षण भर चेतना हो आई । वे धीरे से बोले:—

हे वीर ! महाबली भीष्म, कर्ण और तुम्हारे पिता से जो काम नहीं हुआ वह तुमने भोजराज कृतवर्म्मा और कृपाचार्य्य के साथ मिल कर कर दिखाया । महानीच पाञ्चाल लोगों के मारे जाने का समाचार सुन कर आज हम अपने को इन्द्र-तुल्य भाग्यवान् समझते हैं । भगवान् तुम्हारा मङ्गल करे ! स्वर्ग में तुमसे हमारी फिर भेंट होगी ।

इतनी बात कह कर दुर्योधन ने कृपाचार्य्य, कृतवर्म्मा और अश्वत्थामा को हृदय से लगाया और प्राण छोड़ दिये । उस समय उन तीनों वीरों को जो शोक हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । कुरुराज दुर्योधन को बार बार छाती से लगा कर वे लोग अपने अपने रथ पर सवार हुए और नगर की तरफ़ चले ।

७-युद्ध के बाद की बातें

जिस दिन दुर्योधन मरे उसके दूसरे ही दिन सबेरे महात्मा सञ्जय हस्तिनापुर को गये। शोकाकुल चित्त से नगर में पहुँच कर वे दोनों हाथ उठाये और काँपते तथा—हा महाराज! हा महाराज!—कह कर रोते हुए धृतराष्ट्र के महल की तरफ़ दौड़े। स्त्री, बालक, वृद्ध सभी नगर-निवासी सञ्जय का ढँग देख कर असली बात समझ गये और हा महाराज! हा महाराज! कह कर रोने चिल्लाने लगे।

इसके बाद शोक से व्याकुल सञ्जय धृतराष्ट्र के घर गये। दुर्योधन के मरने और दोनों तरफ़ की सब सेना नष्ट हो जाने का हाल उन्होंने ज्यों ही वृद्ध राजा से कहा त्यों ही वे बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े। उस समय घर में जितनी स्त्रियाँ थीं वे सब और महात्मा विदुर भी भूमि पर लोट कर विलाप करने लगे। कुछ देर तक राजघराने के सभी लोग काठ की तरह ज़मीन पर पड़े रहे।

होश होने पर अन्धे राजा धृतराष्ट्र को मालूम हुआ कि हमारे पास इस समय कोई नहीं है। इससे बहुत कातर होकर वे कहने लगे:—

हे विदुर! हम पुत्रहीन और अनाथ हो गये। इस समय तुम्हारे सिवा हमारा कोई नहीं है।

यह कह कर वे फिर बेहोश हो गये और ज़मीन पर गिर पड़े। तब भ्रातृवत्सल विदुर बड़ी व्याकुलता से उठ बैठे और जल छिड़क कर तथा पंखा झल कर महादुखी बूढ़े राजा धृतराष्ट्र की सेवा करने लगे। उधर स्त्रियों के फिर एक-दम से रो उठने से घर गूँज उठा। अन्त में जब धृतराष्ट्र को होश हुआ तब भी वे मोह के कारण गूँगों की तरह चुपचाप ज़मीन पर पड़े रहे। तब महात्मा विदुर कहने लगे:—

महाराज! आप धीरज धर कर उठिए। इस संसार में कोई चीज़ सदा नहीं बनी रहती। उन्नति के बाद पतन, मिलने के बाद बिछुड़ना, जीने के बाद मरना हुआ ही करता है। जो लोग युद्ध नहीं करते वे भी मरते हैं। बहुत लोग युद्ध करके भी बच जाते हैं। काल आने पर कोई नहीं बच सकता। फिर अपने धर्म्म के अनुसार क्षत्रिय लोग क्यों न युद्ध करें? जब सभी को मरना है तब मरे हुओं के लिए शोक करने से क्या लाभ? आप जानते ही हैं कि सब लोगों ने सम्मुख युद्ध में प्राण देकर स्वर्गलोक प्राप्त किया है। इससे इस समय आपको दुःख करने का कोई विशेष कारण भी नहीं।

विदुर के इस तरह धीरज देने और समझाने पर भी धृतराष्ट्र का शोक कुछ भी कम न हुआ। इससे महात्मा सञ्जय ने उन्हें काम में लगा कर उनका मन बहलाने के इरादे से कहा:—

हे राजन् ! आप ही की तलवाररूपी बुद्धि ने आपको काटा है; इसलिए शोक करना व्यर्थ है। अनेक देशों के राजा कुरुक्षेत्र आये थे। आपके पुत्रों के साथ वे भी पितृलोक पधारे हैं। इसलिए अब वृथा शोक न करके उनका मृतक-कर्म कीजिए।

इस कठोर बात से धृतराष्ट्र को अकचकाया हुआ देख विदुर ने फिर कहा:—

हे कुरुश्रेष्ठ ! युद्ध में मरे हुए जिन लोगों के लिए आप शोक करते हैं उन वीरों ने मुक्ति-लाभ किया है। इससे उनके लिए सोच करना उचित नहीं। अब आपको चाहिए कि उन लोगों की पारलौकिक क्रिया सम्पादन करें।

इस पर धृतराष्ट्र कुछ शान्त हुए। उन्होंने विदुर से कहा:—

तुम सवारी लाने की आज्ञा दो और गान्धारी, कुन्ती तथा अन्य स्त्रियों को ले आओ। जब चलने की तैयारी हो गई तब विदुर ने वृद्ध धृतराष्ट्र और रोती हुई रानियों को रथों पर सवार कराया। सब लोग नगर से निकल कर लड़ाई के मैदान की तरफ़ चले। जिन रानियों का मुँह पहले देवताओं ने भी न देखा था उन अनाथों को अब सामान्य मनुष्य भी देखने लगे। जो सखियों के सामने भी लज्जा से सिर झुकाये रहती थीं वे शोक से विह्वल होकर बड़ों के सामने भी एक ही वस्त्र पहने निकलीं। यह आश्चर्य-जनक दृश्य देख कर नगर-निवासी बड़े दुखी हुए और ज़ोर ज़ोर से रोने लगे।

इस तरह कुटुम्बियों के साथ धृतराष्ट्र के एक कोस जाने पर कृपाचार्य्य, कृतवर्म्मा और अश्वत्थामा उनसे मिले। राजा को रोते हुए देख कर तीनों वीरों ने ठंडी साँस ली और गद्गदस्वर से कहने लगे:—

महाराज ! बड़े बड़े दुस्तर काम करने के बाद आपके पुत्र नौकरों समेत इन्द्रलोक को गये हैं। हम तीन आदमियों को छोड़ कर हमारी सब सेना नष्ट हो गई।

इसके अनन्तर महावीर कृपाचार्य्य ने पुत्रशोक से व्याकुल गान्धारी से कहा:—

देवी ! तुम्हारे पुत्र निर्भय होकर वीरों की तरह लड़ कर शत्रुओं को मारते हुए मरे हैं। इस समय वे निश्चय ही स्वर्गलोक में देवताओं के साथ विहार करते होंगे। आपके पुत्रों के शत्रु सहज ही में बच कर नहीं निकल गये। जब दुष्ट भीमसेन ने दुर्यो-धन को अधर्म-युद्ध में मारा तब उसी रात को हम लोगों ने पाण्डवों की तरफ़ के बचे हुए वीरों को एक एक करके मार डाला। पुत्र-शोक के कारण पाण्डव लोग इस समय

पागल से हो रहे हैं और हमें ढूँढ़ते फिरते हैं। इसलिए यहाँ देर तक ठहरने का हमें साहस नहीं होता। अब हमें जाने की आज्ञा दीजिए। आप अब और शोक न कीजिए। कुरुक्षेत्र जाइए और वहाँ देखिए कि क्षत्रियों के धर्म्म का कहाँ तक पालन हुआ है। आपको क्षात्र धर्म्म की पराकाष्ठा देखने को मिलेगी।

यह कह कर उन तीनों वीरों ने धृतराष्ट्र की परिक्रमा की और गङ्गाजी की तरफ़ रथ हाँक दिया। किन्तु थोड़ी ही दूर गये होंगे कि वे घबरा कर अलग अलग हो गये और तीनों तीन रास्ते से भागे। कृपाचार्य्य हस्तिनापुर, कृतवर्म्मा अपनी राजधानी और अश्वत्थामा व्यास के आश्रम को गये।

इधर धृतराष्ट्र के हस्तिनापुर से चलने की ख़बर पाकर युधिष्ठिर उनसे मिलने के लिए कृष्ण, सात्यकि, युयुत्सु और अपने भाइयों के साथ चले। द्रौपदी भी शोक करती हुई पाञ्चाल-स्त्रियों के साथ धर्म्मराज के पीछे पीछे चली।

कुरुक्षेत्र के पास पहुँच कर उन लोगों ने देखा कि पुत्रों के शोक से दुखी धृतराष्ट्र स्त्रियों से घिरे हुए आ रहे हैं। स्त्रियों का विलाप सुन कर युधिष्ठिर बड़े दुखी हुए। इसलिए उन सबको जल्दी से पार करके वे धृतराष्ट्र के पास जा पहुँचे और उनको प्रणाम किया। पर राजा धृतराष्ट्र क्रोध से भरे बैठे रहे; पाण्डवों को उन्होंने आशीर्वाद न दिया।

कृष्ण ने कहा:—हे राजन्! ख़ुद ही अपराध करके आप दूसरों पर क्यों क्रोध करते हैं? हम लोगों ने आपसे पहले ही कहा था कि पाण्डव लोग बड़े बलवान् हैं; इसलिए उनके साथ मेल कर लेना चाहिए। तब तो आपने हमारी बात न मानी। अब क्यों धर्म्मराज के हृदय में पीड़ा पहुँचाते हैं? उन्होंने क्या अपराध किया है? जब सभा में आपके सामने ही दुर्योधन ने द्रौपदी पर अत्याचार किया था तभी वे मार डालने के योग्य थे। उस समय आपने उन्हें न रोका। इसलिए अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिए।

कृष्ण की बात सुन कर धृतराष्ट्र लज्जित हुए। उनका क्रोध जाता रहा। उन्होंने कहा:—

हे वासुदेव! तुम्हारा कहना ठीक है। पुत्र-स्नेह के कारण थोड़ी देर के लिए हम अधीर हो गये थे।

यह कह कर कुरुराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से आदरपूर्वक बातचीत की और उन्हें धीरज देकर आशीर्वाद दिया। इसके बाद पाण्डव लोग कृष्ण के साथ गान्धारी के

पास गये। उन्हें आया जान वे युधिष्ठिर को शाप देने को तैयार हुईं। व्यासदेव ने यह बात योगबल से जान ली। इसलिए एकाएक आकर वहाँ वे उपस्थित हुए और बोले:—

बेटी! युद्ध के पहले तुम्हीं ने दुर्योधन से कहा था कि जहाँ धर्म्म होता है वहीं जीत होती है। महात्मा पाण्डवों ने इस भयङ्कर युद्ध में असंख्य राजों को मार कर तुम्हारी ही बात सत्य सिद्ध की है। इसलिए धर्म्म का और अपनी बात का ख़याल करके क्रोध न करो। हे पुत्री! तुम सदा ही से दूसरों की भलाई किया करती रही हो। फिर इस समय पाण्डवों की बुराई क्यों चाहती हो? हम तुम्हें वर देते हैं कि आँखें ढके रखने का व्रत पालन करके भी तुम स्वर्गवासी अपने प्यारे कुटुम्बीय और आत्मीय वीरों के कुरुक्षेत्र में पड़े हुए शरीर देख सकोगी।

यशस्विनी गान्धारी ने दुखी होकर उत्तर दिया:—

भगवन्! मैं पाण्डवों का अनिष्ट नहीं चाहती। पर पुत्रों के शोक से बड़ी व्याकुल हूँ।

तब काँपते हुए धर्म्मराज ने पास जाकर हाथ जोड़ कर कहा:—

हे देवी! हमीं ने आपके पुत्रों को मारा है और हमीं ने राज्य नाश किया है। हम बड़े निर्दयी हैं। इसलिए हमें शाप दीजिए। जब अपने आत्मीय जनों की मृत्यु का कारण हमीं हैं तब हमें राज्य, धन या जीवन कुछ भी न चाहिए।

धर्म्मराज को अत्यन्त दुखी देख गान्धारी का क्रोध जाता रहा। उन्होंने भी माता की तरह स्नेहपूर्वक पाण्डवों से बातचीत की और उन्हें धीरज दिया।

इसके बाद पाण्डव लोग कुन्ती के पास गये। कुन्ती ने कपड़े से मुँह ढक लिया और पुत्रों के घायल शरीर पर बार बार हाथ फेर कर रोने लगीं। थोड़ी देर बाद आँसुओं से भीगी हुई पुत्रहीना द्रौपदी को ज़मीन पर पड़ी देख उन्होंने उसे उठाया और उससे मिल कर विलाप करने लगीं।

द्रौपदी ने कहा:—आर्य्ये! अभिमन्यु और मेरे पुत्र इस समय कहाँ हैं? विजय प्राप्त करके आपको प्रणाम करने तो वे नहीं आये? हाय! मैं पुत्रहीना हो गई। अब मैं राज्य लेकर क्या करूँगी।

तब यशस्विनी गान्धारी ने वहाँ आकर द्रौपदी से कहा:—

बेटी! तुम और शोक न करो। तुम्हारी तरह मैं भी पुत्रहीना हो गई हूँ। अपने ही दोष से हम लोगों को इतना दु:ख उठाना पड़ा है। यदि तुम शोक करोगी तो मुझे कौन धीरज देगा।

तब युधिष्ठिर आदि पाण्डव लोग कृष्ण और धृतराष्ट्र को आगे करके स्त्रियों के साथ लड़ाई के मैदान में गये। कुरुक्षेत्र पहुँच कर अभागिनी पाञ्चाल और कौरव-नारियों ने देखा कि किसी के भाई, किसी के पुत्र, किसी के पिता, किसी के पति, गीध और सियारों से भरे हुए उस भयङ्कर स्थान में ज़मीन पर मरे पड़े हैं। श्मशान की तरह वह युद्ध-स्थल देखते ही हाहाकार करके वे रथ से गिरने लगीं।

महात्मा व्यास के वर से गान्धारी को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई थी। उन्होंने कृष्ण से कहा:—

बेटा! वह देखो, बाल बिखराये और घबराई हुई हमारी बहुयें अपने अपने पति, पुत्र, पिता और भाइयों को याद करके उनकी लोथों की तरफ़ दौड़ी जा रही हैं। यह देखो, लड़ाई का मैदान पुत्रहीना वीर-माताओं और पतिहीना वीर-पत्नियों से भर गया। हाय! दुर्योधन के हितैषी इन वीरों को आज सियार और कुत्ते खा रहे हैं। यह देखो! साक्षात् यम के समान जिस महा-पराक्रमी बालक ने, निस्सहाय होकर भी, आचार्य्य की मोरचाबन्दी को तोड़ डाला था वही महावीर अभिमन्यु इस समय स्वयं यमराज के वश में है। अहा! मरने पर भी अर्जुन का पुत्र निस्तेज नहीं हुआ। देखो! अनिन्दनीय विराट-पुत्री उत्तरा अभिमन्यु का सिर अपनी गोद में रख कर ख़ून से भीगे हुए उसके बाल सँवार रही है और मानों उसे जीवित समझ कर पूछ रही है:—

प्राणनाथ! उन निर्दयी योद्धाओं ने तुम्हें असहाय जान कर भी किस तरह तुमको मार कर मुझे सदा के लिए दुःखिनी कर दिया? हाय! मालूम नहीं उस समय उन लोगों का मन कैसा हो गया था। हे वीर! सिर्फ़ तुम्हारे न रहने से पाण्डवों का इतना बड़ा राज्य पाना भी अच्छा नहीं लगता। इन्द्रियों को वश में रख कर और धर्म्मपूर्वक आचरण करके मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास उस लोक में आऊँगी जिसे तुमने शस्त्र-बल से प्राप्त किया है। वहाँ तुमको मेरी रक्षा करनी होगी। हे नाथ! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी पर सिर्फ़ छः महीने रहे थे। अब वहाँ अप्सराओं से घिरे हुए रह कर भी कभी कभी मेरी याद कर लेना। हाय! नियमित समय आने के पहले मरना बहुत कठिन है। नहीं तो मैं अब तक क्यों जीती रहती।

हे कृष्ण! जिसके डर से घबरा कर धर्म्मराज युधिष्ठिर तेरह वर्ष तक सुख से नहीं सोये, अग्नि की तरह तेजस्वी और हिमालय की तरह अटल उसी दुर्योधन का शरीर, हवा से टूटे हुए पेड़ की तरह, ज़मीन पर पड़ा है। यह देखो, कर्ण की स्त्री अधीर होकर कभी ज़मीन पर लोटती है और कभी उठ कर कर्ण के मुँह पर मुँह रखती है।

गान्धारी ये बातें कर ही रही थीं कि उन्होंने दुर्योधन की लोथ को देखा। इससे असह्य शोक के वेग से बेहोश होकर वे ज़मीन पर गिर पड़ीं। जब कुछ होश आया तब निकट जाकर उन्होंने ख़ून से भीगे हुए दुर्योधन के शरीर को हृदय से लगा लिया और हा पुत्र! हा पुत्र! कह कर विलाप करने लगीं। हार धारण किये हुए दुर्योधन की चौड़ी छाती उनके आँसुओं से भीग गई। जब निकट खड़े हुए कृष्ण ने उनको उठाया और धीरज दिया तब वे कहने लगीं:—

हे केशव! वंशनाश करनेवाले इस घोर युद्ध के शुरू होने के पहले ही जब मैंने दुर्योधन से कहा था कि जहाँ धर्म्म होगा वहीं जय होगी तब पुत्र को मरा हुआ जान कर भी मैंने शोक नहीं किया था। पर इस समय मुझे बन्धु-बान्धवहीन बूढ़े राजा के लिए दुख है। जो हो, जब इस वीर ने वीरता से प्राण दिये हैं तब इसे दुर्लभ स्वर्गलोक ज़रूर प्राप्त हुआ होगा।

यह देखो, लक्ष्मण की माता कभी ख़ून से लथपथ पुत्र का माथा सूँघती है और कभी दुर्योधन के शरीर पर हाथ फेरती है। कभी तो वह पति के और कभी पुत्र के शोक से अधीर हो जाती है। हाय! आज पुत्र-समेत दुर्योधन को मरा हुआ देख कर मेरे हृदय के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? हे वासुदेव! यदि वेद और शास्त्र सच हैं तो मेरे पुत्र को निश्चय ही स्वर्गलोक मिला होगा।

गान्धारी को फिर विह्वल देख कृष्ण ने कहा:—

रानी! और शोक न कीजिए। ब्राह्मणी तपस्या के लिए और शूद्रों की स्त्रियाँ औरों की सेवा करने के लिए पुत्र उत्पन्न करती हैं। पर आपकी तरह क्षत्रानियाँ इसी लिए गर्भ धारण करती हैं कि हमारा पुत्र युद्ध में मरेगा।

यह सुन कर गान्धारी रथ पर सवार हो गई। शोक तो उन्हें बेहद था; पर मुँह से कुछ और नहीं कहा। उस समय धर्म्मराज से धृतराष्ट्र बोले:—

हे युधिष्ठिर! मरे हुए लोगों में जो अनाथ हैं, या जिनका अग्निहोत्र सञ्चित नहीं है, उनकी विधि-पूर्वक मृतक-क्रिया करनी होगी। और जिन लोगों को जानवर खींचे लिये जा रहे हैं उनका भी क्रिया-कर्म करना होगा, जिसमें उन्हें अच्छी गति मिले।

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही युधिष्ठिर ने नौकरों और साथियों से कहा:—

तुम शीघ्र ही वीरों का प्रेत-कार्य्य करो।

धर्म्मराज की आज्ञा पाते ही सब लोग अगर, चन्दन, घी, काठ और तरह तरह की सामग्री ले आये और बहुत सी चितायें बना कर जलती हुई आग में, प्रधानता के अनु-

सार आगे-पीछे, महाराज दुर्योधन आदि एक लाख राजों का अग्नि-संस्कार करने लगे। साम और ऋग्वेद की ध्वनि और स्त्रियों के रोने से सब दिशायें गूँज उठीं।

इस तरह दोनों पक्ष के वीरों की दाह-क्रिया समाप्त हुई। तब धृतराष्ट्र को आगे करके युधिष्ठिर गंगाजी की तरफ़ चले।

गंगाजी के किनारे पहुँचने पर सब लोगों ने गहने और कपड़े उतार डाले। फिर पिता, पुत्र, भाई और पति के लिए स्त्रियाँ तिलाञ्जलि देने लगीं। इन वीर-पत्नियों के कारण गंगातट पर बेहद शोक छा गया। इसी समय आर्य्या कुन्ती ने आँखों में आँसू भर कर पाण्डवों से कहा:—

हे पुत्रगण! महावीर अर्जुन ने जिस वीर-शिरोमणि का संहार किया है और जिसे तुम लोग राधा या सूत का पुत्र समझते थे उस सच्चे वीर और परम तेजस्वी कर्ण के लिए तिलाञ्जलि दो। वह सहजात-कवच-कुण्डलधारी महावीर तुम्हारा बड़ा भाई था। सूर्य्य का दिया हुआ वह मेरा ही पुत्र था।

कुन्ती से यह गुप्त वृत्तान्त सुन कर पाण्डवों को महा-आश्चर्य्य और शोक हुआ। साँप की तरह लम्बी साँस खींच कर धर्म्मराज ने माता से कहा:—

माता! जिनके बाणों के वेग को अर्जुन के सिवा कोई न सह सकता था वे किस तरह तुम्हारे पुत्र हुए? जिनके तेज से हम सब लोग इतने सन्तप्त हुए उनको कपड़े से ढकी हुई आग की तरह तुमने कैसे छिपाये रक्खा? हाय! जिनके बल पर धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हम लोगों से वैर करने का साहस किया वे हमारे ही बड़े भाई थे, इस बात को सोच कर हमारा हृदय जला जाता है। यदि यह गूढ़ वृत्तान्त तुम पहले ही बता देतीं तो यह हत्याकाण्ड न होता। वैसा होने से इस लोक और परलोक में हमारे लिए कुछ भी दुर्लभ न होता।

इस तरह विलाप करते हुए धर्म्मराज ने कर्ण को जलाञ्जलि दी। स्त्रियाँ ज़ोर ज़ोर से रोने लगीं। तब युधिष्ठिर कर्ण की स्त्रियों को ले आये और उनके साथ कर्ण की अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त करके गंगाजी से बाहर निकले। उनको बहुत दुखी और चिन्तित देख कुन्ती ने कहा:—

बेटा! शोक छोड़ कर मेरी बात सुनो। खुद सूर्य्यदेव ने कर्ण से कह दिया था कि तुम उसके भाई हो। लड़ाई शुरू होने के पहले मैंने भी उसे रोकने की चेष्टा की थी। पर उसने हम लोगों की एक न मानी। न उसने दुर्योधन की तरफ़दारी छोड़ी

और न तुम लोगों से वैर-भाव। इसलिए उसे दुर्विनीत समझ कर मैं उस बात को भुला देने के लिए लाचार हुई।

धर्म्मराज ने कहा:—माता! यदि तुम कर्ण का जन्म-वृत्तान्त न छिपातीं तो हमें यह कठिन दुःख न भोगना पड़ता। आगे से स्त्रियाँ कोई बात छिपी न रख सकें—यह शाप देकर और अपने सम्बन्धियों और मित्रों को याद करके युधिष्ठिर दुःखित हृदय से विलाप करने लगे:—

हाय! राज्य के लोभ से पागल होकर हमने अपने निकट-सम्बन्धियों का भी नाश किया। अब तीनों लोकों का राज्य लेकर ही हम क्या करेंगे? हम लोगों ने सारे शत्रुओं को मार कर अपना क्रोध शान्त किया; पर उससे भी सुख कहाँ? हाय! न मालूम कितने राजकुमारों को हमारे लिए सांसारिक सुख छोड़ कर और माता-पिता की आशा सफल न करके यह लोक छोड़ देना पड़ा। इन सब बातों को याद करके हम लोग राज्य का सुख कैसे अनुभव कर सकेंगे? यद्यपि अपने तेज से हमने दसों दिशायें कँपा दीं; तथा अब अपने ही कर्म्मों के दोष से हम अपने को निःसहाय पाते हैं। इस पाप के फल भोगने से हम तभी छूट सकते हैं जब सब कुछ दान करके तपस्या करने चले जायँ। इसलिए हम अब तुम लोगों से विदा होकर किसी वन को चले जाना चाहते हैं।

यह कह कर धर्म्मराज चुप हो गये।

युधिष्ठिर की बातों से उदास होकर पराक्रमी अर्जुन ने कहा:—

महाराज! यह निरी मूढ़ता है कि राजकुल में जन्म लेकर पहले तो अपने बाहुबल से पृथ्वी पर एकाधिपत्य राज्य स्थापित करे, फिर सब कुछ धर्म्मार्थ छोड़ कर वन को चल दे। जो लोग धन के न होने से समाज में कुछ नहीं कर सकते वही सम्पत्ति प्राप्त करने की चिन्ता छोड़ कर भिक्षावृत्ति का सहारा लेते हैं। तुम क्यों साधारण आदमियों की तरह उद्योग करने और ऐश्वर्य्य भोगने से उदासीनता दिखाते हो? जैसे पर्वत से नदियाँ निकलती हैं वैसे ही सञ्चित धन से अनेक धर्म्म-कर्म्म होते हैं। जैसे बादल समुद्र से उठ कर सारे संसार को पानी से परिपूर्ण कर देते हैं। वैसे ही धन भी ख़ज़ाने से निकल कर तमाम दुनिया को फ़ायदा पहुँचाता है। ऐसे धन की रक्षा करने या बढ़ाने में यदि विरोधी राजों को दबाने की भी आवश्यकता पड़े तो भी कोई हानि नहीं। राजों का यह काम धर्म्मानुसार है। इसलिए बड़े आदमियों के बताये हुए यज्ञ आदि कामों को छोड़ कर तुम किसी बुरे रास्ते पर पैर न रखना।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे अर्जुन ! यदि तुम कहो भी तो भी हम सुमार्ग न छोड़ेंगे। अब तक हम मोह में फँसे हुए थे; इसी लिए हम पर यह विपद पड़ी है। अब हमको सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ है। इससे वैराग्य का सहारा लेकर हम शीघ्र ही सदा के लिए सन्तोष-लाभ करेंगे। विषय-वासना के वशीभूत होकर हमने बड़े बड़े पाप किये हैं। अब वनवासी बन कर हम उनका प्रायश्चित्त करेंगे। यह तुच्छ संसार जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, दुख और कष्टों से भरा हुआ है। जो इसे छोड़ सकता है वही यथार्थ सुखी होता है।

भीमसेन ने कहा:—महाराज ! इस समय तुम अभागे श्रोत्रियों की सी बातें करते हो। यदि राजधर्म्म छोड़ कर आलस्य ही में समय बिताना था तो दुर्योधन के पक्ष के वीरों का क्यों नाश किया ? यदि कर्म्म करना त्याग कर वनवासी होने ही से सिद्धि प्राप्त होती तो पर्वत और पेड़ बड़े भारी सिद्ध हो जाते। यदि अपना पेट पालने ही से मोक्ष प्राप्त होता है तब तो पशु-पक्षी सभी मुक्त हैं। सच पूछो तो अपने धर्म्म के अनुसार काम करने ही से स्वर्ग मिलता है; और किसी तरह नहीं मिलता।

तब कम बोलनेवाले वीर नकुल युधिष्ठिर की तरफ़ देख कर बोले:—

महाराज ! देवताओं ने भी कर्म्म करके देवत्व प्राप्त किया है। वेदोक्त नियम छोड़ देने से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। संसार में रह कर जो काम, क्रोध आदि विकारों को छोड़ दे वही सच्चा त्यागी है। जो कर्मों को छोड़ कर केवल वन को चला जाता है वह मूर्ख है। जो राजा प्रजापालन और यज्ञ आदि कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता उसे महा पाप लगता है।

भाइयों की इन युक्ति-पूर्ण बातों का धर्म्मराज ने कुछ भी उत्तर न दिया।

तब परम धर्म्मज्ञ द्रौपदी कहने लगी:—

नाथ ! तुम्हारे भाई चातक की तरह सूखे कण्ठ से बार बार चिल्लाते हैं; पर तुम उनकी बातों पर ध्यान ही नहीं देते। द्वैत वन में जब हम लोगों को सर्दी, गर्मी और हवा से क्लेश मिलता था तब तुम क्या कहते थे सो याद है ? तुम कहते थे कि शत्रुओं की लोथों से पृथ्वी भर जाने पर जब विकट-युद्धरूपी यज्ञ की दक्षिणा हमें मिलेगी तब हम लोगों के वनवास का दुःख बड़ा सुखदायक हो जायगा। तब तो हमें इस तरह धीरज दिया; अब क्यों हम लोगों का हृदय दुखाते हो ? इस समय तो तुम मूढ़ों की तरह बातें करते हो। मालूम होता है कि जेठे भाई के पागल हो जाने पर छोटे भी पागल हो जाते हैं। यदि ऐसा न होता तो अन्य पाण्डव तुम्हारी बातों पर ध्यान

न देकर तुम्हारे साथ पागलों का सा वर्ताव करते और खुद ही राज्य सँभालते। जब मैं पुत्रहीना होकर भी जीवित रहना चाहती हूँ, तब तुम राज्य करने से क्यों मुँह मोड़ते हो?

तब युधिष्ठिर ने कहा:—

हे भाइयो! हम धर्म्मशास्त्र और वेद दोनों ही जानते हैं। तुम लोग वीर-व्रतधारी हो; इसलिए शास्त्र की गूढ़ बातों को नहीं समझ सकते। युद्ध के विषय में तुम लोग ज़रूर अच्छे अच्छे उपदेश दे सकते हो। किन्तु शास्त्रों के सम्बन्ध में तुम्हें हमारी बात माननी चाहिए। तुम लोग समझते हो कि ऐश्वर्य्य से बढ़ कर दुनिया में कोई चीज़ नहीं। किन्तु हम इस बात को नहीं मानते। लकड़ी के योग से आग जल उठती है और लकड़ी न रहने से बुझ जाती है। भोग की भी यही बात है। ऐश्वर्य्य भोग करने ही से ऐश्वर्य्य प्राप्त करने की इच्छा होती है। इसीलिए शास्त्रकार त्याग और ब्रह्म-ज्ञान ही को सबसे बढ़ कर बताते हैं। अतएव तुम लोग भोग-विलास की व्यर्थ इच्छा न करो।

यह सुन कर महर्षि व्यास ने धर्म्मराज से कहा:—

हे युधिष्ठिर! तुम्हारे भाई वनवास के समय जो आशा रखते थे उसे एक-दम विफल न करो। कुछ दिन भाइयों के साथ राजधर्म्म पालन कर और यज्ञ आदि करके तब वन को जाना। पहले संसार के ऋण से उऋण हो लेना; फिर इच्छानुसार काम करना। राज्य की रक्षा के लिए शत्रुओं का नाश करना बुरा नहीं। इससे उसके लिए वृथा दुःख न करो।

इसके उत्तर में राजा युधिष्ठिर ने महर्षि कृष्ण-द्वैपायन से कहा:—

हे महर्षि! संसार में रह कर राज्य करने अथवा अन्य भोग भोगने की हमारी ज़रा भी इच्छा नहीं। पति और पुत्रहीन स्त्रियों का विलाप सुन कर हमारा हृदय शोक से विदीर्ण हो रहा है। हमें किसी तरह शान्ति नहीं। हमें धिक्! हम बड़े राज्य-लोलुप और नीच हैं। हमारे ही लिए हमारे वंश का नाश हुआ। जिन्होंने किसी समय गोद में लेकर हमारा लालन पालन किया था हमने उन्हीं पितामह भीष्म को राज्य के लोभ से मार डाला। हाय! यह सोच कर हमारा हृदय जला जाता है कि हमारा सबसे अधिक विश्वास करनेवाले महात्मा द्रोणाचार्य्य को हमने झूठ बोल कर धोखा दिया। हमारे बड़े भाई कर्ण हमारे ही लिए बिना हाथ पैर डुलाये मारे गये, फिर हमारे बराबर पापी और कौन होगा! जब से हमने बालक अभिमन्यु को उस विकट व्यूह के भीतर जाने की आज्ञा दी तब से कृष्ण और अर्जुन की तरफ़ हमारी आँख नहीं उठती। पुत्र-हीना द्रौपदी

का शोक देख कर हमें क्षण भर भी सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। हमारे ही लिए ये सब अनर्थ हुए। इसलिए, हे भाइयो ! हम विनीत भाव से तुम लोगों से कहते हैं कि हमें मर जाने की आज्ञा दो।

युधिष्ठिर की बातों को अच्छी तरह सुन कर व्यासदेव ने कहा:—

यदि चिरस्थायी शान्ति पाना चाहते हो तो सुख और दुख दोनों की परवा न करके कर्तव्यपालन करने की चेष्टा करो। यदि तुम युद्ध की घटनाओं पर अच्छी तरह विचार करोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारे मृत वंशज और अन्य क्षत्रिय लोग यशस्वी होने और बहुत सा धन पाने की धुन में अपने ही अपराध से मारे गये हैं। इसके उत्तरदाता तुम नहीं हो। तुम अपने कामों पर भी विचार करो। ऐसा करने से तुम्हारी समझ में आ जायगा कि व्रतपरायण और शान्तस्वभाव होकर भी केवल दैव की प्रेरणा से अपने प्राण तथा धन की रक्षा के लिए तुमने युद्ध किया है। काल आने ही पर मनुष्य पैदा होता या मरता है। उसके लिए शोक न करना चाहिए। मामूली आदमियों की तरह—हाय ! क्या हुआ, हाय ! क्या हुआ—कह कर विलाप करने से दुख और बढ़ता है। दृढ़तापूर्वक काम करने ही से शान्ति मिलती है। अब राजधर्म के अनुसार काम करके इस अनुचित दुःख का प्रायश्चित्त करो।

यह बात सुन कर युधिष्ठिर चिन्ता करते करते व्याकुल हो उठे; पर बोले नहीं। तब महामति अर्जुन ने कृष्ण से कहा:—

हे मित्र ! धर्मराज शोक-सागर में डूबे हुए हैं। यदि तुम उनके उद्धार की चेष्टा न करोगे तो हम लोग इस विपद से पार न हो सकेंगे।

अर्जुन की बात सुन कर कृष्ण धर्मराज के पास गये। युधिष्ठिर कृष्ण को लड़कपन ही से बहुत चाहते थे और उनकी बात कभी न टालते थे। इसलिए बुद्धिमान् कृष्ण युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर नम्रभाव से कहने लगे:—

हे राजन् ! इस युद्धक्षेत्र में जितने वीर मरे हैं उन सबने क्षात्र धर्म के अनुसार सामने युद्ध करके प्राण त्याग किये हैं और वीरोचित परम पवित्र गति को प्राप्त हुए हैं। अतएव उनके लिए और शोक न करके क्षात्र धर्म के अनुसार तुम भी राजधर्म पालन करो:—

तब युधिष्ठिर ने पशोपेश छोड़ कर व्यासदेव से कहा:—

हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि हमें राज्य करना ही पड़ेगा तो हमें आप ऐसा उपदेश दीजिए जिसमें हम अच्छी तरह प्रजा-पालन कर सकें और उचित रीति से राज्य का बोझ उठा सकें।

इसके उत्तर में महर्षि द्वैपायन ने कहा:—

बेटा ! राजधर्म्म-सम्बन्धी यदि अच्छे अच्छे उपदेश लेना चाहते हो तो पहले अपने नगर को जाव और प्रजा को धीरज़ देकर राज-काज सँभालो। फिर महात्मा भीष्म के निश्चित मृत्युकाल के पहले ही उनके पास जाना। उन्होंने बड़े बड़े महात्माओं से उपदेश लिया है; वही तुम्हारे सब सन्देह दूर करेंगे।

तब यदुकुल-तिलक कृष्ण ने फिर कहा:—

हे धर्म्मराज ! शोक से घबरा जाना तुम्हारे लिए अनुचित है। महर्षि व्यास ने जैसा कहा वैसा ही करो। भाइयों, मित्रों और बुद्धिमती द्रौपदी की इच्छा के अनुसार पहले राजधानी में प्रवेश करो। फिर ठीक समय पर पितामह के पास जाकर जानने योग्य बातों के विषय में उपदेश ग्रहण करना।

इस पर धर्म्मराज सब लोगों की बात न टाल सके। वे उठ खड़े हुए और नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा की तरह शोभायमान होकर नगर में जाने के इरादे से सबसे पहले भाइयों के साथ उन्होंने देवताओं की पूजा की।

८—पाण्डवों का एकाधिपत्य

पाण्डवों ने हस्तिनापुर जाने की सब तैयारी कर ली। सोलह सफ़ेद घोड़ों से खींचे जानेवाले एक बहुत बड़े रथ पर धर्म्मराज सवार हुए। महा पराक्रमी भीमसेन उनके सारथि बने। महावीर अर्जुन ने उनके मस्तक पर सफ़ेद छाता लगाया। नकुल और सहदेव उनके दोनों तरफ़ बैठ कर चँवर हिलाने लगे। इस तरह पाँचों भाइयों के रथ पर बैठ जाने पर धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु, और कृष्ण, तथा सात्यकि अलग अलग रथों पर सवार होकर उनके पीछे पीछे चले। गान्धारी के साथ अन्धे राजा धृतराष्ट्र पालकी पर सबके आगे चले। कुन्ती, द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी विदुर की रक्षा में तरह तरह की सवारियों पर साथ साथ रवाना हुईं। इस तरह परिवार से घिरे हुए धर्म्मराज हस्तिना-पुर की ओर चले।

इधर युधिष्ठिर की अगवानी करने के लिए नगर-निवासी नगर और राजमार्ग सजाने लगे। असंख्य आदमियों के आने जाने और कोलाहल से रास्तों में धूम मच गई। जल से भरे हुए नये नये घड़े और सुगन्धित फूल लिये हुए गोरी गोरी कुमारियों से नगर का द्वार ठसाठस भर गया। इससे उसकी शोभा अपूर्व हो गई। राजमार्ग पर

झंडियाँ गाड़ दी गईं और धूप सुलगा दी गई। राजभवन सुगन्धित फूलों और मालाओं से खूब सजाया गया।

भाइयों के साथ राजा युधिष्ठिर ने बन्दी जनों का स्तुतिगान सुनते हुए इस शोभा-सम्पन्न नगर में प्रवेश किया। हज़ारों नगर-निवासी उनके दर्शन के लिए वहाँ आने लगे। राजमार्ग के आस पास की सजी हुई अटारियाँ राजा के दर्शन करने की इच्छा से आई हुई स्त्रियों के बोझ से मानों काँपने लगीं। पाण्डवों और द्रौपदी की प्रशंसा के वाक्यों और हर्षसूचक शब्दों से सारा नगर गूँज उठा।

राजा युधिष्ठिर धीरे धीरे राजमार्ग को पार करके राजभवन के पास पहुँच गये। तब नगर-निवासी उनके पास आकर कहने लगे:—

महाराज! आपने सौभाग्य और पराक्रम के प्रभाव से शत्रुओं को धर्मानुसार हरा कर फिर राज्य प्राप्त किया है। अब हमारे राजा होकर धर्म के अनुसार प्रजा-पालन कीजिए।

इस तरह नाना प्रकार के मङ्गल-वाक्य और ब्राह्मणों के आशीर्वाद सुनते हुए धर्मराज इन्द्रलोक के तुल्य राज-भवन में पहुँच कर रथ से उतरे। पहले तो घर में जाकर उन्होंने देव-पूजन किया; फिर नगर के द्वार पर आये और आशीर्वाद देनेवाले ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। उस समय जयजयकार की मधुर ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

इसके बाद दुःख और शोक छोड़ कर पूर्व की तरफ़ मुँह करके कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर सोने के सिंहासन पर बैठे। तब महावीर सात्यकि और कृष्ण धर्म्मराज के सामने सुनहली चौकी पर, भीम और अर्जुन दोनों तरफ़ रत्न-जटित आसन पर, नकुल और सहदेव के साथ कुन्ती हाथीदाँत के आसन पर, महात्मा विदुर, पुरोहित धौम्य तथा वृद्ध राज़ा धृतराष्ट्र भी अच्छे अच्छे उज्ज्वल आसनों पर बैठे। धर्म्मराज युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक सफ़ेद फूल, भूमि, सोना, चाँदी और रत्न छुए। तब तरह तरह की मङ्गल-वस्तु लेकर उनके दर्शनों के लिए प्रजा आने लगी।

इसी समय मिट्टी, सोना, तरह तरह के रत्न, अनेक धातुओं से बना और जल से भरा हुआ घड़ा, फूल, खीलें, आग, दूध, शहद, घी, सोने से जड़ा हुआ शङ्ख और शमी, पीपल तथा ढाक की लकड़ियाँ आदि राजतिलक का सब सामान वहाँ लाया गया। तब कृष्ण की आज्ञा पाकर पुरोहित धौम्य ने विधि के अनुसार वेदी बनाई। उसके ऊपर व्याघ्रचर्म बिछे हुए सर्वतोभद्र आसन पर द्रौपदी-सहित महाराज युधिष्ठिर बैठे

और अग्नि को आहुतियाँ देने लगे। तब सब लोग उठ खड़े हुए और कृष्ण ने पाञ्चजन्य नामक शङ्ख में जल लेकर युधिष्ठिर के तिलक किया। इस समय तरह तरह के बाजे बजने लगे। ब्राह्मण लोग बड़ी प्रसन्नता से कहने लगे:—

महाराज! आपने सौभाग्य-वश अपने ही पराक्रम से शत्रुओं को जीता और धर्म-पूर्वक राज्य को प्राप्त किया है। बड़े भाग्य थे जो महावीर भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्जुन, और माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव-सहित आप, वीरों का नाश करनेवाले उस भयङ्कर संग्राम से बच गये हैं। इसलिए अब अपना कर्त्तव्य पालन कीजिए।

इस प्रकार सज्जनों से आदर पाये और मित्रों से घिरे हुए धर्म्मराज अपने विस्तृत राज्य के अधिकारी हुए। माङ्गलिक क्रिया समाप्त होने पर उन्होंने कहा:—

हे विप्रगण! पाण्डवों में गुण हों या न हों, जब आप लोग सब उनके गुण गाते हैं तब पाण्डवों को धन्य है। जब आप हम लोगों को गुणवान् समझते हैं तब आपको चाहिए कि हम पर अवश्य कृपा करें। महाराज धृतराष्ट्र हमारे पिता के बराबर हैं; इसलिए यदि आप लोग हमें प्रसन्न रखना चाहते हैं तो सदा उनके आज्ञाकारी और हितकारी बने रहिएगा। सारे वंश का नाश करके भी हम केवल उन्हीं की सेवा करने के लिए जीवित हैं। यह सारा साम्राज्य और पाण्डव अब उन्हीं के अधीन हैं। आशा है, आप हमारी यह बात न भूलेंगे।

यह कह कर और बहुत सा धन देकर धर्म्मराज ने ब्राह्मणों को बिदा किया। जब पुरवासी और प्रजावर्ग सब चले गये तब युधिष्ठिर ने भीमसेन को युवराज, बुद्धिमान् विदुर को मन्त्री, वृद्ध सञ्जय को उपदेशक, नकुल को सेनापति, अर्जुन को राज्य-रक्षक, सहदेव को शरीर-रक्षक और पुरोहित धौम्य को देवकार्य्य का अधिकारी बना कर कहा:—

तुम लोग राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा बराबर मानते रहना। गाँव तथा पुर-वासियों और प्रजावर्ग का कोई काम करना हो तो वृद्ध राजा की आज्ञा से करना। इस समय तुम लोग घायल और थके हुए हो; इसलिए अपने अपने घर जाकर थका-वट दूर करो और विजय का आनन्द मनाओ।

यह कह कर युधिष्ठिर ने चचा धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार भीमसेन को दुर्योधन का महल, अर्जुन को दुःशासन का महल और नकुल-सहदेव को धृतराष्ट्र के अन्य पुत्रों के महल दिये। तब सब लोग अपने अपने महलों में गये।

इस तरह धर्म्मराज युधिष्ठिर राज्य को अपने अधिकार में करके, चारों वर्णों की

प्रजा को अपने अपने काम में लगा कर, आश्रित लोगों के पालन-पोषण का यथोचित प्रबन्ध करके तथा और जो जो ज़रूरी काम थे सब करके एक दिन कृष्ण से बोले:—

हे कृष्ण! कहो सुख से तो हो? कुछ तकलीफ़ तो नहीं? तुम्हारी ही कृपा से जय और यश प्राप्त करके हम लोगों ने राज्य पाया है। यदि तुम्हारी कृपा हम पर अब भी बनी हो तो हम लोगों को साथ लेकर महात्मा भीष्म के पास चलो। यदि उनसे उपदेश मिले तो हम लोग धर्म के अनुसार राज्य की रक्षा कर सकेंगे।

युधिष्ठिर की बात सुन कर कृष्ण सात्यकि से बोले:—

हे सात्यकि! हमारा रथ शीघ्र ही तैयार करने की आज्ञा दो।

तब राजा युधिष्ठिर ने भी अर्जुन से कहा:—

हे धनञ्जय! हमारा रथ भी तैयार करने को कह दो। हमारे साथ सेना के चलने की आवश्यकता नहीं। आज सिर्फ़ हमीं कई आदमी भीष्म के दर्शन करने चलेंगे। महात्मा भीष्म की योग-समाधि में विघ्न डालना उचित नहीं। इसलिए कोई फालतू आदमी हमारे साथ न चले।

धर्म्मराज के आज्ञानुसार अर्जुन ने रथ तैयार करके उन्हें सूचना दी। जब सात्यकि के साथ कृष्ण अपने रथ पर बैठ गये तब पाँचों पाण्डव भी रथ पर सवार हुए और आपस में बातचीत करते हुए चले। उनके रथ बड़ी तेज़ी से और बादल की तरह गरजते हुए चलने लगे।

थोड़ी देर बाद महात्मा कृष्ण और युधिष्ठिर आदि वीर कुरुक्षेत्र पहुँच गये। फिर, जहाँ महर्षियों से घिरे हुए पितामह भीष्म बाणों की सेज पर पड़े थे वहाँ गये।

तब शीघ्र ही रथ से उतर कर और दाहना हाथ उठा कर उन लोगों ने महर्षियों को प्रणाम किया। नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान युधिष्ठिर, भाइयों और कृष्ण के साथ, महात्मा भीष्म के पास गये। उनको आकाश से गिरे हुए सूर्य्य की तरह देख कर मारे डर के वे वहाँ खड़े रह गये। यह देख कर देवर्षि नारद कहने लगे:—

महात्मा भीष्म सूर्य्य की तरह अस्त हो रहे हैं। ये महात्मा चारों वर्णों के धर्म्म बहुत ही अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए इनके मरने और स्वर्ग जाने के पहले तुम लोग जानने योग्य बातें इनसे पूछ कर अपने अपने सन्देह दूर कर लो। भगवान् की कृपा से इस समय इनका सारा शारीरिक और मानसिक क्लेश दूर हो गया है।

महर्षि नारद ने जब यह बात कही तब सब लोग भीष्म की तरफ़ बढ़े और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। अन्त में युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा:—

हे कृष्ण ! तुम्हारे सिवा ऐसा कोई नहीं जो पितामह से कुछ पूछ सके। हम लोगों में तुम्हीं धर्म्मज्ञ हो। इसलिए तुम्हीं इनसे धर्म्म की बातें पूछो।

तब भीष्म को प्रणाम करके कृष्ण ने कहा:—

हे कौरवनाथ ! अपने गुरु अपने कुटुम्बियों और अपने बन्धु-बान्धवों को मारने के कारण धर्म्मराज युधिष्ठिर बड़े लज्जित हैं। इसलिए आपके सामने आने का साहस नहीं करते।

भीष्म ने उत्तर दिया:—

हे वासुदेव ! दान देना, वेद पढ़ना और तपस्या करना जैसे ब्राह्मण का धर्म्म है वैसे ही युद्ध में शत्रुओं को मारना क्षत्रियों का धर्म्म है। मनु ने कहा है कि ललकारे जाने पर क्षत्रिय को जरूर ही लड़ना चाहिए। युद्ध ही के द्वारा क्षत्रिय को यश, धर्म्म और स्वर्ग मिलता है।

भीष्म की बात सुन कर धर्म्मराज को धीरज हुआ। तब पास जाकर उन्होंने बड़ी नम्रता से उनके पैर छुवे। धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, परम उदार, भीष्म ने भी प्रसन्न-मन से धर्म्मराज का माथा सूँघा और उनको बैठने की आज्ञा देकर कहा:—

धर्म्मराज ! तुम डरो नहीं। धर्म्म-सम्बन्धी जो जो बातें तुम जानना चाहते हो वे हमसे तुम बेखटके पूछ सकते हो।

तब युधिष्ठिर बोले:—

हे पितामह ! सब लोग हमसे राज्य करने को कहते हैं; परन्तु यह काम हमें बहुत कठिन जान पड़ता है। इसलिए इस विषय में हमें उपदेश दीजिए। थोड़ा बहुत शास्त्र-ज्ञान जो हमने प्राप्त किया है वह आपही से प्राप्त किया है। इसलिए अब बताइए कि हमको क्या करना चाहिए।

धर्म्मराज का प्रश्न सुन कर भीष्म ने उनसे कहा:—

बेटा ! राजों के लिए राज-धर्म्म ही सब धर्मों से श्रेष्ठ है। इसी धर्म्म से मनुष्य-समाज सधा हुआ है। जैसे लगाम से घोड़ा सधा रहता है वैसे ही राजधर्म्म के प्रभाव से मनुष्य अपने अपने धर्म्म की मर्य्यादा के भीतर रहता है। हे धर्म्मराज ! यदि इस धर्म्म के अनुसार तुम प्रजा पालन कर सको तो निश्चय ही तुम्हें बड़ा पुण्य होगा और तुम बहुत यशस्वी भी होगे। इसके सिवा, तुम्हें कोई क्लेश न होगा। तुम सुख से और स्वच्छन्दतापूर्वक रहोगे।

इस तरह युधिष्ठिर को राज्य करने के लिए उत्साहित करके भीष्म राजधर्म्म के

विविध कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में उन्हें कई दिनों तक उपदेश देते रहे। पाण्डव लोग रात को घर चले आते और दूसरे दिन सबेरे भीष्म के पास फिर जाकर अपने अपने संशय निवारण करते।

बहुत दिनों तक महावीर भीष्म राजधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म, और शासन करने की विधि के सम्बन्ध में उपदेश देकर जब चुप हो गये तब उपस्थित राजों और महर्षियों में थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। बाणों की सेज पर पड़े हुए भीष्म से उस समय व्यासदेव बोले: -

हे भीष्म! आपकी कृपा से कुरुराज युधिष्ठिर के सब सन्देह दूर हो गये। आपकी आज्ञा के अनुसार अब वे राज्य करने के लिए तैयार हैं। इसलिए आप इन्हें हस्तिनापुर जाने की अनुमति दीजिए।

तब महात्मा भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा:—

राजन्! मन्त्रियों के साथ अब तुम शीघ्र ही हस्तिनापुर लौट जाव। अपने मन में तुम्हें किसी प्रकार की ग्लानि करना उचित नहीं। बहुत दक्षिणावाले तरह तरह के यज्ञ करके तुम देवताओं को प्रसन्न करो; प्रजा का मनोरञ्जन करो; मित्रों का यथोचित सम्मान करो। इससे तुम्हारी भलाई अवश्य होगी। सूर्य्य के उत्तरायण होने पर हम देहत्याग करेंगे। उस समय फिर हमारे पास आना।

इस तरह महात्मा भीष्म की आज्ञा पाकर धर्म्मराज युधिष्ठिर सब लोगों के साथ हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ पहले तो जिनके पति, पुत्र आदि मारे गये थे उन्हें माँगने से अधिक धन देकर शान्त किया। फिर अनेक प्रकार से अपनी प्रजा का सम्मान बढ़ाया और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। इसके बाद वे अच्छी तरह राज-काज चलाने की व्यवस्था में लग गये।

कुछ दिन इसी तरह बीतने पर जब सूर्य्य उत्तरायण हुए तब धर्म्मराज ने समझा कि अब भीष्म का मृत्यु-काल आ गया। इसलिए उनके मरने पर अग्नि-संस्कार आदि क्रिया करने के लिए माला, तरह तरह के मूल्यवान् रत्न, घी, सुगन्धित चीज़ें, रेशमी वस्त्र, चन्दन, अगर आदि भेज कर और भीष्म की संस्कृत अग्नि ले जानेवाले पुरोहित, धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और अपने भाइयों को आगे करके वे रथ पर नगर से चले। कृष्ण और विदुर भी उनके साथ साथ चले।

भीष्म के पास जाकर उन्होंने देखा कि महर्षि लोग पहले ही की तरह उन्हें घेरे हुए

बैठे हैं। भाइयों के साथ रथ से उतर कर युधिष्ठिर ने भीष्म और महर्षियों को प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने भीष्म से कहा:—

हे पितामह! हम युधिष्ठिर हैं; आपको नमस्कार करते हैं। आपका मृत्यु-समय निकट समझ कर अग्नि आदि सामग्री ले आये हैं। अब आज्ञा दीजिए, क्या करें।

यह सुन कर महात्मा भीष्म ने आँखें खोल दीं। उन्होंने देखा कि उनके सब कुटुम्बीय जन उनके चारों तरफ़ बैठे हैं! तब उन्होंने युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर कहा:—

बेटा! तुम्हें मन्त्रियों समेत आया देख हम बड़े प्रसन्न हुए हैं। हम अट्ठावन दिन तक इन धारदार बाणों की सेज पर पड़े रहे। ये अट्ठावन दिन सौ वर्ष की तरह जान पड़े हैं। जो हो, सौभाग्य से अब पवित्र माघ महीना और शुक्ल पक्ष आ गया है।

युधिष्ठिर से यह बात कह कर महात्मा भीष्म अन्धे राजा धृतराष्ट्र से कहने लगे:—

महाराज! तुम धर्म्म के सब तत्त्वों को जानते हो; इसलिए तुम्हें शोक न करना चाहिए। जो होनहार है वही होता है; उसे कोई मेट नहीं सकता! धर्म्म के अनुसार पाण्डव लोग तुम्हारे पुत्र के तुल्य हैं। इसलिए धर्म्म-परायण हो कर तुम उनका प्रतिपालन करो। सीधे सादे स्वभाव के गुरु-भक्त युधिष्ठिर सदा तुम्हारी आज्ञा मानेंगे।

इसके अनन्तर महात्मा भीष्म ने सब लोगों से कहा:—

बेटा! अब हम प्राण छोड़ना चाहते हैं। इसलिए तुम हमको आज्ञा दो।

यह कह कर उन्होंने सबको आलिङ्गन किया और चुप हो गये। मूलाधार आदि स्थानों में चित्त को क्रम से एकाग्र करके वे समाधिस्थ हो गये। उसी दशा में उनकी साँस रुक गई और उनका प्राण उल्का की तरह ब्रह्मरन्ध्र से निकल कर आकाश को उड़ गया।

इस तरह भरतकुल-श्रेष्ठ महात्मा भीष्म के प्राण-त्याग करने पर विदुर और पाण्डवों ने एकत्र होकर काठ और अनेक प्रकार की सुगन्धित चीज़ों से चिता बनाई। फिर विदुर और युधिष्ठिर ने भीष्म को अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्रों से ढक दिया और कोई पाण्डव छत्र लेकर, कोई चँवर लेकर, यथास्थान खड़ा हो गया। कौरव लोग नियमानुसार श्राद्ध और हवन करने तथा ब्राह्मण लोग सामवेद का गान करने लगे। इसके बाद भीष्म का शरीर चिता पर रख दिया गया। उसके ऊपर चन्दन, काठ, अगर, कपूर आदि सुगन्धित चीज़ें रक्खी गईं। फिर चिता में आग लगा दी गई। इस तरह उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त करके कौरव लोग चिता की बाईं तरफ़ से ऋषियों के साथ गङ्गा जी के किनारे गये और वहाँ भीष्म के लिए जलाञ्जलि देने लगे।

धृतराष्ट्र के तर्पण आदि कर चुकने पर धर्म्मराज युधिष्ठिर बड़ी व्याकुलता से उनको आगे करके गङ्गाजी से बाहर निकले। उस समय वे रो कर घायल हाथी की तरह ज़मीन पर गिर पड़े। यह देख कृष्ण का इशारा पाकर भीमसेन ने उनको तुरन्त उठाया और कृष्ण यह कह कर कि—महाराज! धीरज धरिए—उनको समझाने लगे। धर्म्मराज को प्रायः बेहोश देख कर अर्जुन आदि पाण्डव शोक करते हुए उनके चारों तरफ़ बैठ गये। पुत्रों के शोक से दुखी प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र युधिष्ठिर की यह अवस्था जान कर कहने लगे:—

धर्म्मराज! ज़मीन पर लोटने का यह समय नहीं। उठो और अपना कर्तव्य पालन करो। क्षत्रिय-धर्म्म के अनुसार तुमने यह साम्राज्य जीता है। इसलिए भाइयों और मित्रों के साथ उसे भोग करो। तुम्हारे शोक करने का इस समय तो कोई कारण भी नहीं। हाँ, हमारे और गान्धारी के सौ पुत्र, स्वप्न में पाये हुए धन की तरह, खो गये हैं; इसलिए यदि हम लोग शोक करें तो ठीक भी है। हमने दूरदर्शी विदुर की बात नहीं मानी; इसीलिए हमें इस शोक-सागर में डूबना पड़ा। अतएव तुम शोक त्याग कर हमारी तरफ़ देखो।

बुद्धिमान् धृतराष्ट्र की यह बात सुन कर भी युधिष्ठिर कुछ न बोले। तब महात्मा कृष्ण ने उनको बहुत उदास देख कर कहा:—

हे महाराज! परलोक गये हुए मनुष्यों के लिए अधिक शोक करने से वे बड़े दुखी होते हैं। इसलिए अब उठ कर किसी बड़े दक्षिणावाले यज्ञ की तैयारी कीजिए। सोम-रस से देवताओं को, अमृत से पितरों को, अन्न और जल से अतिथियों को और जितना मांगें उससे अधिक धन देकर दरिद्रों को तृप्त कीजिए। महात्मा भीष्म की कृपा से सारा राजधर्म्म आप सुन चुके हैं। इसलिए आपको मूढ़ों की तरह काम न करना चाहिए। अब पूर्व-पुरुषों की तरह उत्साह और दृढ़ता के साथ राज कीजिए।

कृष्ण की बात समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने कहा:—

हे वासुदेव! हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम हमको बहुत चाहते हो। पर महावीर कर्ण और महात्मा भीष्म के मर जाने से हमें किसी तरह शान्ति नहीं मिल सकती। अब तुम ऐसा उपाय बताओ जिसके करने से हमें इन घोर पापों से छुटकारा मिले और हमारा मन पवित्र हो।

इस तरह धर्म्मराज को फिर दुख करते देख व्यासदेव ने कहा:—

बेटा! मालूम होता है कि तुम्हारी बुद्धि अब भी डावाँडोल हो रही है। अब भी तुम बालकों की तरह मोह में आ जाते हो। तुम्हारी बातें सुन कर जान पड़ता है कि

पितामह ने इतने दिन तक तुमको व्यर्थ ही उपदेश दिया। तुम तो सब बातों के प्रायश्चित्त जानते हो। इसलिए वृथा शोक न करके जिस काम से पापों का नाश हो वही काम करो। राजा के लिए यज्ञ से बढ़ कर और कोई काम नहीं। अश्वमेध किसी यज्ञ से कम नहीं। इसलिए तुम्हें यही यज्ञ करना चाहिए।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा:—

भगवन्! यह हम जानते हैं कि अश्वमेध यज्ञ करने से राजा लोग पवित्र हो जाते हैं। किन्तु इस समय उसे करना हमारे लिए सहज नहीं। इस घोर युद्ध के बाद हमारे पास अब बहुत थोड़ा धन रह गया है। हमारे मित्र राजा लोग भी बड़ी दीन अवस्था में हैं। इस दशा में उनसे भी कुछ नहीं माँग सकते। और, धन देना ही अश्वमेध यज्ञ की सबसे बड़ी बात है। इसलिए आप ही बताइए कि इस समय हम क्या करें।

तब कुछ देर सोच कर महर्षि वेदव्यास ने कहा:—

बेटा! तुम चिन्ता न करो। यह ठीक है कि इस समय तुम्हारा ख़ज़ाना ख़ाली है; किन्तु उसे शीघ्र ही भर देने का उपाय हम बताये देते हैं। किसी समय महाराज मरुत्त ने हिमालय पर बड़ा भारी यज्ञ किया था। उस समय उन्होंने ब्राह्मणों को इतना अधिक धन दिया था कि वे वह सब धन न ले जा सके और वहीं छोड़ देने को मजबूर हुए। सोने का वह ढेर अब तक वहाँ पड़ा है। इस समय उसे ले आने से तुम्हारा यज्ञ सहज ही में हो सकेगा।

भगवान् व्यास के इस तरह भरोसा देने पर धर्म्मराज बन्धु-वियोग का दुःख भूल कर बोले:—

हे पितामह! अनन्त धन पाने का जो उपाय आपने हमें बताया है उसके द्वारा शीघ्र ही धन इकट्ठा करके हम यज्ञ करेंगे।

महात्मा युधिष्ठिर की यह बात समाप्त होते ही महर्षि लोग सबके सामने वहीं अन्तर्द्धान हो गये। तब भीष्म, कर्ण आदि वीरों के पारलौकिक कल्याण के लिए ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर और धृतराष्ट्र को आगे करके युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ हस्तिनापुर लौट आये और धृतराष्ट्र को धीरज देकर राज्य करने लगे।

शत्रुनाश के बाद पाण्डवों का राज्य निरुपद्रव हो गया। इससे वे लोग सुख से राज्य करने लगे। अश्विनीकुमारों की तरह अर्जुन और कृष्ण आनन्दपूर्वक विचित्र वन, पवित्र तीर्थ, पर्वत, गुफा, नदी आदि रमणीय स्थानों में विचरने लगे। बन्धु-

बान्धवों और पुत्रों के नाश से अर्जुन को जो शोक हुआ था उसे कृष्ण तरह तरह की अद्भुत कथायें कह कर दूर करने लगे। एक दिन उन्होंने अर्जुन से कहा:—

— हे अर्जुन! धर्म के अनुसार यह राज्य अकण्टक हो कर धर्मराज के हाथ में आया है। धृतराष्ट्र के जो अधर्मी और राज्य-लोलुप पुत्र तुम लोगों को सदा तङ्ग किया करते थे उन्हें किये का फल मिल गया। वे सब इस समय परलोक में हैं। अब राजा युधिष्ठिर तुम लोगों से रक्षित हो कर निर्विघ्न राज्य करें। यद्यपि हम धर्म्मराज को उपदेश देने योग्य नहीं तथापि जो जो उपदेश हमने उनको दिये हैं उन सबको उन्होंने मान लिया है। उन्हीं के अनुसार वे व्यवहार भी करते हैं। अब तुम्हारे साथ बैठने उठने के सिवा हमारे यहाँ रहने का कोई प्रयोजन नहीं। इसलिए अब हमको द्वारका लौट जाना चाहिए। तुम्हारे साथ राज्य का सुख भोगने की तो बात ही क्या है, वनवास करके भी हम बड़े प्रसन्न होते हैं। धर्म्मराज युधिष्ठिर, महाबली भीम, और सरल-स्वभाव नकुल-सहदेव जहाँ रहते हैं वहाँ भी हमें बड़ा अच्छा लगता है। किन्तु बहुत दिनों से हमने पिता, पुत्र, बलदेव और यादव वंश के अन्य आत्मीय लोगों को नहीं देखा। इसलिए द्वारका जाने की हमारी बड़ी इच्छा है। तुम हमारी बात मान लो और धर्म्मराज के पास चल कर कहो कि हम द्वारका जाना चाहते हैं।

प्यारे मित्र कृष्ण की यह बात सुन कर महा पराक्रमी अर्जुन ने बड़ी मुश्किल से इसे माना। तब कृष्ण और अर्जुन उठ कर धर्म्मराज के घर गये। वहाँ धर्म्मराज युधिष्ठिर मन्त्रियों से घिरे हुए बैठे थे। कृष्ण और अर्जुन को आया देख उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उनको उचित आसनों पर बिठाया और कहा:—

हे महावीर! मालूम होता है कि किसी विशेष काम से तुम हमारे पास आये हो। कुछ भी हो, कहो, क्या काम है। हम उसे अवश्य करेंगे।

धर्म्मराज के इतना कहने पर वाक्य-चतुर अर्जुन ने विनीत भाव से कहा:—

महाराज! हम लोगों के प्यारे मित्र कृष्ण को द्वारका से आये बहुत दिन हुए। अब वे पिता से मिलने के लिए बड़े उतावले हो रहे हैं। इससे यदि आपकी आज्ञा हो तो वे अपने नगर जायँ।

यह बात सुन कर धर्म्मराज कृष्ण से बोले:—

हे वासुदेव! अब तुम पिता के दर्शन करने के लिए निर्विघ्न द्वारका जाव। मामा वसुदेव और महावीर बलराम से हम बहुत दिन से नहीं मिले। तुम द्वारका जाकर उन लोगों से हमारा और भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव का प्रणाम कह देना। हमें

और हमारे भाइयों को भूल न जाना। तुम्हें जाने से हम नहीं रोकते, किन्तु जब हम अश्वमेध यज्ञ करें तब तुम्हें अवश्य आना होगा। द्वारका जाते समय तरह तरह के रत्न और जो चीज़ें तुम्हें पसन्द हों लेते जाना। हमने तुम्हारे ही प्रभाव से वैरियों को मारा और साम्राज्य प्राप्त किया है। इसलिए हमारा सब धन-रत्न तुम्हारा ही है।

तब कृष्ण ने कहा:—

महाराज! हम आपको पृथ्वी का स्वामी देख कर बड़े ही सन्तुष्ट हुए हैं। हमारे घर के हाथी, घोड़े, और रत्नों को आप अपना ही समझिए।

कृष्ण का शिष्टतापूर्ण उत्तर सुन कर युधिष्ठिर ने यथोचित सत्कार के बाद उनको विदा किया। तब महात्मा कृष्ण, बुआ कुन्ती और विदुर आदि गुरुजनों की आज्ञा लेकर, और बहन सुभद्रा के साथ रथ पर चढ़ कर, हस्तिनापुर से चले। विदुर, चारों पाण्डव और अन्य नगर-निवासी उनके पीछे पीछे चले।

वे लोग कुछ ही दूर गये होंगे कि बुद्धिमान् कृष्ण ने बड़े मधुर शब्दों में उन लोगों से लौट जाने के लिए अनुरोध किया और दारुक तथा सात्यकि को तेज़ी से रथ हाँकने के लिए आज्ञा दी। तब पीछे पीछे जानेवाले लोग उनका अभिनन्दन करके लौट आये। अर्जुन ने अपने मित्र कृष्ण को बार बार आलिङ्गन किया और जब तक उनको देख सके तब तक बराबर देखते रहे। कृष्ण भी प्रिय मित्र अर्जुन को टकटकी लगा कर देखने लगे। जब एक दूसरे की आँखों की ओट हो गया तब अर्जुन वहाँ से बड़े कष्ट से लौटे।

इधर कृष्ण और सात्यकि हवा की तरह तेज़ घोड़ोंवाले रथ पर नद, नदी, वन और पर्वतों को पार करते हुए द्वारका नगरी के पास पहुँचे। इस समय रैवतक पर्वत पर एक बहुत बड़ा महोत्सव भी शुरू हो गया था। इस कारण तरह तरह के गहनों से शोभायमान यदुवंशी योद्धा पर्वत पर विहार करते थे। यह देख कर कृष्ण और सात्यकि रथ से उतर पड़े और प्रसन्नतापूर्वक पर्वत पर गये। वहाँ उनके पहुँचने पर सब लोग बड़ी खुशी से उन लोगों के साथ कृष्ण के घर की तरफ़ चले।

अपने घर में सबका आदर-सत्कार करके और कुशल-समाचार पूछ कर कृष्ण ने दुखी मन से माता-पिता को प्रणाम किया। इसके बाद पैर धोकर जब वे आसन पर बैठे तब सब यादव लोग चारों तरफ़ बैठ गये। कृष्ण के विश्राम ले चुकने पर उनके पिता बोले:—

बेटा! हमने कितने ही आदमियों के मुँह से कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई का

हाल सुना है। पर तुमने इस अद्भुत युद्ध को अपनी आँखों देखा है। इसलिए हम तुमसे सुनना चाहते हैं कि पाण्डवों के साथ भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि का युद्ध किस तरह हुआ था।

तब कृष्ण कहने लगे:—

पिता! कौरव-पाण्डवों के युद्ध में क्षत्रियों ने बड़े बड़े अद्भुत काम, न मालूम कितने, किये हैं। यदि सौ वर्ष तक बराबर उनका हाल बताया जाय तो भी पूरा न होगा। इसलिए हम उन्हें बड़े संक्षेप से वर्णन करते हैं; सुनिए।

यह कह कर भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि के मारे जाने की तरह की जितनी बड़ी बड़ी घटनायें कुरुक्षेत्र के युद्ध में हुई थीं सब कृष्ण ने कह सुनाईं। पर इस डर से कि कहीं बूढ़े वसुदेव नाती के लिए शोकातुर न हो उठें उन्होंने अभिमन्यु का ज़िक्र न किया। सुभद्रा वहाँ बैठी थीं। उन्होंने देखा कि अभिमन्यु ने युद्ध में जो असाधारण वीरता दिखाई थी उसका वर्णन नहीं किया गया। इससे वे बोल उठीं:—

भाई! तुमने हमारे अभिमन्यु का तो कुछ भी हाल न कहा।

यह कह कर वे ज़मीन पर गिर पड़ीं। कन्या को इस प्रकार व्याकुल होते देख असल बात वसुदेव समझ गये। इससे वे भी मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देर बाद होश में आकर वे कृष्ण से कहने लगे:—

पुत्र! सत्यवादी होकर भी तुमने यह बात हमसे क्यों छिपाई? हमारे नाती को शत्रुओं ने कैसे मारा? हाय! अभिमन्यु को मरा सुन कर भी जब हमारी छाती नहीं फटती तब यह निश्चय है कि समय आने के पहले मनुष्य नहीं मरता। हमारे प्यारे अभिमन्यु ने मरते समय अपनी माता के और हमारे लिए क्या कहा था? युद्ध में पीठ दिखा कर तो वह शत्रुओं के हाथ से नहीं मारा गया?

वृद्ध वसुदेव के इस तरह विलाप करने पर कृष्ण ने दुखी मन से उन्हें धीरज देकर कहा:—

पिता! अभिमन्यु युद्ध छोड़ कर कभी नहीं भागा; उसके मुख का भाव कभी नहीं बदला। उस महावीर ने युद्ध में सैकड़ों राजों को मार गिराया। यदि एक एक वीर उससे लड़ता तो उसे कभी न हरा सकता। वज्रधारी इन्द्र भी उसे अकेले न मार सकते। किन्तु जिस समय अर्जुन संसप्तक लोगों से लड़ रहे थे उस समय द्रोण आदि सात योद्धाओं ने मिल कर बाणों से उसे ढक दिया और दुःशासन के पुत्र ने उसको

मार डाला। आपका प्यारा नाती ऐसे अलौकिक युद्ध में मर कर निश्चय ही स्वर्ग-लोक गया है। अतएव उसके लिए शोक न कीजिए।

यह कह कर कृष्ण ने जब अभिमन्यु की वीरता के सब काम सिलसिलेवार कह सुनाये तब वसुदेव ने शोक छोड़ कर नाती का श्राद्ध किया। भानजे का और्ध्वदैहिक कार्य्य समाप्त होने पर कृष्ण ने भी ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद सब यादव-वीरों ने भी अभिमन्यु का श्राद्ध करके शोक मनाया।

६—अश्वमेध यज्ञ

कृष्ण के चले जाने पर एक दिन युधिष्ठिर ने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को बुला कर कहा:—

भाई! हम लोगों के परम गुरु व्यासदेव, पितामह भीष्म और महा-बुद्धिमान् कृष्ण ने यज्ञ करने के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था उसे तुमने सुना ही है। इसलिए उनके आज्ञानुसार यज्ञ करने की हमारी बड़ी इच्छा है। महात्मा वेदव्यास ने राजा मरुत का धन ले आने की आज्ञा हम लोगों को दी थी। यदि तुम उसे ला सको और लाना चाहो तो सब काम सिद्ध हो सकता है।

धर्म्मराज की बात सुन कर भीमसेन ने हाथ जोड़ कर कहा:—

महाराज! हम लोग मन, वच, कर्म से महादेव जी को प्रसन्न करके वह धन ले आवेंगे। जो भयङ्कर किन्नर इस धन की रक्षा करते हैं वे, महादेव जी के सन्तुष्ट हो जाने पर, हमारे काम में विघ्न न डालेंगे।

अर्जुन आदि अन्य भाइयों ने भी भीमसेन की इस बात का अनुमोदन किया। तब सब पाण्डवों ने धन लाने का दृढ़ निश्चय करके शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को उन्होंने राज्य की रक्षा के लिए नियुक्त किया। फिर स्वस्ति-वाचन कराकर अच्छी अच्छी मिठाइयों का भोग रख कर महादेवजी की पूजा की। तदनन्तर धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर वे लोग धन लाने के लिए नगर से निकले और असंख्य सेना के साथ, रथों की ध्वनि से पृथ्वी को परिपूर्ण करते हुए, आनन्द-पूर्वक हिमालय की तरफ़ चले।

तब अनेक सरोवर, नदी, वन और उपवन पार करके वे लोग उस पहाड़ के पास पहुँचे जिसके भीतर सोने के ढेर के ढेर गड़े पड़े थे। तपोबली पुरोहित धौम्य को आगे

करके उनकी आज्ञा से वे उस पर चढ़े और वहाँ डेरे डाल दिये। इस समय धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से कहा:—

हे द्विजश्रेष्ठ! यहाँ अधिक दिन रहने का सुभीता नहीं है। इसलिए शीघ्र ही दिन स्थिर करके आप लोग महादेवजी की पूजा कीजिए।

इस पर उनके हितैषी ब्राह्मण लोग बोले:—

महाराज! आज का दिन बहुत उत्तम है। इसलिए आज हम लोग केवल जल पीकर रहेंगे; आप भी उपवास करें।

उनके कहने के अनुसार पाण्डव लोग उस दिन निराहार रहे और कुशासनों पर लेट कर तथा शास्त्र-सम्बन्धी बातें करके रात बिताई। दूसरे दिन वेदों का रहस्य जानने-वाले धौम्य जब विधि के अनुसार हवन करके महादेवजी की पूजा कर चुके तब धर्म्मराज युधिष्ठिर वहाँ गये जहाँ धन गड़ा था। वहाँ उन्होंने फल, फूल, मालपुवे, गुलगुले और हलुवे से धन के स्वामी कुबेर की पूजा की। फिर नौकरों को धन खोदने की आज्ञा दी।

कुछ ही देर खोदने पर इस जगह से कितने ही बड़े बड़े बर्तन, घड़े और कड़ाह निकले। उनमें सोना भरा हुआ था। राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर से धन रखने के योग्य बहुत से बर्तन और ले जाने के लिए लाखों हाथी, घोड़े, ऊँट, गधे और गाड़ियाँ अपने साथ ले आये थे। सारा धन उन्हीं बर्तनों में भर कर उन्हें गाड़ियों और हाथियों आदि पर लादने के लिए उन्होंने आज्ञा दी। इस तरह यह विपुल सम्पत्ति पाकर और फिर महादेवजी की पूजा करके वे हस्तिनापुर को लौट पड़े। लदे हुए जानवर बोझ के मारे दबे जाते थे; इसलिए दिन भर में बहुत ही थोड़ा चल सकते थे।

इस बीच में कृष्ण यज्ञ का समय निकट आया जान और राजा युधिष्ठिर का अनुरोध स्मरण करके बलदेव, सुभद्रा, प्रद्युम्न, युयुधान, चारुदेष्ण, कृतवर्म्मा आदि वीरों के साथ हस्तिनापुर आ पहुँचे। वे लोग आकर बैठे ही थे कि अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के एक मरा बालक उत्पन्न हुआ। पुत्र के भूमि पर गिरते ही अन्तःपुर के सब लोग आनन्द मनाने लगे। पर शीघ्र ही वह आनन्द रोने में बदल गया।

कृष्ण ने बड़ी घबराहट से युयुत्सु के साथ अन्तःपुर में जाकर देखा कि कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि उनको बुलाने के लिए जल्दी जल्दी दौड़ी आती हैं। उनके साथ कृष्ण उस घर में गये जहाँ उत्तरा के पुत्र उत्पन्न हुआ था। वहाँ उन्होंने देखा कि वह घर तरह तरह की मालाओं से सजा हुआ है। चारों ओर जल से भरे हुए घड़े

रक्खे हैं। जगह जगह पर घी रक्खा है। तेंदू की लकड़ी जल रही है। सरसों बर्तनों में भरे हुए रक्खे हैं। धारदार हथियार भी कई जगह पर रक्खे हुए हैं। राक्षसों की विघ्न-बाधा दूर करनेवाला यह सामान देख कर कृष्ण आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि कई जगह आग दहक रही है और बूढ़ी स्त्रियाँ तथा चिकित्सा करने में चतुर वैद्य वहाँ बैठे हैं। कृष्ण को देखते ही सब लोग करुण स्वर से विलाप करने लगे। विराट की पुत्री उत्तरा ज़मीन पर लोट गई और उनके पैर पकड़ कर रोने लगी। यह दशा देख कर महात्मा कृष्ण को बड़ी दया आई; वे ज़ोर से कहने लगे:—

हम कभी युद्ध से नहीं भगे; धर्म्म और ब्राह्मणों के हम सदा से भक्त हैं; प्रिय बन्धु अर्जुन से हमने कभी विरोध नहीं किया; केशी और कंस को हमने धर्म्मानुसार मारा है; सत्य और धर्म्म का हम सदा पालन करते हैं। इसलिए इन सब पुण्यों के प्रभाव से अभिमन्यु का पुत्र शीघ्र ही जी उठे।

उनकी बात पूरी होते ही उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ वह बालक चेत में आकर हिलने डुलने लगा। जल में डूबता हुआ आदमी नाव पाकर जैसे प्रसन्न होता है वैसे ही कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि स्त्रियाँ अत्यन्त आनन्दित होकर कृष्ण की प्रशंसा करने लगीं। सूत और मागधों ने भी कृष्ण की यथोचित स्तुति की। इसके बाद उत्तरा ने यथा समय उठ कर पुत्र-सहित बड़ी प्रसन्नता से कृष्ण को प्रणाम किया। तब महात्मा कृष्ण और दूसरे यादवों ने प्रसन्न होकर उस बालक को तरह तरह के बहुमूल्य रत्न देकर कहा:—

इस बालक ने वंश के क्षीण होने के समय जन्म लिया है; इसलिए इसका नाम परीक्षित रक्खा जाय।

शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह वह बालक धीरे धीरे बढ़ने लगा। इससे हस्तिनापुर-वासियों को बड़ा आनन्द हुआ।

परीक्षित के पैदा होने के एक महीने बाद पाण्डव लोग वह धन-राशि लेकर हिमालय से लौटे। यह ख़बर पाते ही कि वे नगर के निकट आये हैं, यादव लोग उनकी अगवानी के लिए चले। ध्वजा, पताका और मालाओं से नगर सजाया गया और धन-वान् पुरवासियों ने अपने अपने घर सजाये। महात्मा विदुर ने पाण्डवों के कल्याण के लिए सारे देव-मन्दिरों में पूजा करने की आज्ञा दी। उधर यादववीरों से मिल कर युधिष्ठिर आदि ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उनका यथोचित सत्कार किया। तदनन्तर उनके साथ उन्होंने नगर में प्रवेश किया। सिपाहियों के चलने के शब्द, रथ के

पहियों की घरघराहट और चलते फिरते आदमियों के कोलाहल से पृथ्वी और आकाश दोनों गूँज उठे।

इस तरह पाण्डव लोग उस धन-राशि को ले कर नगर में पहुँचे। पहले तो उन्होंने अपना अपना नाम लेकर धृतराष्ट्र के पैर छुए; फिर गान्धारी और कुन्ती को प्रणाम करके विदुर, युयुत्सु आदि का यथोचित सम्मान किया। इसके बाद परीक्षित के पैदा होने और कृष्ण के द्वारा उनके जिलाये जाने का हाल सुन कर वे लोग बड़े आनन्द से कृष्ण की बार बार प्रशंसा करने लगे।

कुछ दिन बीतने पर महर्षि व्यास हस्तिनापुर आये। कौरवों और यादवों ने नियमानुसार पाद्य और अर्घ्य से उनकी पूजा की। तदनन्तर युधिष्ठिर ने कहा:—

भगवन्! आपकी कृपा से जो धन हम लोग ले आये हैं उसे शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ में खर्च करना चाहते हैं। इसलिए आप इस बात की आज्ञा दीजिए।

वेदव्यास ने कहा:—राजन्! तुम शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ करो।

तब युधिष्ठिर ने शिष्टाचार दिखा कर कृष्ण से कहा:—

हे केशव! तुम्हारी ही कृपा से हमारा मङ्गल हुआ है। इसलिए इस यज्ञ की दीक्षा तुम्हीं लो।

उत्तर में कृष्ण ने कहा:—

महाराज! आप बड़े शीलवान् और विनय-सम्पन्न हैं; इसी से आप ऐसा कहते हैं। आप हमारे राजा और गुरु हैं; इसलिए आप ही यज्ञ कीजिए। आपका यज्ञ सिद्ध हो जाने पर हम सब लोगों को यज्ञ का फल होगा। आप जो काम करने के लिए कहेंगे हम वही करेंगे।

तब युधिष्ठिर ने वेदव्यास से कहा:—

हे महर्षि! आप यज्ञ का ठीक समय निश्चित करके हमें दीक्षित कीजिए। यह यज्ञ आप ही की कृपा से निर्विघ्न समाप्त हो सकेगा।

व्यास ने कहा:—राजन्! चैत्र की पौर्णमासी को तुम्हें यज्ञ आरम्भ करना होगा। इसलिए अब यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करो और घोड़ों की विद्या जाननेवाले सारथियों तथा ब्राह्मणों को यज्ञ के घोड़े की परीक्षा करने की आज्ञा दो। शास्त्र के अनुसार घोड़ा छोड़ा जायगा। वह समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी-मण्डल पर तुम्हारे चमकते हुए चन्द्रमा-रूपी यश का प्रकाश फैला कर लौट आवेगा।

महर्षि व्यास की आज्ञा के अनुसार राजा युधिष्ठिर सब तैयारी करने लगे। धीरे धी सब सामान इकट्ठा हो जाने पर उन्होंने कहा:—

भगवन्! यज्ञ की सब सामग्री तैयार है। इसके उत्तर में महर्षि ने कहा:—

हम भी तुम्हें यज्ञ में दीक्षित करने के लिए तैयार हैं। कूर्च—आदि और जिन जि चीज़ों की ज़रूरत है उन्हें सोने की बनवाना चाहिए। तुम्हें आज ही शास्त्र के अनुसा घोड़ा खोलना होगा और उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध भी करना होगा।

युधिष्ठिर ने कहा:—आप ही बताइए, इस घोड़े की रक्षा कौन अच्छी तरह कर सकेगा।

महर्षि ने कहा:—राजन्! धनुर्धारियों में श्रेष्ठ महावीर अर्जुन ही को यह कठिन काम सौंपना चाहिए। भीमसेन और नकुल बड़े तेजस्वी हैं; इसलिए ये राज्य की रक्षा करें। और सहदेव मेहमानों की देख-भाल रक्खें।

महर्षि व्यास की आज्ञा के अनुसार प्रबन्ध करके युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा:—

भाई! तुम निश्चित समय पर घोड़ा लेकर यात्रा करना। जो राजे तुमसे लड़ने आवें उनसे हमारे यज्ञ का हाल कहना और जहाँ तक बने लड़ाई टालने की चेष्टा करना।

ठीक समय पर पुरोहितों ने युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ के लिए दीक्षित किया। उस समय वे फूलों की माला, मृगछाला, दण्ड और क्षौम वस्त्र धारण करके ऋत्विजों के साथ बैठे और प्रज्वलित अग्नि की तरह शोभा पाने लगे। इसके बाद अर्जुन भी उचित वेश में अग्नि की तरह शोभायमान हुए। यथासमय महात्मा व्यास ने उस काले घोड़े को छोड़ दिया। अर्जुन उसके पीछे चलने को तैयार होकर बोले:—

घोड़े! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम निर्विघ्न प्रस्थान करो और शीघ्र ही यहाँ लौट आओ।

यह कह कर उन्होंने अंगुश्ताना पहना और गाण्डीव का टङ्कार शब्द किया। फिर बड़ी प्रसन्नता से सफ़ेद घोड़े पर सवार होकर उसके पीछे पीछे चले। इस समय हस्तिनापुर के लड़के, बूढ़े और स्त्रियाँ, सब लोग, अर्जुन और यज्ञ के घोड़े को देखने के लिए वहाँ एकत्र थे। वे सब चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे:—

यह देखो घोड़ा जाता है। यह देखो गाण्डीव लिये हुए अर्जुन भी उसके पीछे पीछे जाते हैं। ईश्वर करे इनके जाने और लौटने में कोई विघ्न न पड़े।

किसी किसी ने कहा:—

भीड़ के कारण हम लोग अर्जुन को देख नहीं पाते। सिर्फ़ उनका प्रसिद्ध गाण्डीव

धन्वा देख पड़ता है। जो हो, भगवान् करे रास्ते में कोई विघ्न न हो। यह निश्चय है कि वे घोड़ा लेकर ही लौटेंगे। हम लोग उस समय उनको अच्छी तरह देखेंगे।

यज्ञ का घोड़ा पहले उत्तर की तरफ़ चला। बहुत से छोटे छोटे राजा अर्जुन से लड़ने आये। वे सब परास्त हुए। कोई अर्जुन का कुछ भी न बिगाड़ सका।

तब पूर्व की ओर घूम कर वह घोड़ा त्रिगर्त्त देश में पहुँचा। वहाँ के राजकुमारों ने अस्त्र-शस्त्रों से सज कर घोड़े को घेर लिया। महावीर अर्जुन को युधिष्ठिर की बात याद थी। इसलिए पहले तो उन्होंने उन लोगों को विनयपूर्वक समझा बुझा कर लड़ने का इरादा छोड़ देने की प्रार्थना की। पर अर्जुन की बात न मान कर उन्होंने उन पर धावा किया।

अर्जुन ने उन लोगों को बाणों से ढक कर त्रिगर्त्तराज सूर्य्यवर्म्मा को हरा दिया। तब दूसरे राजकुमार आगे बढ़ कर लड़ने लगे। महावीर केतुवर्म्मा ने आश्चर्य्यजनक फुरतीलेपन से अर्जुन को बाणों से ढक दिया। यह देख कर वे बड़े प्रसन्न हुए और उसे निरा बालक समझ कर उसके साथ नरमी से युद्ध करने लगे।

इस समय महावीर केतुवर्म्मा ने अर्जुन के हाथ पर एक तेज़ बाण मारा। बाण लगा और अर्जुन का हाथ घायल हो गया। इससे वे बेहोश हो गये और गाण्डीव उनके हाथ से छूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा। इस पर केतुवर्म्मा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे ज़ोर से हँस पड़े। यह देख अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने हाथ से बहते हुए रुधिर को पोंछ कर वज्र की तरह लोहे के बाणों से शत्रुओं के अठारह योद्धा मार गिराये। तब त्रिगर्त्त लोग हतोत्साह होकर अर्जुन से बोले:—

हे अर्जुन! आज से हम लोग आपके दास हुए।

अर्जुन ने उनसे कहा, अच्छी बात है। कृपा करके यथासमय यज्ञ में आना। यह कह कर फिर वे घोड़े के पीछे पीछे चले।

इसके बाद वह घोड़ा प्राग्ज्योतिष देश में पहुँचा। वहाँ भगदत्त के पुत्र महाराज वज्रदत्त घोड़े को पकड़ कर अर्जुन से घोर युद्ध करने और कहने लगे:—

हे पाण्डुपुत्र! अब तुम अधिक दिन न जीते रहोगे। हम शीघ्र ही तुम्हें मार कर अपने पिता के ऋण से उद्धार होंगे।

इसके बाद अर्जुन ने वज्रदत्त के हाथी को मारने की चेष्टा की। इस पर वज्रदत्त ने पहाड़ की तरह उस हाथी को अर्जुन की तरफ़ बढ़ाया। उस उतने बड़े हाथी को समीप आता देख अर्जुन को बेहद क्रोध आ गया। उन्होंने आग की तरह जलता हुआ

एक ऐसा बाण मारा कि उस हाथी का हृदय फट गया और वह, बिजली से तोड़े गये पहाड़ की तरह, धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा। तब महावीर अर्जुन ने वज्रदत्त से कहा:—

हे वज्रदत्त ! युधिष्ठिर ने हमसे कह दिया है कि जहाँ तक बने किसी राजा को युद्ध में न मारना। इसीलिए हम तुमको नहीं मारते। यज्ञ के दिन हस्तिनापुर आकर तुम्हें उत्सव में शामिल होना पड़ेगा।

महाराज वज्रदत्त यह बात मान कर अपने घर गये।

इसके बाद घोड़ा सिन्धु देश में पहुँचा। वहाँ जयद्रथ की मृत्यु का स्मरण करके सिन्धु देश के राज-पुरुषों ने अर्जुन पर आक्रमण किया। धर्म्मात्मा अर्जुन ने बड़े भाई के उपदेश को याद करके युद्ध के मद से मतवाले उन वीरों से कहा:—

हे योद्धा लोगो ! तुममें से जो कोई हमसे हार मान लेगा उसे हम न मारेंगे।

यह बात सुन कर सिन्धु देश के वीर क्रोध से उन्मत्त होकर लड़ने दौड़े। घोर युद्ध होने लगा। अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर भी सिन्धु-देशवासी प्राणों की परवा न करके बड़े उत्साह से लड़ने लगे। यह देख कर अर्जुन बिगड़ उठे। उन लोगों के अस्त्रों को उन्होंने रास्ते ही में काट डाला। फिर सिंह की तरह गरज कर तीक्ष्ण बाणों के द्वारा जीतने की इच्छा से आये हुए उन वीरों का वे संहार करने लगे। इस पर कोई तो भागा; किसी ने हथियार ही रख दिये; पर किसी किसी ने फिर अर्जुन पर धावा किया। इससे युद्ध-स्थल बढ़े हुए समुद्र की तरह क्षुब्ध हो उठा।

अर्जुन ने सिन्धु-देशवालों की बड़ी दुर्दशा की। धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला ने जब यह वृत्तान्त सुना तब पौत्र को गोद में लेकर रोती हुई रथ पर वह अर्जुन के पास आई। बहिन को देख कर अर्जुन ने गाण्डीव रख दिया। वे बोले:—

बहिन ! कहो क्या चाहती हो ?

शोक से व्याकुल होकर दुःशला कहने लगी:—

भाई ! युद्ध में मेरे पति के मरने पर मेरा पुत्र सुरथ अब तक पिता के शोक से बड़ा दुखी था। वह आज तुम्हारे आने की खबर सुनते ही एकाएक ज़मीन पर गिर कर मर गया। अब मैं उसका पुत्र लेकर तुम्हारी शरण आई हूँ।

बहिन को दुखी देख अर्जुन ने लज्जा से सिर झुका लिया और कहने लगे:—

क्षत्रियों के धर्म्म को धिक्कार है जिसके कारण हमें अपने भाई बन्दों को भी मारना पड़ा।

इसके बाद उन्होंने दुःशला को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर धीरज दिया और आलिङ्गन करके घर जाने को कहा। दुःशला ने योद्धाओं को लड़ाई बन्द करने की आज्ञा दी। फिर अर्जुन का यथोचित सत्कार करके घर लौट गई।

अपनी इच्छानुसार फिरनेवाला वह घोड़ा कितने ही स्थानों में घूमता हुआ मणिपुर पहुँचा। महाराज बभ्रुवाहन पिता के आने का हाल सुनते ही ब्राह्मणों को आगे करके विनीत भाव से उनके पास तरह तरह के धन-रत्न आदि ले आये। पर उनको इस तरह आते देख अर्जुन को अच्छा न लगा। इससे उन्होंने रुष्ट होकर कहा:—

बेटा! हम शस्त्र लेकर महाराज युधिष्ठिर के घोड़े की रक्षा करते हुए तुम्हारे राज्य में आये हैं। फिर तुम हमसे क्यों नहीं लड़ते?

इस तरह तिरस्कार होने पर महावीर बभ्रुवाहन ने मुँह नीचे कर लिया और सोचने लगे कि क्या करें। इस समय नाग-कन्या उलूपी को मालूम हो गया कि उसकी सौत का पुत्र पिता द्वारा तिरस्कृत होकर चिन्ता से व्याकुल है। अतएव वह पाताल फोड़ कर वहाँ आ पहुँची और बोली:—

बेटा! मैं तुम्हारी सौतेली माता उलूपी हूँ। जब तुम्हारे पिता तुम्हारे राज्य में लड़ने आये हैं तब तुमको उनसे ज़रूर लड़ना चाहिए।

उलूपी के इस उपदेश से उत्तेजित होकर महाराज बभ्रुवाहन ने लड़ने का निश्चय किया। उन्होंने शीघ्र ही कवच पहना और शिरस्त्राण सिर पर धारण किया। फिर सिंह के चिह्नवाली ध्वजा से शोभायमान रथ पर सवार होकर उन्होंने पिता पर आक्रमण किया। अर्जुन भी प्रसन्न होकर पुत्र पर बाण बरसाने लगे।

धीरे धीरे पिता-पुत्र का वह युद्ध देवासुर-संग्राम की तरह भयङ्कर हो उठा। एक बार मौक़ा पाकर बभ्रुवाहन ने एक बाण से अर्जुन को ऐसा घायल किया कि उसकी चोट से वे गाण्डीव के सहारे बैठ गये और कुछ देर के लिए प्रायः बे-होश हो गये। होश आने पर उन्होंने हँस कर कहा:—

पुत्र! तुम्हारा युद्ध देख कर हम बड़े प्रसन्न हुए। अब हम बाण बरसाते हैं; तुम अपनी रक्षा का यत्न करो।

यह कह कर अर्जुन ने बभ्रुवाहन के रथ की ध्वजा काट दी और चारों घोड़े मार गिराये। इससे बभ्रुवाहन को बड़ा क्रोध आया। वे रथ से कूद पड़े और पिता से लड़ने लगे। लड़कपन में आकर उन्होंने पिता की छाती में एक तेज़ बाण मारा। वह बाण अर्जुन की छाती में घुस गया; इससे वे ज़मीन पर गिर पड़े। बभ्रुवाहन और अर्जुन

दोनों बाणों से घायल हो गये थे। पिता को मरा देख बभ्रुवाहन भी बे-होश होगये और ज़मीन पर गिर पड़े।

बभ्रुवाहन की माता चित्राङ्गदा दोनों वीरों के गिरने की खबर पाते ही शीघ्र ही लड़ाई के मैदान में आई। वहाँ सब हाल सुन कर वह महा दुखी हुई। उलूपी का नाम लेकर वह इस प्रकार विलाप करने लगी:—

तुम्हीं इन महावीरों के मरने का कारण हो। हाय! तुमने पुत्र के हाथ से पिता का वध कराया। यही तुम्हारा पातिव्रत है! यही तुम्हारा धर्म-ज्ञान है! कुछ भी हो, तुम्हारी मनोकामना सिद्ध हो गई। पर मैं सच कहती हूँ कि यदि तुम मेरे पति को फिर न जिला दोगी तो मैं यहीं भूखी-प्यासी पड़ी रह कर मर जाऊँगी।

इस तरह रोकर उसने स्वामी के पैर पकड़ लिये और चुप बैठ गई। इतने में बभ्रुवाहन को होश आया। वे उठ बैठे और माता को मरने के लिए तैयार देख बोले:—

हाय! हमने पुत्र होकर अपने हाथ से पिता को मार डाला। हमको धिक्कार है! अब ब्राह्मण लोग बतलावें कि पिता के इस निर्दयी हत्यारे को कौन प्रायश्चित्त करना होगा। अरे, क्या इस पाप का भी कोई प्रायश्चित्त हो सकता है? हे नाग-नन्दिनी! आज अर्जुन को मार कर हमने तुम्हारे मन का काम किया। अब पिता के साथ हमें भी मरा देख कर तुम खूब प्रसन्न होगी।

यह कह कर महात्मा बभ्रुवाहन ने आचमन किया और भूखे प्यासे पड़े रह कर मरने के लिए वहीं माता के पास बैठ गये। सबको इतना दुखी देख नागकन्या ने नागलोक की सञ्जीवनी मणि का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह उसके हाथ में आ गई। तब उसने बभ्रुवाहन से कहा:—

बेटा! शोक मत करो; उठो। मैंने युद्ध करने को तुमसे इसलिए कहा था जिसमें तुम्हारे पराक्रम को देख कर तुम्हारे पिता प्रसन्न हों। इससे तुम्हें ज़रा भी पाप नहीं छू गया। इस मणि को अब तुम अपने पिता की छाती पर रख दो; वे फिर जी उठेंगे।

यह सुन कर महा पराक्रमी बभ्रुवाहन बड़े खुश हुए। उन्होंने वह मणि ले ली और ज्योंही उसे अर्जुन की छाती पर रक्खा त्योंही वे सोकर जगे हुए मनुष्य की तरह दोनों आँखें मल कर उठ बैठे। सबको चारों तरफ़ चकित खड़े देख कर उन्होंने बभ्रुवाहन को छाती से लगाया और विस्मित होकर पूछा:—

हे पुत्र! इस रणक्षेत्र में कोई तो हर्ष में, कोई शोक में, और कोई विस्मय में मग्न

है—इसका क्या कारण है? तुम्हारी माता चित्राङ्गदा और नागकन्या उलूपी इस समर-भूमि में क्यों आई हैं?

जब इसके उत्तर में नागकन्या उलूपी ने उनसे सब हाल कहा तब अर्जुन पुत्र से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले:—

बेटा! अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर तुम माता, विमाता और मन्त्रियों को साथ लेकर हस्तिनापुर ज़रूर आना।

बभ्रुवाहन ने उत्तर दिया:—

पिता! हम आपकी आज्ञा के अनुसार अश्वमेध यज्ञ में आकर ब्राह्मणों की सेवा करेंगे। अब आप अपने इस मणिपुर-भवन में चलिए और यह रात सुख से बिताइए।

महावीर अर्जुन ने यह बात न मानी। उन्होंने हँस कर कहा:—

हे पुत्र! यह तो तुम जानते ही हो कि हम इस समय कैसे नियम में बँधे हुए हैं। यज्ञ का यह घोड़ा अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ जायगा हमें भी वहीं जाना पड़ेगा। इसलिए हम नगर में नहीं जा सकते। ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे। अब हम जाते हैं।

तब अर्जुन, पुत्रद्वारा पूजित होकर, और दोनों पत्नियों से प्रेम-पूर्ण बातें करके, चल दिये। इसके बाद वह स्वेच्छाविहारी घोड़ा तमाम दुनिया में घूम कर हस्तिनापुर की तरफ़ लौटा। मगधराज्य, चेदिदेश, द्वारका और गान्धार पार करके वह हस्तिनापुर के पास पहुँच गया। किसी राजा ने प्रसन्नतापूर्वक, किसी ने युद्ध में हार कर, सभी ने युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में आना स्वीकार किया।

इधर दूतों के द्वारा यह ख़बर पाकर कि घोड़ा लौट आया है और अर्जुन कुशल से हैं, धर्म्मराज बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने माघ की द्वादशी को भीमसेन, नकुल और सहदेव को अपने पास बुलाया और भीमसेन से कहा:—

भाई! हमने सुना है कि तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन घोड़े के साथ निर्विघ्न आ रहे हैं। अब माघ महीना समाप्त होने पर है। यज्ञ आरम्भ करने के बहुत दिन नहीं हैं। इसलिए वेद-पारदर्शी ब्राह्मणों को आज्ञा दो कि यज्ञ के लिए उचित स्थान पसन्द कर लें।

अर्जुन के शुभागमन का वृत्तान्त सुन कर महावीर भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञ-कुशल ब्राह्मणों तथा चतुर राजमिस्त्रियों के साथ यज्ञ के लिए स्थान चुनने गये। उन लोगों की सलाह से उन्होंने एक जगह पसन्द की और उसके बीच में उतना स्थान जितना कि यज्ञ के लिए उपयुक्त था सोने से मढ़वा दिया। इसके बाद राज-मिस्त्री लोग इस स्थान के चारों तरफ़ आनेवाले राजा, रानी और ब्राह्मणों के रहने योग्य

सैकड़ों महल और घर बनाने और उनकी फर्शों और छतों को नाना प्रकार के रत्न और मणियों से विभूषित करने लगे।

सब काम हो चुकने पर युधिष्ठिर के आज्ञानुसार भीमसेन ने राजों के पास दूत भेजे। ख़बर पाते ही राजा लोग युधिष्ठिर के लिए नाना प्रकार के धन, रत्न, वाहन आदि लेकर हस्तिनापुर आये और डेरे डाल दिये। इससे वहाँ धूम मच गई। धर्म्मराज ने इन मेहमान राजों के लिए खाने-पीने के सामान और बड़े बड़े पलँगों आदि का प्रबन्ध किया। सवारियों के लिए उन्होंने अनाज और ईख से परिपूर्ण घर देने की आज्ञा दी।

जब राजमिस्त्रियों और अन्य कारीगरों ने यज्ञ का सब सामान तैयार होने की ख़बर दी तब सब लोग नगर से उस स्थान को गये। वहाँ सभा में बैठ कर बातूनी ब्राह्मण लोग एक दूसरे को हराने की इच्छा से तर्क वितर्क करने लगे और राजा लोग यज्ञशाला और यज्ञ का सामान देखने लगे। कहीं चित्र विचित्र सुनहले तोरण, कहीं नाना प्रकार की शय्यायें और विहार करने की सामग्री, कहीं अनेक प्रकार के सुनहले घड़े, कलसे और कड़ाहियाँ, कहीं सोने से पक्के बँधे हुए कुएँ, कहीं अनोखे अनोखे पशु, पक्षी और पेड़, पौदे आदि देख कर वे लोग बड़े विस्मित हुए। भीड़ देख कर मालूम होता था मानों सारा जम्बुद्वीप युधिष्ठिर की यज्ञशाला में आगया है।

चारों तरफ़ अन्न के पहाड़, घी-दूध की नदियाँ और खाने-पीने की अन्य सामग्री ढेर की ढेर रक्खी हुई थी। मणियों के कुण्डल और सोने की माला पहने हुए हज़ारों मनुष्य खाने-पीने की वे चीज़ें बड़े बड़े विचित्र बर्तनों में रख कर ब्राह्मणों को परोसने लगे। एक लाख ब्राह्मणों के भोजन कर चुकने पर एक बार दुन्दुभी बजती थी। इस तरह प्रति दिन सैकड़ों बार दुन्दुभी बजती थी।

जब यादव-वीरों के साथ कृष्ण आदि राजा लोग यज्ञ-मण्डप में आये तब युधिष्ठिर के आज्ञानुसार भीमसेन उनकी सेवा में नियुक्त हुए। इस समय एक दूत वहाँ आया और नमस्कार करके बोला:—

महाराज! महावीर अर्जुन घोड़ा लेकर नगर के द्वार पर आ गये हैं।

इस शुभ संवाद से प्रसन्न होकर महाराज युधिष्ठिर ने दूत को बहुत सा धन दिया। दूसरे दिन सबेरे जब वीर अर्जुन नगर से निकले तब नगर-निवासी लोग बड़े आनन्द से चिल्ला कर कहने लगे:—

हे अर्जुन! बड़े सौभाग्य की बात है कि आज तुम लौट आये और हमें तुम्हारे दर्शन

हुए। आज धर्म्मराज को धन्य है। तुम्हारे सिवा ऐसा और कौन है जो सारी पृथ्वी के राजों को हराकर घोड़े सहित निर्विघ्न लौट सकता?

प्रजा के ये प्रशंसा-वाक्य सुनते सुनते अर्जुन यज्ञभूमि में पहुँचे। उनको आया जान महाराज युधिष्ठिर और कृष्ण, अन्धे राजा धृतराष्ट्र को आगे करके, मन्त्रियों के साथ उन्हें लाने के लिए आगे बढ़े। अर्जुन ने पहले चचा के पैर छुए। फिर दोनों बड़े भाइयों को यथाविधि प्रणाम किया। इसके बाद कृष्ण और छोटे भाइयों को आलिङ्गन करके वे उनके साथ सुख से बैठ गये।

इस समय चित्राङ्गदा और उलूपी के साथ मणिपुर के राजा बभ्रुवाहन वहाँ आये। अर्जुन को प्रसन्न करने के लिए सब लोगों ने उन्हें नाना प्रकार के धन-रत्न दिये। उन्हें सब लोगों ने ऐसे अच्छे मकानों में उतारा जहाँ बड़ी ही मनोहर शय्यायें लगी हुई थीं। तब महात्मा वेदव्यास ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा:—

महाराज! याजक लोग कहते हैं कि यज्ञ का मुहूर्त्त आ पहुँचा। इसलिए तुम आज ही से यज्ञ प्रारम्भ करो।

महर्षि के उपदेशानुसार धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने उसी दिन दीक्षा ली। यज्ञ करने में निपुण और वेदों को जाननेवाले ब्राह्मण लोग अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ करके विधि के अनुसार अपना अपना काम करने लगे। उन ब्राह्मणों में कोई थोड़ा ज्ञान रखनेवाला न था; सभी साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता, व्रतपरायण, ब्रह्मचारी और सुवक्ता थे। उन लोगों ने यथाविधि अग्निस्थापन किया। फिर सोमलता से रस निकाल कर यज्ञ के सब काम शास्त्रानुसार सिलसिलेवार किये।

जब यज्ञीय पशु बाँधने के खम्भ गाड़ने का समय आया तब यज्ञ-भूमि में याजकों ने छः बेल के, छः कत्थे के, छः ढाक के, दो देवदार के और एक श्लेष्मातक का खम्भ गाड़ा। इसके बाद भीमसेन ने शोभा के लिए वहाँ सोने के सैकड़ों खम्भ गाड़ दिये। इसके बाद याजकों ने वहाँ सोने की ईंटों से अठारह हाथ घेरे की एक तिकोनी गरुड़ाकार वेदी बनाई। उसके दोनों पंख भी सोने के बनाये। फिर चयन-क्रिया हुई। तदनन्तर शास्त्र के अनुसार ऋत्विक् लोगों ने नाना देवताओं के लिए नाना प्रकार के पशु, पक्षी निर्दिष्ट करके उन खम्भों में तीन सौ पशु बाँध दिये। उस घोड़े को भी वहीं बाँध दिया। अनन्तर, यज्ञदीक्षित ब्राह्मणों ने धीरे धीरे सब पशुओं का पाक करके शास्त्र के अनुसार उस घोड़े को काटा। तब ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी उस घोड़े के पास बैठी। इसके बाद जब ब्राह्मण लोग शास्त्र के अनुसार उस घोड़े के हृदय का

मेद लेकर अग्नि में डालने लगे तब भाइयों समेत धर्म्मराज युधिष्ठिर वह पवित्र धुआँ सूँघने लगे। अन्त में सोलह ऋत्विक् लोगों ने उस घोड़े के बचे हुए अङ्गों की आहुतियाँ अग्नि में डालीं।

इस तरह अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर शिष्यों के साथ भगवान् वेदव्यास इन्द्र की तरह तेजस्वी युधिष्ठिर को बार बार धन्यवाद देने लगे। इसके बाद धर्म्मराज ने ब्राह्मणों को कई करोड़ अशरफ़ियाँ दान कीं और वेदव्यास को तो अपना सारा राज्य ही दे डाला। इस पर कृष्णद्वैपायन ने कहाः—

महाराज! तुम्हारा दिया हुआ राज्य हम तुम्हीं को देते हैं; इसके बदले में तुम ब्राह्मणों को धन दो।

युधिष्ठिर ने ऋत्विक् लोगों को तिगुना धन दिया। तब वे लोग सोने के उस ढेर को बाँट कर उत्साह के साथ और और ब्राह्मणों को देने लगे। यज्ञमण्डप में सोने के जो तोरण, वर्त्तन, अलङ्कार आदि थे उन्हें भी युधिष्ठिर की आज्ञा से ब्राह्मणों ने बाँट लिया। मतलब यह कि महाराज युधिष्ठिर का ऐसा यज्ञ और कभी किसी का नहीं हुआ।

यज्ञ समाप्त हो जाने पर वह अनन्त धन लेकर ब्राह्मण लोग अपने अपने घर गये। अन्त में धर्म्मराज युधिष्ठिर आये हुए राजों को असंख्य हाथी, घोड़े, वस्त्र, अलङ्कार और रत्न आदि देकर विदा करने लगे। इस समय उन्होंने महाराज बभ्रुवाहन को बड़े आदर से अपने पास बुलाया और धन, रत्न आदि से उनका अच्छी तरह सत्कार करके मणिपुर लौट जाने की अनुमति दी। कृष्ण आदि यादव लोग भी पाण्डवों से यथोचित आदर-सत्कार पाकर उनकी अनुमति से द्वारका लौट गये। इस तरह जब सब राजा लोग बिदा हो गये तब भाइयों के साथ धर्म्मराज युधिष्ठिर भी प्रसन्नता-पूर्वक अपने घर गये।

१०—परिणाम

अश्वमेध यज्ञ के समाप्त हो जाने पर पाण्डवों का साम्राज्य खूब दृढ़ हो गया। वे लोग राजा धृतराष्ट्र के आज्ञानुसार राज्य करने लगे। विदुर, सञ्जय और वेश्या के पुत्र युयुत्सु धृतराष्ट्र के पास सदा बने रहते थे और भीमसेन आदि वीर, युधिष्ठिर के आज्ञानुसार, सदा उनकी सेवा किया करते थे। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि पाण्डव-स्त्रियाँ गान्धारी की सेवा-शुश्रूषा प्रति दिन गुरुपत्नी की तरह किया करती थीं।

धर्म्मराज अपने मन्त्रियों और भाइयों से यह कह कर उन्हें सदा सावधान किया करते थे:—राजा धृतराष्ट्र पुत्र-विहीन हो गये हैं; इसलिए तुम लोग वही काम करना जिससे उनको कुछ भी दुःख न पहुँचे। अन्धे राजा हमारे और तुम्हारे सबके पूज्य हैं। जो उनकी आज्ञा मानेगा वह हमारा मित्र और जो न मानेगा वह शत्रु है। अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवों के श्राद्ध में वे जितना धन चाहें दान कर सकते हैं।

पाण्डवों को इतना नम्र और आज्ञाकारी देख कर धृतराष्ट्र उन पर बड़े प्रसन्न रहने और सुखपूर्वक समय बिताने लगे। पतिव्रता गान्धारी भी शोक त्याग कर उन लोगों को पुत्र की तरह स्नेह करती थीं। मतलब यह कि पाण्डवों ने उनको जितना प्रसन्न किया उतना उनके पुत्र भी न कर सके थे।

पर केवल भीमसेन उनको प्रसन्न न कर सके, क्योंकि धृतराष्ट्र की अनीति के कारण जो जो दुर्घटनायें हुई थीं उनको भीमसेन न भूले थे। इसलिए अन्धराज को देखते ही उन्हें दुःख होता था। युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए वे बे-मन दूसरों के द्वारा उनकी सेवा कराते थे। पर कई बार अपने बड़े चचा की बात न मान कर उनको उन्होंने अप्रसन्न कर दिया था। अन्धराज ने अपनी यह अप्रसन्नता प्रकट नहीं की; मन ही में रक्खी।

इस तरह पन्द्रह वर्ष बीत गये। एक दिन धृतराष्ट्र और गान्धारी को दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण आदि की प्रशंसा करते सुन कर महाबाहु भीमसेन चुप न रह सके। युधिष्ठिर और कुन्ती के बिना जाने, पर और सब बन्धु-बान्धवों के सामने ही, वे उन लोगों को सुना कर अपनी भुजायें फड़का कर कहने लगे:—

हमने इन्हीं दोनों भुजाओं के बल से पुत्र और भाइयों-समेत दुरात्मा दुर्योधन को यमलोक भेजा है। धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश करनेवाली ये हमारी भुजायें बनी हुई हैं और चन्दन-चर्चित होकर शोभा पाती हैं।

भीमसेन की तरह तरह की ऐसी ही कठोर बातें सुन कर बुद्धिमती गान्धारी ने तो बुरा न माना; क्योंकि उन्होंने सोचा कि सब काम काल के प्रभाव से होते हैं। पर कौरवपति धृतराष्ट्र बड़े दुखी हुए। वे सबको बुला कर कहने लगे:—

तुम लोगों को मालूम ही है कि कुरुवंश के नाश का कारण हमीं हैं। पर आश्चर्य इस बात का है कि पन्द्रह वर्ष बीत जाने पर हमें अब अच्छी तरह ज्ञात हुआ है कि हमने कितना बड़ा पाप किया है। यह बात केवल गान्धारी ही जानती हैं कि इतने दिनों से चौबीस घंटे में सिर्फ़ एक ही बार शाम को हमने भोजन किया है। हमारे साथ नियम की रक्षा करने के बहाने वे भी मृगचर्म पहनती और भूमि पर सोती हैं। पर

हमने यह वृत्तान्त अब तक इसलिए प्रकाशित नहीं किया कि शायद युधिष्ठिर को बुरा लगे। हमारे सौ पुत्र क्षत्रिय-धर्म्म के अनुसार प्राण छोड़ कर स्वर्गलोक गये हैं। अतएव उनके लिए अब हमें कुछ नहीं करना है। किन्तु अब हमें अपना परलोक सुधारने के लिए पुण्य-कर्म करना चाहिए। इसलिए हे युधिष्ठिर! यदि तुम्हारी अनुमति हो तो हम इसी समय वल्कल पहन कर वन को जायँ। बेटा! हमारी उम्र हो आई; इसलिए तुमको आशीर्वादपूर्वक राज्य देकर हम तपस्या करना चाहते हैं।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया:—

हे राजन्! जो आप क्लेश उठावेंगे तो हमें यह राज्य कैसे अच्छा लगेगा? हमको धिक्कार है! हम राज्य के बड़े ही लोभी हैं। राज्य के काम में लिप्त रहने से हमसे भूल ज़रूर हुई। इसी से तो हम यह न जान सके कि आप भोजन न करने से इतने दुबले, और दुखी हैं। हाय! आप तो हम पर विश्वास करते थे; फिर क्यों ऐसा धोखा दिया? हे नरेन्द्र! आप हमारे पिता और परम गुरु हैं; आपके वन चले जाने पर हम लोग राज्य में कैसे रहेंगे? दुर्योधन पर हम लोगों को बिलकुल क्रोध नहीं। जो होनहार होता है वही होता है; इसी लिए उस समय इतने मनुष्यों का नाश हुआ। दुर्योधन की तरह हम लोग भी आपके पुत्र हैं; इसलिए यदि आप हम लोगों का त्याग करना चाहेंगे तो हम भी आपके साथ चलेंगे। अपने पुत्र युयुत्सु या और जिसको आप चाहें यहाँ का राजा बनाइए। हम तो आपके साथ ही वन जायँगे। अब आप वैसी बात फिर कह कर हमें दुखी न कीजिएगा। इस राज्य के हम नहीं, किन्तु आप ही राजा हैं; इसलिए इस विषय में हम आपको क्या अनुमति दें?

धृतराष्ट्र ने कहा:—बेटा! वनवास करना हमारे कुल में सनातन से चला आया है। इसी से तपस्या करने की हमारी इच्छा है। हम बहुत दिन तुम्हारे साथ रहे; तुमने भी हमारी बहुत सेवा की। पर अब हम वृद्ध हुए। इसलिए वन जाने की अनुमति देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। हे युधिष्ठिर! इससे तुम्हें भी हमारी तपस्या का फल होगा। क्योंकि राज्य में जो कुछ अच्छे या बुरे काम होते हैं राजा भी उनके पाप-पुण्य का भागी होता है।

यह कह कर काँपते हुए राजा धृतराष्ट्र हाथ जोड़ कर फिर बोले:—

बेटा! बुढ़ापे के कारण इतनी देर बातें करने से हम थक गये हैं और हमारा मुँह सूख गया है। इसलिए हम महात्मा सञ्जय और महाबली कृप से निवेदन करते हैं कि वे हमारी तरफ़ से तुमसे अनुरोध करें।

यह कहते कहते वृद्ध राजा धृतराष्ट्र अचानक बेहोश हो गये और गान्धारी के शरीर के आसरे उढ़क गये।

यह देख कर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। वे विलाप करने लगे:—

हाय! जिनके हज़ार हाथी का बल था वे अब स्त्री के शरीर के आसरे मुर्दे की तरह पड़े हैं। यह सब कुछ हमारे ही कारण हुआ है; इसलिए हमारी बुद्धि को, हमारे शास्त्रज्ञान को, और खुद हमको धिक्कार है! यदि राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी दोनों जन भोजन न करेंगे तो आज से हम भी उपवास करेंगे।

इस तरह विलाप करते हुए युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की छाती और मुँह पर अपने शीतल हाथ फेरने लगे। इससे अन्धराज को होश आ गया। वे कहने लगे:—

हे पाण्डु-पुत्र! तुम हमारे ऊपर बार बार हाथ फेरो; तुम्हारे कोमल करों के स्पर्श से हमारे शरीर में फिर प्राण आ गये।

स्नेह के कारण युधिष्ठिर उनके सारे शरीर पर धीरे धीरे हाथ फेरने लगे। इससे धृतराष्ट्र फिर अच्छी तरह सचेत हो गये। उन्होंने युधिष्ठिर को हृदय से लगा लिया और उनका माथा सूँघा। धृतराष्ट्र की अवस्था देख कर विदुर आदि सब लोग रोने लगे; पर कोई बात मुँह से न निकली। धृतराष्ट्र फिर कहने लगे:—

राजन्! एक तो हम केवल शाम को भोजन करते हैं। फिर इस वन जाने के विषय में तुमसे कई बार अनुरोध करने के कारण हमें बड़ा परिश्रम पड़ा। इसी से हम बेहोश हो गये थे। अब तुम हमें वन जाने की आज्ञा दो। अधिक बातें करने में हमें क्लेश होता है।

तेजस्वी धृतराष्ट्र को इस तरह तेजोहीन और क्षीण देख कर युधिष्ठिर ने शोक के मारे रो दिया। फिर उन्होंने धृतराष्ट्र को हृदय से लगाया और बोले:—

हे राजन्! जो काम आपको अच्छा लगता है उसे करने की हमारी जी से इच्छा रहती है। उसके सामने न हम राज्य को कुछ समझें, और न प्राणों को ही कुछ समझें। किन्तु, पहले आप भोजन कीजिए तब हम जानेंगे कि हम पर आपकी कृपा बनी हुई है।

तब महातेजस्वी धृतराष्ट्र ने कहा:—

पुत्र! जो तुम हमसे भोजन करने के लिए कहते हो तो हम अवश्य ही भोजन करेंगे।

इसी समय महात्मा व्यासदेव वहाँ आ गये। सब हाल सुन कर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा:—

हे युधिष्ठिर ! कुरुनन्दन धृतराष्ट्र अब वृद्ध और पुत्रहीन हैं। इस अवस्था में संसार के कष्ट ये नहीं सह सकते। यशस्विनी गान्धारी ने बड़ी दृढ़ता से पुत्रशोक को सहा है। इसलिए इन लोगों को वही काम करना चाहिए जो पुराने राजर्षि कर गये हैं। इस विषय में तुम्हें अवश्य ही अनुमति देनी चाहिए।

महामुनि व्यास की बात सुन कर युधिष्ठिर ने कहा:—

भगवन् ! आप और राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता और गुरु के समान हैं। इसलिए आप जो आज्ञा हमें देंगे हम तुरन्त ही उसका पालन करेंगे।

तब व्यास ने फिर कहा:—

हे भारत ! जब तुम्हारे पिता बने थे तब धृतराष्ट्र ने राज्य का सुख अच्छी तरह भोगा है और बहुत सा धन दान करके पुण्य कमाया है। हे राजन् ! तुमने भी राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी की खूब सेवा की है। तुम लोगों पर इनका ज़रा भी क्रोध नहीं। पर अब इनके तप करने का समय है। इसलिए इनको रोकना उचित नहीं।

व्यासदेव की यह बात धर्म्मराज युधिष्ठिर ने मान ली। तब वे वन चले गये। तद-नन्तर युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए अपने घर जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारी ने भोजन किया। इसके बाद वे वन जाने का उद्योग करने लगे।

पहले तो धृतराष्ट्र ने नगर और कुरुजाङ्गल आदि अन्य स्थानों की चारों वर्णों की प्रजा को बुलाया। राजा की आज्ञा पाते ही वे लोग प्रसन्नतापूर्वक राजभवन के चारों तरफ़ इकट्ठे हुए। तब अन्तःपुर से निकल कर धृतराष्ट्र उन लोगों से कहने लगे:—

हे श्रेष्ठजन ! तुम लोगों का बहुत दिनों से कुरुकुल से सम्बन्ध है। तुम सब एक दूसरे के सदा हितैषी रहे हो। महर्षि व्यास और कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर की अनुमति से इस समय हम वन जाना चाहते हैं। इसलिए तुम लोग भी बिना पसोपेश के हमें अनुमति दो। हमारी प्रार्थना है कि तुम लोग जैसी प्रीति हमसे करते रहे हो वैसी ही बनाये रहो। युधिष्ठिर के राज्य में हमने बड़ा सुख पाया है। शायद दुर्योधन के राज्य में भी वैसा सुख हमें नहीं मिला। जो हो, एक तो हम जन्म के अन्धे हैं, दूसरे अब वृद्ध हुए; इसके सिवा हम पुत्र-पौत्र-हीन भी हैं। इसलिए वनवास छोड़ कर और कोई कल्याणकारक उपाय हमारे लिए नहीं है। अतएव तुम लोग हमें वन जाने की अनुमति दो।

अन्धे राजा की यह बात सुन कर प्रजाजनों के आँसू आ गये। वे लोग गद्गद स्वर से रोने लगे। कोई कुछ उत्तर न दे सका।

तब धृतराष्ट्र फिर कहने लगे:—

हे वत्सगण! यह तुम अच्छी तरह जानते हो कि महाराज शान्तनु, भीष्म से रक्षा किये गये विचित्रवीर्य्य, और हमारे प्यारे भाई पाण्डु ने किस तरह राज्य किया था। जैसा राज्य खुद हमने किया वह चाहे अच्छा हो या बुरा, उसके लिए हमें क्षमा करना चाहिए। जब दुर्योधन ने निष्कंटक राज्य किया तब उन्होंने भी तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। इसके बाद उन्हीं की अनीति और हमारे अपराध से लाखों मनुष्यों का नाश हुआ। अब हम हाथ जोड़ कर कहते हैं कि हम पर क्रोध न करना। वृद्ध, पुत्र-हीन, शोकातुर और पुराने राजों के वंश में उत्पन्न समझ कर हमें क्षमा करो। अब तुम लोगों से यही प्रार्थना है कि हमारे चंचल, लोभी और स्वेच्छाचारी पुत्रों के दुष्कर्म्मों को भूल कर तुम प्रसन्नतापूर्वक हमें वन जाने की अनुमति दो।

वृद्ध राजा के इस तरह करुणस्वर से विनती करने पर पुरवासी तथा प्रजा-जन बड़े शोकातुर हुए। कोई हाथ से, कोई डुपट्टे से मुँह ढक कर फिर रोने लगा। कुछ देर बाद शोक के वेग को रोक कर उन लोगों ने अपना अभिप्राय शाम्ब नाम के एक बातूनी ब्राह्मण को समझा दिया और कहा:—

महाशय! कृपा करके आप हम लोगों के अभिप्राय को महाराज से कह दीजिए।

तब वह वाक्यविशारद ब्राह्मण आगे बढ़ कर धृतराष्ट्र से कहने लगा:—

महाराज! आपके महामान्य पूर्वजों ने जैसे राज्य किया था वैसे ही आपके पुत्र दुर्योधन ने भी किया। उन्होंने हम लोगों का कोई अनिष्ट नहीं किया। आपकी भी कृपा हम पर सदा रही है। उसके कारण हम लोगों ने बड़े सुख से समय बिताया है। इस समय हम लोग और क्या कहें? धर्मपरायण महात्मा वेदव्यास आपको जैसा उपदेश दे गये हैं आप वैसा ही कीजिए। पर इसमें सन्देह नहीं कि आपके दर्शन न पाने से हम लोग बड़े व्याकुल होंगे। आपके गुण हमारे अन्तःकरण से कभी दूर न होंगे। कुलक्षय का दोष दुर्योधन पर लगाना ठीक नहीं। उस विषय में आप लोगों में से किसी का अपराध नहीं। दैव को कोई नहीं मेंट सकता। दैवयोग से ही कौरवों का नाश हुआ है। भाइयों सहित महाराज दुर्योधन वेदों में कहा गया दुर्लभ स्वर्ग-सुख भोगें। आप भी तपस्या करके सनातन-धर्म्म का ज्ञान प्राप्त कीजिए। पाण्डवों के या हम लोगों के लिए आप चिन्ता न कीजिए। ये महात्मा चाहे अच्छी दशा में हों चाहे बुरी में, प्रजा-जन सदा ही इनके वश में रहेंगे। हमें विश्वास है कि प्रजाजनों के अधर्मी होने पर भी

पाण्डव लोग उनका पालन धर्मानुसार ही करेंगे। इसलिए आप दुःख न कीजिए। प्रसन्न-मन आप धर्मानुष्ठान कीजिए।

जब महामति शाम्ब ये बातें कह चुके तब बार बार धन्यवाद देकर प्रजा ने उनकी बात का अनुमोदन किया। प्रजा का अभिप्राय जान कर धृतराष्ट्र ने उनकी बातों का यथोचित अभिनन्दन किया और गान्धारी के साथ अपने घर चले गये।

दूसरे दिन सवेरे अन्धराज के भेजे हुए विदुर युधिष्ठिर के पास आकर बोले:—

राजन्! महाराज धृतराष्ट्र वन जाने के लिए तैयार हैं। कार्तिक की इसी पूर्णिमा को वे यात्रा करेंगे। इस समय युद्ध में मरे हुए भीष्म, द्रोण आदि वीरों का श्राद्ध करने के लिए कुछ धन माँगते हैं। यदि तुम्हारी सलाह हो तो वे साथ ही साथ सिन्धुराज जयद्रथ का भी श्राद्ध करना चाहते हैं।

धृतराष्ट्र की इच्छा पूर्ण करने का सुयोग पाकर युधिष्ठिर ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी प्रार्थना स्वीकार की। अर्जुन ने भी खुश होकर उसका अनुमोदन किया। पर क्रोधी भीमसेन ने पहले का वैर याद करके सम्मति न दी।

उन्होंने कहा:—हे अर्जुन! महावीर भीष्म, द्रोण आदि बान्धवों का श्राद्ध हम खुद करेंगे। इसलिए धृतराष्ट्र को धन देने की आवश्यकता नहीं। हमारी समझ में दुर्योधन, जयद्रथ आदि कुलाङ्गारों का श्राद्ध करना आवश्यक नहीं। परलोक में उनको कष्ट भोगना ही उचित है। क्या तुम द्रौपदी के क्लेशों को भूल गये? क्या तब भी तुम अपने बड़े चचा को स्नेह-दृष्टि से देखते थे?

भीमसेन की ये क्रोधपूर्ण बातें सुन कर युधिष्ठिर ने उन्हें डाँटा और चुप रहने की आज्ञा दी। तब भीमसेन को शान्त करने के लिए अर्जुन कहने लगे:—

हे आर्य्य! तुम हमारे बड़े भाई और गुरु हो। हमें तुमको उपदेश देना शोभा नहीं देता। हमारा मतलब यह है कि धृतराष्ट्र हम लोगों के सब तरह पूज्य हैं। दूसरे की की हुई बुराइयों का खयाल न करके भलाइयों ही का स्मरण रखना चाहिए।

अर्जुन की बात सुन कर युधिष्ठिर ने उनकी प्रशंसा की और विदुर से बोले:—

हे विदुर! धृतराष्ट्र से कहना कि पुत्रों और सम्बन्धियों के श्राद्ध में वे जितना धन दान करना चाहें हमारे खज़ाने से लेलें। भीम इससे विरक्त न होंगे। धन की तो बात ही क्या है हमारा शरीर तक उनके अर्पण है।

विदुर ने धृतराष्ट्र से आदि से अन्त तक सब बातें कह सुनाईं। इससे धृतराष्ट्र

युधिष्ठिर से बड़े सन्तुष्ट हुए। उसी दिन से लेकर कार्त्तिक की पूर्णिमा तक अपने इच्छानुसार वे ब्राह्मणों को धन-दान करते रहे।

इसके बाद जब ग्यारहवें दिन पूर्णमासी आई तब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुला कर उन पर यथोचित प्रसन्नता प्रकट की और वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा हवन करा कर तथा छाल और मृगचर्म पहर कर गान्धारी के साथ अपने घर से निकले। यह देख और—हा पिता! कहाँ चले—कह कर युधिष्ठिर ज़मीन पर गिर पड़े। अर्जुन भी बड़े दुखी हुए; बार बार ठंडी साँसें भर कर वे उन्हें धीरज देने लगे। कौरव वंश की स्त्रियों के रोने से अन्तःपुर गूँज उठा।

तब युधिष्ठिर आदि पाण्डव, विदुर, सञ्जय, कृपाचार्य्य, धौम्य और बहुत से अन्यान्य नगर-निवासी शोक के कारण रोते हुए धृतराष्ट्र के पीछे पीछे चले। कुन्ती और आंखों में पट्टी बांधे गान्धारी, अपने कंधों पर धृतराष्ट्र के दोनों हाथ रक्खे हुए, साथ साथ चलीं। द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदि रानियाँ ज़ोर ज़ोर से रोती हुईं उनके पीछे दौड़ीं। चारों वर्ण की प्रजा उनको देखने के लिए चारों तरफ़ से राजमार्ग पर आने लगी।

धृतराष्ट्र के राजपथ पर पहुँचते ही दोनों तरफ़ की अटारियों और अन्य स्थानों से स्त्रियों के रोने का कोलाहल सुनाई देने लगा। अन्धराज ने बड़े विनीत भाव से स्त्री-पुरुषों से भरे हुए उस राजमार्ग को पार किया। हस्तिनापुर के सदर फाटक से निकल जाने पर साथ आनेवाले लोगों को वे विदा करने लगे। महावीर कृपाचार्य्य और युयुत्सु को धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर के हाथ में सौंप दिया। तब वे लौट चले। पर महात्मा विदुर और सञ्जय किसी तरह न लौटे। उन्होंने उन्हीं के साथ वन जाने का निश्चय किया।

जब धीरे धीरे नगर-निवासी लौट गये तब धर्म्मराज युधिष्ठिर ने, बड़े चचा की आज्ञा के अनुसार, स्त्रियों को लौटने के लिए माता कुन्ती से कहा:—

माता! तुम बहुओं के साथ नगर लौट चलो। धर्म्मात्मा धृतराष्ट्र ने तपस्या करने का निश्चय कर लिया है; इसलिए अब वनवास करना ही उनका कर्त्तव्य है।

यह बात सुन कर कुन्ती के आँसू आगये। उन्होंने गान्धारी को पकड़ कर चलते चलते ही उत्तर दिया:—

बेटा! तुम भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव की रक्षा सदा करते रहना और द्रौपदी को कभी अप्रसन्न न करना। आज से कुरुवंश का सब भार तुम्हारे ही ऊपर है। मूर्खता के कारण मैंने जिस महावीर को तुम्हारे विरुद्ध लड़ने की अनुमति दी थी उस महात्मा कर्ण का भी स्मरण रखना। हाय! मुझसी भाग्यहीन कोई नहीं है; क्योंकि

मैंने कर्ण का परिचय तुम लोगों को पहले ही न दिया; इसलिए उसके वध की अपराधिनी मैं ही हूँ। जो हो, अब मैं वन जाकर तपस्या और तुम्हारे चचा तथा गान्धारी की सेवा करूँगी।

माता कुन्ती की यह बात सुन कर युधिष्ठिर बड़े दुखी हुए और कुछ देर तक भाइयों के साथ सिर झुकाये वे सोचते रहे। फिर माता से बोले:—

माँ! हमसे ऐसी निठुर बात कहना तुम्हें उचित नहीं। हमें तुम्हारा वन जाना कभी मंज़ूर न होगा। इसलिए हम पर प्रसन्न हो। पहले तो कृष्ण के द्वारा तुम्हीं ने लड़ने के लिए हमें उत्साहित किया था। अब जीतने पर हम लोगों को क्यों छोड़ती हो?

पर धर्म्मराज के ये करुण-वाक्य सुन कर भी यशस्विनी कुन्ती ने न माना। वे पहले ही की तरह रोती हुई धृतराष्ट्र के पीछे पीछे चलने लगीं। तब भीमसेन ने कहा:—

माता! पुत्रों का जीता हुआ राज्य भोगने और राजधर्म्म प्राप्त करने का यही समय है। ऐसे अवसर में तुम्हारी बुद्धि क्यों इस तरह उलटी हो गई? यदि हम लोगों को छोड़ देने ही की तुम्हारी इच्छा थी तो हमारे हाथ से पृथ्वी के वीरों का नाश क्यों कराया? यदि वनवास ही करना था तो हम लोगों को वन से क्यों ले आई?

भीमसेन और अन्य पाण्डवों के बहुत विलाप करने पर भी जब कुन्ती ने वन जाने की इच्छा न त्यागी तब रोती हुई द्रौपदी और सुभद्रा के साथ पाण्डव लोग उनके संग संग चलने लगे। यह देख कर कुन्ती ने कहा:—

बेटा! तुम लोग कपट-पूर्ण जुए में हार कर बड़े दुख से समय बिताते थे; इसी लिए मैंने तुम लोगों को लड़ने के लिए उत्तेजित किया था। तुम लोग महात्मा पाण्डु के पुत्र हो; इसलिए तुम्हारे यश या तेज का नाश होना बहुत अनुचित है। तुम इन्द्र के समान पराक्रमी हो; इसलिए शत्रु के वश में रहना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम धर्मज्ञ हो; इसलिए वनवास करने की अपेक्षा राज्य करना ही तुम्हारे लिए अच्छा है। विशेष कर नकुल, सहदेव और सती द्रौपदी को क्लेश देना बड़े ही अन्याय की बात है। यही समझ कर मैंने कृष्ण के द्वारा तुम लोगों को उत्तेजित किया था। मैंने यह काम तुम्हारे उच्च वंश के ख़याल से तुम्हारा हित करने ही के लिए किया था; अपने सुख के लिए नहीं। मैंने अपने पति के राजत्वकाल में बहुत सुख भोगा है। अब पुत्रों के जीते हुए राज्य को भोगने की मेरी इच्छा नहीं। जिस पवित्र लोक में महात्मा पाण्डु हैं वहाँ जाने की इस समय मेरी बड़ी इच्छा है। इसलिए मैं वनवासी अन्धराज और गान्धारी की सेवा कर

के तपस्या द्वारा पापों का नाश करूँगी। तुम राजधानी को लौट कर सुखपूर्वक राज्य भोग करो। ईश्वर करे तुम लोगों की धर्म-बुद्धि बढ़े और मन उदार हो।

महाभागा कुन्ती की ये बातें सुन कर पाण्डव लोग बड़े लज्जित हुए। अन्धराज को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके द्रौपदी के साथ नगर को लौट आने के लिए वे तैयार हुए। तब धृतराष्ट्र ने गान्धारी और विदुर से कहा:—

तुम युधिष्ठिर की माता देवी कुन्ती को शीघ्र ही लौटा दो। पाण्डवों की माता इतने ऐश्वर्य और पुत्रों को छोड़ कर दुर्गम वन का व्यर्थ कष्ट क्यों उठावें? अपने राज्य में रह कर और दान, व्रत आदि करके सहज ही में वे उत्तम तपस्या कर सकती हैं। उनकी सेवा से हम बड़े सन्तुष्ट हुए हैं। अब उनको लौट जाने की आज्ञा दो।

धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार गान्धारी ने कुन्ती से राजा की कही हुई बातें कह कर उनसे लौट जाने के लिए अनुरोध किया। पर कुन्ती ने किसी के भी कहने से वन जाने का संकल्प न छोड़ा। इससे पाण्डव लोग अत्यन्त दुःखित और शोकातुर हुए। पर लाचारी थी। अन्त को वे स्त्रियों के साथ रथों पर सवार होकर दीन-भाव से नगर को लौट आये।

राजा धृतराष्ट्र उस दिन बहुत दूर चल कर गंगा के किनारे ठहरे। वहाँ यज्ञ आदि करके रात को सब लोग कुशासनों पर सोये। दूसरे दिन सवेरे गंगास्नान करके याज्ञिक ब्राह्मणों की बनाई हुई वेदी के ऊपर अग्नि में हवन किया। इसी तरह कई दिन बीत गये। हवन आदि क्रियायें हो चुकने पर वे लोग नदी का किनारा छोड़ कर कुरुक्षेत्र की ओर चले। वहाँ धृतराष्ट्र ने महर्षि शतयूप से दीक्षा ली और वन में रह कर तपस्या करने के सम्बन्ध में उनसे उपदेश ग्रहण किया। इसके बाद सब लोग छाल और मृग-चर्म पहन कर, तथा इन्द्रियों को अपने वश में करके, तपस्या करने लगे।

इधर पाण्डव लोग पुत्रहीन धृतराष्ट्र, माता कुन्ती, गान्धारी और महात्मा विदुर के शोक से कातर होकर नगर में बहुत दिन तक न ठहर सके। राज्य का सुख भोगने अथवा वेदाध्ययन करने आदि किसी भी काम में उनका मन न लगा। कभी वृद्ध धृतराष्ट्र के वनवास-क्लेश को सोच कर और कभी अभिमन्यु, कर्ण, या द्रौपदी के पुत्रों के मरने की बात याद करके वे लोग बहुत दुखी होने लगे। पहले वे दिन रात राज-काज किया करते थे। पर अब उनका मन उसमें न लगता था। धीरे धीरे उनका जी ऐसा उचाट हो गया कि किसी के समझाने बुझाने पर भी वे ध्यान न देने लगे। अधिक शोक

के कारण वे संज्ञाहीन मनुष्य की तरह समय काटने लगे। हाँ, केवल उत्तरा के पुत्र परीक्षित को देख कर वे लोग किसी तरह धीरज धारण किये रहते थे।

एक दिन सब लोगों ने मिल कर इस सम्बन्ध में बहुत देर तक बातचीत की और विलाप किया। अन्त में यह ठहरा कि वन जाकर गुरुजनों के दर्शन अवश्य करना चाहिए।

तब युधिष्ठिर ने सेनानायकों को बुला कर कहा:—

हे योद्धागण! तुम लोग हाथी, घोड़े, रथ आदि जल्द तैयार करो। हम धृतराष्ट्र से मिलने के लिए वन जायँगे।

इसके बाद धर्म्मराज ने अन्तःपुर में जाकर वहाँ के अधिकारियों से कहा:—

तुम लोग सवारी गाड़ी, पालकी, छकड़े आदि बहुत जल्द सजाओ। कारीगर लोग जाकर कुरुक्षेत्र के रास्ते में जगह जगह विश्राम-घर बना रक्खें। खाने-पीने का सामान और रसोइयों को भी वहाँ शीघ्र ही भेजो। ख़ज़ानची भी जाय, जिसमें ख़र्च की तंगी न हो।

दूसरे दिन सवेरे स्त्रियों को आगे करके युधिष्ठिर भाइयों के साथ नगर से निकले और थोड़ी देर बाहर ठहरे रहे। जब सेना आदि तैयार हो गई तब उसके बीच में होकर आश्रम की ओर चले। धृतराष्ट्र के दर्शन की इच्छा रखनेवाले कितने ही नगर-निवासी भी तरह तरह की सवारियों पर, अथवा पैदल ही, उनके साथ साथ चले। पर धर्म्मराज की आज्ञा के अनुसार युयुत्सु और पुरोहित धौम्य धृतराष्ट्र के आश्रम में न जाकर नगर की रक्षा के लिए रह गये।

धृतराष्ट्र का आश्रम जब कुछ दूर रह गया तब पाण्डव लोग रथ से उतर पड़े। पुरवासी और साथ आनेवाले अन्य लोग भी अपनी अपनी सवारियों से उतर पड़े। सब लोग विनीत भाव से थोड़ी ही देर पैदल चले होंगे कि हिरनों से परिपूर्ण और केलों से शोभायमान उस आश्रम में जा पहुँचे। जब वहाँ के व्रतधारी तपस्वी अपना कौतूहल निवारण करने के लिए उनके निकट आये तब युधिष्ठिर ने आँसू भर कर पूछा:—

हे तपस्वियो! इस समय कौरव-नाथ हमारे चचा धृतराष्ट्र, कहाँ हैं?

उत्तर में तपस्वियों ने कहा:—

महाराज! इस समय वे यमुना नहाने, फूल तोड़ने और जल लाने के लिए गये हैं। आप यदि इस रास्ते से जायँगे तो उनके दर्शन हो जायँगे।

पाण्डव लोग बताये हुए रास्ते से कुछ ही दूर गये होंगे कि उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी,

कुन्ती और सञ्जय को दूर से देखा। कुन्ती को देखते ही सहदेव बड़ी तेज़ी से दौड़े और रोते हुए उनके पैरों पर गिर पड़े। कुन्ती भी प्यारे पुत्र को पाकर गद्गद हो गईं। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। सहदेव को उठा कर वे गान्धारी से बोलीं:—

आर्य्ये! सहदेव आये हैं।

इसके बाद जब उन्होंने अपने और पुत्रों को भी देखा तब धृतराष्ट्र और गान्धारी को साथ लेकर जल्दी जल्दी उनसे मिलने के लिए चलीं। इधर उन लोगों ने भी जल्दी से आगे बढ़ कर माता के पैर छुवे। धृतराष्ट्र ने बोली से और हाथ से छूकर पाण्डवों को पहचाना और कुशल-समाचार पूछा। पाण्डवों ने आँसू गिराते हुए जब धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के जल से भरे हुए घड़े ले लिये तब कुल की स्त्रियाँ और नगर-निवासी चारों तरफ़ खड़े होकर धृतराष्ट्र को एकटक देखने लगे। युधिष्ठिर ने नाम और गोत्र बता कर धृतराष्ट्र से आये हुए सब लोगों का परिचय कराया।

इसके बाद धृतराष्ट्र ने एक एक करके सबसे कुशल पूछ कर युधिष्ठिर से कहा:—

पुत्र! तुम भाइयों और पुरवासियों समेत कुशल से रहते हो न? तुम्हारी आश्रित प्रजा, मन्त्री, नौकर और गुरु लोगों का तो कोई अमङ्गल नहीं हुआ? वे लोग बेखटके तुम्हारे राज्य में रहते हैं न?

नीतिनिपुण धृतराष्ट्र की ये बातें सुन कर धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने कहा:—

महाराज! आपकी कृपा से हमारे राज्य में सब कहीं मङ्गल है। आपकी तपस्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है न? हमारी माता कुन्ती आपकी शुश्रूषा करके वनवास का क्लेश सफल करती है न? इस समय महात्मा विदुर कहाँ हैं? उनको देखने के लिए हम बड़े व्याकुल हैं।

धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया:—

बेटा! तुम्हारे चचा महा बुद्धिमान् विदुर बड़ी कठिन तपस्या कर रहे हैं। वे कुछ खाते-पीते नहीं; इसलिए उनके शरीर में सिर्फ़ हड्डी और चमड़ा ही रह गया है। वे इस वन में एक ऐसी जगह रहते हैं जहाँ मनुष्यों का आवागमन बहुत ही कम है। कभी कभी ब्राह्मण लोग वहाँ जा कर उनके दर्शन कर आते हैं।

धृतराष्ट्र यह बात कह ही रहे थे कि धूल लपेटे, जटाधारी, नङ्गे बदन महात्मा विदुर उस आश्रम के एक कोने में दिखाई पड़े। पर आश्रम देख कर ही वे सहसा वहाँ से चल दिये। इस पर युधिष्ठिर अकेले उनके पीछे पीछे दौड़े। तब धीरे धीरे विदुर घने वन में घुस गये।

हे महात्मा! हम आपके प्यारे युधिष्ठिर हैं। आपसे मिलने के लिए आये हैं:—

यह कह कर युधिष्ठिर बड़ी तेज़ी से उनके पीछे दौड़ने लगे। तब विदुर उस घने जंगल में एक पेड़ के नीचे एकदम से ठहर गये। वहां पहुँच कर युधिष्ठिर कुछ कहने ही वाले थे कि उन्होंने देखा विदुर की आंखें निश्चल हैं; उनके शरीर में प्राण नहीं हैं; उनकी देह पेड़ के सहारे खड़ी हुई है।

यह जान कर कि विदुर ने देह त्याग दी युधिष्ठिर लौट आये और धृतराष्ट्र से सब हाल कह सुनाया। यह आश्चर्यजनक बात सुन कर सब लोग बड़े विस्मित हुए। पर यह सोच कर कि विदुर ने यतियों की गति प्राप्त की है न तो किसी ने उनके लिए शोक किया न उनकी देह जलाने ही की किसी ने चेष्टा की।

तब धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा:—

बेटा! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारे अनुग्रह से हमारे सब शोक-संताप दूर हो गये हैं। इस समय तुम लोगों को अपने पास देख कर ऐसा मालूम होता है मानों हम हस्तिनापुर ही में हैं। तुमने हमारे पुत्र की तरह काम किया है। इससे हमें ज़रा भी शोक नहीं। अब तुम विलम्ब न करो; राजधानी को शीघ्र लौट जाव। तुम्हें देखने से हमारे हृदय में स्नेह उत्पन्न होता है; इसलिए हमारी तपस्या में विघ्न पड़ता है।

अन्धराज धृतराष्ट्र की यह बात सुन कर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया:—

पिता! हम निरपराधी हैं। आप हमें न छोड़िए। हमारे भाई और नौकर हस्तिनापुर लौट जायँगे। हम यहीं रह कर आपकी और दोनों माताओं की सेवा करेंगे।

तब यशस्विनी गान्धारी ने कहा:—

पुत्र! ऐसी बात मत कहो। तुम कौरवों के वंशधर हो। इसलिए तुम्हें राजधानी ही में रहना चाहिए। अब तक तुमने हम लोगों की बड़ी सेवा की। अब शीघ्र ही अपने नगर लौट जाव।

तब महाबाहु सहदेव ने आंखों में आंसू भर युधिष्ठिर से कहा:—

राजन्! हम तो माता को किसी तरह न छोड़ सकेंगे। तुम शीघ्र ही राजधानी को लौट जाव। हम यहीं तपस्या करेंगे। और राजा तथा दोनों माताओं की चरण-सेवा करेंगे।

सहदेव की यह बात सुन कर कुन्ती ने बड़े प्यार से उनको हृदय से लगाया और कहा:—

बेटा! तुम हमारी बात मान कर हस्तिनापुर लौट जाव। तुम्हारे स्नेह-बन्धन के

कारण हमारी तपस्या धीरे धीरे क्षीण हुई जाती है। हम लोगों के परलोक जाने में अब अधिक देर नहीं है। इसलिए अब तुम राज्य को लौट जाव।

इसके बाद राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र से कहा:—

महाराज! हम लोग आपकी तपस्या में विघ्न नहीं डालना चाहते। इस मनुष्यहीन पृथ्वी को देख कर हम अच्छी तरह समझ गये हैं कि राज्य भोगने की अपेक्षा तपस्या करना ही अधिक अच्छा है। जो हो, जब आप हमें आज्ञा देते हैं तब हम अवश्य ही नगर लौट जायँगे। केवल धर्मानुष्ठान ही के लिए हम राज्य में रहने को राज़ी होते हैं। अब हम सबको आशीर्वाद दीजिए। एक साथ आप लोगों के फिर दर्शन करना बहुत कठिन जान पड़ता है।

तब पाण्डवों ने कुन्ती और गान्धारी को प्रणाम तथा धृतराष्ट्र की बारम्बार प्रदक्षिणा करके उनसे बिदा ली। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर अपने बन्धु-बान्धवों के साथ राजधानी में निर्विघ्न लौट आये।

पाण्डवों के तपोवन से लौटने के दो वर्ष बाद एक दिन तपस्वियों में श्रेष्ठ देवर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर के पास आये। धर्म्मराज ने उनका यथोचित सत्कार किया और कुशल-समाचार पूछने के अनन्तर कहा:—

भगवन्! हमने गङ्गा-तट पर रहनेवाले तपस्वियों से सुना है कि हमारे चचा धृतराष्ट्र दिन पर दिन अपनी तपस्या और भी अधिक कठोर करते जाते हैं। इस समय आप उधर ही से आये हैं; यदि आप उन लोगों से मिले हों तो बतलाइए कि दोनों मातायें और अन्धराज धृतराष्ट्र किस तरह अपना समय बिताते हैं।

यह सुन कर देवर्षि नारद ने कहा:—

महाराज! हम तुम्हारे चचा के वन में गये थे। वहाँ जो कुछ हमने देखा और सुना है वही कहने के लिए हम तुम्हारे पास आये हैं। सुनिए, तपोवन से तुम्हारे लौट आने पर वे लोग गङ्गाद्वार गये और कठोर तपस्या करने लगे। धृतराष्ट्र वायु खाकर, और गान्धारी केवल जल पीकर और बहुत थोड़ा भोजन करके रहने लगीं। इस तरह छः महीने बीतने पर अन्धराज ने जंगल की ओर की यात्रा की। सञ्जय धृतराष्ट्र को और तुम्हारी माता कुन्ती गान्धारी को रास्ता बताती और सहारा देती हुई चलीं। इसी समय वन में आग लग गई। वायु ज़ोर से चलने के कारण वह बड़े भयङ्कर रूप से चारों तरफ़ फैलने लगी। मृगों और साँपों के झुण्ड के झुण्ड उस प्रचण्ड अग्नि में जल कर मर गये और सुअर महा व्याकुल होकर तालाबों में जा घुसे। धृतराष्ट्र, गान्धारी

और कुन्ती भोजन न करने के कारण बड़ी ही दुर्बल हो गई थीं। इसलिए वहाँ से किसी तरह भाग न सकीं। उन्होंने अपने बचने का कोई उपाय न देखा।

तब महात्मा सञ्जय ने घबरा कर कहा:—

महाराज! इस आग में जल कर मरने से आपकी सद्गति न होगी। परन्तु इससे बचने का भी कोई उपाय नहीं देख पड़ता। इससे शीघ्र ही बतलाइए कि क्या करना चाहिए।

धृतराष्ट्र ने कहा:—हे सञ्जय! हम लोगों ने जब घर छोड़ दिया है तब जल, वायु या अग्नि के द्वारा तथा भूखे प्यासे रह कर ही हम लोगों का मरना अच्छा है। इसलिए कोई घबराने की बात नहीं। तुम व्यर्थ देर न करो; शीघ्र ही अपनी जान बचाओ।

यह कह कर और पूर्व की ओर मुँह करके कौरव-नाथ कुन्ती और गान्धारी के साथ बे-परवाही से बैठ गये। इन्द्रियों को रोकने के कारण उनके शरीर काष्ठ की तरह निश्चेष्ट हो गये।

उनकी यह दशा देख कर सञ्जय ने उनकी प्रदक्षिणा की और बड़े कष्ट से उस आग से बच कर वे वन के बाहर आये। महर्षियों से उन्होंने सब हाल कहा और कह कर हिमालय पर्वत पर चले गये। उस समय हम वहाँ मौजूद थे। इससे सब बातें तुमसे कहने के लिए यहाँ आये हैं। आने के समय अन्धराज, गान्धारी और कुन्ती का जला हुआ शरीर हमने देखा था। जब वे लोग अपनी इच्छा से इस आग में जल कर मरे हैं तब उनको अवश्य ही सद्गति मिलेगी; इसमें कुछ सन्देह नहीं। उन लोगों के लिए शोक करना कदापि उचित नहीं।

देवर्षि नारद के मुँह से धृतराष्ट्र आदि के परलोक जाने का हाल सुन कर महात्मा पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ। अन्तःपुर में भयङ्कर आर्त्तनाद होने लगा। नगर-निवासी भी हाहाकार करने लगे। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई बार बार विलाप करने लगे।

जब सब लोगों के शोक का आवेग कुछ कुछ कम हुआ तब युधिष्ठिर ने देवर्षि से कहा:—

भगवन्! इससे बढ़ कर दुःख की बात और क्या हो सकती है कि हम लोगों के जीवित रहते अन्धराज ने, अनाथों की तरह, वन में प्राण त्याग किया। पुत्रहीना माता गान्धारी के लिए हम उतना शोक नहीं करते, किन्तु जिन्होंने यह इतनी बड़ी राज्य-सम्पदा छोड़ कर वनवास किया उन माता कुन्ती को याद करके हमारा हृदय शोक की

आग से जला जाता है। हम लोगों के राज्य और पराक्रम को धिक्कार है। हम लोग जीते ही मुर्दे की तरह हैं।

पाण्डवों को शोकाकुल देख कर नारद ने युधिष्ठिर से कहा:—

तुम्हारे चचा ने तपस्या के प्रभाव से मुक्ति पाई है। तुम्हारी माता कुन्ती ने भी गुरु-सेवा के कारण सिद्धि प्राप्त की है। अतएव उनके लिए शोक न करके उनका तर्पण आदि करो।

देवर्षि नारद के इस उपदेश के अनुसार धर्म्मात्मा पाण्डव लोग अन्त:पुर की स्त्रियों और राज-भक्त पुरवासियों के साथ एक वस्त्र पहन कर भागीरथी के तट पर गये। वहाँ तिलाञ्जलि आदि क्रिया करके सब लोग लौट आये और नगर के बाहर ठहरे। बारह दिन तक यथाविधि श्राद्ध करने के बाद भाइयों और अन्य लोगों के साथ युधिष्ठिर फिर नगर में आये और दुखी मन से राज-काज चलाते रहे।

कुरुक्षेत्र का घोर मनुष्य-नाश, अन्धराज धृतराष्ट्र के मन की दुर्बलता ही के कारण हुआ था। उसके बाद धृतराष्ट्र ने पन्द्रह वर्ष नगर-निवास और तीन वर्ष वनवास किया। तदनन्तर, जैसा वर्णन किया गया, उन्होंने सदा के लिए शान्ति-लाभ किया।

११—यदुवंश-नाश

पाण्डवों के पास से कृष्ण के अपने राज्य में लौट आने पर शापभ्रष्ट भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादव-वंश के वीरों के चरित्र अधिक मद्यपान आदि दोषों से धीरे धीरे बिगड़ने लगे।

इसी समय एक दिन महर्षि विश्वामित्र, मुनिवर कण्व, और तपस्वी नारद द्वारका को गये। यादवों की बुद्धि तो ठिकाने थी ही नहीं। इससे सारण आदि युवा यादवों को दिल्लगी की सूझी। कृष्ण के पुत्र साम्ब को स्त्री-वेश में ऋषियों के सामने ले जाकर वे बोले:—

हे महर्षिगण! यह महा-पराक्रमी बभ्रु की स्त्री है। महात्मा बभ्रु पुत्र पाने की बड़ी इच्छा रखते हैं। इसलिए शास्त्र देख कर यह बतलाइए कि इसके क्या होगा—पुत्र या कन्या?

महा बुद्धिमान् ऋषि लोग समझ गये कि ये हमसे दिल्लगी करते हैं। इसलिए क्रोध में आकर उन्होंने उत्तर दिया:—

रे नीच यादवो ! कृष्ण का यह पुत्र तुम लोगों का नाश करने के लिए एक महा विकट मूसल उत्पन्न करेगा।

क्रोध से भरे हुए उन मुनियों के चले जाने पर कृष्ण को जब इस दुर्घटना का हाल मालूम हुआ तब उन्होंने यादवों से सलाह करके द्वारकापुरी में मद्य बनाने का काम एक-दम बन्द करवा दिया और मनादी करा दी कि जो कोई इस आज्ञा को न मानेगा उसे तरह तरह के कठोर दण्ड दिये जायँगे। नगर-निवासियों ने यह आज्ञा मान ली और शराब बनाना छोड़ दिया।

किन्तु इतनी सावधानी करने पर भी वृष्णि और अन्धक लोगों के पीछे पीछे काल घूमने लगा। उनका नाश समीप आया मालूम होने लगा। नगर में प्रति दिन तरह तरह के अशकुन होने लगे। सब लोगों ने लज्जा और भय छोड़ दिया। बड़ों की बातें लोग न मानने लगे।

एक दिन त्रयोदशी से अमावास्या का संयोग हुआ। चतुर्दशी का क्षय हो गया। यह देख कर महात्मा कृष्ण ने कहा:—

हे वीरगण ! कुरुक्षेत्र का युद्ध होने के समय जैसे अशकुन हुए थे वैसे ही अब भी होते हैं। इसलिए इस समय हम लोगों को तीर्थयात्रा करनी चाहिए।

वृष्णि और अन्धक लोगों ने प्रसन्न-मन से यह बात मान ली। तरह तरह की खाने-पीने की सामग्री इकट्ठा करके बड़े आडम्बर से वे लोग प्रभासतीर्थ को चले। वहाँ वे अच्छे अच्छे मनमाने घरों में उतरे और स्त्रियों के साथ आनन्द करने लगे। नटों, नाचने-वालों और मद्य से मतवाले आदमियों से प्रभासतीर्थ भर गया। सब कहीं आनन्द और कोलाहल होने लगा। अन्त में यहाँ तक नौबत पहुँची कि बलराम, सात्यकि, गद, बभ्रु और कृतवर्म्मा, कृष्ण के सामने ही शराब पीने लगे। बुद्धिमान् कृष्ण ने समझा कि काल की गति अमिट है। इससे वे चुपचाप यह सब अत्याचार देखते रहे। किसी को मना न किया।

इसी समय एक दिन सात्यकि शराब पीकर बहुत मतवाले हुए। उसी अवस्था में वे कृतवर्म्मा से दिल्लगी करने लगे। उन्होंने कहा:—

कृतवर्म्मा ! क्षत्रियों में कोई ऐसा पाखण्डी नहीं जो तुम्हारी तरह मुर्दे के समान सोते हुए मनुष्यों की हत्या करे।

प्रद्युम्न ने भी सात्यकि का पक्ष लेकर कृतवर्म्मा का अपमान किया। यह सुन कर महावीर कृतवर्म्मा ने भी सात्यकि की अवज्ञा की। बायाँ हाथ उठा कर वे बोले:—

सात्यकि ! तुम बड़े वीर हो न ! फिर क्यों तुमने ज़मीन पर बैठे हुए हाथ कटे भूरिश्रवा को मारा ?

कृतवर्म्मा की इस बात से क्रुद्ध होकर कृष्ण ने टेढ़ी निगाह से उनकी ओर देखा। पर कुछ फल न हुआ। सब लोग एक दूसरे का कलङ्क कहने लगे। इस प्रसङ्ग में जब कृष्ण की पत्नी सत्यभामा के पिता की निन्दा होने लगी तब वे रोती हुई अपने पति की गोद में गिर पड़ीं। इस पर सात्यकि से न रहा गया। वे एक-दम से उठ कर बोले:—

भद्रे ! हम सच कहते हैं, आज इस पापी कृतवर्म्मा की मृत्यु आ गई जान पड़ती है।

यह कह कर महावीर सात्यकि ने कृष्ण के सामने ही कृतवर्म्मा का सिर तलवार से काट दिया। इसके बाद वे दूसरे वीरों पर भी आक्रमण करने लगे। यह देख कर कृष्ण उनको रोकने के लिए दौड़े। इतने में भोज और अन्धक लोग भी बेहोशी की हालत में दौड़ पड़े और सात्यकि को घेर लिया। वे लोग गिनती में अधिक थे। इससे प्रद्युम्न और सात्यकि थोड़ी ही देर युद्ध करके मारे गये।

तब कृष्ण से और न रहा गया। उन्होंने एक मुट्ठी तिनके उठा लिये और मूसल की तरह उन्हें चलाने लगे। उनसे भोज और अन्धक लोग मर मर कर गिरने लगे। यह देख कर सभी लोगों ने उनकी तरह तिनके उठा लिये और पिता पुत्र को तथा पुत्र पिता को बिना विचारे मारने लगे। फल यह हुआ कि झुण्ड के झुण्ड यादव-वंशियों ने, आग में गिरे हुए पतङ्गों की तरह, प्राण-त्याग किये। धीरे धीरे साम्ब, चारुदेष्ण, अनिरुद्ध और गद आदि सभी मारे गये। अन्त में जब कृष्ण, बभ्रु और दारुक के सिवा वहाँ कोई जीता न बचा तब दारुक ने कहा:—

हे कृष्ण ! यदुकुल का तो नाश हो गया; अब चलो बलराम के पास चलें।

कृष्ण इस बात पर राज़ी हो गये। वे लोग बलराम को ढूँढ़ने के लिए इधर उधर घूमने लगे। अन्त में उन्होंने वन के बीचोंबीच एक निर्जनस्थान में एक पेड़ के नीचे उनको ध्यान में मग्न पाया। तब कृष्ण ने दारुक से कहा:—

हे सारथि ! तुम शीघ्र ही हस्तिनापुर जाव और अर्जुन से यादवों के नाश का हाल कहो। यह ख़बर पाते ही वे ज़रूर यहाँ आवेंगे।

फिर वे पास खड़े हुए बभ्रु से बोले:—

भद्र ! तुम स्त्रियों की रक्षा के लिए शीघ्र ही नगर जाव।

महावीर बभ्रु नशे में चूर चुपचाप बैठे थे। कृष्ण की आज्ञा पाते ही वे नगर की

ओर चले। पर वे कुछ ही दूर गये होंगे कि शिकारियों से भरे हुए उस वन में किसी शिकारी ने लोहे का मुद्गर उन पर फेंका। उसकी चोट से वे ज़मीन पर गिर पड़े। जब महात्मा कृष्ण ने देखा कि वे मर गये तब लाचार होकर ध्यान में बैठे हुए बलराम से वे बोले:—

हे आर्य्य! इस स्त्रियों की रक्षा का प्रबन्ध करके जब तक लौट न आवें तब तक तुम यहीं हमारा इन्तज़ार करना।

यह कह कर कृष्ण शीघ्र ही नगर में गये और पिता के पास जाकर बोले:—

हे पिता! हमने हस्तिनापुर दूत भेजा है। यह दु:खदायी ख़बर पाकर जब तक अर्जुन यहाँ न आवें तब तक आप अन्त:पुर की स्त्रियों की देख-भाल कीजिएगा। हमारे मित्र आकर जैसा प्रबन्ध करें वैसा आप बिना विचारे मान लीजिएगा। इस समय बड़े भाई वन में बैठे हमारी राह देख रहे हैं; इसलिए हम उनके पास जाते हैं।

वन में बलराम के पास आकर कृष्ण ने देखा कि उसी पेड़ के नीचे उनकी देह काठ की तरह अचेत अवस्था में पड़ी है। वे तुरन्त समझ गये कि योग की अवस्था में उनके प्राण निकल गये हैं। तब व्याकुल होकर कृष्ण उस निर्जन वन में इधर उधर घूमने लगे। अन्त में यह सोच कर कि जो कुछ होनहार होता है वह अवश्य होता है, वे लाचार होकर एक जगह बैठ गये।

इसी समय एक शिकारी वहाँ शिकार खेलने आया। दूर से कृष्ण को मृग समझ कर उसने बाण फेंका। वह बाण कृष्ण के तलवे में घुस गया। शिकार को उठाने के इरादे से जब वह शिकारी कृष्ण के पास आया तब उन्हें देख कर वह घबरा गया। अपने कृतापराध से उसे बड़ी लज्जा हुई। वह कृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा। कृष्ण ने समझा बुझा कर उसे शान्त किया और प्राण-त्याग करके स्वर्ग को चल दिया।

इधर कृष्ण का सारथि दारुक हस्तिनापुर में पहुँचा और पाण्डवों से प्रभासतीर्थ की सारी दु:खदायक कथा सिलसिलेवार कह सुनाई। यह सुन कर शोक से वे लोग महा व्याकुल हुए। कृष्ण के प्यारे मित्र अर्जुन दारुक के साथ द्वारका को तुरन्त चल दिये।

वहाँ पहुँच कर अर्जुन ने देखा कि द्वारका नगरी अनाथ स्त्री की तरह अत्यन्त हीन दशा को प्राप्त है। अर्जुन को देखते ही अन्त:पुर की स्त्रियाँ ज़ोर से रोने लगीं। उन पति-पुत्रविहीन स्त्रियों का आर्त्तनाद सुन कर अर्जुन अधीर हो उठे। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। इससे उन्हें कुछ न सूझ पड़ने लगा।

अन्त में कृष्ण की प्यारी रानियों को हेमन्तकाल की कमलिनी की तरह कुम्हलाई



[illegible]

हुई देख कर महावीर अर्जुन से और न रहा गया; वे रोते रोते ज़मीन पर गिर पड़े। तब वे हतभागिनी रानियाँ उन्हें घेर कर विलाप करने लगीं। कुछ देर बाद उन्होंने अर्जुन को ज़मीन से उठाया और सोने की चौकी पर बिठा कर उनके चारों ओर बैठ गईं।

इसके बाद अर्जुन बड़ी देर तक कृष्ण का सोच करते रहे। स्त्रियों को उन्होंने बहुत कुछ धीरज दिया। फिर वे मामा से मिलने के लिए उनके घर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वृद्ध वसुदेव पड़े हुए हैं; उठ नहीं सकते। उनको इस हालत में देख कर अर्जुन बड़े दुखी हुए। रोते हुए उन्होंने वसुदेव के पैर छुवे। दुर्बलता के कारण वसुदेव उनका माथा न सूँघ सके; इसलिए हाथ फैला कर उनका आलिङ्गन किया और बोले:—

बेटा! जिन्होंने हज़ारों राजों और राक्षसों को परास्त किया था आज हम उन्हें न देख कर भी जीवित हैं। तुम जिन प्रद्युम्न और सात्यकि को अपना प्यारा शिष्य समझ कर सदा उनकी प्रशंसा करते थे उन्हीं के दुराचरण के कारण यदुकुल का नाश हुआ है। पर इसमें उन्हीं का क्या दोष है? ब्रह्मशाप ही इसका मूल कारण है। जिन कृष्ण ने महाबली और पराक्रमी शत्रुओं के आक्रमण से द्वारका नगरी की बार बार रक्षा की उन्होंने भी इस समय यदुकुल का नाश होते देख कर भी कुछ परवा न की। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जल जाने पर तुम्हारे पौत्र परीक्षित को जिन्होंने जीवन-दान दिया, उन्हीं ने इस समय अपने कुटुम्बियों की रक्षा न की। पुत्र, पौत्र, मित्र और भाइयों के मरने पर उन्होंने हमारे पास आकर कहा:—

पिता! यदुकुल का आज नाश हो गया। हमने अर्जुन के पास दूत भेजा है। उनके आने पर जैसा वे कहें करना।

यह कह कर और बालकों तथा स्त्रियों के साथ हमें यहाँ रख कर वे न मालूम कहाँ चले गये। तब से हम दिन रात बलदेव, कृष्ण और अपने वंशवालों की याद करके भूखे प्यासे दिन बिताते हैं। अब हम जीना नहीं चाहते। इसलिए तुम अपने मित्र के इच्छानुसार काम करो।

वसुदेव की बातों से अत्यन्त व्याकुल होकर अर्जुन ने कहा:—

मामा! हम इस कृष्णशून्य राजधानी को किसी तरह नहीं देख सकते। द्रौपदी और हमारे भाई यदुवंश के नाश होने का वृत्तान्त सुन कर बहुत ही शोकाकुल होंगे। साफ़ मालूम होता है कि अब हम लोगों का भी यह लोक छोड़ने का समय आ गया

है। इसलिए और अधिक दिन रह कर क्या करेंगे ? हम यादववंश के बालकों और स्त्रियों को लेकर शीघ्र ही इन्द्रप्रस्थ जायँगे।

इसके बाद अर्जुन ने मन्त्रियों से कहा:—

महाशयो ! हम रानियों और बालकों को लेकर इन्द्रप्रस्थ जाते हैं। नगर-निवासियों समेत तुम लोग भी वहाँ आ सकते हो। कृष्ण ने सुन रक्खा था और हमसे सदा कहा करते थे कि यह नगर थोड़े ही दिनों में समुद्र में डूब जायगा। इसलिए हम यहाँ से आज के सातवें दिन चला जाना चाहते हैं; सवारियाँ तैयार रखना।

अर्जुन का अभिप्राय समझ कर सब लोग जल्दी जल्दी तैयारी करने लगे। शोक से व्याकुल अर्जुन ने वह रात कृष्ण के घर में किसी तरह काटी।

दूसरे दिन सबेरे महात्मा वसुदेव ने योग साध कर शरीर छोड़ दिया और स्वर्ग का रास्ता लिया। तब अर्जुन ने उनकी मृत देह को अरथी में रख कर अन्तःपुर से निकाला। द्वारका-निवासी शोक करते हुए पीछे पीछे चले। अन्तःपुर की स्त्रियों ने माला और गहने उतार कर फेंक दिये, बाल खोल डाले और छाती कूट कूट कर रोने लगीं।

जीते में जिस स्थान को वसुदेव बहुत पसन्द करते थे वहीं पहुँच कर भाई-बन्धों ने उनका प्रेतकार्य्य किया। इसके बाद उनकी स्त्रियाँ उनको प्रज्वलित चिता में रक्खा देख उसके ऊपर जाकर बैठ गईं। उस चिता के जलने का शब्द सामवेदियों के वेद पढ़ने और उपस्थित लोगों के रोने की आवाज़ से और भी बढ़ गया। वह सारा स्थान ध्वनि-प्रतिध्वनि से गूँज उठा। अन्त में वज्र आदि यदुवंशी कुमारों और स्त्रियों के साथ अर्जुन ने वसुदेव को जलाञ्जलि दी।

इस तरह वसुदेव का प्रेतकार्य्य समाप्त करके परम धार्मिक अर्जुन उस स्थान को गये जहाँ ब्रह्मशाप के कारण मूसल से मरे हुए यादववीर अपने दुराचार के भयङ्कर परिणाम को प्राप्त हुए थे। उस घोर हत्याकाण्ड को देख कर वे बड़े दुखी हुए। बड़े से लेकर छोटे तक सबके क्रिया-कर्म्म की व्यवस्था करके उन्होंने बलदेव और कृष्ण के मृत देह की खोज की और उनका भी अग्नि-संस्कार किया।

सारे शास्त्रोक्त कर्म्म ठीक ठीक करके और यादवों की शोकाकुल नारियों को घोड़े, बैल, और ऊँट जुते हुए रथों पर सवार कराके महावीर अर्जुन ने सातवें दिन इन्द्रप्रस्थ की ओर यात्रा की। अर्जुन के कहने के अनुसार नौकर, योद्धा और पुरवासी लोगों ने कृष्ण के पौत्र वज्र को आगे किया और स्त्रियों को घेर कर द्वारका से चले।

इस समय सब लोगों को यह देख कर बड़ा विस्मय हुआ कि उन लोगों के निकलते ही समुद्र द्वारकापुरी को धीरे धीरे डुबोने लगा।

कुछ दिन बाद दल-बल-समेत अर्जुन धन-धान्य-सम्पन्न पञ्जाब में पहुँचे। यहाँ अहीरों के एक दल ने धन-रत्न समेत इतने वृद्ध, बालक और स्त्रियों को थोड़े से रक्षकों द्वारा घिरा हुआ देख कर उन्हें लूट लेने का इरादा किया और हाथ में लाठियाँ ले लेकर उन पर टूट पड़े।

उन लोगों को अधिक संख्या में देख कर द्वारकावासियों के हाथ पैर ढीले पड़ गये। अर्जुन के डराने पर भी वे लोग बराबर आक्रमण करते रहे। तब क्रोध में आकर अर्जुन गाण्डीव चढ़ाने को तैयार हुए। पर उन्हें मालूम हुआ कि अब उनकी शोकजर्जरित देह में पहले का सा बल नहीं है। ख़ैर; गाण्डीव किसी तरह चढ़ तो गया; परन्तु उनकी समझ में यही न आया कि दिव्य अस्त्र कैसे चलावें। इस पर बाण लगा कर वे लुटेरों के पीछे दौड़े। परन्तु, पहले, गाण्डीव से निकले हुए काले नाग के समान जो बाण शत्रु का ख़ून चूस कर ज़मीन में घुस जाते थे वे आज बिलकुल ही व्यर्थ गये। अन्त में अहीर लोग अर्जुन के सामने ही स्त्रियों को उठा ले जाने लगे। कोई कोई स्त्रियाँ तो अपनी इच्छा ही से लुटेरों के पास चली गईं।

जब अत्यन्त व्याकुल अर्जुन ने देखा कि उनकी भुजाओं की वीरता नष्ट हो गई और उनके सब अस्त्र निष्फल हो गये तब वे इसे ईश्वरी गति समझ कर चुप हो गये।

ख़ैर, किसी तरह बची हुई स्त्रियों और रत्न आदि को लेकर वे कुरुक्षेत्र पहुँचे और भोजराज के पुत्र तथा भोज-स्त्रियों को वहाँ ठहरा दिया। फिर सात्यकि के पुत्र और परिवार को सरस्वती नगरी रहने को दी। अन्त में इन्द्रप्रस्थ का राज्य कृष्ण के पौत्र वज्र को सौंप कर बचे हुए बालक, वृद्ध और स्त्रियों को उनके आश्रय में कर दिया। किसी किसी विधवा स्त्री ने अग्नि में जल कर प्राण दे दिये। कोई संन्यास लेकर तपस्या करने लगीं।

किसी तरह यह इतना बड़ा काम करके अर्जुन लजाते हुए व्यास के आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने महर्षि को ध्यान में मग्न देखा। इससे वे अपना परिचय देने लगे:—

भगवन्! हम अर्जुन हैं; आपके पास आये हैं।

महात्मा व्यास ने देखा कि उनका प्यारा पौत्र अत्यन्त दीन अवस्था में है; इसलिए उन्होंने पूछा:—

बेटा! तुम्हें तो हमने इतना निस्तेज कभी नहीं देखा। क्या तुमने कोई पाप-कर्म्म

किया है या किसी से परास्त हुए हो ? यदि कहने में कोई हानि न हो तो बतलाओ तुम्हारी इस दशा का क्या कारण है ?

इसके उत्तर में अर्जुन ने कहा:—

भगवन् ! मनोहर कान्तिवाले, कमल के समान नेत्रोंवाले, श्याम वर्ण हमारे प्रिय मित्र कृष्ण का स्वर्गवास हो गया है। भोज, वृष्णि और अन्धक वंश के जो वीर सिंह के समान पराक्रमी थे उन्होंने ब्रह्मशाप के कारण प्रभासतीर्थ में एक दूसरे को साधारण तिनकों से मार डाला। इस समय द्वारकापुरी वीरों से शून्य पड़ी है। बार बार चिन्ता करने पर भी इस बात पर हमें विश्वास नहीं होता कि कृष्ण अब जीवित नहीं हैं।

परन्तु हे महात्मा ! इससे बढ़ कर एक और शोचनीय घटना हुई है जिससे हमारी छाती फटी जाती है। हम जब यादव-स्त्रियों को द्वारका से इन्द्रप्रस्थ लिये आते थे तब पश्चात्‌ में बहुत से डाकुओं ने हम पर आक्रमण किया और हमारे सामने ही बहुत सी स्त्रियों को उठा ले गये। युद्ध के समय पहले जो महापुरुष हमारे रथ के आगे बैठ कर हमारी जय-घोषणा करते थे, मालूम होता है उन्हीं के न रहने से हमारा गाण्डीव व्यर्थ हो गया।

जो हो, अब हम जीना नहीं चाहते। हममें न तो अब वीरता ही है और न जोश ही है। इसलिए बतलाइए कि अब हम क्या करें।

अर्जुन का विलाप सुन कर महाबुद्धिमान् व्यासदेव ने उन्हें धीरज दिया और कहा:—

बेटा ! यादवों के जिस दुराचार के कारण ब्रह्मशाप हुआ था उसके परिणाम को अमिट जान कर बुद्धिमान् कृष्ण ने उसके रोकने की चेष्टा नहीं की, और अन्त में स्वयं यह लोक त्याग कर मुक्ति-लाभ किया। इससे तुम अब वृथा दुखी मत हो। तुम लोग भी बड़े बड़े देवकार्य्य करने के लिए इस लोक में आये थे। पृथिवी का पाप-भार हलका करने में तुम लोग सफल हुए हो। मालूम होता है, अब तुम्हारा काम समाप्त हो गया है। इसलिए अब तुममें तेज नहीं रहा। काल ही के प्रभाव से सब कुछ उत्पन्न होता है और काल ही के प्रभाव से सब कुछ नष्ट भी होता है। अब तुम लोगों के स्वर्ग जाने का समय आ गया है; इसलिए उसके लिए उद्योग करना चाहिए।

महर्षि वेदव्यास की बात सुन कर वीरवर अर्जुन को धीरज हुआ। तब हस्तिनापुर जाकर उन्होंने धर्मराज से यदुवंश के नाश होने के सम्बन्ध की सब घटनायें आदि से अन्त तक कह सुनाईं।

१२—महाप्रस्थान

अर्जुन के मुँह से यदुवंश के नाश और कृष्ण के स्वर्गवासी होने का हाल सुन कर धर्म्मराज युधिष्ठिर ने सिर्फ़ यह कहा:—

भाई ! काल आने पर सभी का अन्त होता है। मालूम होता है कि अब हम लोगों का भी काल आ गया। इससे अब महाप्रस्थान की तैयारी करना चाहिए।

सब भाइयों ने यह बात मान ली और युधिष्ठिर के महाप्रस्थान की इच्छा का अनुमोदन किया। तब धर्म्मराज ने परीक्षित को राजगद्दी देकर वैश्या के पुत्र युयुत्सु को राज-काज करने की आज्ञा दी। फिर उन्होंने सुभद्रा से कहा:—

भद्रे ! तुम्हारा यह पौत्र कौरव-राज्य का स्वामी हुआ। कृष्ण के पौत्र को तो हमने पहले ही इन्द्रप्रस्थ का राजा बना दिया है। तुम इन दोनों बालकों पर एक सी दृष्टि रखना।

इसके बाद सर्वसाधारण प्रजा को बुला कर युधिष्ठिर ने उन लोगों से अपना अभिप्राय प्रकट किया। इस पर बहुत व्याकुल होकर उन लोगों ने कहा:—

महाराज ! आप लोगों का यह कर्तव्य नहीं कि हम लोगों को छोड़ कर चले जायँ।

प्रजा ने इस तरह बार बार विनती की। परन्तु उनकी बातों से युधिष्ठिर का मन ज़रा भी न डिगा। अन्त में उन लोगों का यथोचित सम्मान करके युधिष्ठिर ने अपने शरीर से अत्यन्त मूल्यवान् गहने उतार डाले और संन्यासियों के योग्य वल्कल पहने। तब अन्य पाण्डवों और द्रौपदी ने भी वैसा ही वेश धारण किया।

इसके बाद उस समय के उपयुक्त यज्ञ करके और जल में अग्नि फेंक कर पत्नी के साथ पाण्डव लोग राजधानी से निकले। वनवास के लिए जाने की तरह फिर उनको जाते देख सब लोग ज़ोर ज़ोर से रोने लगे। इस समय एक कुत्ता उनके साथ हो लिया।

नगर-निवासी और प्रजागण बहुत दूर तक उनके साथ साथ गये; पर—महाराज ! लौट चलिए—यह बात किसी के मुँह से न निकली। अन्त में सब लोग लौट आये और अपने अपने घर गये। सिर्फ़ उस कुत्ते ने पाण्डवों का साथ न छोड़ा।

यशस्विनी द्रौपदी-सहित पाण्डव लोग संयम अवलम्बन करके पहले पूर्व की ओर चले। सबके आगे धर्म्मराज युधिष्ठिर चले, उनके पीछे महाबली भीमसेन, उनके पीछे

वीरवर अर्जुन, उनके पीछे नकुल और सहदेव और सबके पीछे मनस्विनी द्रौपदी। उस कुत्ते ने साथ न छोड़ा। वह भी सबके पीछे पीछे चला।

इस तरह धीरे धीरे वे लोग समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ अग्नि के दिये हुए जिस गाण्डीव धनुष को अर्जुन प्राण रहते कभी न छोड़ सकते थे उसे उन्होंने फिर अग्नि के हवाले किया।

इसके बाद उन लोगों ने दक्षिण का रास्ता लिया और अनेक देश, नदी और समुद्रों को पार करके पृथ्वी की दक्षिणी सीमा पर पहुँच गये। वहाँ से वे फिर उत्तर की ओर लौटे। इस तरह तीन तरफ़ से भारतवर्ष की परिक्रमा करके उन लोगों ने जल में डूबी हुई द्वारकानगरी के दर्शन किये।

इसके बाद हिमालय पार करने के इरादे से स्त्री-सहित पाण्डव लोग यम-नियम-पूर्वक योगपरायण होकर जल्दी जल्दी उत्तर की ओर चले। रेगिस्तान पार करने के बाद हिमालय की पर्वतमाला और उसके बीच सुमेरु की चोटी दिखाई पड़ने लगी।

इस स्थान से पहाड़ी रास्ता धीरे धीरे दुर्गम होने लगा। राजपुत्री द्रौपदी बहुत थक जाने के कारण योग-भ्रष्ट होकर पतियों के सामने ही ज़मीन पर गिर गईं।

यह देख कर महावीर भीमसेन ने धर्म्मराज युधिष्ठिर से पूछा:—

आर्य्य! हमारी प्रियतमा द्रौपदी ने कभी कोई अधर्म्म नहीं किया। फिर वे इस समय क्यों इस तरह गिर गईं?

इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा:—

भाई! यद्यपि द्रौपदी के सामने हम सब लोग समान थे, तथापि वे अर्जुन का अधिक पक्षपात करती थीं—उन पर उनकी प्रीति कुछ अधिक थी। यही उनके इस तरह गिरने का कारण है।

यह कह कर द्रौपदी की ओर देखे बिना ही धर्म्मराज चुपचाप आगे बढ़ने लगे।

कुछ देर बाद छोटे भाई सहदेव भूमि पर गिरे। तब भीमसेन ने फिर युधिष्ठिर से पूछा:—

महाराज! भाई सहदेव तो सदा हम लोगों के आज्ञाकारी रह कर बराबर सेवा किया करते थे। तब इस समय उन्हें क्यों इस तरह पतित होना पड़ा?

उत्तर में धर्म्मराज ने कहा:—

भाई! सहदेव अपने को सबसे अधिक बुद्धिमान् समझते थे। यही उनके पतित होने का कारण है।

यह कह कर और सहदेव को छोड़ कर युधिष्ठिर अटल चित्त से बचे हुए भाइयों के साथ चलने लगे। वह कुत्ता भी उनके साथ साथ चला।

इसके बाद थोड़ी ही देर में द्रौपदी और सहदेव के गिरने से दुःखित और योगभ्रष्ट होकर नकुल भी ज़मीन पर गिरे। तब भीमसेन ने फिर धर्म्मराज से पूछाः—

महाराज! नकुल ने कभी कोई धृष्टता का व्यवहार नहीं किया। उन्होंने सदा ही हम लोगों की आज्ञा बड़ी सावधानी से पालन की है। तब इस समय वे क्यों गिरे?

इसके उत्तर में युधिष्ठिर बोलेः—

भाई! नकुल अपने को बड़ा रूपवान् समझते थे। यह अहङ्कार ही उनके पतन का कारण है।

यह कह कर धर्म्मराज लापरवाही से आगे चलने लगे। भीम और अर्जुन भी दुःखपूर्ण हृदय से साथ साथ चले।

पर महावीर अर्जुन इन सब शोककारक बातों को अधिक देर तक न सह सके। वे भी शीघ्र ही भूमि पर गिर पड़े। तब भीमसेन ने फिर पहले ही की तरह पूछाः—

महाराज! सर्वगुणसम्पन्न अर्जुन ने तो हँसी में भी कभी झूठ नहीं बोला। वे इस समय क्यों गिरे?

तब युधिष्ठिर ने उत्तर दियाः—

भाई! अर्जुन को अपनी शूरता का जितना अभिमान था उसके अनुसार काम उनसे नहीं हुए। इसी से उनका इस समय पतन हुआ। तुम उनकी तरफ़ मत देखो; चुपचाप हमारे साथ चलो।

यह कह कर धर्म्मराज दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने लगे। वह कुत्ता भी उनके साथ ही साथ रहा।

प्यारे भाइयों के वियोग से अधीर होकर महाबली भीमसेन भी शीघ्र ही ज़मीन पर गिरे। गिरते गिरते उन्होंने बड़े ज़ोर से जेठे भाई को पुकार कर कहाः—

हे आर्य्य! हम आपके प्यारे भाई हैं। हमें किस पाप से इस समय ज़मीन पर गिरना पड़ा?

धर्म्मराज ने उत्तर दियाः—

भाई! तुम दूसरे की परवा न करके अपने ही बाहुबल के मद में मस्त रहते थे। तुम्हारे गिरने का यही कारण है।

यह कह कर युधिष्ठिर पीछे देखे विना चुपचाप आगे बढ़े। उस कुत्ते के सिवा उनके साथ कोई न रहा।

जब इस तरह युधिष्ठिर दृढ़ धैर्य्य के साथ चलने लगे तब रथ के शब्द से पृथ्वी और आकाश को पूर्ण करते हुए देवराज इन्द्र उनके पास आकर बोले:—

राजन्! अब तुम्हें और अधिक परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं; तुम हमारे साथ इस रथ पर सवार होकर चलो।

दुखी धर्म्मराज ने उत्तर दिया:—

हे सुरराज! कोमलाङ्गी द्रौपदी और अपने प्यारे भाइयों को ज़मीन पर पड़ा छोड़ हम स्वर्ग जाना नहीं चाहते।

इसके उत्तर में इन्द्र ने कहा:—

महाराज! द्रौपदी और तुम्हारे चारों भाई देह त्याग करके तुम्हारे पहले ही स्वर्ग पहुँच गये हैं। अतएव उनके लिए शोक न करो। तुम हमारे साथ सदेह वहाँ चलो। वे लोग वहाँ तुम्हें मिलेंगे।

इन्द्र के इस तरह धीरज देने पर युधिष्ठिर ने फिर उनसे कहा:—

हे देवराज! यह कुत्ता हमारा बड़ा भक्त है; इसने कहीं हमारा साथ नहीं छोड़ा। इससे यदि हम इसे छोड़ देंगे तो बड़ी निर्दयता का काम होगा। इसलिए कृपा करके इसे भी हमारे साथ स्वर्ग चलने की अनुमति दीजिए।

युधिष्ठिर के इस तरह अनुरोध करने पर इन्द्र ने उनसे कहा:—

धर्म्मराज! आज सबसे बड़ी सिद्धि प्राप्त करके तुम अतुल सम्पत्ति के अधिकारी हुए हो। स्वर्ग में तुम्हें किसी प्रकार का दुख न होगा। वहाँ कोई भी पाप तुम्हें छू तक न सकेगा। इसलिए इस सामान्य कुत्ते के लिए क्यों दुखी होते हो?

युधिष्ठिर ने कहा:—हे देवेन्द्र! हम अपने सुख के लिए इस भक्त, शरणागत और सहायहीन कुत्ते को किसी तरह नहीं छोड़ सकते।

इन्द्र ने कहा:—हे धर्म्मराज! कुत्ता अत्यन्त अपवित्र जीव है। यह सब लोग जानते हैं कि यदि कुत्ता यज्ञ-क्रिया को देख ले तो यज्ञ का सारा फल नष्ट हो जाता है। इसलिए स्वर्ग में इसे कैसे स्थान मिल सकता है? तुमने प्राण से अधिक प्यारी द्रौपदी और प्रियतम भाइयों का त्याग करके सिद्धि प्राप्त की है; अब इस कुत्ते की माया में फँस कर उस सिद्धि के परमोत्तम फल से क्यों वञ्चित होते हो?

इसके उत्तर में दृढ़संकल्प धर्म्मराज कहने लगे:—

हे इन्द्र ! जब मृत्यु आती है तब किसी से मिलना या बिछुड़ना मनुष्य की इच्छा के अधीन नहीं रहता। अपनी पत्नी और भाइयों को जीवित रहते हमने नहीं छोड़ा। जब जीवन देने में अपने को असमर्थ समझा तभी उनका त्याग किया। मतलब यह कि इस कुत्ते को छोड़ कर हम स्वर्ग नहीं जाना चाहते।

जब महात्मा युधिष्ठिर ने यह प्रतिज्ञा की तब वह कुत्ता साक्षात् धर्म्मरूप होकर धर्म्मराज से मधुर स्वर में कहने लगा:—

बेटा ! हम केवल तुम्हारी परीक्षा लेते थे। अब हम समझे कि तुम सच्चे समझदार, धर्म्मात्मा और सब प्राणियों पर दया करनेवाले हो। हम तुम्हारे धर्म्माचरण से बड़े प्रसन्न हुए हैं। तुम इसी देह से स्वर्ग जाकर अक्षय्य फल प्राप्त कर सकोगे।

भगवान् धर्म्म की यह बात कह चुकने पर सब देवताओं ने वहाँ इकट्ठे होकर इन्द्र के साथ धर्म्मराज को दिव्य रथ पर चढ़ाया। तब अपने तेज से पहले राजर्षियों की कीर्त्ति को मन्द करके आकाश को प्रकाशित करते हुए वे सदेह स्वर्ग गये।

जब धर्म्मराज देवलोक पहुँचे तब उनके पास आकर तपस्वी देवर्षि लोग उनसे प्रीतिपूर्वक मिले। पर महात्मा युधिष्ठिर उस समय भी शान्त और प्रसन्न न थे। वे उनसे कहने लगे:—

हे महापुरुषगण ! हमारे भाई नहीं देख पड़ते। जिस लोक को वे गये हों, चाहे वह भला हो चाहे बुरा, हम भी वहीं जाना चाहते हैं।

तब इन्द्र ने कहा:—

धर्म्मराज ! तुम्हारे समान सिद्धि पहले कोई राजा नहीं पा सका। तुम्हारे भाई इस स्थान के अधिकारी नहीं। तुम मनुष्य की माया छोड़ कर अपने कर्म्म से जीते हुए स्वर्गलोक के सुख-भोग करो।

यह सुन कर युधिष्ठिर नम्रतापूर्वक बोले:—

हे देवेश ! हमारी प्यारी द्रौपदी और परम प्रिय भाई जहाँ हों वहीं जाने की हमारी बड़ी इच्छा है। उन्हें छोड़ कर हम यहाँ नहीं रहना चाहते। बिना भाइयों के स्वर्ग में रहने से हमें कुछ भी सुख न होगा।

इस तरह धर्म्मराज के बार बार विनती करने पर इन्द्र ने उन्हें भाइयों के पास जाने की आज्ञा दे दी और एक देवदूत को बुला कर कहा:—

हे दूत ! तुम युधिष्ठिर को उनके आत्मीय जनों के पास शीघ्र ही ले जाकर उनसे भेंट कराओ।

इन्द्र की आज्ञा पाते ही देवदूत युधिष्ठिर के आगे हुआ और उनको एक बड़े भयङ्कर रास्ते से ले चला। यह रास्ता बड़ा दुर्गम था। इसमें घोर अन्धकार छाया हुआ था। मांस और खून के कीचड़ तथा कीड़ों मकोड़ों से यह भरा हुआ था। जलती हुई आग और भयङ्कर मूर्त्ति के प्रेत चारों ओर दिखाई देते थे। हवा का झोंका आते ही हज़ारों दुखी मनुष्यों का आर्त्तनाद सुनाई पड़ता था।

यह सब देख कर युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। इस दुर्गन्धमय स्थान में चलते चलते धर्म्मराज ने देवदूत से पूछाः—

महाशय! ऐसा रास्ता हम लोगों को और कितनी दूर चलना पड़ेगा? यह कौन स्थान है और हमारे भाई कहाँ रहते हैं?

यह सुन कर देवदूत ने मुँह फेरा और युधिष्ठिर के सामने होकर वह बोलाः—

राजन्! चलते समय देवताओं ने हमसे कहा था कि चलते चलते युधिष्ठिर जब थक जायँ तब उन्हें लेकर लौट आना। इसलिए यदि आप थक गये हों तो चलिए हम लोग लौट चलें।

उस स्थान की दुर्गन्ध से अत्यन्त दुखी होकर युधिष्ठिर वहाँ से लौट पड़े। उस समय कातर-कण्ठों से निकले हुए करुणापूर्ण वाक्य चारों ओर से युधिष्ठिर को सुनाई देने लगेः—

हे धर्म्मपुत्र! हम लोगों पर दया करके थोड़ी देर यहाँ ठहर जाव। तुम्हारे आने से यहाँ पवित्र वायु बहने लगी है। इससे हम लोगों का कष्ट दूर हो गया है। इसके सिवा बहुत दिनों बाद तुम्हारे दर्शन हुए हैं। इससे भी हमें बड़ा आनन्द हुआ है। अतएव कुछ देर ठहर कर हम लोगों को सुखी करो।

ऐसे दीन वचन सुन कर परम दयालु युधिष्ठिर चक्कर में आ गये। उन्होंने उत्कण्ठित होकर पूछाः—

हे दुखी लोगो! तुम कौन हो? क्यों तुम ऐसे स्थान में रक्खे गये हो?

इसके उत्तर में चारों ओर से तरह तरह के कण्ठ-स्वर सुनाई दियेः—

हम कर्ण हैं, हम भीम हैं, हम अर्जुन हैं, हम नकुल हैं, हम सहदेव हैं, हम द्रौपदी हैंः—

इसी तरह अपने सारे कुटुम्बियों और अनेक बन्धु-बान्धवों ने अपना अपना परिचय दिया। तब धर्म्मराज महा अधीर होकर सोचने लगे।

अहा! दैव की गति बड़ी विलक्षण है; कुछ समझ में नहीं आता! क्या हमारे भाइयों और द्रौपदी ने इतने दुष्कर्म किये थे कि वे लोग नरक में डाले गये! पापी दुर्योधन को तो दल-बल-सहित हमने इन्द्रलोक में देखा, और परम धार्मिक होने पर भी अपने भाइयों को हम नरक में पड़ा देख रहे हैं! क्या हम स्वप्न देख रहे हैं? अथवा क्या हमें भ्रम हो गया है?

इस तरह शोकाकुल चित्त से युधिष्ठिर बड़ी देर तक चिन्ता करते रहे। धर्म्मराज का अविचार और अन्याय समझ कर उन्हें बड़ा क्रोध आया। इस पर उन्होंने उस देवदूत से कहा:—

महाशय! तुम जिन लोगों के दूत हो उनसे जाकर कहो कि हम यहीं रहेंगे। हमको पाकर हमारे दुखी आत्मीय जन बड़े प्रसन्न हुए हैं। अतएव हमारे लिए यहीं स्वर्ग है।

धर्म्मराज की यह बात सुन कर देवदूत ज्यों ही अन्तर्द्धान हुआ त्यों ही वहाँ का सारा अन्धकार दूर हो गया और धर्म्म आदि देवता वहाँ आ पहुँचे। उस समय वहाँ का भयङ्कर दृश्य एक-दम दूर हो गया और वह दुःखदायी आर्त्तनाद न जाने कहाँ चला गया। तत्काल ही वहाँ सुख-कर सुगन्धित वायु बहने लगी।

तब देवराज इन्द्र युधिष्ठिर से बोले:—

हे धर्म्मराज! सब देवता तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। अब तुम्हें और कष्ट भोगने की आवश्यकता नहीं। पाप और पुण्य प्रायः सभी करते हैं। इसलिए, चाहे थोड़े समय के लिए हो चाहे बहुत के, चाहे आगे हो चाहे पीछे, सभी को कुछ न कुछ नरक-यन्त्रणा भोग करनी पड़ती है।

तुमने अधिक पुण्य किया है; इसलिए स्वर्ग का सुख भोगने के पहले केवल एक बार थोड़ी देर के लिए तुम्हें नरक देखना पड़ा। तुम्हारी पत्नी और भाइयों ने परम सिद्धि प्राप्त की है। नरक से छूट कर वे सभी स्वर्ग गये हैं।

यह देखो, निकट ही देवनदी मन्दाकिनी बह रही है। उसके पवित्र जल में स्नान करते ही तुम्हारे शोक, सन्ताप और वैर आदि मानुषिक भाव एक-दम दूर हो जायँगे।

इन्द्र की यह बात सुनते ही देवताओं के साथ पुण्यात्मा युधिष्ठिर शीघ्र ही उस त्रिलोक-पावनी नदी के किनारे गये और उसके पवित्र जल में स्नान किया। उसमें स्नान करते

ही युधिष्ठिर की मनुष्य-देह न मालूम कहाँ चल... ...सके बदले उन्हें दिव्य मूर्ति प्राप्त हुई। इसके साथ ही उनके अन्तःकरण से ... और वैरभाव एक-दम दूर हो गया।

तब वे देवर्षियों की की हुई स्तुति सुनते सुनते देवताओं ... साथ वहाँ गये जहाँ उनकी पत्नी, भाई और धृतराष्ट्र के पुत्र क्रोधरहित होकर बड़े सुख ... रहते थे।

